CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

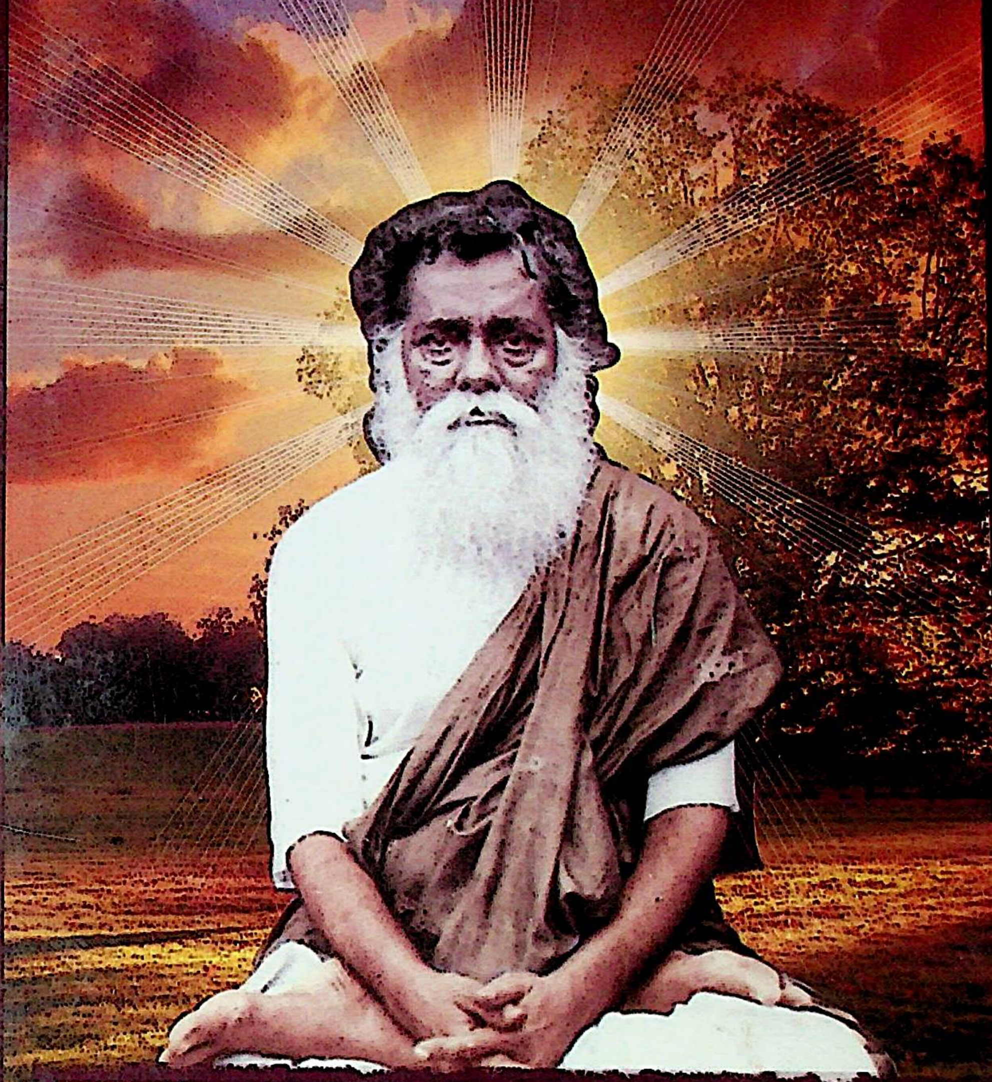

सूर्य विज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव

जीवन और दर्शन

नन्दलाल गुप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5.2

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यविज्ञान प्रणेता

योगिराजाधिराज

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव

जीवन और दर्शन

लेखक

नन्दलाल गुप्त

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

SURYAVIGYĀNA PRAṆETĀ YOGIRĀJĀDHIRĀJA SVĀMĪ VISHUDDHĀNANDA PARAMAHANSADEVA

(His Life and Philosophy)

[*Category* : Spiritual Biography]

by

Nand Lal Gupta

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक या इसके किसी भी अंश की फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता, इसे संक्षिप्त, परिवर्द्धित कर प्रकाशित करना या फिल्म आदि बनाना कानूनी अपराध है।

ISBN : 978-93-5146-110-4

सप्तमः (सातवाँ) संस्करण : 2016 ई०

[7th Edition : 2016]

मूल्य : दो सौ रुपये (Rs. 200.00)

Publisher | प्रकाशक

VISHWAVIDYALAYA PRAKASHAN
Post Box No. 1149,
Vishalakshi Building (Basement), Chowk,
Varanasi - 221001 [U.P. INDIA]

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पोस्ट बॉक्स नं० 1149,
विशालाक्षी भवन (भूगर्भ तल), चौक,
वाराणसी-221 001 [उत्तर प्रदेश, भारत]

Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
E-mail : vvpbooks@gmail.com • sales@vvpbooks.com
Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी-221 001

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

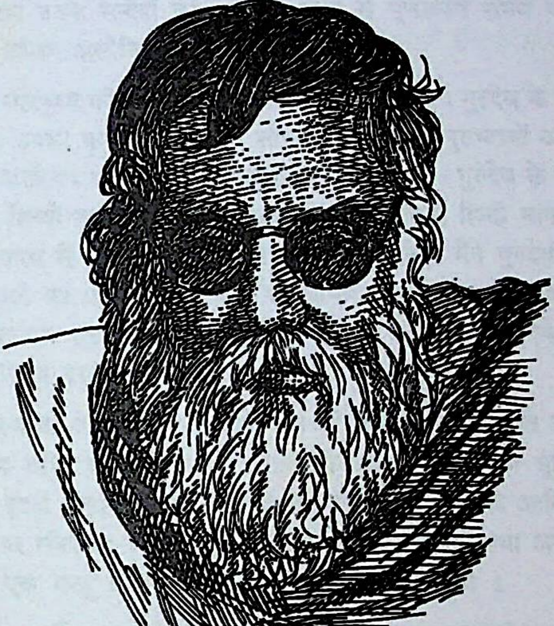

योगिराजाधिराज
स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

सूर्यविज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव एक आदर्श योगी, ज्ञानी, भक्त तथा सत्य-संकल्प महात्मा थे । परमपथ के इस प्रदर्शक ने 'योग' तथा 'विज्ञान' दोनों ही विषयों में परमोच्च स्थिति प्राप्त कर ली थी । शास्त्रों के गुह्यतम रहस्यों को वे अपनी अचिन्त्य विभूति के बल से, योग्य अधिकारियों को प्रत्यक्ष प्रदर्शित करके समझाने तथा उनके सन्देहों का समाधान करने में पूर्णरूपेण समर्थ थे । इस प्रकार से उनका जीवन अलौकिक था ।

ऐसे सिद्ध महापुरुष की जीवनी प्रस्तुत करना सहज नहीं है । गुरुदेव के श्रीचरणों में बैठने का तथा उनकी कृपा का कतिपय सौभाग्य तथा अन्य गुरुभाइयों और भक्तों से गुरु-विषयक वार्त्तालाप का सौजन्य मुझे अवश्य प्राप्त हुआ है । गुरुदेव के सान्निध्य, उनकी कृपा एवं शिष्यों तथा भक्तों के संस्मरणों से प्रेरित होकर, हिन्दी भाषा-प्रेमियों की गुरुदेव के विषय में जानने की उत्कण्ठा की पूर्ति के हेतु, मैंने गुरुदेव की यह जीवनी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । यह क्रमबद्ध न होकर उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का एक संग्रहमात्र है जो उनकी अलौकिक शक्तियों तथा उनके उपदेशों का अल्प-सा परिचय प्रस्तुत करती है ।

इन महापुरुष को अनेक योग-सिद्धियाँ प्राप्त थीं जिससे प्रकृति, काल और स्थान सब उनकी इच्छा-शक्ति के अनुचर थे । साथ-ही-साथ 'विज्ञान' की भूमि में भी इनकी उपलब्धि इतनी असाधारण थी कि सूर्य की उपयुक्त रश्मियों को आतिशी शीशे द्वारा, रुई आदि पर संकेन्द्रित करके वे मनोवांछित धातुओं, मणियों तथा अन्य पदार्थों का सृजन तथा एक वस्तु को दूसरी में परिवर्तित भी कर देते थे ।

काशी के मलदहिया मुहल्ले में उन्होंने 'विशुद्धानन्द कानन आश्रम' स्थापित किया जो अनेक वर्षों तक उनकी लीलाओं का कर्म-स्थल रहा । वहाँ आज भी उनके द्वारा स्थापित प्रसिद्ध 'नवमुण्डी सिद्धासन' तथा संगमर्मर की प्रतिमा के रूप में उनकी स्मृति सुरक्षित है ।

ऐसे महापुरुष की यह जीवनी मेरे जैसे अकिंचन शिष्य का क्षुद्र प्रयासमात्र है। पाठकों, विशेषत: साधकों के लिए पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाने के विचार से, पुस्तक के दूसरे खण्ड में 'दिव्यकथा' के अन्तर्गत श्री विशुद्धानन्द परमहंसदेव के अमूल्य उपदेशों के कुछ अंश प्रस्तुत किये गये हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामीजी प्रत्यक्षवादी थे । उनका कहना था कि जब तक कोई तत्त्व प्रत्यक्ष न किया जाए और उसे दूसरे को प्रत्यक्ष न कराया जा सके तब तक उसमें पूर्ण विश्वास नहीं हो सकता । विभूति-प्रदर्शन का उद्देश्य मात्र इतना ही था । कर्म करने पर वे बहुत जोर देते थे । सदा कहते—'कर्मेभ्यो नमः'—कर्म करो, कर्म करो । शरीर में रहते हुए कर्म करना ही पड़ेगा—इससे छुटकारा नहीं । अतः ऐसा कर्म करो जिससे कर्म-बन्धन सदा के लिए क्षीण हो जाए और ऐसा कर्म है—'योगाभ्यास-क्रिया' । 'क्रिया' के माध्यम से ही मोह-निद्रा से छुटकारा मिलेगा ।

आशा है पाठकों को पुस्तक से उपयुक्त प्रेरणा मिलेगी । पुस्तक के सम्पादन में मुझे डॉ० बदरीनाथ कपूर एम०ए०, पीएच० डी० से उपयुक्त सहायता प्राप्त हुई है जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ ।

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी के संचालक, श्री पुरुषोत्तमदास मोदी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने इतने अल्प समय में पुस्तक को सुचारु रूप में प्रकाशित कर दिया ।

नन्दलाल गुप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खण्ड-एक

जीवनकथा

अध्याय	विषय	पृष्ठ
प्रथम	बाल्यावस्था	१-१०
द्वितीय	जीवन-दिशा में आमूल परिवर्तन	११-१५
तृतीय	ज्ञानगंज-यात्रा	१६-१६
चतुर्थ	दीक्षा के बाद भोलानाथ का अध्ययन-क्रम	२०-२४
पंचम	योग तथा विज्ञान	२५-३१
षष्ठ	विशुद्धानन्दजी की साधना तथा योगशक्ति	३२-३६
सप्तम	विशुद्धानन्द: दण्डी-स्वामी तथा संन्यासी जीवन	३७-३६
अष्टम	संन्यासी श्री विशुद्धानन्द लौकिक कर्मक्षेत्र में	४०-४३
नवम	विशुद्धानन्दजी का विवाह	४४-४६
दशम	गुष्करा का निवास-काल	४७-५६
एकादश	बर्दवान का निवास-काल	५७-५६
द्वादश	आश्रमों की स्थापना	६०-६५
त्रयोदश	योगिराज विशुद्धानन्द परमहंसदेव का व्यक्तित्व तथा विशिष्ट उपदेश	६६-७२
चतुर्दश	परमहंसजी के कुछ अद्‌भुत कार्य तथा घटनाएँ	७३-८०
परिशिष्ट १	ज्ञानगंज योगाश्रम ८१-८६	
परिशिष्ट २	अधिकारी शिष्यों के संस्मरण	८७-१५८
	वे गुरु-चरण—म०म०पं० गोपीनाथ कविराज	८७
	गुरुदेव की स्मृति में—श्री मुनीन्द्रमोहन कविराज	११५
	गुरु-स्मृति—श्री गौरीचरण राय	१२६
	देहत्याग के बाद—श्री सुबोधचन्द्र रावत	१३०
	श्रीगुरुकृपा-स्मृति—श्री जीवनधन गांगुली	१३४
	लौकिक-अलौकिक—डॉ० सुरेशचन्द्रदेव डी०एस०सी०	१३७
	बाबा विशुद्धानन्द-स्मृति—श्री अमूल्यकुमार दत्त गुप्त	१३६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री देवकृष्ण त्रिपाठी के संस्मरण १५१
श्री फणिभूषण चौधरी के... १५३
श्री नरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय के... १५६
श्री उमातारा दासी के... १५८

परिशिष्ट ३ विविध संस्मरण १५६-२१०
महाभारत काल के अग्निबाण का प्रत्यक्ष प्रदर्शन १५६
गुरुदर्शन, गुरुकृपा—श्री इन्दुभूषण मुखर्जी १६०
श्री निकुंजबिहारी मित्र के संस्मरण १६१
श्री सच्चिदानन्द चौधरी के... १६४
श्री नेपालचन्द्र चटर्जी के... १६७
श्री मन्मथनाथ सेन के... १६८
श्री मोहिनीमोहन सान्याल के १७१
श्री ज्योतिर्मय गांगुलि के... १७७
श्री गिरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के... १८०
डॉ० नृपेन्द्रमोहन मुखर्जी के... १८२,२०१
श्री प्रियानाथ दे, एम० ए०, बी०एल० के... १८२
बनारस का मायावी—डॉ० पाल ब्रन्टन १८४
राय साहब श्री अक्षयकुमार दत्त गुप्त के... १६०
दिव्य-पुरुष—श्री सुबोधचन्द्र रक्षित १६५
तिरोधान के अनन्तर घटित कुछ लीलाएँ—श्री गोपीनाथ क० १६८
बेले की माला को चम्पे की माला में बदल देना २०४
झाल्दा के राजा उद्धवचन्द्र सिंह की दुर्घटना से रक्षा २०५
गुरुभगिनी के पुत्र की कटी उँगली को जोड़ना २०५
श्री श्यामागति रॉय चौधरी की प्राणरक्षा हेतु रेलगाड़ी... २०६
श्री जगदानन्द गोस्वामी की चीते से जीवन-रक्षा २०७
बेला के फूलों का स्फटिक में परिवर्तन २०७
गुरुदेव की आकाश-गमन की शक्ति २०७
मन के भाव जान लेने की घटना २०८
शास्त्रों के कथन अक्षरशः सत्य हैं—दो प्रत्यक्ष प्रमाण २०६

परिशिष्ट ४ श्री नन्दलाल गुप्त (लेखक) के निजी अनुभव २११-२१७
परिशिष्ट ५ सूर्यविज्ञान तत्त्व २१८-२३४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खण्ड-दो

दिव्यकथा

विषय	पृष्ठ
१. अतृप्ति और आकांक्षा, अभाव, आश्रय, आसन	२३६
२. अहं ब्रह्मास्मि	२३७
३. आनन्द, आत्मा, इष्ट देवता, ऐश्वर्य	२३८
४. उपादान संग्रह तथा उपादान शुद्धि, उपलब्धि	२३९
५. कर्त्तव्य (सांसारिक), कार्य किस प्रकार से होता है ? कर्म, ज्ञान और भक्ति	२४०
६. कीर्तन, क्रिया	२४१
७. कृपा	२४२
८. काम, क्रोधादि रिपु	२४३
९. कर्म-योग	२४४
१०. कर्म-जीवन तथा साधन-जीवन, गुरु की आवश्यकता	२४६
११. सद्गुरु तथा गुरुतत्त्व	२४७
१२. चेष्टा, चित्त, चित्त-चांचल्य तथा मन	२४९
१३. चित्-शक्ति, जड़-प्रकृति, ज्ञान, जप, जीव और स्वभाव	२५०
१४. जीव, जगत् और ईश्वर, त्याग	२५२
१५. दीक्षा तत्त्व	२५३
१६. दान	२५४
१७. दैव (प्रारब्ध) तथा पुरुषकार (पुरुषार्थ, चेष्टा), दुष्प्रवृत्ति (जीव का नीच भाव)	२५५
१८. दुःख, ॐ दुर्गा-बोधन	२५६
१९. धर्म-भित्ति तथा धर्म-जीवन, नाभि धौति, प्राणायाम तथा कुम्भक	२५७
२०. ध्यान, निष्काम कर्म तथा पुरुषकार (चेष्टा, पुरुषार्थ), नित्य तथा अनित्य कर्म, नाभि में मन्त्र की प्रत्यक्षता	२५९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२१. निर्भावना, निर्वाण, निर्भरता, वैराग्य तथा शान्ति २६०
२२. परमात्मा, परमानन्द २६१
२३. प्रणव तथा बीज, प्राक्तन (प्रारब्ध) कर्म, पाप २६२
२४. पुरुषकार (पुरुषार्थ, चेष्टा), प्रेम २६३
२५. पूजा, वासना, ब्रह्मपथ २६४
२६. विवेक, विवाह संस्कार २६५
२७. भगवान्, भक्ति, भालोबाशा (वैषयिक) २६६
२८. महाशक्ति २६७
२९. मनुष्ययोनि तथा पशुयोनि और बलि, महापुरुष एवं योगी के बाह्य लक्षण २६८
३०. मन, देह, मन और आत्मा, मन्द-कार्य २७१
३१. युक्तावस्था, मुक्ति २७२
३२. मोक्ष, मन्त्र क्या है तथा उसकी आवश्यकता २७३
३३. मन्त्र तथा बीज २७४
३४. मन्त्र-शक्ति, मन्त्र और देवता का विचार २७५
३५. मन की शुष्कता, मृत्यु क्या है ? २७६
३६. योग, योगी तथा युक्तावस्था २७७
३७. योग-विभूति २७८
३८. योगाभ्यास, लिंग शरीर २७९
३९. स्थूल, लिंग, सूक्ष्म तथा चैतन्य २८१
४०. वासना का त्याग, विश्वास, शक्ति २८२
४१. शास्त्र अलग-अलग कैसे ? शान्ति, शिष्य के साथ गुरु का सम्बन्ध, श्वास-क्रिया, संन्यास तथा त्याग २८३
४२. साधना का मूल, साधना में विघ्न २८४
४३. सिद्धि २८५
४४. विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ २८६
४५. स्थूल नाश, समाधि २८७
४६. विविध-प्रसंग २८८-३०७

परिशिष्ट

४७. नवमुण्डी सिद्धासन ३०८-३१०
४८. श्री विशुद्धानन्दाय नवरत्नमाला ३११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योगिराजाधिराज

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम अध्याय

बाल्यावस्था

एक बार अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से प्रश्न किया—"हे कृष्ण ! योगसाधना में लगे योगी की, यदि सिद्धि प्राप्त करने से पहले ही मृत्यु हो जाय, तो पुनः उसकी क्या गति होती है ?"

भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया—

"हे अर्जुन ! उस योगभ्रष्ट पुरुष का विनाश न इस लोक में होता है, न परलोक में, क्योंकि भगवदर्थ कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता । एक जन्म में असफल रहनेवाला योग-साधक मृत्यु के उपरान्त चिरकाल तक पुण्य लोकों में निवास करता है । तदनन्तर उसका जन्म किसी आचरणवान् महानुभाव के यहाँ होता है और एक बार फिर वह अपने पूर्व अर्जित योगबल को आधार बनाकर आगे बढ़ता है और परमसिद्धि प्राप्त कर लेता है ।"

हम आज एक ऐसे ही महापुरुष का स्मरण करने जा रहे हैं, जो निश्चय ही पूर्व-जन्म में बहुत बड़ा योगी रहा होगा । वे इस जन्म में श्री विशुद्धानन्द परमहंसदेव के नाम से प्रसिद्ध हुए, उन्हें लोग 'गन्धबाबा' भी कहते थे क्योंकि उनके शरीर से सदा पद्मगन्ध निकलती रहती थी ।

जन्म तथा शैशव

पश्चिम-बंगाल के बर्दवान नगर से चौदह मील उत्तर-पूर्व, भाण्डार-डिही के पास, बण्डूल नाम का एक छोटा-सा गाँव है । वहाँ का चट्टोपाध्याय वंश दीर्घकाल से स्वधर्म-पालन, अतिथि-सेवा एवं देव-द्विज भक्ति के लिए प्रसिद्ध था । उसमें श्री अखिलचन्द्र चट्टोपाध्याय अपनी सहधर्मिणी राजराजेश्वरी देवीं के साथ निष्ठापूर्वक जीवनयापन करते थे । २१ फाल्गुन, १२६२ बंगला संवत् (सन् १८५३ ई०) की वसन्तऋतु में राजराजेश्वरी देवी ने अपनी कोख से एक पुत्ररत्न को जन्म दिया । इस रत्न का स्वागत और अभिनन्दन प्रकृति ने भी मुक्त हृदय से किया । उस समय नूतन प्रभा, नव-उल्लास, नवोन्मेष तथा अभिनव उत्साह सब कुछ अपूर्व और दर्शनीय था । नदियाँ अपनी मन्द-मन्थर गति से लहरों के साथ खेलने लगीं, झरनों की कल-कल ध्वनि में संगीत प्रवाहित होने लगा, सरोवरों में कमल खिल उठे, शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन बहने लगा, लताओं से आलिंगनबद्ध वृक्ष किसी अनजाने हर्ष के आवेश में झूम उठे । बण्डूल ग्राम अपने को धन्य और कृतार्थ समझने लगा । लगता था प्रकृति जैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस शिशु के उज्ज्वल भविष्य से पहले से ही परिचित हो और इस पुण्यात्मा के अवतरण पर हर्ष मना रही हो ।

बालक जन्म से ही अपने अलौकिक रूप तथा गुणों द्वारा माता-पिता तथा दर्शकों के मन-प्राण को आकर्षित एवं आह्लादित करने लगा । सहसा देखने वाले को प्रतीत होता था कि शिशु बाह्यलोक से परे किसी अन्तर्लोक में खोया-सा हो । उसकी निर्निमेष दृष्टि को देखने से जान पड़ता था जैसे वह संस्कारों का मोहावरण भेद करके, किसी दूरस्थ शान्तिमय राज्य की ओर देख रहा हो । सामान्य शिशुओं की भाँति वह न रोता और न व्याकुलता ही प्रकट करता । उसके भोले स्वभाव और विस्मरणशील प्रकृति को देख माता-पिता ने उसका नाम रख दिया 'भोलानाथ' ।

भोलानाथ की आयु जब केवल छह मास की थी, तभी इसके पिता अखिलचन्द्र का तिरोधान हो गया । फिर इसके लालन-पालन का भार इसकी माता राजराजेश्वरी देवी तथा चाचा चन्द्रनाथ के उपर पड़ा । चन्द्रनाथ अपने सगे पुत्र की भाँति भोलानाथ पर अपार स्नेह रखते और बालक के लालन-पालन में किसी प्रकार की त्रुटि न होने देते थे ।

असाधारणता का परिचय

भोलानाथ की असाधारणता का परिचय उसके बाल्यकाल से ही मिलने लगा था । इसका चरित्र-बल, दृढ़-निश्चय, अथक परिश्रम और निर्भीकता सभी अलौकिक थे । भोलानाथ का स्वभाव सामान्य बालकों से सर्वथा भिन्न था । उनके समान खेल-कूद में इसकी विशेष रुचि नहीं थी । वह एकान्त-सेवन में एवं भगवान् की मूर्तियों के साथ खेलने में तथा देवी-देवताओं की अर्चना-पूजा करने में अधिक आनन्दित रहता था । घर में शिवजी प्रतिष्ठित तो थे ही, चण्डी-मण्डप में श्यामसुन्दर, सिद्धेश्वरी, जय दुर्गा, मनसा देवी, गजलक्ष्मी, ताल-बेताल, लक्ष्मीनारायण, बालमुकुन्द आदि अनेक देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ भी विराजमान थीं । भोलानाथ बाग-बगीचों तथा वन में जाकर सुन्दर सुगन्धित पुष्पों का चयन करता और स्वयं सुन्दर मालाएँ बनाता। तुलसीदल तथा बिल्व-पत्र तोड़ लाता एवं स्वयं चन्दन घिसता तथा धूप, दीप आदि पूजा की अन्य सामग्री एकत्र करके एकाग्र मन से पूजा-अर्चना में जुट जाता । इसकी पूजा-अर्चना में उस समय कोई विधि-विहित पद्धति, अथवा विशेष नियम लक्षित तो नहीं होते थे परन्तु पूजा, निष्ठा, एकाग्रता एवं अनुरागपूर्ण होती थी । इसकी माता राजराजेश्वरी देवी भी वहीं साथ बैठकर पूजा करती थीं । उनके कृत्यों और उपदेशों का बालक के कोमल मन पर अमिट प्रभाव पड़ा । जब तक देव-पूजा पूरी न हो जाती तब तक बालक जल भी ग्रहण नहीं करता था—ऐसी थी उसकी निष्ठा तथा दृढ़ता ।

बाल्यकाल के कतिपय चमत्कार

बालक भोलानाथ की जन्म-सिद्ध असाधारणता तथा अलौकिकता के कतिपय उदाहरण—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. देवी-देवताओं में दृढ़ विश्वास

बण्डूल में घर के बगल में, पड़ोसी बंकिम कुण्डू नामक हलवाई के लड़के से भोलानाथ की घनिष्ठ मित्रता थी । वह लड़का जब-जब बीमार पड़ता तब-तब भोलानाथ उसको अपने घर से श्यामसुन्दर का चरणामृत लाकर पिला देता और उसके मस्तक तथा सिर पर छिड़क देता । बस, लड़का रोग-मुक्त हो जाता । ऐसी थी भोलानाथ की अलौकिकता और देवी-देवताओं में दृढ़ विश्वास ।

२. सिद्धि-प्रदर्शन

भोलानाथ को बचपन में न तो नंगे रहने में कोई झिझक थी और न ही रंग-बिरंगे कपड़े तथा जूते पहनने की ही ललक । चाचा चन्द्रनाथ का पितृ-हीन भोलानाथ पर अपार स्नेह था और वे इसे प्रसन्न रखने के लिए नई-नई वस्तुएँ लाकर दिया करते थे । एक बार उन्होंने इसे एक नई धोती लाकर दी । चंचल बालक ने खेल-खेल में धोती को तार-तार कर डाला । जब चाचा चन्द्रनाथ ने इसकी यह करतूत देखी तो वे बहुत क्रुद्ध हुए और उसे खूब फटकारा । इस पर भोलानाथ बहुत ही क्षुब्ध और आन्दोलित हो उठा । इसने धोती के सारे टुकड़ों को एकत्रित कर अपनी मुट्ठी में बन्द किया तथा आँख बन्दकर कुछ प्रार्थना-सी करने के उपरान्त मुट्ठी को चाचा चन्द्रनाथ की ओर दे झटका, मुट्ठी में से धोती साबुत की साबुत निकल पड़ी । चाचा तथा अन्य लोग यह दृश्य देख कर चकित रह गए । तब सबको भान हुआ कि बालक असाधारण है और निश्चय ही देवांश से युक्त है ।

३. निस्पृहता का प्रदर्शन

इसी प्रकार, एक बार, (सम्भवतः सन् १८६० में) चाचा चन्द्रनाथ ने भोलानाथ को एक जोड़ा कीमती विलायती जूते लाकर दिए । भोलानाथ ने उन जूतों को नहीं पहना वरन् सँभाल कर रख दिया । कुछ दिनों बाद जब पड़ोसी शशि लुहार के लड़के का विवाह हुआ तब उसने वे जूते उसे उपहार में दे डाले ।

चाचा चन्द्रनाथ इस बात पर बालक से बहुत असन्तुष्ट हुए और उसको खूब डाँट पिलाई । बालक अत्यन्त दुःखी हुआ । फिर उसने घर की नौकरानी से कुछ रुपये उधार लिए । एक चाकर के कन्धे पर बैठकर बर्दवान गया और उन रुपयों से कुनैन की गोलियाँ खरीदीं । उन दिनों गाँव में और आसपास भी मलेरिया बुखार का खूब जोर था । कुनैन की उन गोलियों को बिकते देर नहीं लगी, रकम दुगुनी हो गई जिसे उस नौकरानी को बालक ने दे दिया । बालक एक बार फिर बर्दवान गया और वहाँ से विलायती जूते खरीद लाया और उन्हें अपने गाँव के संगी-साथियों में बाँट दिया ।

कोई भी बालक अपने पहनने-ओढ़ने की वस्तुएँ दूसरों को देने में सामान्यतः प्रसन्नता का अनुभव नहीं करता वरन् हास-परिहास में भी यदि कोई उसकी वस्तु ले लेता है तो वह दुःखी होकर रोने-चिल्लाने लगता है । अपनी किसी भी वस्तु के प्रति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी निःस्पृहता का प्रदर्शन अलौकिक बालक भोलानाथ में बचपन से ही दिखाई पड़ता था ।

४. दृढ़ निष्ठा तथा वाक्‌सिद्धि

एक दिन अपने संगी-साथियों के साथ बालक भोलानाथ गाँव के बाहर कुछ दूर निकल गया । और बच्चे तो खेल-कूद में लग गये, किन्तु भोलानाथ अलग बैठकर बालू का शिवलिंग निर्मितकर उसकी पूजा में संलग्न हो गया । पुष्प तथा बिल्वपत्र चढ़ाकर प्रेम से प्रार्थना कर ही रहा था कि एक दुष्ट साथी ने आकर उसकी पूजा में विघ्न डाला तथा अपने पैर से शिवलिंग को ध्वस्त कर दिया । यह कुकृत्य देख भोलानाथ के क्षोभ का वार-पार न रहा और उसने क्रुद्ध होकर उस लड़के से कहा—"तूने हमारे शिव के साथ अन्याय किया है और उनकी पूजा में विघ्न डाला है, अतः आज रात शिवजी का सर्प आकर निश्चय ही तुझे डसेगा ।"

उस समय तो बालक भोलानाथ की बात पर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु जब उसी रात को एक सर्प ने उस अभिशप्त बालक को डस लिया तब उसके घर वालों को उसके साथियों ने उस दिन का सारा वृत्तान्त सुनाया । सभी लोग भोलानाथ की भविष्यवाणी पर आश्चर्यचकित हुए । दंश-पीड़ित बालक का अनेक प्रकार से उपचार किया गया पर कुछ लाभ नहीं हुआ । फिर बालक को मरणासन्न देखकर उसकी माता ने सीधे भोलानाथ से ही अपने बच्चे की प्राण-रक्षा की याचना की । तब भोलानाथ ने सरल स्वभाव से उस मृतप्राय बालक के सिर पर हाथ फेरा और जगत्-जननी से एकाग्रचित्त मन ही मन सप्रेम प्रार्थना की । तत्काल उस बालक का विष दूर हो गया और वह उठकर बैठ गया ।

५. कर्ता तो परमेश्वर ही है, मनुष्य तो केवल निमित्त है

एक बार बिना किसी कारण भोलानाथ की बड़ी भर्त्सना की गई जब कि वास्तव में था वह निर्दोष ही । इस अनुचित तथा अन्यायपूर्ण अपमान से भोलानाथ को दारुण मानसिक कष्ट हुआ । इसका स्वाभिमान जाग उठा । यह सोच कर कि—"मनुष्य के हाथ तो कोई कर्तृत्त्व है ही नहीं—वह तो निमित्तमात्र है, हो न हो यह सब श्यामसुन्दर की मुझे अपमानित करने की चाल थी । भोलानाथ श्यामसुन्दर की मूर्ति को हृदय से चिपटा, आत्महत्या के विचार से एक पोखरे में कूद पड़ा । किन्तु आश्चर्य ! पोखरे में जल तो गहरा था, परन्तु बालक जिस ओर भी जाता उधर ही जल उथला हो जाता और केवल घुटनों भर ही रहता । वह विस्मित हो गया । सन्ध्या का समय था अतः सन्ध्याकाल की पूजा हेतु यथासमय मन्दिर में मूर्ति न देख श्यामसुन्दर की मूर्ति की खोज शुरू हुई । तब घर के बाहर पोखरे पर की उपर्युक्त स्थिति देखकर सब लोग विस्मित हो गए और बालक भोलानाथ को श्यामसुन्दर की मूर्ति सहित लेकर सानन्द घर के भीतर आए। यह है भोलानाथ की निर्भीकता तथा स्वाभिमान का एक उदाहरण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी अभयानन्दजी से श्मशान में भेंट

पूर्व जन्म में व्यक्ति जिस कार्य-प्रणाली का अभ्यस्त रहता है, इस जन्म में भी उसी सहज प्रवृत्ति की ओर वह उन्मुख हो जाता है। पूर्व जन्म में जिसकी साधना सिद्धि तक नहीं पहुँच जाती, वह पुनर्जन्म ग्रहण के पश्चात् उस अपूर्ण सिद्धि को पूर्ण करने हेतु पुनः उसी साधना को अपनाकर सिद्धि प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। सभी योगियों और सन्तों में बचपन में ही जो बात समान रूप से दिखाई पड़ती है वह यह कि उनमें एकान्तसेवन की प्रवृत्ति होती है। भोलानाथ को भी बचपन से ही एकान्तसेवन प्रिय था। बण्डूल ग्राम से कोस दूर भाण्डारडिही के पास एक श्मशान स्थल था। उसमें एक विशाल वट-वृक्ष था। भोलानाथ को जब भी अवसर मिलता, वह उस वृक्ष के नीचे अकेले जाकर आत्म-विस्मृति की स्थिति में बैठकर परमानन्द का अनुभव करता। उसकी इस असाधारण बाल्य-प्रवृत्ति को देखकर लोगों ने अनुमान लगा लिया था कि यह बालक अवश्य ही पूर्व जन्म का योग से भ्रष्ट हुआ योगी है जो आगे चलकर एक दिन सिद्ध महापुरुष बनेगा।

भोलानाथ की, बचपन से ही साधुओं तथा सन्त-महात्माओं के दर्शन तथा उनके साथ सत्संग करने में विशेष रुचि थी। गाँव के आसपास किसी साधु-सन्त के पधारने का समाचार पाते ही यह बालक दिन में या रात में किसी समय उनके दर्शन करने अवश्य जाता, उनके साथ धर्म-चर्चा करता और अपनी बुद्धि के अनुसार उनसे तर्क-वितर्क करने से भी न चूकता। इससे उसे हार्दिक परितोष प्राप्त होता था।

एक बार श्मशान के इसी वट-वृक्ष के नीचे एक संन्यासी का आगमन हुआ और उसने धूनी जगाकर वहाँ अपना आसन जमाया। सामान्यतः बच्चे एक विचित्र उत्सुकता तथा अज्ञात जिज्ञासा के वशीभूत हो सन्त-महात्माओं के पास एकत्र हो जाते हैं—यहाँ भी ऐसा ही हुआ। किन्तु वे संन्यासी दूसरे साधु-सन्तों से भिन्न स्वभाव के थे। उन्हें भीड़ बिल्कुल नहीं रुचती थी। बच्चों की भीड़ जुटती देखकर वे उग्र हो उठे, उन्हें मारने झपटे और ढेले उठा-उठाकर उनकी ओर फेंके। बच्चे उन्हें दूर से ही देखते रहे, पास जाने का साहस न बटोर पाए । उन्होंने भोलानाथ को उक्त संन्यासी के आगमन तथा उसके उग्र स्वभाव के विषय में बताया। स्वाभाविक बालकौतूहलवश बालक भोलानाथ के मन में उस संन्यासी को देखने की तीव्र उत्कण्ठा जाग उठी।

सात वर्ष के बालक को श्मशान में कौन जाने देता ? श्मशान गाँव से कोस भर दूर ! इतनी दूर दिन में भी घर वालों की आँख बचाकर उसके लिए जाना सम्भव नहीं था। अतः उसने अपने दो निकटतम मित्रों से गुप्त परामर्श किया। यह निश्चय हुआ कि वे तीनों रात्रि में संन्यासी से भेंट करने के लिए चलेंगे। छोटी अवस्था, कोस भर की दूरी, नीचा-ऊँचा रास्ता, अँधेरी रात, घोर सन्नाटा और वह भी श्मशान का, बालक का यह अद्भुत संकल्प ! प्रभु, तेरी गति जानी नाहिं परै !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोलानाथ जानता था कि साधु-सन्तों के दर्शनार्थ खाली हाथ नहीं जाते अत: उसने दिन में ही एक बड़ा-सा पका कटहल लाकर अपनी गोशाला के छप्पर पर रख दिया था और उत्सुकता से रात होने की प्रतीक्षा करने लगा था। सन्ध्या हुई, फिर रात आई। भोलानाथ चारपाई पर लेटे-लेटे अपनी माँ के सो जाने की प्रतीक्षा करने लगा। प्रतीक्षा का समय काटे नहीं कट रहा था, एक-एक मिनट भारी हो रहा था। माँ उधर घर का काम-काज निपटाने में लगी थी, इधर यह उनके आकर सो जाने की राह देख रहा था। इसे लग रहा था जैसे रात बीती जा रही हो। वह उन्हें आतुरता से बुलाने लगा— ''माँ, अब जल्दी आओ! तुम जब तक नहीं आओगी, मुझे नींद नहीं आएगी।' अन्त में माँ आई और बालक भोलानाथ को थपथपाकर सुलाने लगी। इसने भी सो जाने का ढोंग रचा, उधर माँ को भी नींद आ गई। थोड़ी ही देर में जब इसे विश्वास हो गया कि माँ सो गई है तो चुपके से उठा, गोशाला की ओर बढ़ा; छिपाए हुए कटहल को उतारा और कन्धे पर रखकर घर से बाहर निकल पड़ा!

रास्ते में साथ चलने वाले उन दोनों साथियों को ढूँढ़ा, पर उस अँधेरी रात में कौन आता ? कुछ देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् केवल सात वर्ष के, अदम्य उत्साही तथा दृढ़-संकल्प बालक ने अकेले ही अर्धरात्रि को उस बड़े कटहल को कन्धे पर रखकर श्मशान की राह ली। जब दो मील की ऊँची-नीची राह पार करके वह श्मशान भूमि के निकट पहुँचा तो उसे दूर से ही लपटें बिखेरता हुआ एक अग्रि-पिण्ड-सा दिखाई पड़ा। भोलानाथ ने समझा कि वे लपटें संन्यासी की धूनी की आग से निकल रही हैं, किन्तु और निकट आने पर इसने देखा कि वास्तव में वे आग-की-सी लपटें संन्यासी के शरीर से ही निकल रही हैं। क्षणभर के लिए तो बालक डर कर गुमसुम हो गया। साहस बटोरकर जब कुछ और निकट गया तब संन्यासी की दृष्टि भोलानाथ पर पड़ी। वे पत्थर उठाकर इसकी ओर लपके। यह देख भोलानाथ ने कटहल को पृथ्वी पर रख वहीं पड़े एक बाँस को उठा लिया। संन्यासी ने यदि आक्रमण किया तो यह उनका मुकाबला करेगा।

बालक का यह अदम्य साहस देख, संन्यासी चकित हो गया और बक-बक करते हुए इसकी ओर बढ़ा। भोलानाथ ने पूछा—''आप ऐसा अशिष्ट व्यवहार क्यों करते हैं और वह भी एक बालक के प्रति ?''

संन्यासी ने उत्तर दिया—''बच्चे बड़े उपद्रवी होते हैं; वे अवसर मिलते ही दुर्व्यवहार करते हैं। इसीलिए मैं उन्हें पास नहीं फटकने देता। तुम बाँस फेंक दो। मैं तुम्हें नहीं मारूँगा।''

भोलानाथ बोला—''पहले तुम अपने हाथ का पत्थर फेंको, तब मैं बाँस फेंकूँगा।'' जब संन्यासी ने पत्थर फेंक दिया तब बालक ने भी बाँस को हाथ से गिरा दिया। अब दोनों में मेल हो गया, संन्यासी ने भोलानाथ से बातचीत की ओर बोले, ''बालक! इतनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोटी अवस्था में भी, इस भयानक अँधेरी रात में, निर्जन अरण्य और घोर श्मशान में तुम मेरे पास आ पहुँचे, आश्चर्य है। तुम अभी अपने असली स्वरूप से परिचित नहीं हो। समय आने पर, अपने अस्तित्व को समझ सकोगे।''

भोलानाथ ने श्रद्धापूर्वक कटहल भेंट किया। उतने बड़े, लगभग पाँच-सात सेर के कटहल को संन्यासी ने बात की बात में खा डाला। भोलानाथ चकित-सा देखता ही रह गया।

बालक ने कुछ धर्म-चर्चा के उपरान्त, प्रभावित होकर, संन्यासी से अनुरोध किया कि मुझे भी अपने साथ ले चलें। संन्यासी बोले, ''अभी नहीं—बाद में हमारी भेंट होगी।''

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि यह संन्यासी कोई साधारण व्यक्ति नहीं वरन् तिब्बत में स्थित 'गुप्त योगाश्रम-ज्ञानगंज' के पूज्य अभयानन्दजी थे। ज्ञानगंज पहुँचने पर भोलानाथ को इनके दर्शन फिर हुए। भोलानाथ की महातपा महाराज द्वारा दीक्षा के बाद तो वे इनके गुरुभाई ही बन गये।

संन्यासी से विदा लेकर बालक भोलानाथ भागता हुआ घर आया। वह आशंकित था कि कहीं माँ मुझे खोज न रही हो। रात के तीन बज चुके थे, सवेरा होने वाला था। माँ गहरी नींद में सो रही थी। यह देखकर इसने ईश्वर को मन ही मन धन्यवाद दिया। फिर माँ की बगल में चुपचाप जाकर सो गया।

चन्द्रनाथ ने भोलानाथ को अंग्रेजी पढ़ाने की बहुत चेष्टा की किन्तु भोलानाथ की अंग्रेजी पढ़ने में तनिक भी रुचि न थी और चाचा की अनेक ताड़नाओं के बाद भी वे अंग्रेजी न पढ़ पाए। संस्कृत से भोलानाथ को स्वभावतः रुचि थी। अतः नवद्वीप के तत्कालीन विख्यात विद्वान् पण्डित विद्यारत्न महाशय से इन्होंने थोड़े ही समय में अपनी अलौकिक प्रतिभा से संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। पन्द्रह से सत्तरह वर्ष की अवस्था तक दो वर्ष भोलानाथ ने बर्दवान में शिक्षा पाई। भोलानाथ की योग तथा विज्ञान की शिक्षा का विवरण पाँचवें अध्याय में पढ़िये।

चाचा चन्द्रनाथ का देहावसान

महामाया की प्रत्येक लीला सामान्य मानवीय बुद्धि से परे होती है। वह शुभ के माध्यम से अशुभ और अशुभ के माध्यम से शुभ का विधान करने में अतिशय कुशल है। वह समय-समय पर भावी महापुरुषों को विकट परिस्थितियों तथा विषम वातावरण में डालकर उनको शारीरिक तथा मानसिक कष्ट सहन कर सकने का अभ्यास तो डालती ही है साथ ही साथ यथासमय उनकी सहन-शक्ति की परीक्षा भी लेती रहती है। इसी नियम के अनुसार भोलानाथ की भी परीक्षा का समय आ गया और उसकी आठ वर्ष की आयु होते उसके चाचा चन्द्रनाथ का भी स्वर्गवास हो गया।

घर में कुहराम मच गया किन्तु बालक भोलानाथ पर इसका कोई विशेष प्रभाव दृष्टिगत नहीं हुआ। इस जटिल और सब प्रकार से विपरीत दिखाई पड़ने वाली परिस्थिति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में भी उसने अपना बौद्धिक और मानसिक सन्तुलन न खोया और एकदम शान्त रहा। इस प्रकार महामाया की इस परीक्षा में वह पूर्णतः सफल रहा। बालक भोलानाथ में यह विशेषता जन्म से ही थी कि यह विषम से विषम परिस्थिति में भी कभी घबराता नहीं था, उसका डटकर सामना करता था, कभी धैर्य्य नहीं छोड़ता था।

मातृ-भक्ति

चाचा चन्द्रनाथ के देहावसान के बाद भोलानाथ के लालन-पालन तथा भरण-पोषण का सारा भार उसकी माता राजराजेश्वरी देवी पर आ पड़ा। वह अब, अपनी आँखों के तारे भोलानाथ को एक पल के लिए भी ओझल न होने देना चाहती थी। भोलानाथ भी माँ को अत्यधिक प्यार करता था और उनकी आज्ञा का उल्लंघन कभी भूलकर भी नहीं करता था। इसकी मातृ-भक्ति अति उच्चकोटि की थी। इसके एक-दो उदाहरण देना यहाँ पर्याप्त होगा।

माता की कुशल के लिए देवी-देवताओं से प्रार्थना

एक बार दैवयोग से माता को हैजा हो गया। सारे सम्भव उपचार और पूरी सेवा-शुश्रूषा करने पर भी रोग न दबा वरन् बढ़ता ही गया। माँ की अवस्था दिन-प्रतिदिन बिगड़ती देख भोलानाथ ने सारे देवी-देवताओं की मनौती मानी तथा सरल भाव और निष्ठा से माता के स्वास्थ्य-लाभ के लिए प्रार्थना भी की। इतने पर भी जब माता एकदम मरणासन्न हो गई तब भोलानाथ को ठाकुरजी तथा सभी देवी-देवताओं पर बड़ा क्रोध आया। वह सब्बल लेकर, घर के पीछे गोशाला में जाकर उपलों के ढेर के पीछे अँधेरे में बैठ गया। आज एक ओर उसकी परीक्षा का दिन था तो दूसरी ओर उसके देवी-देवताओं की। भोलानाथ ने सोचा कि—"देखूँ तो कि जिन देवी-देवताओं की मैंने इतने दिनों तक सेवा-पूजा की है, जिनको सरल अन्तःकरण से पुकारा है, उनमें से कोई आज, मेरी माँ को मरने से बचाने में, मेरी मदद करता है या नहीं ?" उसने निश्चय कर लिया था कि यदि अनर्थ हुआ तो मैं रातोंरात सब देवी-देवताओं की मूर्तियों को सब्बल से तोड़ दूँगा और मन्दिर में आग लगा दूँगा। ठाकुरजी और देवी-देवताओं ने भोलानाथ के प्रण की रक्षा की, उसकी आन रख ली और माँ की दशा सुधरने लगी। सब स्वजनों के होश में होश आया। जब देखा गया कि भोलानाथ वहाँ पर दिखाई नहीं पड़ रहा है, सब को आश्चर्य हुआ और दुश्चिन्ता भी। तुरन्त ही खोज शुरू हुई। बहुत तलाश के बाद बालक भोलानाथ गोशाला में उपलों के ढेर के नीचे मिला। बालक दिन भर का थका-माँदा बिना कुछ खाये-पीये चिन्तामग्न बैठा था। नौकर से पूछने पर जब उसे पता चला कि माता अब अच्छी हैं तब उसकी दुश्चिन्ता दूर हुई, साँस में साँस आई और देवी-देवताओं के प्रति आक्रोश मिटा।

मातृ-प्रेम के आगे धन की कोई कीमत नहीं

मरणासन्न अवस्था में माँ ने भोलानाथ को यह बताया कि उसका गुप्त-धन पूजागृह में किस विशेष स्थान पर गड़ा है—पर बालक भोलानाथ को धन का किंचित् भी ध्यान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न था। भोलानाथ को तो मात्र यह चिन्ता थी कि येन-केन-प्रकारेण उसकी माँ अच्छी हो जाए। लोभवृत्ति ने तो भोलानाथ को कभी छुआ भी नहीं।

'माता को सलाह देना अपराध समझ' उसके लिए माँ से क्षमा-याचना

एक बार की बात है कि एक गरीब पड़ोसी भोलानाथ की माता से कुछ रुपये उधार माँगने आया। माँ ने भोलानाथ से सलाह की। भोलानाथ ने कहा—"उसे रुपये उधार न दो। वह लौटा न सकेगा; उसके पास है ही क्या ?" किन्तु माँ ने हँसकर भोलानाथ की बात टाल दी और उसे रुपये उधार दे दिये।

बाद में इसे यह सोचकर खेद हुआ कि "मैंने माँ को रुपया देने से रोका ही क्यों ?" और यह तुरन्त माँ के पास गया, उनसे क्षमा-याचना की और कहा—"आप मुझे मेरी इस अविनय का दण्ड दें तथा इसका प्रायश्चित्त बताएँ।"

माँ ने कहा–"जाओ, चान्द्रायण व्रत करो।" चान्द्रायण व्रत एक मास तक चलता है। कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन क्रमशः एक-एक ग्रास करके भोजन की मात्रा को कम करना पड़ता है और शुक्लपक्ष में फिर एक-एक ग्रास करके प्रतिदिन भोजन की मात्रा बढ़ानी पड़ती है।

भोलानाथ ने निष्ठापूर्वक उस व्रत का पालन किया। तब जाकर उसे शान्ति मिली।

भोलानाथ का कहना था कि "इस एक बार को छोड़कर, मैंने जीवन भर कभी माता की आज्ञा का निषेध नहीं किया। माँ का कोई भी कथन भोलानाथ के लिए वेदवाक्य की तरह अटल तथा सर्वमान्य था। वे जब घर छोड़कर ज्ञानगंज गये तब, पन्द्रह वर्ष की आयु में भी माता की स्वीकृति लेकर ही गये थे।

यज्ञोपवीत संस्कार

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥ —मातंग लीला, १/५

ब्राह्मणों में बालक के यज्ञोपवीत संस्कार का बड़ा महत्त्व है। इस संस्कार के सम्पन्न होने पर वह 'द्विज' कहलाता है और वेदाध्ययन का अधिकारी होता है।

बालक भोलानाथ का यज्ञोपवीत संस्कार वैदिक रीति से नौ वर्ष की आयु में सन् १८६२ ई० में विधिवत् सम्पन्न हुआ। गायत्री मन्त्र की प्राप्ति के पश्चात्, सावित्री तथा गायत्री देवी के प्रभाव से बालक भोलानाथ में ब्रह्मतेज का समावेश प्रत्यक्ष हो गया और वह तेज सौ गुना होकर बढ़ने लगा।

कहते हैं कि गायत्री मन्त्र की प्राप्ति के पश्चात् एक बार जब ये अपने ग्राम बण्डूल में 'बण्डूलेश्वर महादेव' का दर्शन करने गए तब इनकी तीव्र दृष्टि पड़ते ही शिवलिंग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के दो टुकड़े हो गए और उन टुकड़ों के भीतर इन्हें उमा और महेश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन हुए, साथ ही अन्य देवी-देवताओं के दर्शनों की झाँकी भी प्राप्त हुई।

यहाँ पर यह बताना आवश्यक प्रतीत होता है कि यह बण्डूलेश्वर महादेव का शिवलिंग उस 'हरिहर बाण लिंग' से पृथक् है जो चौदह वर्ष बाद, साधना की उच्चता के फलस्वरूप, श्री भृगुराम परमहंस ने (जो विशुद्धानन्द की योगशिक्षा के गुरु थे) योगिराज विशुद्धानन्द को बण्डूल में स्थापित करने के लिए ज्ञानगंज योगाश्रम से दिया था और जो आज बण्डूल में स्थापित है। यही अब बण्डूलेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी विशेषता यह है कि अति तेजयुक्त होने के अतिरिक्त, इसका वर्ण (रंग) हर प्रहर बदलता रहता है—आठ प्रहरों में आठ रंग। इसका विस्तृत वर्णन चतुर्थ अध्याय में देखिये।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय अध्याय

जीवन-दिशा में आमूल परिवर्तन

'मनुष्य के जीवन में परिवर्तन किस प्रकार तथा किस निमित्त को लेकर होता है'—यह बताना प्राय: कठिन और कभी-कभी तो असम्भव ही प्रतीत होता है। देखने में यह भी आता है कि ऊपर से मंगलदायी सिद्ध होने वाली घटना का परिणाम भयावह हो और भयावह प्रतीत होने वाली घटना का परिणाम अतिशुभ हो।

लौकिक जीवन को महत्ता न देने के कारण, भारतीय महापुरुषों तक के जीवन की विशेषत: उनके बाल्यकाल की घटनाएँ प्राय: अज्ञात या अल्प-ज्ञात ही रह जाती हैं। इसी कारण से बालक भोलानाथ—(जिनको दीक्षा के समय विशुद्धानन्द नाम दिया गया और जो बाद में 'योगिराजाधिराज श्रीविशुद्धानन्द परमहंस' (गन्ध बाबा) के नाम से विख्यात हुए)—के जीवन की विभिन्न घटनाएँ कहाँ-कहाँ तथा किस-किस तिथि को किस-किस अवस्था में घटित हुईं, इसका सही वर्णन प्राप्त नहीं है।

पागल कुत्ते से काटे जाना

यह एक प्रमुख घटना थी, जिसने उनका जीवन-क्रम ही एकदम बदलकर उनको परमहंस योगी के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। इसकी भी ठीक-ठीक तिथि या तारीख निश्चित नहीं है। केवल इतना ही अनुमान है कि भोलानाथ की अवस्था उस समय चौदह या पन्द्रह की रही होगी, जब (सन् १८६६-६७ में ?) एक दिन घर की सीढ़ी से निश्चिन्तता से उतरते समय बालक भोलानाथ का पैर सीढ़ी के नीचे बैठे हुए एक कुत्ते पर पड़ गया। उसने तुरन्त भोलानाथ के पैर में काट लिया। कुत्ता पागल था और उसके विष के प्रभाव से, कुछ ही समय के भीतर भोलानाथ की देह में तीव्र जलन होने लगी।

तुरन्त ही बालक ने कुत्ते द्वारा काटे जाने पर पीड़ा की बात अपनी माता तथा और घर वालों को बताई। भोलानाथ के पितामह स्वयं अच्छे वैद्य थे। तुरन्त चिकित्सा आरम्भ हो गई। कोई लाभ न होता देख उन्होंने दूसरे वैद्यों तथा डॉक्टरों के परामर्श से अनेक उपचार किये किन्तु 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की।' बालक की दशा बिगड़ती देख उसे उसके बाबा गौदलपाड़ा ले गये और वहाँ की—'पागल कुत्ते काटे की'—प्रसिद्ध औषधि खिलाई। किन्तु उससे भी लाभ न हुआ।

इधर विष भयंकर रूप से सारे शरीर में फैल गया और वेदना असह्य हो गई। बालक अत्यन्त पीड़ा के कारण चीखने-चिल्लाने तथा छटपटाने लगा। घबराकर बालक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को हुगली ले जाया गया। वहाँ की एक आटे की चक्की का मालिक, भोलानाथ के चाचा चन्द्रनाथ का बाल-मित्र था, अतः उसी के घर सब लोग ठहरे। हुगली में पागल कुत्ते के काटे की दवा करने वाले अनेक व्यक्ति थे, किन्तु किसी की दवा से जरा भी लाभ न हुआ। अन्त में सबने निराश होकर बालक के जीवन की आशा छोड़ दी। बालक भोलानाथ भी निराश होकर सोचने लगा कि अब जीवन-रक्षा का कोई उपाय नहीं।

हिन्दुओं का विश्वास है कि गंगा के तट पर या गंगा की धारा में प्राण त्यागने से मोक्ष प्राप्त होता है। ऐसा सोचकर एक दिन सन्ध्या समय भोलानाथ धीरे-धीरे गंगातट की ओर चला। सन्ध्या-काल के सूर्य की लालिमा धीरे-धीरे सारे दिगन्त में प्रसरित होने लगी। गंगा का जल भी अरुणवर्णी हो चला। बालक मन-ही-मन सोचने लगा कि इस दिनान्त की ही भाँति मेरे जीवन का भी अन्त निकट है। गंगा की पावन धारा में डूबकर मैं भी विष की इस असह्य वेदना से अपने को सदा के लिए मुक्त क्यों न कर लूँ ?

संन्यासी से प्रथम भेंट तथा रोग से मुक्ति

किन्तु भगवान् की लीला तो कुछ और ही थी। भोलानाथ ने देखा कि गंगा की धारा में, एक जटाजूटधारी सौम्य मूर्ति संन्यासी बारम्बार डुबकी लगा रहा है; जब वह जल से ऊपर आता है तो गंगा का जल भी साधु के साथ-साथ स्तम्भ के आकार में ऊपर उठता है तथा साधु के डुबकी लगाने पर उसके साथ-ही-साथ नीचे चला जाता है। आश्चर्यचकित होकर बालक भोलानाथ इस लीला को एकटक देखता रहा।

इधर संन्यासी ने भी भोलानाथ को देखा। संन्यासी त्रिकालज्ञ थे। उनका मुखमण्डल प्रशान्त था और दोनों चक्षु उज्ज्वल तथा स्नेहमग्न थे। उन्होंने अत्यन्त मधुर एवं गम्भीर स्वर से बालक को पुकारकर कहा—"बच्चा! इतना क्यों घबरा रहा है, बहुत व्यथा हो रही है ? ठहर, हम अभी तुम्हें अच्छा कर देते हैं।"

ऐसा कहकर वह जल से बाहर गंगा-तट पर बालक के पास आ गये और अपना हाथ बालक के सिर पर रख दिया। बालक को अपूर्व शीतलता की अनुभूति हुई। उसे लगा जैसे किसी ने बर्फ की सिल्ली उसके जलते हुए गरम सिर पर रख दी हो। शिराओं में अमृत-सा प्रवाहित होता जान पड़ा। तुरन्त बालक की सारी पीड़ा तथा जलन शान्त हो गई और मृत्यु का भय भी जाता रहा। तत्पश्चात् संन्यासी ने वहीं किनारे पर से एक जड़ी उखाड़ बालक को खिला दी और कहा—"अब घर जाओ। पेशाब के साथ पागल कुत्ते का सारा विष निकल जायेगा और तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओगे। तुम दीर्घजीवी प्रसिद्ध योगी बनोगे। मन से चिन्ता को अब दूर बहा दो।" हुआ भी यही और बालक बिल्कुल स्वस्थ हो गया। घर में आनन्द की लहर दौड़ गई, सबकी दुश्चिन्ता दूर हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालक के मन में संन्यासी के प्रति अतिशय कृतज्ञता तथा श्रद्धा उत्पन्न हो गई और उनसे दीक्षा लेकर उनके साथ रहने की इच्छा जाग पड़ी। भोलानाथ ने डरते-डरते अपनी तीव्र इच्छा अपनी आदरणीया प्रेममयी जननी के सामने प्रकट की। माता का उत्तर था "वत्स! मेरे लिए तो तुम चले ही गये थे क्योंकि मैंने तो तुम्हारे जीवन की आशा छोड़ दी थी। जिसने तुम्हें नव-जीवन प्रदान किया है उनके साथ तुम प्रसन्नतापूर्वक जा सकते हो। मैं आशीर्वाद सहित सहर्ष तुम्हें जाने की आज्ञा देती हूँ। तुम्हारा मंगल हो। हाँ! माँ को कभी-कभी याद कर लेना।"

माँ से प्रार्थना तो की थी पर माँ से आज्ञा मिलेगी, इसमें बालक भोलानाथ को सन्देह था। ऐसी सरलता से आज्ञा पा जाने पर उसके हर्ष का पारावार न रहा। माता के प्रति इसका स्नेह तथा आदर और भी बढ़ गया और उसने माँ के प्रति कृतज्ञता प्रकट की तथा मन ही मन इसे भगवान् का अनुग्रह माना।

दूसरे दिन सन्ध्या को उसी समय भोलानाथ हर्ष तथा उत्साह सहित गंगातट पर फिर पहुँचा और महापुरुष को अपना कुशल-क्षेम बताने के पश्चात् उनसे प्रार्थना की— "प्रभो! आपने मुझे जीवन-दान दिया है। मैं आपको अब छोड़ नहीं सकता। आप मुझे दीक्षा दीजिए और साथ ले चलिए। मैं अपनी माता से आपके साथ चलने और रहने की आज्ञा भी ले आया हूँ।"

संन्यासी ने भोलानाथ को एक आसन सिखाया तथा एक बीज-मन्त्र दिया और कहा—"हम तुम्हारे गुरु नहीं हैं। इस समय तो तुम घर में रहकर इस आसन एवं मन्त्र का अभ्यास करो। इससे तुम्हारे तन और मन की शुद्धि होगी। समय आने पर हम तुमको तुम्हारे गुरु के पास पहुँचा देंगे—तुम निश्चिन्त रहो।"

बालक भोलानाथ को निराशा हुई। अनिच्छापूर्वक वह घर लौट आया। कई दिन तक पेशाब के साथ, छोटे-छोटे विष के कतरे गिरते रहे और इस प्रकार सारा विष निकल जाने पर बालक को पूर्ण आरोग्य-लाभ हुआ। माता, बालक की प्राण-रक्षा से अत्यन्त प्रसन्न हुई और भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि बालक मेरे साथ कुछ समय तो और रहे।

इसके बाद भोलानाथ को पढ़ने के लिए बर्दवान भेज दिया गया। बालक वहाँ कांचन-नगर-मेस में रहकर विद्याध्ययन करने लगा। इसका मौसेरा भाई भी वहीं रहता था। बर्दवान में रहते समय हरिपदो नामक नवयुवक सहपाठी इसका घनिष्ठ मित्र बन गया। अध्ययन करते बर्दवान में दो वर्ष बीत गए पर उस संन्यासी महात्मा के दर्शन न हुए जिन्होंने पागल-कुत्ते के विष से इनकी रक्षा की थी।

संन्यासी से पुनर्मिलन

बर्दवान के बाजार में विश्वरूप साहु की दूकान थी जिसके यहाँ जरूरी सामान खरीदने के लिए भोलानाथ कभी-कभी जाया करता था। एक दिन बालक कुनैन की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोलियाँ खरीदने विश्वरूप की दूकान पर गया। वहाँ एक मुसलमान बता रहा था कि—"ढाका में एक अद्‌भुत संन्यासी आया है। वह जब नदी के जल से ऊपर उठता है तो जल भी एक ऊँचे स्तम्भ के रूप में उसके साथ-साथ उठता है और जब वह नीचे आता है तो जल भी नीचे आता है।" उस मुसलमान से पूछने पर पता लगा कि संन्यासी ढाका के नवाब के रमना के मैदान में ठहरा है।

यह चर्चा सुनते ही, हुगली में पागल-कुत्ते के काटे के विष से रक्षा करने वाले अपने रक्षक संन्यासी का बालक को स्मरण हो आया। उनके दर्शन की इच्छा इसके मन में बलवती हो उठी, और संन्यासी के साथ योग-मार्ग में प्रवृत्त होने का संकल्प फिर से जग उठा। परन्तु घर छोड़कर, संन्यासी के साथ जाने से पहले, माता से आज्ञा लेकर और उनका शुभाशीर्वाद प्राप्त कर लेना भोलानाथ जैसे मातृ-भक्त बालक के लिए अनिवार्य था। अतः बालक बर्दवान से तुरन्त अपने ग्राम बण्डूल आया और माँ के सामने अपनी मनोभिलाषा व्यक्त की। जीवन के एकमात्र सम्बल अपने पुत्र का बिछोह माँ के लिए सरल न था। फिर भी पुत्र की अनुनय-विनय को सुन तथा संन्यासी द्वारा ही भोलानाथ के पुनर्जीवित किये जाने की घटना को स्मरण करके माँ ने, जी कड़ा करके, इसे योग-पथ पर अग्रसर होने के लिए स्वीकृति दी तथा आशीर्वाद प्रदान किया। बर्दवान लौटने पर भोलानाथ ने तुरन्त प्रिय मित्र तथा सहपाठी हरिपदो से संन्यासी के विषय में विचार-विमर्श किया तथा संन्यासी के पास जाने का अपना निश्चय उसे बताया। तब हरिपदो ने भी भोलानाथ के साथ चलने की इच्छा प्रकट की और दोनों मित्रों ने ढाका के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर ये अन्ततोगत्वा रमना के मैदान में खोजते-खोजते एक निर्जन स्थान पर संन्यासी से जा मिले। श्रद्धा-भक्ति पूर्वक अपने प्राण-रक्षक को पहचानकर उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। कुशल-क्षेम के बाद संन्यासी से भोलानाथ ने प्रार्थना की—"प्रभो! अब की बार, कृपा करके मुझे अवश्य ग्रहण कीजिये।"

संन्यासी बोले—"अरे, अकेले न आकर अपने साथ दूसरे को क्यों ले आये हो?" भोलानाथ ने बताया कि हरिपदो मेरा प्रिय मित्र तथा सहपाठी है। यह भी मेरे साथ योग-पथ में प्रविष्ट होने को अति आतुर है और आपकी कृपा का आकांक्षी है। इसीलिए मेरे साथ यहाँ आया है।

तब संन्यासी* ने कहा—"अच्छा! तुम दोनों सन्ध्या के बाद मेरे पास आना।"

घर को इस प्रकार छोड़ना कोई साधारण खेल नहीं। गृह वह आवास है जहाँ माता-पिता, भाई-बहिन, चाचा-चाची आदि सम्बन्धी साथ रहते हैं। पास-पड़ोस का, नाते-रिश्ते का, तथा आस-पास के गाँवों के निवासियों का सम्बन्ध—वस्तुतः सब प्रकार

*यह संन्यासी थे तिब्बत-स्थित, ज्ञानगंज योगाश्रम के महायोगी निमानन्द परमहंस ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सम्बन्धों का केन्द्र घर ही होता है। घर छोड़ने पर सारे सम्बन्ध स्वतः ही छूट जाते हैं। इसीलिए कहा है—"गृह-त्याग एक महान् तथा असाधारण त्याग है।"

सारे प्रियजनों तथा सम्बन्धियों से नाता तोड़कर भोलानाथ आज आया है योग-पथ पर अग्रसर होने के लिए। जो व्यक्ति परमेश्वर का सान्निध्य पूर्ण मन से चाहता है—उनसे योग चाहता है—उसके लिए इस संसार के सारे मायिक सम्बन्धों से नाता तोड़ना अनिवार्य होता है क्योंकि गृह के मोह-पाश से मुक्त होने के बाद ही वह दैहिक और जागतिक मोहावरण को त्याग देने में समर्थ होता है। तुलसीदासजी ने कहा है ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में—"गृह-कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥"

इन्हें पार करना सबके वश की बात नहीं। ईश्वरीय कृपा से बिरले ही अन्तः-शक्ति-सम्पन्न भाग्यशाली महापुरुष इन मार्गों की बाधाओं को पारकर लक्ष्य की ओर अग्रसर हो पाते हैं।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय अध्याय

ज्ञानगंज-यात्रा

उस दिन सायंकाल निर्दिष्ट समय पर, भोलानाथ और हरिपदो, संन्यासी के पास पहुँच गए। संन्यासी निमानन्द ने उनकी निष्ठा और धैर्य की परीक्षा लेने के अभिप्राय से कहा—"यह अच्छी तरह सोच लो कि मेरे साथ बड़े दुर्गम पथ की यात्रा करनी पड़ेगी। भयंकर पर्वत-प्रान्त में रहना पड़ेगा तथा बड़े कष्टों का सामना करना पड़ेगा। क्या तुम ईन सब कष्टों को झेलने को तैयार हो ?" जब दोनों ने सारे कष्टों को सहर्ष सहने का आश्वासन दिया तब संन्यासी निमानन्दजी ने अविलम्ब दोनों बालकों की आँखों पर पट्टी बाँध दी और उनके हाथ पकड़कर अपनी यात्रा पर अग्रसर हो गये। जंगलों में होकर पहाड़ी तथा मैदानी रास्ते से दोनों बालक उनके साथ चलने लगे। उन्हें मार्ग की दुर्गमता का तनिक भी भान नहीं हुआ अपितु यह लगा जैसे वे मखमली कालीन पर पैर रखते हुए हवा में चले जा रहे हैं। राह में अनेक पर्वत तथा नदियाँ पार करनी पड़ीं पर इनका उन्हें थोड़ा भी आभास न हुआ। इस प्रकार सारी रात यात्रा में ही बीत गई। हवा की लहरों में तैरते हुए बालकों को यह पता ही न था कि वे कहाँ और किधर जा रहे हैं। सूर्योदय होने पर उनकी यात्रा का पहला विराम आया। संन्यासी ने दोनों की आँखों पर से पट्टियाँ खोल दीं। बालकों ने अपने को एक निर्जन पहाड़ी पर खड़े पाया, जिस पर एक ओर एक विशाल मन्दिर था तथा उसके चारों ओर पर्वत-श्रेणियाँ ही दिखाई पड़ रही थीं। पूर्व दिशा सूर्य-किरणों की रक्तिम आभा से सुशोभित हो रही थी तथा पक्षी प्रभात के स्वागत में चहक रहे थे।

मन्दिर के सामने कुछ दर्शनार्थी खड़े थे। उनमें से एक भी बंगाली को न देख दोनों बालकों ने समझ लिया कि वे बंगाल से दूर किसी अन्य प्रदेश में पहुँच गये हैं। पूछने पर पता चला कि वे लोग उत्तर प्रदेश में मीरजापुर जिले के अन्तर्गत विन्ध्याचल नामक स्थान में विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर पर हैं। ढाका (पूर्वी-बंगाल) से पश्चिमी बंगाल तथा पूरा बिहार पार करके उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल में मीरजापुर तक की प्रायः छः सौ मील की यात्रा एक ही रात में कैसे पूरी हुई, यह सोचकर दोनों बच्चे अचरज में डूब गये। इन्हें विश्वास हो गया कि हमारी यह लम्बी यात्रा किसी अदृश्य शक्ति द्वारा आकाश-मार्ग से हुई है क्योंकि यदि धरती पर पैर रखते हुए पैदल आते तो समय भी इससे कहीं अधिक लगता तथा बीच में पड़ने वाले पर्वत, वन और नदियाँ अवश्य मिलतीं। यह सोचकर दोनों बालकों के मन में संन्यासी निमानन्दजी के प्रति कई गुनी श्रद्धा और भक्ति हो गई। संन्यासी निमानन्द ने बच्चों को मन्दिर के पास एक सुरक्षित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थान पर बैठा कर कहा—"बालकों, तुम तब तक यहाँ ठहरो जब तक मैं लौट कर नहीं आता। किसी बात का भय न करना और न ही घबराना। मनुष्य या हिंसक पशु कोई भी तुम्हारा अहित नहीं करेगा। मैं लौटकर तुम लोगों को आश्रम में ले चलूँगा।" यह कह कर वे तत्क्षण अन्तर्धान हो गए।

दोनों बच्चे, भोलानाथ एवं हरिपदो वहीं रहे। मन्दिर में बातें करते हुए दर्शनार्थी आते और चले जाते। उनकी बातें इनकी समझ में न आतीं क्योंकि ये दोनों तो बंगला भाषा छोड़ इधर की कोई भाषा जानते-समझते नहीं थे। इनकी चिन्ता बढ़ने लगी। किन्तु करें तो क्या करें ? मात्र इतना ही सन्तोष था कि दोनों आपस में बातचीतकर अपने दुःख को बाँट लेते थे। अभी तक कुछ खाया भी न था अतः भूख भी सताने लगी। दोपहर होते-होते एक श्यामवर्ण ब्राह्मण प्रचुर भोजन-सामग्री लेकर इनके सामने आ उपस्थित हुआ। फिर वह इस सामग्री को इनके सामने रख तुरन्त ही बिना कुछ कहे-सुने वहाँ से चला गया। बालक भूखे थे ही, उन्होंने सानन्द तथा रुचिपूर्वक भोजन किया और तत्पश्चात् विश्राम। उन्हें आशा थी कि संन्यासी शाम तक आ जायेंगे। पर वे सायंकाल तक न आए जिससे वे चिन्तित और निराश हुए। सन्ध्या बीतने पर वही ब्राह्मण फिर भोजन लेकर आया तथा इसे इनके सामने रखकर पूर्ववत् लौट गया। बालक यह न जान पाए कि वह कौन है, उसे कौन भेजता है तथा वह भोजन की सामग्री कहाँ से लाता है ?

इतने में रात्रि हो गई। चारों ओर अँधेरा छा गया। जन-शून्य तथा हिंसक पशुओं से भरा जंगली-पहाड़ी इलाका रात के सन्नाटे में केवल शेर-चीतों और जंगली जानवरों की आवाजें। बच्चे डरने लगे कि कोई हिंसक जीव आकर हमें खा न ले, अतः दोनों पेड़ पर चढ़ गये तथा अपने को अपनी-अपनी धोतियों द्वारा पेड़ की डाल से बाँध लिया जिससे नींद आ जाने पर या डर के मारे नीचे न गिर पड़ें। किसी प्रकार उन्होंने रात बिताई। सबेरा होने पर नीचे उतरे और अष्टभुजा देवी के मन्दिर में चले गये। दिन भर वहीं रहे। उस दिन भी ठीक समय पर भोजन आ गया। यही क्रम कई दिन तक चला, पर संन्यासी न लौटे। अब तो ये दोनों अपने को नितान्त असहाय अनुभव करने लगे तथा चिन्तित हो उठे। घर की याद सताने लगी। भोलानाथ को तो जन्म से ही माँ की गोद में सोने की आदत थी। बड़ा होने पर भी, अब तक जीवन में अपने घर और प्रदेश को छोड़ कहीं बाहर जाने का अवसर नहीं आया था। माता का अनन्य प्यार, गाँव वालों का स्नेह तथा अपने गाँव के बाग-बगीचे इन्हें याद आने लगे। शाम को बाघ की गर्जना सुनी तब तो भोलानाथ और हरिपदो दोनों बहुत ही डर गये और रोने लगे। इसी बीच उनकी दृष्टि आकाश की ओर उठी तो उन्होंने देखा कि पश्चिम आकाश से सुदूर नवोदित चन्द्रमा के समान एक ज्योतिर्मय गोलक उनकी ही ओर धीरे-धीरे उतरता चला आ रहा है। दोनों आश्चर्य से अभिभूत एकटक उसकी ओर देखते रहे। पास आ जाने पर देखा कि दूर से जो ज्योतिर्मण्डल भासता था वह वास्तव में एक नारी-मूर्ति है और उसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की प्रभा ज्योतिष्पिण्ड के रूप में दूर से दिखाई पड़ रही थी। धरती पर उतरते ही उन नारी-मूर्ति ने दोनों बालकों को आशीर्वाद दिया।

उसके सिर पर जटा-जूट, मस्तक पर रक्त-चन्दन की बिन्दी, गले में रुद्राक्ष की माला तथा हाथ में त्रिशूल और मुख पर स्निग्ध तथा करुणापूर्ण हास्य रेखा सुशोभित थी। वे थीं ज्ञानगंज योगाश्रम की सिद्ध भैरवी 'उमा'।

भैरवी माता ने बंगला में कहा—"वत्स! तुम इतना रोये क्यों ? तुम्हारा विह्वल होकर रोना देखकर मैं स्थिर नहीं रह सकी, अतः मुझे उड़कर आकाश-मार्ग से तुम्हारे पास आना पड़ा!" इतना कहकर भोलानाथ को अपनी गोदी में बिठाकर, माता की नाईं उसके सारे शरीर पर दुलार से हाथ फेर कहा—"जो महापुरुष तुमको साथ ले आये थे वे पाँच-छह दिन में आकर तुमको स्वतः ले जायेंगे। तब तक तुम आनन्दपूर्वक यहीं रहो। अब तुम्हें कोई डर नहीं लगेगा। तुम लोग मुझे अपनी माँ ही समझो। जब भी तुम लोग मुझे याद करोगे, मैं तुरन्त तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगी। अब मैं जा रही हूँ,— इतना कहने के साथ माता उमा-भैरवी अन्तर्धान हो गईं। उनके दर्शन तथा संवेदनशील सम्बोधन से दोनों बालकों के मन का उद्वेग जाता रहा तथा उनका चित्त शान्त तथा स्थिर हो गया।

इनके लिए प्रतिदिन निश्चित समय पर प्रातःसायं वहीं श्यामल ब्राह्मण भोजन ले आता और दिन में वे अष्टभुजा देवी के मन्दिर में दर्शनार्थियों की भीड़-भाड़ देखते तथा पूजा-अर्चना आदि में समय बिताते और रात पेड़ पर।

इस प्रकार लगभग एक सप्ताह बाद, वे ही महापुरुष फिर आ उपस्थित हुए। उन्होंने बालकों को अपना नाम स्वामी निमानन्द परमहंस बताया। उन्होंने पहले की तरह इस बार भी दोनों की आँखों पर पट्टियाँ बाँध दीं तथा दोनों को अपने साथ विन्ध्याचल विन्ध्यवासिनी के मन्दिर से लगभग सोलह मील दूर पहाड़ियों के बीच बसे एक आश्रम पर ले गये। वहाँ कुछ महात्मा थे। उन्हीं के पास दोनों बच्चों को छोड़कर वे महापुरुष फिर कहीं और चले गये। इनके भोजन तथा विश्राम की व्यवस्था आश्रम में हो गई। चार-छंह दिन वहाँ बिताने पर, स्वामी निमानन्दजी फिर आये और इन दोनों बालकों को पूर्ववत् "तुकली" नामक पहाड़ी पर ले गये जिसकी एक गुफा के भीतर "श्यामा-भैरवी माता" निवास कर रही थीं। उन्होंने बालकों के प्रति मातृ-स्नेह प्रदर्शित किया तथा इनके खाने-पीने तथा विश्राम आदि की उपयुक्त व्यवस्था कर दी।

उसी दिन सन्ध्या समय संन्यासी फिर आये। उन्होंने दोनों की आँखों पर पूर्ववत् पट्टी बाँधी और अपने साथ ले चले। बालकों को यद्यपि यह प्रतीत होता था कि वे मखमल के गद्दों पर पैदल चल रहे हैं पर उनके मार्ग में कोई कंकड़-पत्थर, झाड़ी-जंगल, किसी प्रकार की भीड़-भाड़ या अड़चन नहीं आई जिससे बालकों को आश्चर्य अवश्य हुआ। वस्तुतः ये बालक संन्यासी निमानन्दजी के साथ आकाश-मार्ग से चले जा रहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। यात्रा में इन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। फिर एक स्थान पर पहुँचकर जब रुके और इनकी आँखों पर से पट्टी खोली गई तो उन्होंने देखा कि सबेरा हो गया है और ये लोग एक दिव्य स्थल पर आ पहुँचे हैं।

चारों ओर गगनचुम्बी पर्वत-श्रेणियाँ श्वेत बर्फ से ढकी श्वेताम्बरा अविचल ध्यानमग्न उर्ध्वस्थ योगनियों की भाँति सुशोभित थीं।

बालोचित जिज्ञासा से बालकों ने निमानन्दजी से पूछा कि—"इस समय हम लोग कहाँ पहुँच गये हैं ?"

वे बोले—"तुम लोग इस समय उत्तरापथ के मध्य तिब्बत में स्थित एक प्रसिद्ध तथा अति दुर्गम गुप्त योगाश्रम में हो जिसे 'ज्ञानगंज योगाश्रम'* कहते हैं।

परमहंस निमानन्द ने भोलानाथ तथा हरिपदो दोनों बालकों को नौ-दस दिन तक ज्ञानगंज योगाश्रम में रखा, तत्पश्चात् उन्हें अपने गुरुवर्य महर्षि महातपा महाराज के चरणों में उपस्थित किया। महर्षि ने शिरःस्पर्श पूर्वक शक्ति-संचार करके दोनों को बीज-मन्त्र प्रदान किया अर्थात् दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया। इस प्रकार से ये दोनों निमानन्द परमहंस के गुरुभाई बन गये।

■

---

*ज्ञानगंज योगाश्रम का वर्णन परिशिष्ट 'क' में देखिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थ अध्याय

दीक्षा के बाद भोलानाथ का अध्ययन-क्रम

दीक्षा मिलने के दिन से ही भोलानाथ तथा हरिपदो का विधिवत् अध्ययन-क्रम आरम्भ हो गया। दीक्षित ब्रह्मचारी की मानसी प्रवृत्तियों को अपनी अन्तर-भेदिनी दृष्टि द्वारा परखकर ही आचार्यगण उनको योग या विज्ञान के विभाग में प्रवेश देते हैं। पहले सामान्यतः योग की शिक्षा दी जाती है जो कठिन नियमों का पालन करके प्राप्त की जाती है। तदुपरान्त ब्रह्मचारी को विज्ञान-विभाग में प्रवेश दिया जाता है। जो विद्यार्थी विशिष्ट प्रज्ञा-सम्पन्न होते हैं वे विद्या को शीघ्र अर्जित कर लेते हैं। भोलानाथ की विशिष्ट प्रज्ञा को देख उनको योग तथा विज्ञान दोनों विषयों की शिक्षा एक ही साथ प्राप्त करने की अनुमति दे दी गई।

योग की शिक्षा बालक भोलानाथ को योग के सर्वश्रेष्ठ आचार्य श्री भृगुरामजी परमहंसदेव से तथा विज्ञान की शिक्षा श्री श्यामानन्दजी परमहंसदेव से मिलने लगी। अत्यन्त निष्ठा, संयम, श्रद्धा, अध्यवसाय, तपस्या तथा मनोनिवेश के साथ, कठोर अनुशासन में रहकर भोलानाथ योग तथा विज्ञान दोनों शिक्षाओं का उपार्जन करने लगे। यह शिक्षा केवल मौखिक ही नहीं वरन् व्यावहारिक रूप में भी प्राप्त करनी पड़ती थी जिससे कि इन विषयों में पूरी दक्षता और प्रवीणता प्राप्त हो जाए।

योग के आठों अंगों को जीवन में उतारने के पश्चात् ही योग में सिद्धि हो पाती है। ये आठो अंग हैं:—

(१) यम	(२) नियम	(३) आसन	(४) प्राणायाम
(५) प्रत्याहार	(६) धारणा	(७) ध्यान	(८) समाधि।

(१) यम—योगमार्ग में यम का पालन अनिवार्य है। योगसूत्र के अनुसार इसके पाँच अंग हैं:—

१. अहिंसा	२. सत्य	३. अस्तेय (चोरी न करना)
४. ब्रह्मचर्य तथा	५. अपरिग्रह।	

(२) नियम—इसी प्रकार नियम भी पाँच गिनाए गये हैं:—

१. शौच	२. सन्तोष	३. तपस्या
४. स्वाध्याय, तथा	५ ईश्वर-प्रणिधान।	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३) आसन—यम और नियमों के पालन में परिनिष्ठित हो जाने पर आसनसिद्धि प्राप्त करनी पड़ती है। जिस प्रकार हृदय में सत्य की प्रतिष्ठा हो जाने पर वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार आसन-सिद्धि हो जाने पर प्राणायाम, प्रत्याहार आदि का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

आसन का लक्षण—शरीर की वह स्थिति जो स्थायी रूप से सुखद हो, 'आसन' कहलाती है। पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, सिद्धासन आदि अनेक प्रकार के आसन होते हैं। आसन लगाने पर जब शरीर को आयास या कष्ट का अनुभव न होने लगे तब समझिये कि आसन सिद्ध हो गया। योग-क्रिया में दो आसन विशेष महत्व के हैं—पद्मासन तथा सिद्धासन।

(४) प्राणायाम—आसन सिद्ध होने पर, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व बाधा नहीं पहुँचाते। तब प्राणायाम की क्रिया सरल हो जाती है जिससे योग-साधक को 'प्राणायाम'-श्वास की गति पर अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(५) प्रत्याहार—प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर अर्थात् श्वास को स्थिर कर लेने पर, इन्द्रियाँ, अपने विषयों से अलग हो जाने के कारण, चित्त के स्वरूप का अनुकरण करने लगती हैं और पूर्णतया वशवर्तिनी हो जाती हैं—यही 'प्रत्याहार' है।

ऊपर कथित पाँचों अंग-योग के बहिरंग साधन हैं। योग के तीन अन्तरंग साधन हैं—१. धारणा २. ध्यान, तथा ३. समाधि—जिनको 'संयम' कहते हैं।

(१) धारणा—चित्त का किसी स्थान या भाव में अनन्य भाव से लग जाने को ही 'धारणा' कहते हैं। नाभिचक्र, हृदय-कमल, शिरोभाग के भीतर के प्रकाश, नासिका के ऊपर भौंहों के बीच किसी बाहरी विषय में ज्ञानमात्र के द्वारा चित्त को स्थिर करके लगा देना ही 'धारणा' है। धारणा द्वारा फिर ध्यान की सिद्धि होती है।

(२) ध्यान—लक्ष्यीभूत देश-विशेष में ज्ञान की अविच्छिन्नता को ध्यान कहते हैं। मन जब किसी देश-विशेष अथवा बाह्य विषय में, संसार के अन्य विषयों अथवा शरीर के अन्य भागों से सर्वथा पृथक् होकर, अविच्छिन्न भाव से लीन हो जाता है, तब वह स्थिति 'ध्यान' कही जाती है। ध्यान में स्थित हो जाने पर समाधि होती है।

(३) समाधि—ध्यान करते-करते, ध्येय के स्वभाव का आवेश होने पर, जब ध्यान ध्येय के आकार से भासित तथा अपने ज्ञानात्मक स्वरूप से रहित हो जाता है। उस स्थिति को 'समाधि' कहते हैं।

अष्टांगों में इन तीन अन्तरंगों को अर्थात् संयम को जय कर लेने पर योग-साधक प्रज्ञा के प्रकाश को पा लेता है। जैसे-जैसे संयम दृढ़तर होता है वैसे-वैसे समाधि-प्रज्ञा उज्ज्वलतर होती जाती है। इस प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होने पर निर्बीज योग की स्थिति आती है—जिसके बाद असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है।

इसके बाद धर्म-परिणाम, लक्षण-परिणाम तथा अवस्था परिणाम—इन तीनों के संयम करने के फलस्वरूप योगी को, अतीत काल में जो कुछ हुआ है तथा भविष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में जो कुछ होने वाला है—दोनों को जानने की क्षमता प्राप्त हो जाती है।

तत्पश्चात् उसमें सुखी जीवों के प्रति मैत्री, दुःखी जीवों के प्रति करुणा तथा पुण्यशील जीवों के प्रति मुदिता की भावनाओं का उदय होता है।

आगे चलकर यदि योगी सूर्य में संयम प्राप्त कर लेता है तो उसे सारे भुवनों का ज्ञान हो जाता है। योगसूत्र कहता है : भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्यं—इन सातों लोकों का ज्ञान पूर्ण निर्बीज समाधि काल में, योगी को हो जाता है।

वस्तुतः योग की चरम-सिद्ध अवस्था में योगी दिक्कालातीत होकर सर्वज्ञ हो जाता है; साथ ही उसे सृष्टि, स्थिति तथा संहार की ईश्वरीय शक्ति प्राप्त हो जाती है। उसकी दृष्टि में यह ब्रह्माण्ड अनन्त ब्रह्माण्ड-समूहों की बालुका-राशि में एक कण की भाँति प्रतीत होता है।

उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए आध्यात्मिक जगत् में योगी का स्थान सर्वोच्च कहा गया है। योगी प्रगति सोपानों पर क्रमशः चढ़ते-चढ़ते, ज्ञान-आवरण के नाश के बाद, भूत जय, अणिमादिक सिद्धियों का प्रादुर्भाव, शरीर सम्पद्, इन्द्रिय जय, मनोजवित्व, विकरणभाव, प्रकृति-जय, सर्वेश्वरत्त्व तथा सर्वज्ञत्व को प्राप्त हो जाता है। इन समस्त शक्तियों के प्रति वैराग्य भाव के उदय होने पर उसे कैवल्य प्राप्ति हो जाती है।

इस प्रकार योग का मार्ग उपद्रवविहीन तथा सुगम न होकर अत्यन्त कण्टकाकीर्ण तथा दुर्गम है, जिसमें पग-पग पर बाधाएँ आती हैं। यदि भगवत्कृपा से सद्गुरु प्राप्त हो जायँ तो वे अवश्य आने वाले विघ्नों से निरन्तर सावधान करने के साथ-साथ रक्षा करते चलते हैं।

आसक्ति तथा गर्व ये दो मुख्य विघ्नकारक शत्रु हैं जो योगी को पतन की ओर गिराते हैं जिनसे योग्नि को सतत सावधान रहना चाहिए।

भोलानाथ योगाश्रम में रहकर परमहंस भृगुरामजी से योग की तथा परमहंस श्यामानन्दजी से विज्ञान की शिक्षा यथानिर्दिष्ट पाने लगा। अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि तथा कठोर साधना के फलस्वरूप उसने योग के आठों अंगों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। मेधा के साथ-साथ अध्यवसाय तथा लगन के पूर्ण सहयोग के कारण वह अपने अन्य सहपाठियों से अधिक उन्नत हो गया। यहाँ तक कि उसकी निष्ठा तथा विशेष उन्नति को ध्यान में रखकर श्री भृगुराज परमहंस ने ज्ञानगंज आश्रम में रखे हरिहर बाणलिंग को—जिसके द्वारा योग-साधकों की स्थिति की परीक्षा ली जाती थी—विशुद्धानन्द को उपहार स्वरूप दे डाला।

हरिहर बाणलिंग

भोलानाथ ने ज्ञानगंज आश्रम में शिक्षा-प्राप्ति के समय घोर तपस्या तथा कठोर साधना और निष्ठा द्वारा अपने से कहीं अधिक आयुवाले और अपेक्षाकृत अधिक दिनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से साधना में लगे साधकों से भी उच्च आध्यात्मिक भूमि पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

योगाश्रम में एक अतिशय शक्ति-सम्पन्न बाणलिंग था। साधारण साधक उसकी ओर अधिक समय तक एकटक नहीं देख सकता था। सिद्ध ब्रह्मचारी तथा विशेष-शक्तिसम्पन्न योगी ही एकाग्र भाव से उस पर दृष्टि जमा सकते थे। दिन के हर प्रहर उसका रंग बदलता था और कितने लोगों को उसके भीतर विचित्र-विचित्र दर्शन भी होते थे। उसका नाम था—'हरिहर-बाणलिंग'। भोलानाथ को साधना के उच्च सोपान पर पहुँचाने में इस सिद्ध बाणलिंग का बड़ा हाथ था। भोलानाथ की असाधारण योगसाधना से सन्तुष्ट होकर दादा गुरुदेव श्री भृगुराम परमहंस ने उनको यह बाणलिंग उपहारस्वरूप प्रदान किया। इस पर अन्य आश्रमवासी वयोवृद्ध योगियों ने आपत्ति की। उनका कहना था कि वह बाणलिंग आश्रम की वस्तु है और आश्रम में ही रहे जिससे अन्य योग-साधक भी पूजा और क्रिया के लिए उससे लाभ उठा सकें। अतः उन्होंने भृगुराज स्वामी के इस निश्चय का प्रतिवाद किया।

भृगुराम स्वामी ने उनसे कहा "देखो भाई! मैं स्वयं अपनी इच्छा से विशुद्धानन्द को यह बाणलिंग देने को प्रस्तुत हुआ हूँ। निस्सन्देह योग्य पात्र समझकर ही यह उसको दिया जा रहा है। यह ठीक है कि उसे देने के बाद बाणलिंग आश्रम में नहीं रहेगा किन्तु इससे आप लोग कदापि दुःखी न हों। आगे इसके द्वारा अत्यन्त महान् कार्य होना है। निकट भविष्य में ही यह बाणलिंग बंग देश में एक विशिष्ट स्थान पर प्रतिष्ठित होगा। उसके बाद जिसकी इच्छा हो वह वहाँ जाकर इसकी पूजा कर सकेगा क्योंकि योगी के लिए तो देश या स्थान की दूरी कोई व्यवधान प्रस्तुत नहीं करती।"

इस पर भी योगियों का पूर्ण समाधान न होते देख, भृगुरामजी, गुरुदेव महातपा महाराज के पास प्रस्तुत हुए और आदर तथा भक्तिपूर्वक उनसे सारी बात कहने के बाद बोलेः—

"गुरुदेव! मैं आश्रम के सिद्ध हरिहर-बाणलिंग को, आज कल्याण-भाजन विशुद्धानन्द की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उसको सौंपना चाहता हूँ। मुझे मालूम है कि वह ही एकमात्र इस असाधारण वस्तु को धारण करने योग्य पात्र है। आप अपने आशीर्वाद सहित अपनी सम्मति देने की कृपा करें।"

गुरुदेव महातपाजी ने सहर्ष आशीर्वाद के साथ अपनी अनुमति प्रदान की। जब भोलानाथ को वह बाणलिंग प्राप्त हुआ तो उसने उसको अपने मस्तक के भीतर रख लिया। आवश्यकतानुसार उसे पूजा-क्रिया के समय बाहर निकालता और पुनः यथास्थान रख लेता। यह लिंग ही इतना समर्थ था जो भोलानाथ की क्रिया-कालीन एकाग्र त्राटक दृष्टि को धारण कर लेता। साधारण लिंग तो बाबा की एकाग्र दृष्टि के तेज को सहन न कर पाते और टूटकर चूर-चूर हो जाते थे—ऐसा कई शिष्यों ने प्रत्यक्ष देखा है।

❖ ❖ ❖

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ समय के बाद दादा गुरुदेव भृगुरामजी ने उस बाणलिंग को विशुद्धानन्दजी के जन्म-ग्राम बण्डूल में स्थापित करने का निर्देश दिया और तदनुसार मन्दिर और आश्रम-निर्माण करने का आदेश दिया। बाबा पहले उस बाणलिंग को रेल-लाइन पर स्थित शक्तिगढ़ नामक स्थान पर स्थापित करना चाहते थे पर भृगुरामजी राजी न हुए। खिन्न होकर बाबा ने उस बाणलिंग को एक बार पोखरे में ही फेंक दिया। किन्तु त्रिकालज्ञ भृगुरामजी ने उसको वहाँ से निकाल कर बाबा से कहा—"तुम इसे पाताल में भी फेंक दो तो मैं इसको वहाँ से निकाल लाऊँगा—तुम इसको बण्डूल में ही स्थापित करो।" उन्होंने बाबा को इसके लिए उपयुक्त स्थल का भी संकेत किया और कहा कि वहाँ खोदाई करने पर पृथ्वी-तल से छह-सात फुट नीचे एक त्रिशूल मिलेगा। अब बाबा ने दत्त-चित्त होकर बण्डूल में ही हरिहर बाणलिंग की स्थापना का कार्य आरम्भ कर दिया। मन्दिर की नींव खोदते समय भृगुरामजी के संकेत के अनुसार ही पृथ्वी में से त्रिशूल निकला। शोधित पवित्र मुहूर्त्त में बण्डूल ग्राम में 'बण्डूलेश्वर' के नाम से उस हरिहर बाणलिंग की प्रतिष्ठा हुई। फिर आश्रम और साधना-गुहा का भी निर्माण किया गया।

योग-साधना तथा मन्त्र-सिद्धि के लिए ऐसे सिद्ध स्थल संसार में बहुत कम हैं। शिवरात्रि, दुर्गापूजा, जन्माष्टमी तथा बाबा विशुद्धानन्दजी का जन्मोत्सव (२१ फाल्गुन सं० १२६२ बंगला)—ये सारे उत्सव वहाँ प्रतिवर्ष बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं, जिनमें अनेक श्रद्धावान् शिष्य उपस्थित होते हैं और इन पर्वों की शोभा अतिशय आनन्ददायक हो जाती है।

इस प्रकार श्री भृगुरामजी परमहंस से योग की शिक्षा पाकर भोलानाथ आदर्श चरित्रयुक्त-योगी बने।

उधर श्री श्यामानन्द से इन्होंने वायु-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, चन्द्र विज्ञान, स्वर-विज्ञान, क्षण-विज्ञान तथा सूर्य-विज्ञान आदि अनेक विज्ञानों की शिक्षा ग्रहण की और उनमें भी विशेष योग्यता प्राप्त कर ली।

इन सब विज्ञानों में सूर्य-विज्ञान सबसे उत्तम विज्ञान है जिसकी कतिपय चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंचम अध्याय

योग तथा विज्ञान

जिन्होंने बाबा श्री विशुद्धानन्दजी परमहंसदेव का साक्षात् संसर्ग प्राप्त नहीं किया अथवा परम्परा से उस सम्बन्ध में कुछ सुना भी नहीं, वे लोग 'सूर्य-विज्ञान' शब्द से कोई धारणा बनाने में असमर्थ होंगे क्योंकि आधुनिक जगत् में इस विज्ञान का प्रथम परिचय ही गुरुदेव श्री विशुद्धानन्दजी द्वारा प्राप्त हुआ।

सूर्य-विज्ञान का परिचय देते हुए बाबा श्री विशुद्धानन्दजी के प्रमुख तथा प्रधान शिष्य स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथजी कविराज ने लिखा है:—

"सन् १९१७ में मैंने सर्वप्रथम श्री विशुद्धानन्दजी का दर्शन किया था। वे असाधारण योगी तथा अलौकिक योग-विभूतिसम्पन्न महापुरुष हैं। दीर्घकाल तक तिब्बत के ज्ञानगंज योगाश्रम में सिद्ध गुरुओं से शिक्षा लेकर उन्होंने योग तथा विज्ञान की उन सारी प्रक्रियाओं तथा विभूतियों को उपलब्ध कर लिया था जो चिरकाल से भारतवर्ष से लुप्त हो गई थीं।"

योग और विज्ञान—दोनों ज्ञान के अलग-अलग कक्ष हैं। दोनों ही अलौकिक हैं। सृष्टि आदि सभी प्रकार के दिव्य कार्य दोनों ही प्रणालियों द्वारा सम्पन्न हो सकते हैं। इसलिए बाह्य दृष्टि से दोनों में भेद कर पाना सहज नहीं। जो लोग विज्ञान के तत्त्व से अनभिज्ञ हैं वे विज्ञान के कार्यों को भी योग-शक्ति का कार्य समझने की भूल कर सकते हैं। वास्तविकता यह है कि दोनों प्रणालियों में मौलिक भेद है जिसको उच्च अधिकार तथा शिक्षा प्राप्त किये बिना समझना कठिन है।

सूर्य-विज्ञान का महत्व भले ही अन्य विज्ञानों से बढ़कर है, यथापि यही एकमात्र विज्ञान नहीं है क्योंकि चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान, शब्द-विज्ञान, क्षण-विज्ञान आदि की बातें मैंने उनके श्रीमुख से सुनी हैं। प्रत्येक विज्ञान के तत्त्वों को सृष्टि-प्रसंग में अनेक बार प्रत्यक्ष करके वे साक्षात् दिखलाते थे। सूर्य-विज्ञान द्वारा जो कार्य सम्पादित होता है वह अन्य विज्ञानों द्वारा भी सम्पादित होता है, यह हमने देखा है। किन्तु विभिन्न विज्ञानों द्वारा निर्मित पदार्थों के बीच मौलिक भेद होता है—इसे वे मुक्त कण्ठ से कहते थे, किन्तु वह जन-साधारण की समझ से बाहर की चीज है। दृष्टान्त स्वरूप कहा जा सकता है कि प्राकृतिक सृष्टि की कोई वस्तु तथा सूर्य-विज्ञान द्वारा सृष्ट वस्तु में बिल्कुल साम्य दिखाई पड़ने पर भी वस्तुतः भेद तथा विलक्षणता है। एक ही वस्तु यदि सूर्य-विज्ञान द्वारा उद्भूत हो और अन्य विज्ञान द्वारा भी उद्भूत की जाए तो एक-सी दीखने पर भी दोनों में मौलिक भेद रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदाहरण के लिए कपूर को ही लीजिये। वही कपूर सूर्य-विज्ञान की नीति के अनुसार सूर्य-किरणों से निर्मित किया जा सकता है तथा वही चन्द्र-विज्ञान अथवा वायु-विज्ञान द्वारा भी बनाया जा सकता है। सामान्य दृष्टि से या बाह्य-विज्ञान की दृष्टि से अर्थात् रासायनिक विश्लेषण द्वारा उनमें कोई अन्तर नहीं मिलेगा, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उनमें अन्तर्निहित पार्थक्य मिल जायेगा। बाह्य अथवा प्राकृत सृष्टि की वस्तु मलिन होगी किन्तु विज्ञान द्वारा सृष्ट वस्तु निर्मल (अति श्वेत) होगी—यह बाबा कहते ही नहीं थे, प्रत्यक्ष दिखा भी देते थे।

इसी प्रकार योगबल से भी वस्तु प्रकट या प्राप्त की जा सकती है। उसमें विज्ञान की तरह किसी उपादान सूर्य, चन्द्र आदि की किरणों की आवश्यकता नहीं होती। केवल वस्तु ही नहीं, सजीव प्राणी भी योग-बल से (इच्छा-शक्तिमात्र से) उत्पन्न हो सकते हैं।

प्राकृत सृष्टि में, विभिन्न विज्ञानों की सृष्टि में तथा योग की सृष्टि में मौलिक अन्तर रहता है जो अति सूक्ष्म दृष्टि से ही देखा जा सकता है। सूर्य-विज्ञान सूर्य की किरणों (रश्मियों) के ज्ञान पर निर्भर होता है। सूर्य की किरणें अनेक वर्णों (रंगों) की होती हैं। इनके विभिन्न प्रकार के संयोग और वियोग के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के पदार्थों का निर्माण होता है। किरण वस्तु-सत्ता की अभिव्यक्ति करती है इसलिए सूर्य-किरणों और उनके वर्णों को पहचानकर विभिन्न वर्णों की किरणों का परस्पर संयोग तथा वियोग का ज्ञान ही सूर्य-विज्ञान का रहस्य है। इसके द्वारा सृष्टि, संहार, आविर्भाव एवं तिरोभाव सभी सम्भव हैं और आवश्यकता होने पर स्थिति और रक्षा भी हो सकती है। सृष्टि और संहार की क्रियाओं के अतिरिक्त रूपान्तर भी हो सकता है। पर समझने की बात यह है कि विज्ञान द्वारा की गयी सृष्टि के मूल में प्राकृतिक उपादान के ऊपर क्रिया-शक्ति-मूलक नियन्त्रण रहता है तभी कुछ सृष्ट हो पाता है।

किन्तु यौगिक-सृष्टि में यह बात नहीं होती। यौगिक-सृष्टि तो इच्छा-शक्ति द्वारा होती है जिसमें उपादान की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। इच्छा-शक्ति की सृष्टि में निमित्त और उपादान अभिन्न होते हैं—आत्मा अर्थात् योगी स्वयं, अपने स्वरूप से बाहर किसी उपादान की अपेक्षा किए बिना इच्छा-शक्ति के प्रभाव से अन्तःस्थित मनोवांछित पदार्थ को बाहर प्रकट कर देता है। आत्मा के अन्तःस्थित पदार्थ को इच्छा द्वारा प्रकट कर देने का नाम ही योग-सृष्टि है। तान्त्रिक परिभाषा के अनुसार, यही बिन्दु की विसर्ग-लीला है। जो योगीगण अद्वैत भूमि पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं उनमें इच्छा-शक्तिमात्र से किसी भी वस्तु की सृष्टि करने की क्षमता होती है।

श्री शंकराचार्य ने भी कहा है कि समग्र विश्व आत्मा के स्वरूप के भीतर ही है, आत्मा से पृथक् नहीं। दर्पण में प्रतिबिम्बित-दृश्य जैसे दर्पण के भीतर ही होता है, वैसे ही प्रकाशमय-आत्मा में प्रतिभासित दृश्य भी आत्मा के भीतर ही होता है। ज्ञानी की दृष्टि में विश्व की कोई भी वस्तु आत्मा से पृथक् नहीं होती जब कि अज्ञानी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की दृष्टि में सांसारिक पदार्थ आत्मा से भिन्न प्रतीत होते हैं। इस अज्ञान तथा भ्रान्ति का एकमात्र कारण है माया का प्रभाव। माया ही देश और काल का उद्भावन करके आत्मनिहित विश्व को अज्ञानी जीव को परिच्छिन्न रूप में दिखाती है।

ईश्वर माया-शक्ति का अधिष्ठाता है, तो ऐश्वर्य-सम्पन्न योगी भी आंशिक रूप में ईश्वर ही बन जाता है। इसीलिए योगी भी मायाशक्ति का आश्रय लेकर किसी भी पदार्थ को अपने अन्तःस्थल से निकालकर बाहर प्रत्यक्ष कर सकते हैं—इसी को योगी की इच्छाशक्ति का व्यापार कहते हैं। यह बाह्य प्रकाशन, अज्ञानान्ध जगत् के जीवों की दृष्टि में वस्तुओं की उत्पत्ति या आविर्भाव रूप में प्रतीत होने पर भी, वस्तुतः आत्मा के साथ अभिन्न भाव से स्थिति वस्तुओं का ही प्रकाशन है अर्थात् आत्मशक्ति का ही बाह्य प्रकाशनमात्र है। यह बाह्य भाव वस्तुतः ज्ञानी और योगी की स्वरूप दृष्टि में नहीं होता जब कि विज्ञान की सृष्टि में इच्छाशक्ति की कोई क्रिया नहीं होती। हाँ, साधारण इच्छा अवश्य होती है क्योंकि उसके न रहने पर तो क्रियाशक्ति कार्य ही नहीं कर सकती।

विज्ञान सृष्टि की दो दिशाएँ या दो प्रकार हैं—एक तो योगी और ज्ञानी का विज्ञान, तथा दूसरा अयोगी और अज्ञानी का विज्ञान। योगी और ज्ञानी, जगत् के मूल उपादान को अपने स्वरूप से अलग न देखकर उसमें ही स्थित अनुभूत करते हैं—हाँ, यदि वे चाहें तो कल्पित भाव से उसे अपने स्वरूप से पृथक् भी देख सकते हैं। किन्तु जो पूर्ण योगी और ज्ञानी नहीं और जो प्रकृति के उपादान को अपने स्वरूप से अलग देखते और समझते हैं, वे भेद दृष्टि का सहारा लेकर विज्ञान की सृष्टि-प्रक्रिया द्वारा, उपादान की सहायता से, सृष्टि-कार्य में प्रवृत्त होते हैं।

ज्ञान के अभाव में क्रिया सम्भव नहीं होती। विज्ञान की क्रिया में ज्ञान और क्रिया दोनों हैं। ज्ञान से यहाँ उपादानगत अपरोक्ष ज्ञान समझना चाहिए।

सूर्य-विज्ञान

सूर्य-विज्ञान की साधारण व्याख्या है—"सूर्य की रश्मियों का विश्लेषण सीखकर, उनके शुद्ध वर्णों को पहचानकर प्रयोजनानुसार उनको बाहर लाकर पकड़ में रख सकना। फिर भिन्न-भिन्न रश्मियों की परस्पर मिलन-पद्धति का ज्ञान अर्जन करके, रश्मि-संयोजन द्वारा भिन्न-भिन्न पदार्थों की सूर्य-रश्मियों को मैग्निफाइंग लेन्स (Magnifying Lens) द्वारा यथोचित मात्रा में संयोजन करके उन पदार्थों का आयोजन करना।"

इच्छाशक्ति द्वारा भी इन पदार्थों का आयोजन हो सकता है और उसमें बाह्य उपादान की आवश्यकता बिल्कुल नहीं पड़ती किन्तु सूर्य-विज्ञान में सूर्य की रश्मियों की नितान्त आवश्यकता है। इच्छाशक्ति और सूर्य-विज्ञान इस प्रकार एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

सभी वस्तुओं में प्रकृति और पुरुष का अंश विद्यमान है :— जिस वस्तु में प्रकृति भाग अधिक एवं पुरुष भाग अल्प है, उसमें प्रकृति भाव ही प्रधान रूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से भासता है; पुरुष भाव अभिभूत अर्थात् छिपा तथा दबा रहता है। इसी प्रकार पुरुष-अंश प्रधान होने पर केवल पुरुष भाव ही दृष्टिगोचर होता है एवं प्रकृति भाव छिपा रहता है। सम्पूर्ण सृष्ट पदार्थ मात्र इन्हीं दो प्रतिकूल शक्तियों के संघर्ष से ही उत्पन्न हुए हैं। यह नियम सर्वत्र वर्तमान है। एक दिन की बात है कि बाबा के आसन पर एक गुलाब का फूल पड़ा था। गोपी दादा (कविराज) ने बाबा से प्रश्न किया :—"बाबा! यह गुलाब पुष्प पुरुष है या नारी ?—इसमें पुरुष का अंश अधिक है या प्रकृति का ?"

बाबा बोले—"यह है स्त्री-पुष्प।" फिर उसमें स्त्री लक्षण आदि दिखाकर उन्हें भली प्रकार से समझा दिया कि ऐसा क्यों है।

बाबा ने कहा—"तुम इस पुष्प की पंखुड़ियाँ एक-एक करके सारी खोल डालो और मुझे दो।" गोपी दादा ने वैसा ही किया। तब बाबा ने उस बिना पंखुड़ी के फूल को हाथ में लेकर दो-तीन बार ऊपर-नीचे घुमाया और कहा—"सूर्य-रश्मियों के द्वारा पुरुष-गुलाब का एक बीज आकर्षण करके मैंने नारी-पुष्प में गर्भाधान करा दिया है। अब इसको तुम अपनी मुट्ठी के भीतर कुछ मिनट तक बन्द रखो जिससे इसको बाहर की ठण्ढी हवा न लगे। प्रायः पाँच मिनट के भीतर ही मुट्ठी में एक बड़े आकार का गुलाब का फूल निर्मित हो गया जो पुरुष-गुलाब था। पहले के छिन्न पुष्प की अपेक्षा यह दुगुना बड़ा था और इसका रंग और गन्ध भी पहले वाले पुष्प से भिन्न थे।

गोपी दादा ने पूछा—"बाबा! योगशास्त्र में लिखा है कि प्रकृति अथवा उपादान के आपूरण-अनुप्रवेश के वश होकर एक जाति का पदार्थ अन्य जाति के पदार्थ में परिणत हो जाता है—यह किस प्रकार से होता है, कृपा करके समझावें।"

बाबा बोले—"हाँ, यह सम्भव है। जगत् के प्रत्येक पदार्थ के भीतर अन्य समस्त पदार्थों के उपादान भी विद्यमान रहते हैं। यही जो गुलाब तुम देख रहे हो, इसी के अन्दर जगत् के सारे पदार्थों के उपादान विद्यमान हैं। किन्तु क्योंकि गुलाब का उपादान इसमें अधिक मात्रा में मौजूद है एवं अन्यान्य उपादान अल्प मात्रा में हैं—अतः इसमें केवल गुलाब के ही गुण तथा क्रियाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। अन्यान्य उपादानों की सत्ता सामान्य दृष्टि की पकड़ में नहीं आती, किन्तु जो योगी हैं अथवा विज्ञान-वेत्ता हैं उनकी दृष्टि सारे उपादानों की सत्ता को इस गुलाब में देखने में समर्थ है। इच्छा करने पर तत्क्षण ही वे लोग क्रिया-कौशल द्वारा दूसरे पदार्थ के यथोचित सजातीय उपादान को बाह्य जगत् से आकर्षित करके एक पदार्थ को उस दूसरे पदार्थ में परिणत कर देते हैं। इस प्रणाली से जगत् की किसी भी वस्तु को मनचाही अन्य वस्तु में परिवर्तित किया जा सकता है।"

अनुलोम-विलोम

बाबा बोले—"देखो, उभयविध परिणाम ही सत्य है। दूध से दही बनता है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दही से मक्खन और मक्खन से घी। दूध के भीतर दही का उपादान छिपा रहता है। ज्ञानविद् योगी इच्छामात्र से ही भीतर छिपे उपादान के द्वारा, विलोम क्रम से, घी को फिर से दही में, तदनन्तर दही से दूध में, यहाँ तक कि तिनकों के ढेर में (जिसे खाकर गाय ने दूध बनाया) बदल सकता है।''

इसी प्रकार बालक में वृद्ध तथा वृद्ध में बालक छिपा है। यह कहकर बाबा ने एक खिले हुए गुलाब के पुष्प को उसकी प्रथम अवस्था—बन्दकली—में परिणत कर दिया। तत्पश्चात् उसी बन्दकली को मार्शल-नील (पीले गुलाब) की कली के रूप-रंग में बदला और फिर तीन ही मिनट के अन्दर उसको फिर से खिला हुआ गुलाब बना दिया।

श्रीकृष्ण-गन्ध

एक और समय की बात है। सन्ध्या के पश्चात् गोपी दादा पुरीधाम आश्रम में बैठे थे। पास ही श्री बाबा भी आह्निक करके विश्राम कर रहे थे। एक-दो भक्त बाबा को पंखा झल रहे थे। गोपी दादा ने प्रश्न किया :—''बाबा! चैतन्यचरितामृत आदि ग्रन्थों में श्रीकृष्ण की जिस अंग-गन्ध का वर्णन है वह क्या 'स्निग्ध-गन्ध' की बात है ? किन-किन द्रव्यों के मिलने पर वह गन्ध बनती है ?'' बाबा बोले—''गोपीनाथ! सब द्रव्यों के नाम एक-एक करके बताते जाओ।'' गोपी दादा ने कहा—''गोविन्दलीलामृत के अनुसार वे द्रव्य हैं—नील-पद्म, कस्तूरी आदि।'' बाबा एक-एक द्रव्य का नाम सुनते जाते और साथ ही साथ हाथ संचालन करते जाते। जब गोपी दादा सब द्रव्यों के नाम गिना चुके, तब बाबा ने तुरन्त ही अपने हाथ की मुट्ठी गोपी दादा के पास लाकर कहा—''यह लो श्रीकृष्ण के अंग की गन्ध सूँघो। जो-जो द्रव्य तुमने गिनाए, उन्हीं के उपादानों को मैं आकर्षित करता गया और सबको मिला दिया।'' गोपीनाथ कविराज सूँघने लगे। बड़ी ही अपूर्व दिव्य गन्ध थी।

बाबा बोले—''यदि अपने में यथेष्ट आकर्षण की क्षमता हो तथा उपादान का ज्ञान हो तो कोई भी वस्तु बनाई जा सकती है।'' इसी आकर्षण-शक्ति द्वारा बाबा ने एक बार तापमान (टेम्परेचर) देखने के लिए थर्मामीटर तुरन्त उपलब्ध न होने पर इच्छाशक्ति द्वारा क्षणभर में पाल ब्रदर्स केमिस्ट एण्ड ड्रगिस्ट, कलकत्ता के यहाँ से आकर्षण करके थर्मामीटर काशी मँगा लिया और तापमान देखने के पश्चात् उसे पाल ब्रदर्स को लौटा दिया। यह दृश्य कई शिष्यों ने प्रत्यक्ष देखा।

गोपीनाथजी आदि अनेक शिष्यों ने स्वयं अपनी आँखों से देखा कि बाबा ने भिन्न-भिन्न अवसरों पर बहुमूल्य हीरे, नाना रंग की मणियाँ, मुक्ताएँ, सुवर्ण-आभूषण, सन्देश, रसगुल्ले, चमचम आदि मिठाइयाँ, अंगूर, बेदाना, अनार आदि फ़ल, पद्म (कमल), गुलाब, बेला, केवड़ा, पारिजात आदि फूल, गाय का घी, नारियल का तेल, फिनाइल, कार्बोलिक एसिड, बायोकेमिक नैटम़ फॉस आदि गोलियाँ, कुंकुम, कर्पूर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यूक्लिप्टस तेल, कार्बोलिक एसिड, ग्रेनाइट पत्थर, कुनैन की गोलियाँ, यू डी क्लौन, लेवैण्डर, ग्रिमाल्ट सिरप, मधु, महा-शंख वटी, च्यवनप्राश, मकरध्वज आदि औषधियाँ तथा अन्य अनेक प्रकार के पदार्थ इच्छाशक्ति द्वारा तथा सूर्य-विज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष प्रस्तुत तथा निर्माण करके शिष्यों तथा श्रद्धालु भक्तों को प्रदान किये।

रुई, फूल और पत्तों को पत्थर में बदल दिया। दृष्टि-द्वारा निमिषमात्र में पूरे उद्यान की सुगन्ध को आकर्षित करके एक बोतल के भीतर भर दिया।

बादलों में से किसी एक क्षेत्र के भीतर के जल को सोख लिया, जिससे केवल उतने भाग में जल नहीं गिरा जब कि उसके चारों ओर घनघोर वर्षा होती रही।

स्थूल वस्तुओं के उपादान के परमाणुओं के समूह किस प्रकार अलग-अलग चारों ओर तितर-बितर हो जाते हैं, उनका कैसे विनाश हो जाता है तथा सूर्य-विज्ञान द्वारा सूर्य की रश्मियों से सचेतन जीवों तक की सृष्टि करके बाबा ने प्रत्यक्ष दिखाया। इंग्लैण्ड के नामी पत्रकार तथा लेखक पाल ब्रण्टन के सामने बाबा ने मक्खी, चमगादड़ आदि का निर्माण कर दिया और वे उड़कर कमरे से बाहर निकल आकाश में उड़ने लगे।

बाबा ने यह भी प्रत्यक्ष दिखाकर समझाया कि **किसी भी वस्तु का विनाश नहीं होता :—**

एक कागज जलाकर राख कर दिया गया और उस राख को भी हाथ से खूब मसल दिया गया। उसी राख से फिर से वही कागज बना दिया जिस पर लिखे वाक्य पहले की तरह मौजूद थे।

इसी प्रसंग में बाबा ने एक दिन काशी में गंगाजी के एक घाट पर एक लोटा दूध धारा में डलवाया और कुछ दिन बाद दूसरे घाट पर धारा के भीतर से विश्लेषणपूर्वक वही दूध पुनः ज्यों-का-त्यों निकाल दिया।

यह देखकर स्वीकार करना पड़ा कि किसी भी वस्तु की स्वरूप-निवृत्ति अर्थात् उसका नाश कभी नहीं होता। अतः कोई जीव चाहे ब्रह्मलोक में चला जाए तो भी सक्षम विज्ञानविद् योगी आकर्षण करके उसे पुनः पृथ्वी लोक में ला सकते हैं। उदाहरणस्वरूप आप आगे सप्तम अध्याय में पढ़ेंगे कि किस प्रकार बाबा ने अपनी योग-शक्ति से अपने स्वर्गीय पिता की आत्मा का सशरीर प्रत्यानयन कराकर अपने बड़े भाई भूतनाथ की इच्छा को पूर्ण किया।

विज्ञान :—चित्त की भिन्न वृत्तियाँ; काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि रिपु; ज्वर आदि रोग; ग्रीष्म, शीत, वर्षा, आदि ॠतुएँ; प्रेम, भक्ति, राग, द्वेष, वैराग्य आदि भाव सभी विज्ञान के आलोक में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार दोनों हाथों की विरोधी तड़ित-शक्तियों के संघर्ष से अथवा नख की ज्योति के प्रभाव तक से सृष्टि-निर्माण सम्भव है। आँखों की ज्योति द्वारा, वायु के कम्पन द्वारा, नक्षत्र के प्रकाश द्वारा; यहाँ तक कि मानसिक-स्पन्दन के द्वारा भी सृष्टि-प्रवाह धारण किया जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्य-विज्ञान की जानकारी प्राप्त कर लेने पर चन्द्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान आदि विज्ञानों को सुगमतापूर्वक सीखा जा सकता है।[1]

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराज ने अपने एक लेख में इस बात का उल्लेख किया है कि क्वीन्स कॉलेज, वाराणसी के भौतिकशास्त्र विभाग के प्रधानाध्यापक रायबहादुर अभयचरण सान्याल के विशेष अनुरोध पर बाबा ने किस प्रकार एक लाल रंग का चकमक पत्थर (ग्रेनाइट) को मिनटों में, विशेष मैग्निफाइंग लेन्स की सहायता से सूर्य-किरणों द्वारा रुई के फाहे में बदल दिया था। जवा पुष्प को गुलाब के फूल में, तथा सफेद लिली के फूलों को गेंदे और बेला के फूलों में बदल दिया; तथा जवा के पेड़ को गुलाब के पौधे में रूपान्तरित करना भी बाबा द्वारा सूर्य-विज्ञान का ही चमत्कार था। नाना प्रकार की सुगन्ध-सृष्टि भी इसी विज्ञान की उद्‌भूति थी।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि बाबा सूर्य-विज्ञान के महान् ज्ञाता थे। किन कठोर साधनाओं के फलस्वरूप यह विज्ञान उन्होंने सीखा, इसका उल्लेख यद्यपि परमहंसजी ने कभी नहीं किया, तथापि यह अनुमान तो किया ही जा सकता है कि यह उच्च कोटि की साधना, तपश्चर्या एवं अनन्य गुरुभक्ति का परिणाम था।

विशुद्धानन्द कानन आश्रम, मलदहिया, वाराणसी में परमहंसजी ने विज्ञान मन्दिर बनवाया। बाबा का विचार था कि विज्ञान मन्दिर के दूसरे और तीसरे तल्ले पर प्रयोगशालाएँ बनाकर सूर्य-विज्ञान की शिक्षा दें और जीवमात्र के रोगों की सूर्य-विज्ञान द्वारा चिकित्सा की व्यवस्था करें। इसके लिए उन्होंने पेरिस (फ्रांस) में तीन लाख रुपये की लागत के एक विशेष प्रकार के शीशे का ऑर्डर भी दे दिया था परन्तु किसी कारणवश बाबा के गुरुजनों ने ज्ञानगंज से इस कार्य की अनुमति नहीं दी और बाबा को वह कार्य स्थगित कर देना पड़ा। आज भी दो और तीन तल्ले वाले खाली हाल उस अधूरे संकल्प विज्ञान मन्दिर की याद दिलाते हैं। १४ फरवरी १९३५ ई० को गुरुदेव ने अपने शिष्यों तथा भक्तों के कल्याणार्थ वाराणसी में ही अपनी चालीस वर्ष की तपस्या का फल अर्पित करके "श्री श्री नवमुण्डी सिद्धासन" की स्थापना की। यह आसन बड़ा ही तेजोमय सिद्ध आसन है। बाबा का कथन है—"नवमुण्डी आसन पर बैठकर शुद्ध भाव से जप करने पर सफलता अवश्यम्भावी है तथा कुविचार लेकर जप करने से कुफल अवश्य होगा।"

ज्ञानगंज के बाद यह दूसरा अतिश्रेष्ठ तेजोमय आसन है जिसकी तुलना का अन्य आसन संसार भर में नहीं है। सर्वश्री शंकराचार्य, बुद्धदेव, रामकृष्ण परमहंसदेव—सबके आसन केवल पंच-मुण्डी आसन हैं।

■

१. सूर्य-विज्ञान के द्वारा श्री विशुद्धानन्दजी परमहंसदेव के उपर्युक्त नाना प्रकार की वस्तुओं के निर्माण में से कुछ का उल्लेख बाबा के कतिपय शिष्यों ने अपने लेखों में किया है जो "विशुद्ध-वाणी" (दस खण्डों में प्रकाशित) में छपे हैं। विशुद्ध-वाणी का सम्पादन महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथजी कविराज ने किया है। ये पुस्तकें बंगला भाषा में हैं। अन्त में परिशिष्ट रूप में ऐसे संस्मरणों के कुछ अंश संगृहीत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठ अध्याय

विशुद्धानन्दजी की साधना तथा योगशक्ति

१. साधना

योगसूत्र के चार अध्यायों—१. समाधिपाद २. साधनपाद ३. विभूतिपाद, तथा ४. कैवल्य पाद—में समाधि के स्वरूप, उसकी साधना-विधि, विभूति लाभ की युक्तियाँ और कौन-कौन सी सिद्धियाँ किन-किन अवस्थाओं में प्राप्त होती हैं तथा अन्त में योग-सिद्धि से किस प्रकार कैवल्य-प्राप्ति होती है—यह बताया गया है।

योगीराज श्री विशुद्धानन्दजी परमहंस की चमत्कारपूर्ण विभूतियों का कुछ उल्लेख जो उनके कृपापात्र शिष्यादिकों ने किया है, उससे उनकी योग-सिद्धियों का यत्किंचित् आभास तो अवश्य मिल ही जाता है। किन्तु इन सिद्धियों की पृष्ठभूमि में उनकी कितनी कठोर साधना थी, यह भी जानना आवश्यक है।

भोलानाथ ने बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी अवस्था में घोर परिश्रम से साधना की थी। योगमार्ग में दीक्षित होने पर समुचित शिक्षा-प्राप्ति के अनन्तर नियमानुसार उन्हें भी सभी तीर्थों का भ्रमण, गिरि-कन्दराओं में दीर्घ समय तक रहकर एकान्तवास विश्व-संचालिका शक्ति पर आश्रित रहकर करना पड़ा था। निविड़ वनों में, गिरि-कन्दराओं में, सर्दी-गर्मी सहते हुए, हिंसक पशुओं के बीच में रहना पड़ा था।

भिक्षा के नियम भी कम कड़े न थे। एकान्तवास के समय ब्रह्मचारी को अपनी क्षुधा-शान्ति के लिए स्वयं ही भिक्षाटन करना पड़ता था। नियम यह था कि यदि कहीं मनुष्यों के घर-गाँव पास में पड़ते तो वहाँ से भिक्षा माँगने की आज्ञा थी किन्तु भिक्षा के लिए याचना करते फिरने का नियम कदापि न था। नियम था कि ब्रह्मचारी भूख लगने पर किसी गृहस्थ के द्वार पर भिक्षा के लिए जाएगा और जो-कुछ थोड़ा-बहुत खाद्य पदार्थ मिल जाय उसी से ही उसे सन्तुष्ट रहना पड़ेगा।

यदि पहले गृहस्थ के यहाँ कुछ भी न मिले तब वह दूसरे गृहस्थ के घर भिक्षार्थ जायेगा। वहाँ भी यदि कुछ न मिले तब वह तीसरे घर जाकर भिक्षा की याचना करेगा। यदि दैवात् वहाँ भी कुछ प्राप्त न हो तो चौथे द्वार पर जाने की अनुमति नहीं थी। उस दिन उसे भूखा ही रहना पड़ेगा। यह एक प्रकार से साधक की तोष-वृत्ति की परीक्षा समझी जाती थी। परमहंस विशुद्धानन्द को कभी-कभी दो-तीन तक भूखे ही रहना पड़ा था। गिरिनार पर्वत पर निवास के समय उन्हें तीन दिन तक भूखे रहना पड़ा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्त में गुरुदत्त मन्त्र का जप करते-करते तन्द्रा आ गई और जगने पर देखा तो जगदम्बा के कृपा-स्वरूप नाना प्रकार की स्वादिष्ट सामग्री उनके सामने गुफा में ही अलौकिक रीति से प्रस्तुत हुई थी।

"भगवान् पर निर्भर होकर रहने की शिक्षा"—ही इन कड़े नियमों का उद्देश्य था। अहंकारवश हम लोग मान लेते हैं कि हम ही कर्ता हैं। हमारी व्यक्तिगत चेष्टा से ही सब-कुछ होता है। परन्तु यह भ्रान्त धारणा है। जो विराट् शक्ति, जगत् के भीतर रहकर, सम्पूर्ण जगत् का संचालन करती है, जिसके नियन्त्रण में चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, वायु, वरुण प्रभृति सकल पदार्थ अपने-अपने निर्दिष्ट कर्म का यथारीति पालन करते हैं और तिलमात्र भी कर्त्तव्य-च्युत होने में समर्थ नहीं, जिसके मंगलमय विधान से सन्तान-प्रसव से पहले ही माता के स्तन में दूध की व्यवस्था हो जाती है, उसी विश्वजननी, आनन्दमयी महाशक्ति के ऊपर निर्भर करने से जीव को फिर और किसी विषय की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रहती।

उस समय सुख में, दुःख में, उत्थान में, पतन में, बाहर, भीतर, सोते में, जागते में—सभी अवस्था में—एकमात्र उसी महाशक्ति की मंगलमयी सत्ता का साक्षात्कार (अनुभव) होने लगता है, उस समय क्षुद्र अहंकार विलीन हो जाता है। सूर्योदय होने पर जैसे तारे अदृश्य हो जाते हैं, उसी प्रकार तब अहंकार का नाश हो जाता है।"

यह अक्षरशः सत्य है कि जब तक साधक कर्त्तापन का बोध करता है तब तक विश्व-संचालिका महाशक्ति उसकी सहायता के लिए नहीं आती, किन्तु जिस क्षण वह अपने को सर्व असमर्थ अनुभव करके, परोक्ष शक्ति पर विश्वास करके, अपने आप को पूर्णतः समर्पित कर देता है, शरणागत हो जाता है, तब वह अपने आपको सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त अनुभव करने लगता है और महाशक्ति उसका योग-क्षेम वहन करने लगती है। इसीलिए योग-सिद्ध पुरुषों को किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए स्वतः किसी प्रकार का उद्योग नहीं करना पड़ता—मन में इच्छामात्र होते ही वह वस्तु सद्यः रूपायित होकर सम्मुख उपस्थित हो जाती है। महाशक्ति अथवा ईश्वर को आत्म-समर्पण कर देने से ही समाधि सिद्ध होती है।

योगसूत्र में कहा है :— ईश्वरप्रणिधानाद् वा।......

समाधि०, २३

गीता में इसी बात को भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से ज्ञान-दान के समय कहा था :—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

ब्रह्मचर्य अवस्था में साधक को सब तरह के कष्ट सहने का अभ्यास करना पड़ता है। बड़े से बड़े कष्ट में पड़कर वह यही सोचता है कि इसे सहन करना मेरी अभीष्ट-सिद्धि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में सहायक होगा। इसीलिए भौतिक कष्टों को वह हँसते हुए झेल लेता है। ये कष्ट आधिभौतिक तथा आधिदैविक दोनों रूपों में सामने आते हैं। साधारण जन इन्हें सहन नहीं कर पाते। वे या तो टूट जाते हैं अथवा परिस्थितियों से समझौता कर लेते हैं। जो व्यक्ति इस परीक्षा में खरे उतरते हैं, सिद्धियाँ उन्हीं को प्राप्त होती हैं। आधिभौतिक बाधाएँ तो सामने दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु आधिदैविक प्रायः समझ में नहीं आतीं।

भोलानाथ अनेक बार आधिभौतिक तथा दैविक बाधाओं से पीड़ित हुए परन्तु गुरुकृपा से उनकी सदा रक्षा हुई। सुख-दुःखमय परिस्थितियों को पार करते हुए उन्होंने कठोर नियमों का पालन किया और एक बार भी अपने अभीष्ट मार्ग से विचलित नहीं हुए। कुत्ते का काटना और साँप का डसना उनके ऊपर आधिभौतिक बाधाओं के ही आक्रमण थे। कुत्ते ने तो बचपन में ही काटा जिसका विवरण आप पहले पढ़ चुके हैं। परन्तु साँप ने उन्हें डसा था, योगसिद्ध होकर गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने के बाद। इसका वर्णन आगे किया जायेगा।

इस प्रकार बालक भोलानाथ ने अनुशासन में रहकर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए योग और विज्ञान, दोनों क्षेत्रों में पूर्ण सफलता अर्जित की। उस समय उनकी तपस्या कठोर थी और शिक्षा-प्राप्ति की लगन अद्वितीय। दीर्घ-काल की साधना के परिणामस्वरूप वे योग और विज्ञान में पारंगत हो गये। उन पर गुरुओं की अपार कृपा थी।

ब्रह्मचर्य-अवस्था में कठोर नियमों के पालन के फल-स्वरूप भोलानाथ के अहंकार का दमन होकर उनको प्रकृत निर्भर-शीलता की उपलब्धि हो गई थी। उन्हें अब कोई भय या उद्वेग नहीं होता था तथा उनका योग-क्षेम स्वयं भगवान् वहन करते थे।

२. योग-शक्ति

दिवंगत आत्मा का सशरीर प्रत्यानयन

भोलानाथ के एक बड़े भाई थे—नाम था श्री भूतनाथ चट्टोपाध्याय। वे बर्दमान में डॉक्टरी करते थे। भोलानाथ उम्र में छोटे थे इसलिए उनके विशेष स्नेह-भाजन थे। योग-विद्या की प्राप्ति के बाद भूतनाथ अपने छोटे भाई भोलानाथ (अब विशुद्धानन्द) को आदर की दृष्टि से देखने लगे थे। बड़े होने के कारण विशुद्धानन्द उनका विशेष सम्मान करते थे।

एक बार भूतनाथ ने विशुद्धानन्द से आग्रहपूर्वक कहा—"भोलानाथ! मैंने सुना है कि साधन-बल से तुमने असाधारण शक्ति प्राप्त कर ली है। बहुत दिनों से मेरी एक अपूर्ण इच्छा है। यदि तुम अपनी तपःशक्ति से उसे पूरी कर दो तो मैं अपना जीवन धन्य समझूँ। मैं चाहता हूँ कि स्वर्गीय पितृदेव का एक बार पुनः दर्शन करूँ। सुनता हूँ कि जीव नित्य है, आत्मा अविनाशी है, जो कुछ घटित होता है वह केवल रूप तक सीमित रहता है। किन्तु योगी अपने योगबल से भूतकाल के तथा भविष्यत् काल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के भी रूप प्रत्यक्ष सम्मुख प्रकट करके दिखा सकते हैं। मेरा विश्वास है कि तुम यदि चाहो तो मेरी इस इच्छा को पूर्ण कर सकते हो। मेरा कोई दूसरा अनुरोध नहीं।"

भोलानाथ बोले—"दादा! आपका कहना सत्य है। कोई भी कार्य ऐसा नहीं जो योगबल अथवा विज्ञान-बल से न हो सके। कुरुक्षेत्र-युद्ध के बाद शोक-विह्वला गान्धारी को श्री व्यासदेव ने परलोकवासी स्वजनों के दर्शन करा दिये थे। योगी अपनी इच्छामात्र से यह सब दिखा सकता है। इसी प्रकार विज्ञान-वेत्ता विज्ञान-शक्ति से यही काम कर सकता है।

"किन्तु दादा! देखने भर से क्या लाभ ? इतना जान रखिये कि सभी अमर हैं, मृत्यु से केवल रूप बदल जाता है। जिस रूप को आप इस जगत् में पहले देख चुके हैं, वही रूप यदि पुनः आप क्षणमात्र के लिए देख पायेंगे तो उस समय आप धैर्य्य नहीं रख सकेंगे। अतः अच्छा तो यह होगा कि जो कुछ मंगलमय के मंगल-विधान में घटित हो चुका है, उसे नतमस्तक होकर स्वीकार कर लें और बहुत अस्थिर न हों।"

परन्तु भूतनाथ का आग्रह निरन्तर बना रहा। श्री भोलानाथ यह जानते थे कि कोई भी व्यक्ति अपने परलोकगत प्रियजन को देख ले तो आत्मसंयम के अभाव में वह विक्षिप्त हो सकता है। इसीलिए उन्होंने अपने बड़े भाई को बहुत समझाने का प्रयास किया, किन्तु वे न माने। अन्त में भोलानाथ को उनकी बात माननी ही पड़ी। भोलानाथ के आज्ञानुसार एक कमरा सजाया गया। उसमें एक पलंग पर नया बिस्तर बिछाया गया। निश्चित समय पर उनके स्वर्गीय पिता उस पलंग पर आ विराजे और उन्होंने समुचित उत्तर भी दिए। वे लगभग पन्द्रह मिनट तक वहाँ रहकर फिर अन्तर्धान हो गए। परन्तु पितृदेव के सहसा दर्शन से भूतनाथ के मन पर गहरा आघात पहुँचा था।

भविष्य ज्ञान की क्षमता— एक घटना

बाबा विशुद्धानन्दजी कभी-कभी घूमते-घामते बर्दवान पहुँच जाते थे। एक बार उन्होंने अपने दादा भूतनाथ को सांघातिक रोग से पीड़ित पाया। वहाँ की चिकित्सा से उनको कोई लाभ नहीं हो रहा था। भोलानाथ ने अपने महान् योग-बल से उन्हें केवल दृष्टि-निक्षेपमात्र से रोग-मुक्त कर दिया किन्तु जाने से पहले भूतनाथजी को अच्छी तरह चेता दिया कि वे भविष्य में प्याज तथा अण्डे का सेवन बिलकुल न करें। इस विषय में अपनी भाभी को भी सचेत करते गये। किन्तु भूतनाथ अधिक दिनों तक किसी भी नियम का बन्धन मानने वाले व्यक्ति न थे। उन्होंने प्याज और अण्डे का सेवन पुनः शुरू कर दिया।

कुछ ही दिनों बाद वे फिर उसी बीमारी से बुरी तरह आक्रान्त हो गये। उनकी दशा दिन-दिन बिगड़ती ही चली गयी और फिर किसी औषधोपचार से न सुधरी। यह स्थिति इनकी माताजी के लिए अति कष्टदायक और असह्य हो गयी। उस समय यद्यपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोलानाथ किसी दूर देश में थे किन्तु भाई की पीड़ा और माता की आन्तरिक वेदना की अनुभूति उन्हें वहाँ भी हो गई। योगी के लिए स्थान की दूरी कोई महत्व नहीं रखती और वे (विशुद्धानन्द) तुरन्त बण्डूल ग्राम में आ पहुँचे। उन्होंने अपनी माता से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि दादा ने नियम-भंग कर दिया, अब ये किसी प्रकार भी स्वस्थ नहीं हो सकेंगे। साथ ही इन्होंने भूतनाथ के मरण की तिथि, दिन और समय तक बता दिया। फिर ये अन्तर्ध्यान हो गये। जो समय ये भूतनाथ की मृत्यु का बता गये थे ठीक उसी दिन उसी समय उनका देहावसान हुआ। माता तो अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं। भोलानाथ ने पुनः प्रकट होकर हाथ के स्पर्शमात्र से माता का शोक दूर कर दिया।

कुछ समय के बाद भूतनाथ की कन्या का विवाह स्वजनों ने, व्यवस्था के साथ सम्पन्न करा दिया। कन्या के विवाह-प्रस्ताव के समय भोलानाथ ने विधि का विधान जानकर, अपना कोई मत प्रकाशित नहीं किया था—न सम्मति, न विमति। विवाह के उपरान्त यथा-प्रसंग भोलानाथ ने अपनी माता को, भतीजी के भविष्य के बारे में पूछने पर बता दिया था—"विवाह के कुछ दिन पश्चात् ही इसके भाग्य में वैधव्य योग है। वह अवश्यम्भावी है"—और ठीक वही हुआ भी।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तम अध्याय

विशुद्धानन्द : दण्डी-स्वामी तथा संन्यासी जीवन

योगसिद्धि के साधनों का ज्ञान शिक्षा द्वारा अवश्य हो जाता है किन्तु उसे व्यवहार में प्रतिष्ठित करने के लिए पंच-क्लेशों का अपनयन आवश्यक होता है। ये पाँच क्लेश है :— (१) अविद्या (अज्ञान), (२) अस्मिता (अहंभाव), (३) राग, (४) द्वेष, (५) अभिनिवेश (मरण-भय)। इन पाँचों से मुक्ति व्यवहार में उतरने पर ही मिलती है। इसलिये पाठ्यक्रम पूर्ण होने पर आश्रम के नियमानुसार हर ब्रह्मचारी को दण्ड धारण करके पहले 'दण्डी' बनना पड़ता है और चार वर्ष दण्ड धारण के उपरान्त दण्ड का परित्यागकर अगले चार वर्ष के लिए संन्यास ग्रहण करना पड़ता है। इन आठ वर्षों में साधक को आश्रम से बाहर रहना पड़ता है। इसी अवधि में इन्होंने नाथपन्थी महायोगी अवधूत गम्भीरनाथजी के दर्शन और सत्संग प्राप्त किया, जिनकी महती योगशक्ति का आख्यान ये पीछे अपनी शिष्यमण्डली में प्रायः किया करते थे।

दण्डी और संन्यासी जीवन के आठ वर्षों में इन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष का पर्यटन किया और अगम्य तथा दुर्गम अरण्यों में रहकर अपनी साधना को और भी परिपुष्ट किया। इस काल में उनमें सिद्धियों का विशेष रूप से प्रकाश हुआ।

तत्पश्चात् ज्ञानगंज योगाश्रम में लौट आये। अब इनकी इच्छा हुई 'नाभि-धौति' की क्रिया सीखने की। यह हठ-योग की एक अति कठिन क्रिया है जो बिना सिद्ध गुरु की कृपा के, किसी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ योग-साधक के स्वकीय उद्योग से सम्पन्न नहीं की जा सकती। लम्बी साधना तथा सतत अभ्यास से इसमें कतिपय महान् योगी ही सफल हो पाते हैं। संन्यासी विशुद्धानन्द ने जब अपनी यह इच्छा एक वयोवृद्ध योगी के सामने प्रकट की तो वे इन पर बड़े कुद्ध हो उठे। उन्होंने इन्हें फटकारते हुए कहा— "तुम वामन होकर चन्द्रमा को हाथ से पकड़ना चाहते हो, तुम्हारा यह दुस्साहस! हम सौ-सौ वर्ष वाले अभी तक इस क्रिया में सफलता नहीं पा सके और तुम कल के लड़के इसको सीखना चाहते हो! ऐसी हिम्मत तुमने किस बूते पर की ?"

विशुद्धानन्द ने विनीत भाव से उनसे कहा—"आप ठीक ही कह रहे हैं, किन्तु क्या कोई ऐसे योगी आप लोगों में नहीं हैं जो मेरे जैसे अल्प-वयस्क किन्तु उत्कट शिक्षार्थी को कृपा करके नाभि-धौति क्रिया की शिक्षा दें ?"

यह सुनकर उन योगी को लगा जैसे यह युवक संन्यासी उनकी बात का अनादर कर रहा हो और ऐसी धारणा मन में आते ही वे आगबबूला हो गये और बोले—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"तेरी यह हिम्मत कि मेरी बात को काटे। इस धृष्टता के लिए मैं तुझे कठोर दण्ड दूँगा।"

विशुद्धानन्द उनकी कठोर भर्त्सना से अति खिन्न तथा दुःखी होकर रोने लगे और मन ही मन अपने योग-गुरु भृगुराम स्वामी की शरण गये। तत्क्षण परमगुरु भृगुराम परमहंसदेव आकाशमार्ग से आकर वहाँ उतरे और विशुद्धानन्द से रोने का कारण जानकर उन योगिराज पर बहुत ही क्रुद्ध हुए जिन्होंने विशुद्धानन्द के कोमल हृदय को दुखाया था और उनके लिए समुचित दण्ड की व्यवस्था भी की। ये योगिवर सौ वर्ष से भी अधिक वय के, प्रतिष्ठित और पहुँचे हुए योगी होने के साथ-साथ एक मठ के अध्यक्ष भी थे।

तत्पश्चात् भृगुरामजी ने तत्काल संन्यासी विशुद्धानन्द को नाभि-धौति क्रिया की शिक्षा भी दे दी। विशुद्धानन्द ने कुछ दिनों में ही नियमित रूप से कठोर अभ्यास करके उस योगिजन-वांछित अत्यन्त दुर्लभ एवं दुष्कर क्रिया में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली। नाभि-धौति क्रिया द्वारा शरीर शून्यमय हो जाता है। इससे शरीर को संकुचित तथा प्रसारित करने की क्षमता आ जाती है। फिर तो एक रोम-कूप में से होकर किसी बड़े पदार्थ को भी शरीर के भीतर धँसाया जा सकता है और बाहर भी निकाला जा सकता है। यह क्रिया सिद्ध होने पर अणिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व आदि सिद्धियाँ भी इन्हें सुलभ हो गईं। विशुद्धानन्दजी ने देह में प्रायः चार सौ स्फटिक-गोलक; तथा मस्तिष्क में बाणलिंग, शालग्राम, स्फटिक माला आदि यथा-स्थान सजा कर रखे थे। प्रयोजन पड़ने पर पूजा आदि करने के लिए वे उनको बाहर निकाल लेते और क्रियादि के उपरान्त फिर भीतर घुसा देते। बड़े-बड़े स्फटिक-गोलक रोम-छिद्रों में से देह के भीतर प्रविष्ट कराते उन्हें बहुत से शिष्यों और भक्तों ने अनेक बार स्वयं देखा था। शरीर के एक भाग में प्रविष्ट कराके वे उसी वस्तु को भीतर ही भीतर देह के दूसरे भाग में ले जाते थे। कभी-कभी संकोच-प्रसार करते समय एक-दो स्फटिक अपने आप देह से बाहर भी छिटक जाते थे। अति उग्र तथा विशुद्ध पद्म-गन्ध उनके कारण फैल जाती। वे शरीर के किसी अंग को स्वेच्छानुसार छोटा, भारी या हल्का कर सकते थे। इसकी एक घटना का वर्णन इस प्रकार है :—

"एक बार की बात है कि बाबा के परम भक्त तथा शिष्य श्री गौरीचरण राय के विशेष आग्रह पर बाबा उनके ग्राम सुनुड़ी गये। जो पालकी बाबा को लेने स्टेशन भेजी गई थी वह बहुत समय से काम में नहीं आई थी और उसका एक बाँस टूटा था तथा कुछ कीलें भी ढीली पड़ गई थीं। पर किसी का इस ओर ध्यान नहीं गया था। बाबा स्टेशन पर उतरे और पालकी में बैठने को हुए तो उन्होंने कहारों का ध्यान टूटे बाँस की ओर आकृष्ट करके कहा—यह तो टूट जायेगी। कहार बड़े ही लज्जित हुए कि उन्होंने पालकी को अच्छी प्रकार से देखा क्यों नहीं और बाबा से क्षमा माँगकर बोले—हम अभी ठीक करा लाते हैं। आप कृपा करके स्टेशन पर थोड़ा विश्राम करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाबा बोले—"कोई बात नहीं। तुम हमें ले चलो, यह अब टूटेगी नहीं।" कहारों ने डरते-डरते पालकी को उठया तो वह अत्यन्त हलकी लगी और वे आसानी से उसे ले चले। आते समय पालकी चर्र-मर्र कर रही थी, अब वह आवाज भी नहीं सुनाई पड़ी। पहुँचकर बाबा ने गौरीचरण राय को बताया कि यदि मैं अणिमा सिद्धि द्वारा अपना शरीर हल्का न कर लेता तो पालकी अवश्य टूट जाती और मैं गिर पड़ता।

इस प्रकार और अनेक सिद्धियों का प्रदर्शन बाबा समय-समय पर करते रहे।

'नाभि-धौति' की उन्नत अवस्थाविशेष को कहते हैं—'किरात-धौति'। इसमें शरीर के किसी भी अंग में यथेच्छा वायु भर ली जाती है—जिसे कहते हैं—'किरात-कुम्भक', इसके बल से योगी आकाश में उड़ पाता है और साथ ही साथ उसका बाहरी ज्ञान भी बना रहता है। किरात-कुम्भक में प्रवीण हो जाने पर 'पर-काया-प्रवेश' भी सुलभ तथा सरल हो जाता है। इस शक्ति के हस्तगत होने पर योगी दूसरे के मन की बात जान लेता है अर्थात् उसे अन्तर्यामित्व प्राप्त हो जाता है।

क्रिया (पूजा, आह्निक) के समय बाबा की देह के भीतर भयानक ताप तथा अति उग्र तड़ित्-शक्ति जाग्रत् हो उठती। उस समय देह को ठण्डा रखने के उद्देश्य से वे दो सर्पों को, जो सदा उनकी पूजा की चौकी के नीचे ही बैठे रहते थे, अपनी देह पर लपेट लेते। उनकी पहनने की शुद्ध रेशम की धोती तड़ित्-शक्ति के कारण एक सप्ताह में ही जर्जर होकर फट जाती। तड़ित् शक्ति को शान्त रखने तथा इस प्रकार शरीर का साम्य सन्तुलित रखने के लिए बाबा देह के स्तर-स्तर में, स्फटिक के शीत-स्पर्श गोलक सजा कर रखे रहते थे।

किरात-धौति क्रिया में सिद्धि प्राप्त किए बिना यह सब नहीं होता।

विशुद्धानन्दजी ने मन्त्र, तपस्या तथा समाधि द्वारा अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। इन सिद्धियों का विनियोग वे प्रायः लोकहित में ही करते थे। आग्रह तथा प्रार्थना से वे आत्मीय तथा अनात्मीय सभी जनों का क्लेश दूर करते थे। अनेक रोगी उनकी दृष्टि पड़नेमात्र अथवा इच्छामात्र से ही नीरोग हो गये। उनकी योग-विभूतियों का कोई वारापार नहीं था।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अष्टम अध्याय

संन्यासी श्री विशुद्धानन्द लौकिक कर्मक्षेत्र में

संन्यास आश्रम की अवस्था पार करके ज्ञानगंज से लौटने पर, जब संन्यासी विशुद्धानन्द की ज्ञानगंज योगाश्रम की शेष साधना भी हर प्रकार से पूर्ण हो गई तो इनके गुरुदेव महातपा महाराज ने इनको बुलाकर आज्ञा दी कि अब तुम, आत्मकल्याण से भी उत्तम, लोककल्याण के लिए संसार में जाकर गृहस्थ बनों और संसार के मनुष्यों का उद्धार तथा कल्याण करो।

विशुद्धानन्दजी की गुरुदेव पर अटूट श्रद्धा थी और न चाहते हुए भी इन्होंने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। संसार चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती है इसलिए गुरुदेव से पूछा कि जीविका का क्या प्रबन्ध होगा; क्योंकि मुझे तो कोई व्यवसाय आता ही नहीं।

तब गुरुदेव महतपाजी ने इनको जीविका-साधन के रूप में चिकित्सा-व्यवसाय अपनाने का आदेश दिया। इन्होंने बंगला भाषा में प्रकाशित वैद्यकशास्त्र के सभी उपलब्ध महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन शीघ्रातिशीघ्र कर डाला और चिकित्सा-विज्ञान को भली-भाँति स्वायत्त कर लिया। गुरुदेव का आशीर्वाद साथ था ही, अतः इन्होंने अति शीघ्र ही आयुर्विज्ञान पर समुचित अधिकार प्राप्त कर लिया।

साथ ही महातपा महाराज ने इनको योग-ज्योतिष द्वारा धनोपार्जन करने की भी आज्ञा दे दी। वह विद्या इन्होंने ज्ञानगंज योगाश्रम में अपने शिक्षाकाल में ही आयत्त कर ली थी। योग-ज्योतिष की विशेषता यह है कि इसमें योग-सिद्धि द्वारा गर्भाधान (पुरुष के वीर्य तथा पत्नी के रज के मेल) के समय का निश्चय करके उस क्षण के हिसाब से जन्म-कुण्डली बनाई जाती है न कि शिशु के भूमिष्ठ होने के समय के अनुसार। निश्चय ही योग-ज्योतिष के फलाफल बिल्कुल ठीक होंगे।

श्री विशुद्धानन्द द्वारा आयुर्वेदिक चिकित्सा की विशेष सफलता में योग-ज्योतिष का भी विशेष सहयोग था। वे इसके द्वारा पहले रोगी की व्याधि का आदि से अन्त तक का हाल मालूम कर लेते थे। तथा उन्हें इसके द्वारा यह भी पता लग जाता था कि रोगी के बचने के लक्षण हैं या रोग असाध्य है। जिनके रोग असाध्य होते थे उनके उपचार में ये हाथ नहीं डालते थे। अतः जिन रोगियों की चिकित्सा ये हाथ में लेते थे वे शत-प्रतिशत नीरोग हो जाते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

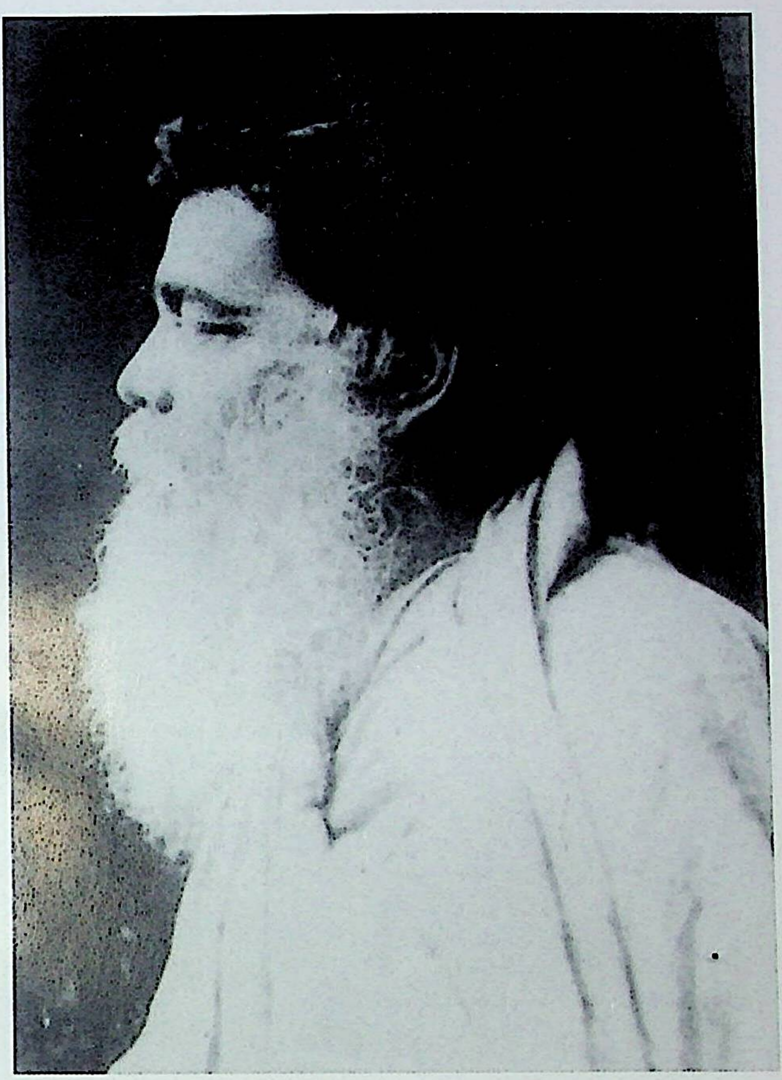

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी अभयानंद, योगाश्रम, ज्ञानगंज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी विशुद्धानन्दजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

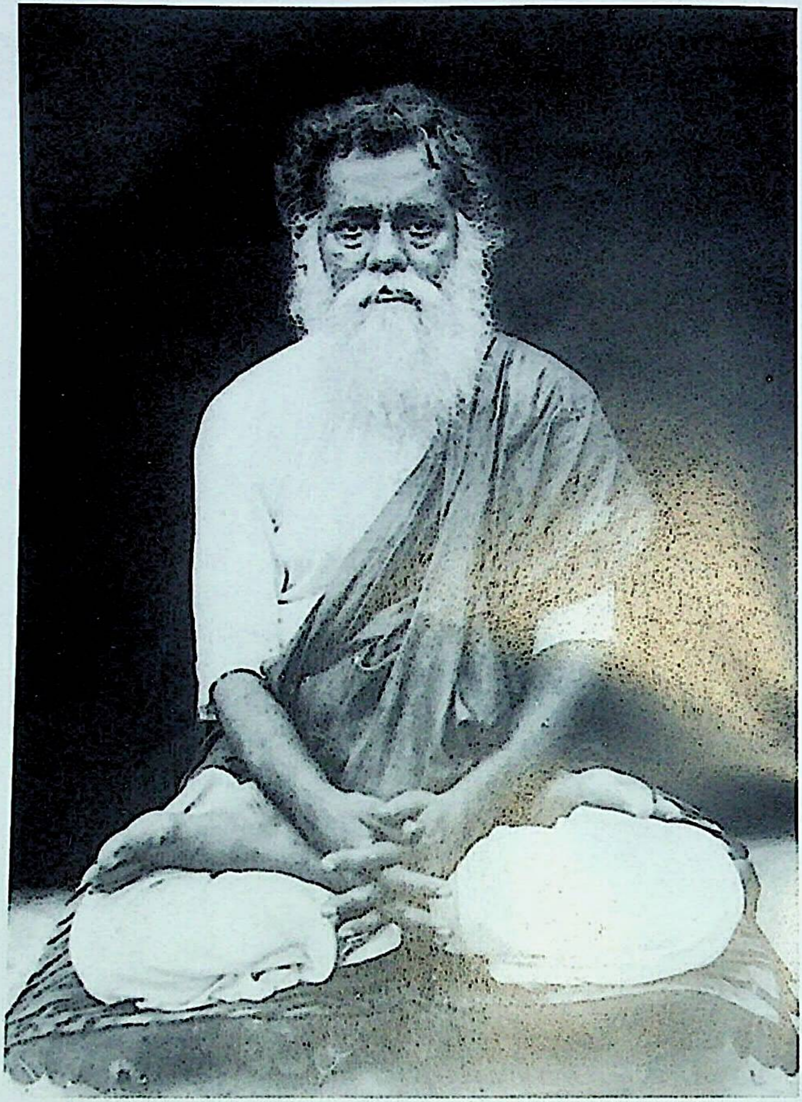

योगिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

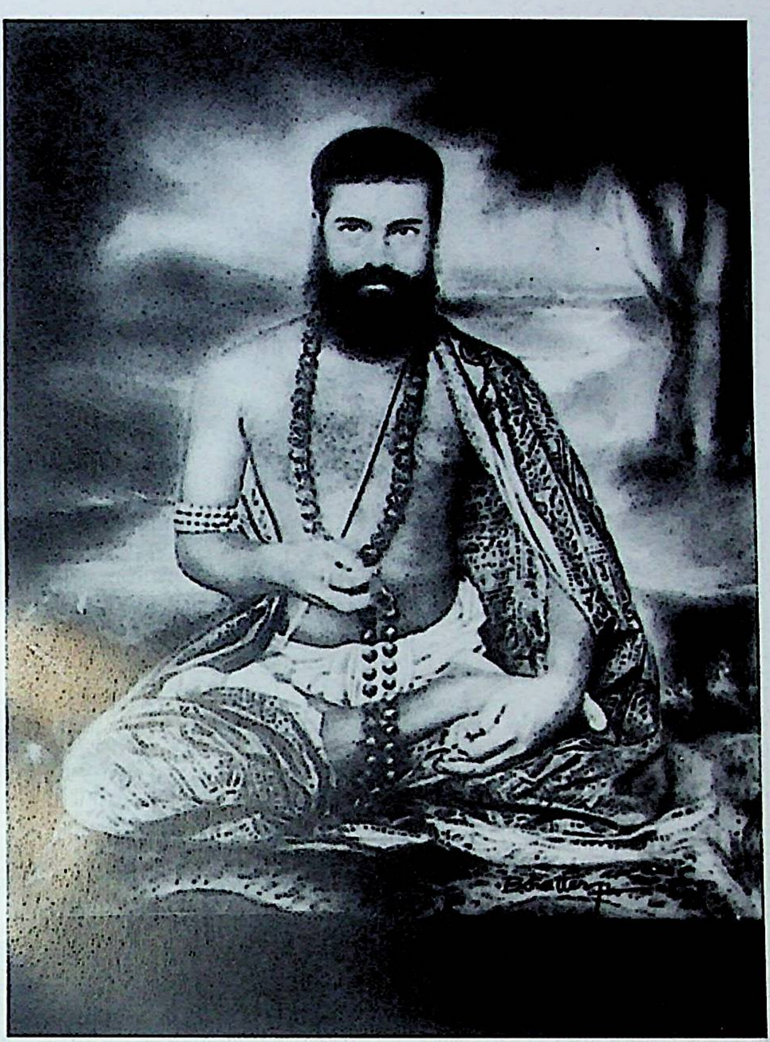

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस
तिब्बत में आध्यात्मिक साधना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

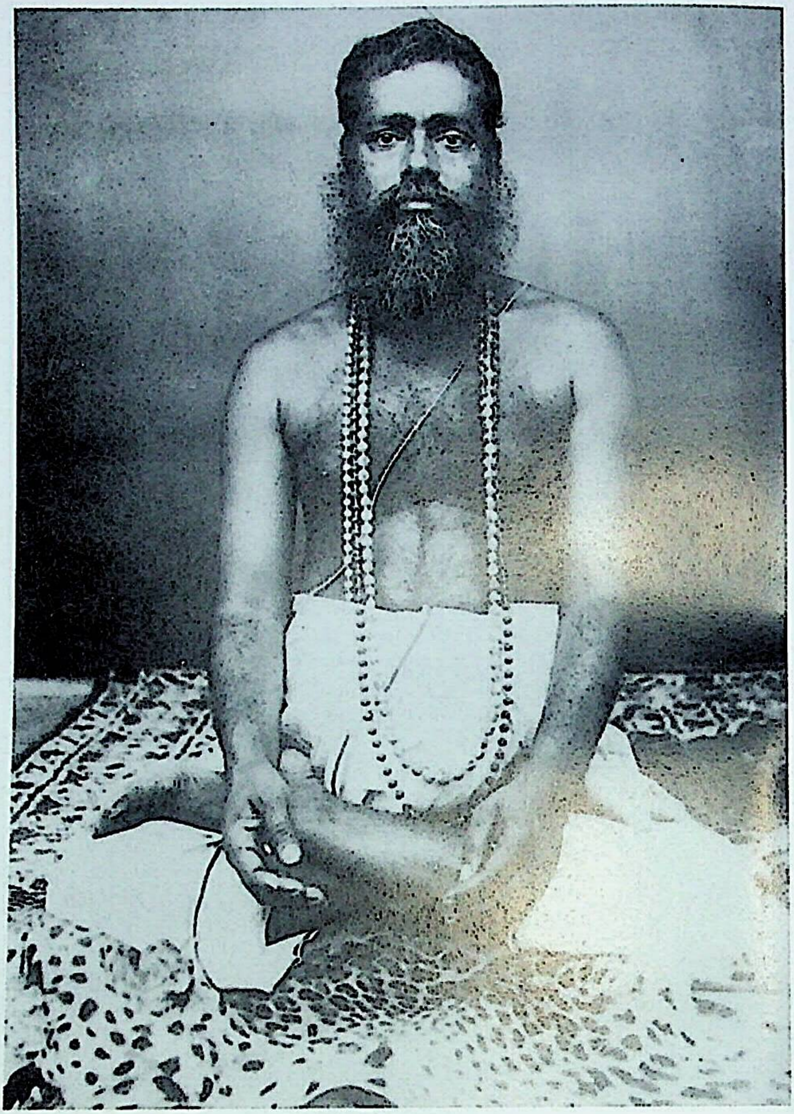

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

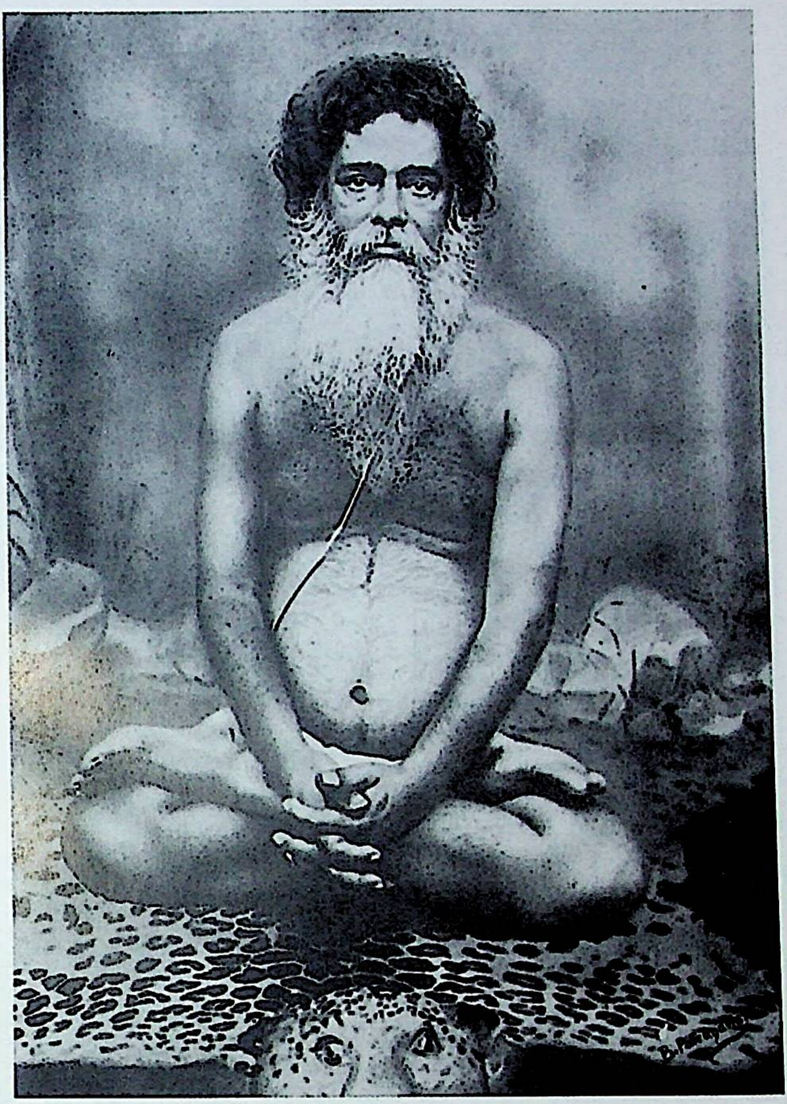

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

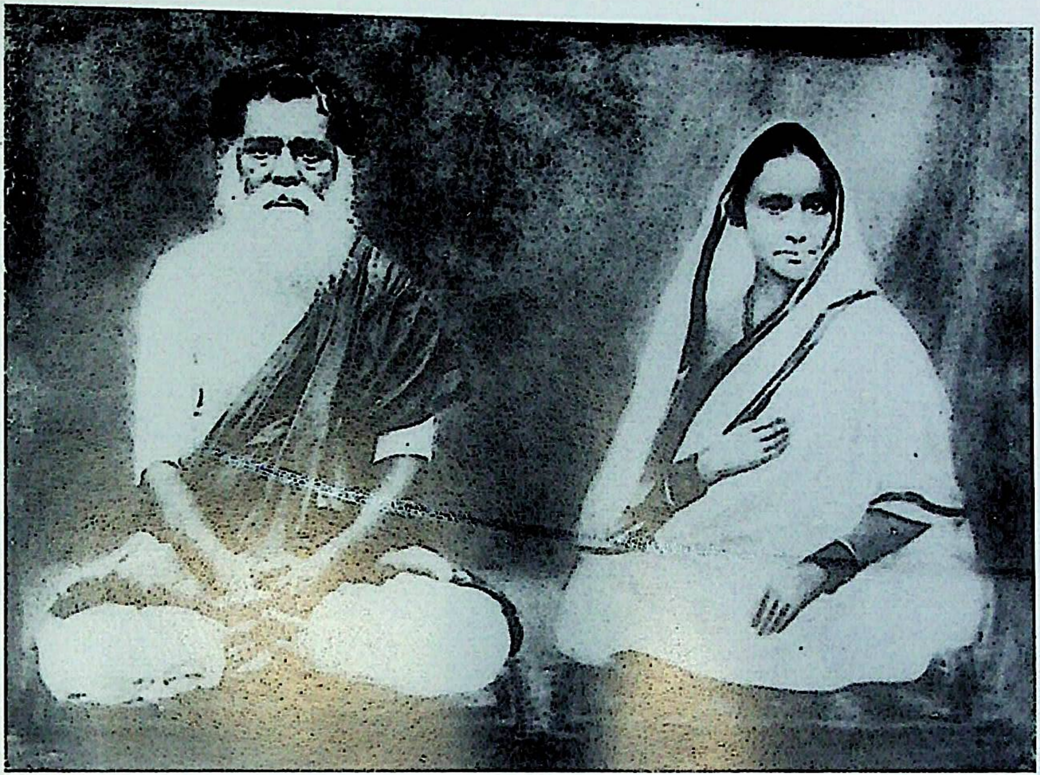

स्वामी विशुद्धानन्दजी तथा पत्नी श्रीमती कृष्णा भामिनी देवी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

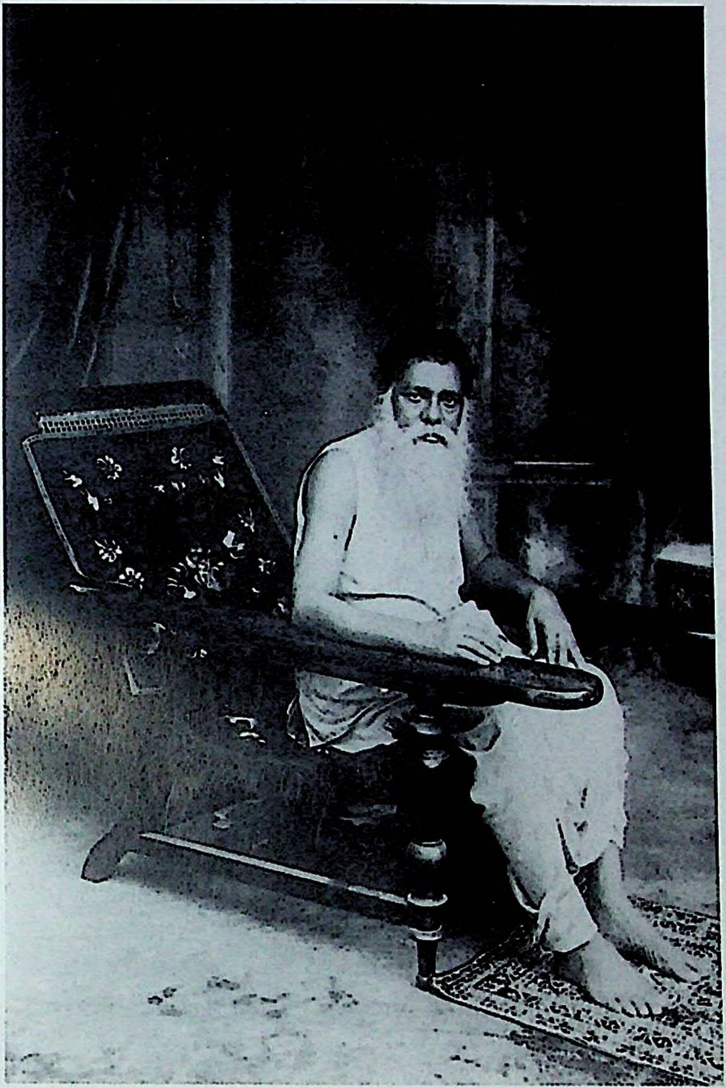

स्वामीजी
विशुद्धानन्द कानन आश्रम
के
अपने कक्ष में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

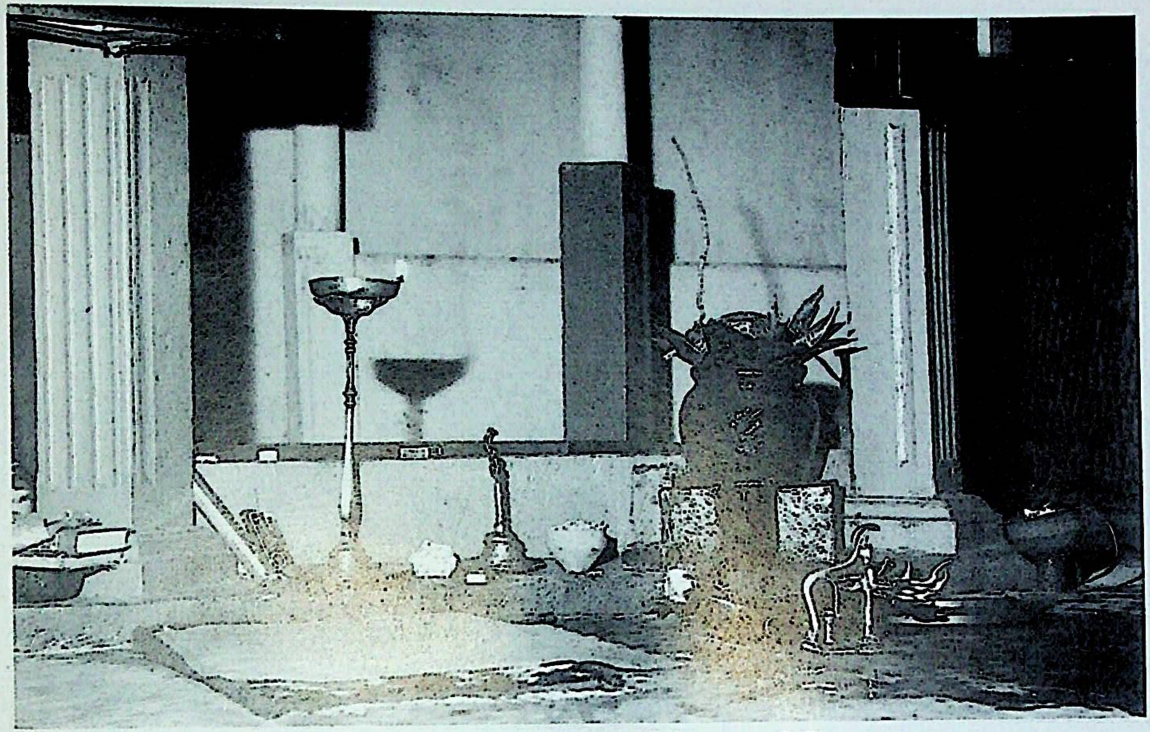

विशुद्धानन्द कानन आश्रम, वाराणसी में नवमुण्डी सिद्धासन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

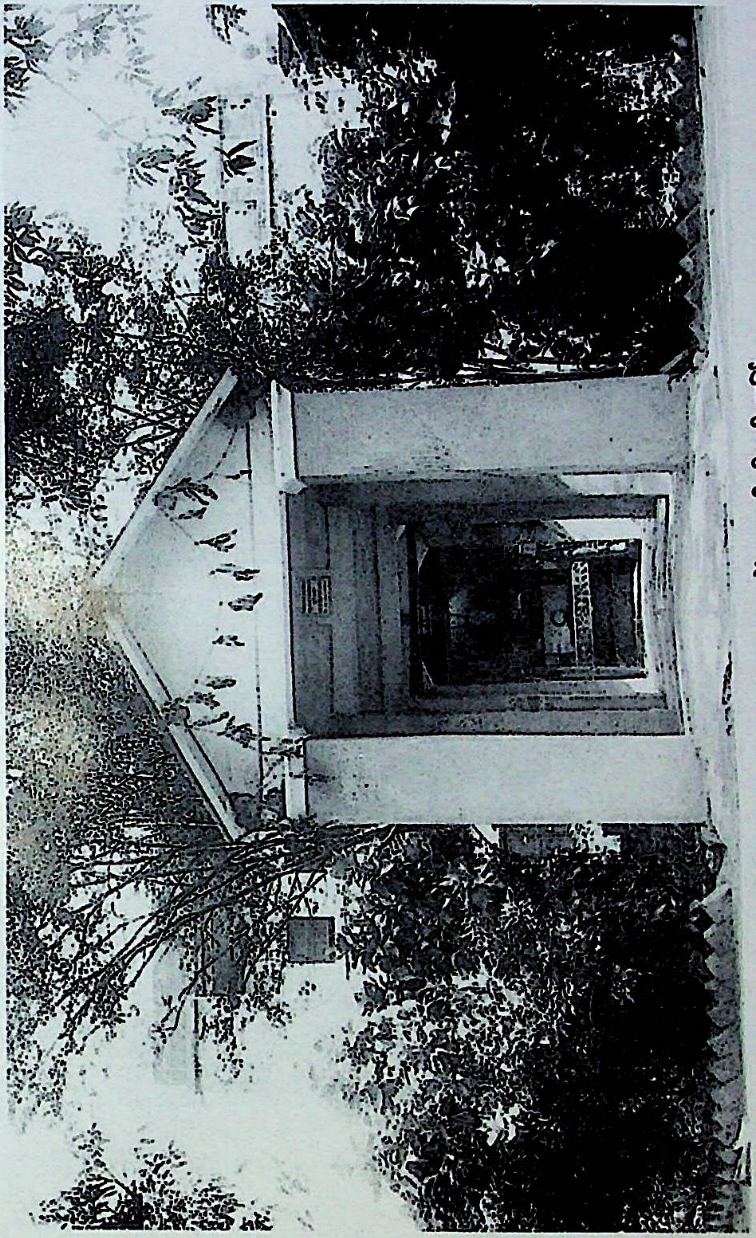

विशुद्धानन्द कानन आश्रम में स्वामीजी की मूर्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशुद्धानन्द कानन आश्रम में अखिलेश्वर महादेव मन्दिर में स्वामीजी के शिष्यों द्वारा 107 शिवलिंग तथा स्वामीजी द्वारा 1 शिवलिंग स्थापित।
मन्दिर के सामने आश्रम के प्रभारी श्री रामअवतार पाण्डेय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब वैद्यक चिकित्सा को व्यवसाय रूप देने के लिए इनको एक उपयुक्त स्थान की आवश्यकता थी। बर्दमान जिले में ही इनके बण्डूल गाँव से कुछ ही दूर गुष्करा नामक एक गाँव है जहाँ रेलवे स्टेशन भी है। वहाँ एक बड़े जमींदार थे हरिश्चन्द्र चोंगदार। गुष्करा के चोंगदार वंश में और बण्डूल के चट्टोपाध्याय वंश में पहले से ही घनिष्ठ परिचय थी। अतः चोंगदार महोदय के कार्यालय (कचहरी) वाले भवन में ही विशुद्धानन्द ने अपना आवास निश्चित किया। चिकित्सा और ज्योतिष का काम आरम्भ हुआ। जैसा पहले लिखा जा चुका है रोगी एक के बाद एक ठीक होने लगे। बड़े पुराने रोगी ठीक होंने लगे। बड़ी तेजी से इनका यश चारों ओर फैल गया और ये 'डॉक्टर बाबू' के नाम से विख्यात हो गए। इनका कोई भी रोगी काल-कवलित नहीं हुआ। अभी तक गुष्करा के लोग इनकी अर्जित विभूतियों से परिचित न थे। ये स्वयं भी अपने स्वरूप को गुप्त रखना चाहते थे। किन्तु इनकी योग-विभूति बहुत दिनों तक छिपी न रह सकी। उसके प्रकाश में आते ही सैकड़ों व्यक्ति इनके दर्शनार्थ जुटने लगे और थोड़े ही दिनों में गुष्करा एक तीर्थस्थल बन गया।

फिर दूर-दूर से रोगी इनके पास चिकित्सा के लिए आने लगे। चिकित्सा से इनकी आय बहुत बढ़ गई और किसी प्रकार का अर्थकष्ट न रहा।

ज्योतिष-विद्या का ज्ञान

चिकित्सा के साथ-साथ इन्हें योग-ज्योतिष तथा देव-ज्योतिष में विशेष सिद्धि प्राप्त थी। बिना किसी का जन्म-लग्न जाने या निकाले; उसकी आकृति के आधार पर भी ये उसकी शुद्ध जन्म-कुण्डली की रचना कर लेते थे।

इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा।

"बाबा के बड़े पुराने प्रथम शिष्य श्रीयुत उपेन्द्रनाथ चौधरी महाशय जब प्रथम बार पूज्यपाद बाबा का दर्शन करने गये उस समय की घटना का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया है :—

"मैं उस समय पुलिस इन्स्पेक्टर था। एक दिन बर्दवान से लौटते समय बाबा के श्रीचरणों में दर्शन करने के उद्देश्य से मैं और मेरा एक कर्मचारी श्री वामापद विश्वास गुष्करा के जमींदार की कचहरी वाले मकान में हाजिर हुए। देखा कि बाबा एक साधारण काठ की चौकी पर बैठे हैं। बाबा ने मुस्कराकर मुझसे कहा—'कहो वत्स, कैसे हो ?' यह कहकर पास बुलाया। मैं समीप गया। बात ही बात में मैंने कहा—'आप तो भली प्रकार से ज्योतिष जानते हैं। मैं अपनी जन्म-कुण्डली ले आऊँ, आप देखिएगा ?'

वे बोले—'वत्स! कुण्डली लाने की क्या आवश्यकता ?'

"तुम्हारी कुण्डली तो मेरे पास है। तुम तो मेरे पुराने परिचित हो।" मैंने कहा— 'देखूँ।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने मेरी डायरी लेकर उसमें मेरे जन्मदिन, तिथि, नक्षत्र, सारे ग्रहों के स्थान ठीक-ठीक अंकित करके हाथों-हाथ मेरी कुण्डली तैयार कर दी। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरी कुण्डली इन्होंने कहाँ पाई ? इस जीवन में तो इसके पहले इनसे मैं कभी मिला नहीं, तब मेरे बारे में इन्हें ये सब कैसे मालूम हुआ ? इस सम्बन्ध में मैंने उनसे प्रश्न किया तो वे हँसकर बोले—"अजी इसके लिए क्या चिन्ता करते हो, सभी कुछ हो सकता है। लो, तुम जलपान करो, यों कहकर,नाना प्रकार की मिठाइयाँ, आम और लीची आदि फल देकर अपने हाथ से हमें खिलाया।" यह देखा योग-ज्योतिष का अद्भुत खेल।

दूसरी घटना

इसी प्रकार श्री रोहिणीकुमार चेल महाशय का बाबा से प्रथम परिचय का हाल उन्हीं के शब्दों में सुनिए :—

"मैं उस समय कलकत्ते में थियेटर रोड पर रहता था। बहुत दिनों से मेरी उत्कष्ट इच्छी थी कि मैं एक ऐसे प्रकृत (असली) ब्राह्मण के चरणों का आश्रय ग्रहण करूँ जो संयमी हो, आचारवान् हो तथा ठीक समय पर नियमित रूप से पूजा-अर्चना करता हो।

उस समय अपने मित्र श्रीयुत मणीन्द्रकुमार भट्टाचार्य के मुख से पूज्यपाद बाबा की अद्भुत क्षमता की बातें सुनने में आईं। मैंने उनसे पता पूछकर एक जवाबी तार देकर बाबा से मिलने की आज्ञा चाही। उत्तर आया, 'अभी नहीं।' फिर भी, निराश न होकर मैं गुष्करा के लिए चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर मैं बाहर बैठ गया, क्योंकि उस समय कमरा बन्द था और बाबा भीतर क्रिया में लीन थे। थोड़ी देर बाद वे बाहर निकले। उनके शरीर से पद्म-गन्ध निकलकर चारों ओर फैल रही थी। कमरे के भीतर से भी अद्भुत सुगन्ध निकल रही थी। दोनों आँखें लाल तेजोमय थीं। अपूर्व ज्योतिर्मयी मूर्ति थी। दर्शन करते हुए मैं एक ओर बैठ गया।'

सहसा बाबा ने मुझसे कहा—"कहो, कब आये ?" मैंने कहा—"अभी आया हूँ। आपने तो अभी आने को मना किया था, किन्तु मुझसे बिना आये रहा नहीं गया।" यह कह कर मैंने हैण्ड-बैग में से अपनी तथा अपनी स्त्री की कुण्डली बाहर निकालनी चाही। बाबा ने पूछा—"क्या है ?" मैंने बताया।

"बाबा उसी समय कमरे के अन्दर से एक किताब लाये जिसमें एक कागज रखा था जिस मर मेरा तथा मेरी स्त्री प्रभावती दासी का नाम, जन्म-समय एवं फलाफल आदि सब कुछ लिखा था। मैंने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—"आपने मेरा और मेरी पत्नी का नाम किस प्रकार जान लिया ? तथा यह भी किस प्रकार जाना कि आपके मना करने पर भी मैं यहाँ जाऊँगा ? और आपने जन्मतिथि आदि किस प्रकार मालूम कर ली ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाबा बोले—'मैंने जब देखा कि मेरे मना करने पर भी तुम यहाँ के लिए चल पड़े हो तब मैंने बैठे-बैठे तुम दोनों की जन्म-कुण्डली बना डाली। यह लो, इसे अपनी जन्म-कुण्डली के साथ मिलाकर देख लो।' मैंने दोनों का मिलान किया। और सब तो मिल गया किन्तु जन्म-मुहूर्त्त में थोड़ा अन्तर था।

"तब बाबा ने बताया कि मेरी बनाई कुण्डली ही ठीक है, पुरानी कुण्डली में गणना-सम्बन्धी भूल है। उन्होंने यह भी कहा कि दूसरी जन्म-कुण्डली में जो जन्म-लग्न अंकित है यह यदि ठीक होता तो तुम अवतार के सदृश एक महापुरुष होते और तब तुम मेरे पास न आते, वरन् मैं ही तुम्हारे पास जाता। तुम्हारी पूर्व-लिखित कुण्डली के जन्म-लग्न में मानव-जन्म घटित नहीं होता, वह तो एक असाधारण क्षण है।"

स्वरोदय ज्ञान पर अद्भुत अधिकार

ज्योतिष और चिकित्सा के अतिरिक्त स्वरोदय आदि अन्य विज्ञानों की भी विशुद्धानन्दजी को अद्भुत जानकारी थी और अपने गुरुदेव के आदेशानुसार वे समय-समय पर उस विज्ञान का प्रयोग करके दिखाया करते थे। म० म० पं० गोपीनाथजी कविराज ने इस विषय में लिखा है :—

"हम लोग साधारणतया स्वरोदय के जितने भी प्रचलित ग्रन्थ जानते हैं, उन सब से विलक्षण, अचूक और अथाह था बाबा की स्वरोदय विद्या का ज्ञान और उस पर अधिकार। स्वरोदय शास्त्र के जिन अत्यन्त सूक्ष्म और रहस्यमय तत्त्वों की चर्चा बीच-बीच में उनके मुख से हमने सुनी है, और साथ ही साथ तत्सम्बन्धी बहुत-कुछ प्रत्यक्ष अपनी आँखों से समय-समय पर हमने देखा है, उससे भली-भाँति इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि प्रत्यक्षदर्शी गुरु की सहायता के बिना, केवल ग्रन्थ पढ़ लेनेमात्र से किसी भी शास्त्र का असली रहस्य अनुभव में आना सम्भव नहीं।"

इस प्रकार चिकित्सा, योग-ज्योतिष तथा स्वर-विज्ञान के द्वारा प्रतिमास नियमित रूप से वे विपुल धन अर्जन करने लगे। साथ ही साथ अतिथि-सत्कार, साधु-संन्यासियों को आमन्त्रण, दीन और विपद्ग्रस्त परिवारों की सहायता तथा दान इत्यादि में व्यय भी प्रचुर मात्रा में करते थे।

योग-ज्योतिष की क्षमता अत्यन्त विलक्षण होती है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है—किसी मनुष्य को देखनेमात्र से ही उसका जन्म-मुहूर्त तुरन्त जान लेना, जन्म-समय के समस्त ग्रहों की स्थिति द्वारा ठीक-ठीक सन्धान पाकर उस व्यक्ति के भूत और भविष्य का सूक्ष्म ब्यौरे के साथ निरूपण कर लेना—योग-ज्योतिष का अद्भुत कार्य है। योगिगण भूमिष्ठ होने के समय को जन्म-मुहूर्त नहीं मानते वरन् गर्भाधान के समय को—जिसका पता वे योग-सिद्धि द्वारा लगा लेते हैं—जन्म बेला स्वीकार करके गणना करते हैं। इसमें भूल-चूक की सम्भावना ही नहीं रह जाती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवम अध्याय

विशुद्धानन्दजी का विवाह

गुष्करा के निवास काल में, ३८ वर्ष की आयु होने पर सन् १८६१ ई० में ज्येष्ठ गुरुदेव महर्षि भृगुराम परमहंस के आदेशानुसार तथा परमगुरु महातपा महाराज के आज्ञानुसार एवं माता के भी अब जिद पकड़ लेने पर उनका विवाह शुभ मुहूर्त्त में सम्पन्न हुआ।

विशुद्धानन्दजी की अपनी इच्छा यद्यपि विवाह करने की न थी तथापि वे पूर्ण रूप से विश्वास करते थे कि गुरु के वाक्य, कर्म और चिन्तन, सभी कुछ शिष्य के कल्याण के लिए ही होते हैं। अतः उन्होंने गुरु की आज्ञा के आगे सिर झुका, गृहस्थ बनना स्वीकार कर लिया। उन्होंने गुरु से केवल विनम्र भाव से यह प्रश्न किया—'गुरुदेव! विवाह कर लेने पर मेरी तपस्या तो भंग नहीं हो जाएगी ?''

उत्तर मिला—''नहीं, तुम्हारा तपः-प्रभाव कभी कम न होगा वरन् तपस्या का तेज दिन-प्रतिदिन और बढ़ेगा ही।'' और हुआ भी ऐसा ही।

इसी के विपरीत, उनके उस मित्र हरिपदो का हाल सुनिए जो बर्दवान में इन्हीं के सहपाठी थे और इनके साथ ही साथ, निमानन्दजी के साथ ज्ञानगंज योगाश्रम में आकर दीक्षित हुए थे। जब उनकी साधना पूर्ण हुई तो गुरुदेव ने उन्हें भी गृहस्थ-जीवन स्वीकार करने की आज्ञा दी। किन्तु उन्होंने आज्ञा न मानी। फल क्या हुआ ?—उनकी सारी साधना तत्क्षण निष्फल हो गई और सारी सिद्धियाँ लुप्त हो गईं। बहुत गिड़गिड़ाने और क्षमा माँगने पर गुरुदेव महातपा महाराज ने कृपा की और कहा—

''हरिपदो! तुम्हारा यह जन्म निष्फल हो गया, पर तुम्हारा आगामी जन्म सार्थक होगा।''

विवाह के बाद की एक घटना का विवरण

विशुद्धानन्दजी का जन्म एक कर्मनिष्ठ आचार-प्रतिष्ठ धार्मिक परिवार में हुआ था। इसलिए परम्परागत विश्वासों के प्रति उनकी निष्ठा थी। वे वर्णाश्रम धर्म तथा ऊँच-नीच और स्पृश्यास्पृश्य के भाव को मानते थे। विवाह के उपरान्त गौने पर जब इनकी पत्नी इनके घर आई तो इन्होंने उसकी आकृति देखकर अपनी योगसिद्धि के द्वारा विचार किया तो जाना कि वह अपने पूर्व जन्म में एक अछूत कुल में जन्मी थी। फिर ये अपनी पवित्रता और शुचिता को सुरक्षित रखने के विचार से अपनी पत्नी के शयनकक्ष में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं गए। इनकी माता ने जब यह देखा और जान लिया तब वे तो वंशक्रम लुप्त हो जाने के भय से बहुत ही उद्विग्न हो उठीं। पुत्र को समझाकर राह पर लाने का कोई समुचित उपाय उन्हें सूझ न पड़ा और उनकी चिन्ता दिनों-दिन बढ़ती गयी। एक दिन अधिक उद्विग्न होने पर उन्होंने कातर तथा आर्त्तभाव से जेठा गुरुदेव श्री भृगुरामजी का स्मरण किया। उनके मन की कातर प्रार्थना को भृगुरामजी के पास पहुँचते देर न लगी और वे अविलम्ब उनके सामने प्रकट हो गये। चिन्ता का कारण जानने पर उन्होंने माता राजराजेश्वरी देवी को आश्वस्त किया और कहा कि मैं अभी ठीक किये देता हूँ।

उन्होंने उसी समय विशुद्धानन्दजी को बुलाया। वे आये और माता के साथ जेठा गुरुदेव को देखकर तुरन्त साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और हाथ जोड़कर उनके आदेश की प्रतीक्षा करने लगे।

महर्षि भृगुरामजी ने उनसे पूछा—

"भोलानाथ! यदि एक व्यक्ति ऊँची जाति में जन्म लेकर साधना द्वारा और भी ऊँचा हो जाए तथा दूसरा व्यक्ति पूर्व जन्म में नीची जाति में जन्म लेकर भी इस जन्म में उच्च वर्ण में जन्म लेकर तुम्हारे समान पति प्राप्त करे तो बताओ दोनों में से किसका संस्कार महान् है ?" यह कहकर वे चुप होकर शान्त भावसे मुस्कराने लगे। इनसे इसका कोई उत्तर न बन पड़ा और वैसे ही मौन खड़े रह गये। तत्पश्चात् दादा गुरुदेव ने भोलानाथ की माताजी से कहा—"अब आप चिन्ता न करें, सब ठीक हो जायेगा और फिर भी यदि कोई चिन्ता का कारण उपस्थित हो तो मैं स्मरण करते ही पुनः आकर उसे दूर करूँगा।" यह कहकर वे अन्तर्धान हो गए।

दूसरी घटना इस प्रकार है

विवाह के दिन ही उनकी कतिपय योग-विभूतियों का प्रसंगवश प्रदर्शन हो गया था और ससुराल के लोगों ने यह जान लिया था कि भोलानाथ एक असाधारण योगी हैं।

विवाह के पश्चात् ये अपनी ससुराल मतेश्वर गये थे। वहाँ नियमानुसार ये प्रतिदिन पोखरे में स्नान करने जाया करते थे। पोखरे में सिवार और जलकुम्भी की बेलों का बाहुल्य था। एक दिन जब ये स्नान कर रहे थे, इन्हें अपनी छाती पर किसी जीव के काटने का आभास मिला और उसी समय इन्होंने एक साँप को तैरकर भागते देखा। ये तुरन्त पानी में से बाहर निकले और देखा कि काटी हुई जगह में से रक्त बह रहा है। इनका साला साथ में था। उसके पूछने पर इन्होंने बताया कि साँप ने काट लिया है किन्तु किसी से कहना मत। और आप पोखरे के पास ही प्रतिष्ठित शिवमन्दिर में घुस गये। साले से कह दिया कि जब तक मैं शिव-मन्दिर में क्रियारत रहूँ तब तक कोई भी इसके भीतर न आने पाये, चाहे कितना भी समय क्यों न बीत जाए। मैं स्वयं क्रिया-पूर्ण करके बाहर आ जाऊँगा।

साले ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और गाँव में जाकर स्नान से देरी का कारण पूछने पर सबसे यही कहा कि—"जामाता महाशय स्नान के बाद कोई योग-क्रिया सम्पन्न करने के लिए मन्दिर में चले गये हैं। जब तक वे स्वयं बाहर न निकलें, उनका आदेश है कि कोई उन्हें छेड़े नहीं।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनकी योग-शक्ति के विषय में लोग, पहले ही सुन चुके थे। इसलिए किसी ने इन्हें छेड़ने का या उनकी साधना में विघ्न डालने का साहस नहीं किया। वह दिन पूरा बीत गया, रात पूरी बीत गई। दूसरे दिन प्रातःकाल ये स्वयं मन्दिर का द्वार खोलकर बाहर निकले। उस समय इनकी आँखें लाल थीं तथा सारा शरीर पसीने से भीगा था। अब इन पर विषय का कोई प्रभाव न था, केवल साँप के काटे का चिह्न वक्षःस्थल पर उसी प्रकार शोभा पा रहा था जैसे भगवान् विष्णु के वक्ष पर भृगु ऋषि का चरण-चिह्न शोभा पाता है।

गुष्करा में रहते हुए ही, संन्यासी अवस्था के बाद विशुद्धानन्द तीर्थ-स्वामी हुए। गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता तथा आदर्श गृहस्थ-जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही संन्यासी भोलानाथ ने विवाह किया। विवाह के समय इन्होंने गुरुप्रदत्त नाम "विशुद्धानन्द" तथा "तीर्थ-स्वामी" उपाधि ग्रहण करते हुए—संसार-क्षेत्र में प्रवेश किया।

तीर्थस्वामी अवस्था में विशुद्धानन्द ने उच्च कोटि की साधना द्वारा बड़ी आध्यात्मिक उन्नति प्राप्ति की जिससे इनमें अनेक प्रकार की योग-सिद्धियों का उदय हुआ।

संन्यास ले लेने पर भी भोलानाथ ने गुरुदेव की आज्ञा से विवाह करके गृहस्थ-जीवन अपनाया था, किन्तु वहाँ भी इनका जीवन अविवाहितों की तरह ही था। गुरुकृपा से इनकी तपस्या तनिक भी क्षीण न हुई अपितु गृहस्थ-जीवन-काल में भी इनकी उच्चतर साधना का क्रमिक विकास होता ही गया। लौकिक जीवन में रहते हुए भी ये संसार के विषयों से निर्लिप्त एवं लोक-कल्याण में निरन्तर लीन रहते थे। लोक-कल्याण के लिए ही तो परम गुरु तथा महाराज ने इन्हें गृहस्थ होने का आदेश दिया था; क्योंकि व्यक्तिगत आत्मकल्याण की अपेक्षा लोक-कल्याण का स्थान अनेक गुना ऊँचा है। गृहस्थ-जीवन अपना लेने से योगी का लोक-सम्पर्क अति विस्तृत हो जाता है जिस कारण वह उनकी समस्याओं, उनकी कठिनाइयों यथा उनके कष्टों, रोगों तथा दुःखों का निकटस्थ अनुभव कर पाता है और दयालु-प्रकृति होने के कारण उनके निवारण में लग जाता है और इस प्रकार वह विशिष्ट रूप से लोक-हित के कार्य को सम्पन्न कर पाता है। गृहस्थ-जीवन से दूर रहनेवाले व्यक्ति—चाहे वे साधक हों, ब्रह्मचारी हों, दण्डी हों, संन्यासी हों या योगी हों—प्रायः जनसाधारण से सम्पर्क न होने के कारण व्यक्तिगत साधना तथा निजी आत्मानुसन्धान में ही लीन रहा करते हैं उतना लोक-कल्याण प्रायः नहीं कर पाते जितना कि एक गृहस्थ-संन्यासी कर पाता है।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशम अध्याय

गुष्करा का निवास-काल

गुष्करा के निवास-काल में विशुद्धानन्दजी की दिनचर्या का उल्लेख उनके श्रद्धालु शिष्य श्री उपेन्द्र चौधरी महाशय ने इस प्रकार किया है :—

"मैं जब कभी बाबा का दर्शन करने जाता, उन्हें बालक-बालिकाओं से घिरा पाता। वे भी उन्हें तरह-तरह के फल, मिठाइयाँ और सुगन्धित पदार्थ बाँटकर उनको सन्तुष्ट करते। इस प्रकार गुष्करा आनन्द का हाट हो गया था। घाट, मठ, बाजार, दुकानों, लोगों के निवास-स्थानों—सब कहीं आनन्द ही आनन्द दिखाई पड़ता था। बाबा के निवास-स्थान से पद्म-गन्ध निरन्तर बाहर निकलती रहती और उनके शरीर से भी वही सुगन्ध निकलती रहती।"

बाबा दिन में तो दो-तीन बार स्नान करते ही थे, रात्रि में भी दो-तीन बार स्नान करते थे। भयानक शीत-काल में आधी रात के समय, लालटेन हाथ में लटकाये, मैं उनके साथ पोखर तक जाता। पोखर के जल में वे प्राय: आधे घण्टे तक निमग्न रहते। मैं किनारे पर ठण्ड से ठिठुरा काष्ठवत् खड़ा रहता। स्नानोपरान्त वे स्तोत्र-पाठ करते हुए किनारे आते और हम लोग घर लौट आते। यहाँ वे कमरे में गुप्त, भीतर से द्वार बन्द करके महानिशा में अपनी साधन-क्रिया में लीन हो जाते। सारा कमरा पद्म-गन्ध से सुवासित हो उठता।

मैं द्वार के बाहर चौकी पर बैठा रहता। प्रात: सात बजे तक वे बाहर निकलते। इस बीच वे न जाने किस अज्ञात लोक में आनन्द-मग्न रहते। प्रात: जब द्वार खोलकर बाहर आते तब ऐसा प्रतीत होता जैसे उनके हृदय-कपाट भी खुल गये हैं। हृदय में बालक-भाव, झूमती रक्त वर्ण आँखें, जैसे उनके अन्त:प्रदेश की तन्द्रा अभी भी पूरी तरह से दूर न हुई हो। मानो अब भी प्राण-प्रियतम ने प्राणों से विदा न ली हो। सारी देह सुगन्ध से सिक्त, चरण अब भी अविचल-से, मुख अभी मुखर होने को प्रस्तुत नहीं। उस समय ऐसा लगता मानो प्रियतम के प्राणों में प्राण, मन में मन, हाथ में हाथ, पैरों में पैर और रूप-सिन्धु में आँखें डूबकर एकाकार हो गयी हों। इस बाह्य-जगत् से जैसे सारे अंगों ने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया हो और वे अब भी विश्वनाथ की सेवा में संलग्न हों।

वे मानों मुझे शिक्षा दे रहे थे कि इस प्रकार दृढ़ता और एकाग्रता के साथ यदि साधना की जाएगी तब भगवत्प्रेम का अधिकारी बन सकना सम्भव होगा; अर्थात् पुरुष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के साथ प्रकृति का, परमात्मा के साथ जीवात्मा का तथा भगवान् के साथ भक्त का मिलन तभी सम्भव है। जीव-भाव की शिव-भाव में परिणति कठोर साधना द्वारा ही सम्भव है।

प्रातः सात बजे जब बाबा बाहर आकर बैठ जाते, तब कोई पंखा उठाकर हवा करने लगता, कोई पैर दबाने लगता, तथापि गम्भीर ध्यान का नशा जैसे अभी तक उतरा न हो, मानों मन उस पार के अनजाने राज्य की सीमा त्यागकर इस पार लौटा न हो। मैं प्रायः देखता कि उनकी बाह्य चेतना के लौटने में, जब वे बातचीत करना आरम्भ करते थे, काफी समय लग जाता था।

उस समय तक बैठकखाने के बरामदे में अनेक रोगी, साधु, गृहस्थ, बालक, वृद्ध, भोगी और योगी सभी आकर एकत्र हो जाते थे। सबके मन और नेत्र एकमात्र उन्हीं महापुरुष की ओर लगे रहते और वे भी सब पर स्नेह-दृष्टि डालकर पूछते— 'कहो अच्छे तो हो ?'

कोई कहता, बाबा! दवा चाहिए। कोई पूछता, बाबा! मेरी गति क्या होगी ? मेरा उद्धार कैसे होगा ? कोई पुत्र-शोक से कातर होकर बाबा से शान्ति का उपाय पूछता। कोई कपड़ा, खाना तथा धन, मान-प्राप्ति की प्रार्थना करता तो कोई बाबा के साथ अलग एकान्त में साधन-तत्त्व के विषय में कुछ परामर्श करने के लिए आकुल भाव से प्रार्थना करता। अनेक व्यक्ति हाथों में फल, फूलमालाएँ लिये बाबा को अर्पण करने की प्रतीक्षा करते, मानों वे साक्षात् कल्पतरु हों। संसार के तापों से तप्त और संत्रस्त बद्ध, विषयासक्त तथा कामनायुक्त जीव कल्पवृक्ष की शान्तिदायक शीतल छाया में बैठकर अपने विकल प्राणों को शीतल करने के उद्देश्य से उनकी शरण में आते थे। जो कोई जिस किसी मनोरथ को लेकर आता, बाबा उसका मनोरथ यथोचित ढंग से पूर्ण करते थे। बालक-बालिकाएँ प्रसाद पाने के लालच में ही बाबा को हर समय घेरे रहती थीं।

कुमारी-भोजन

वे भी बच्चों में भगवान् की और बालिकाओं में साक्षात् महाशक्ति जगदम्बा की भावना रखते थे। इसी कारण वे 'कुमारी-भोजन' को महायज्ञ मानते थे। उनका कहना था कि कुमारी-भोजन से जगदम्बा महाशक्ति विशेष रूप से सन्तुष्ट होती हैं। इससे बुरे कर्मों के पापों से छुटकारा मिल जाता है तथा अनेक विघ्न और संकटों का निवारण होता है। हर पूर्णिमा तथा हर सोमवार को एवं सब पर्वों के दिन, यथासाध्य अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक, पाँच, सात, नौ, ग्यारह, तेरह, पन्द्रह, सोलह, सत्रह तथा इससे भी अधिक कुमारियों के भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। कुमारियाँ जहाँ तक हो, बारह वर्ष की आयु तक की हों और पवित्र आचरण वाली ब्राह्मणी की हों।

भोजन में पूरी, हलुवा, सन्देश, रसगुल्ला, दही तथा आलू, परवल, कुम्हड़ा, लौकी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जमीकन्द आदि की सब्जी हो सकती है। किन्तु प्याज, अण्डा तथा लहसुन बिल्कुल नहीं होना चाहिए। भोजन अति शुचिता के साथ शुद्ध होकर पवित्र चौके में बर्तनों में पकाया जाना चाहिए।

कुमारियों को जहाँ तक हो, प्रातः दस बजे के भीतर ही, भोजन करा देना चाहिए। पहिले कुमारियों के चरण धोएँ, फिर धुले स्थान एवं पवित्र आसन पर बैठाकर श्रद्धा सहित साक्षात् जगदम्बा का स्वरूप समझकर उन्हें भोजन करावें। भोजनोपरान्त एक-एक पान तथा एक-एक चवन्नी दक्षिणा देकर उनके चरण छूकर सादर बिदा करें। भावना के अनुसार लाभ होगा। बाबा कहा करते थे कि कुमारी-भोजन से बढ़कर आजकल के युग में दूसरा कोई यज्ञ नहीं।

जब सब लोग बिदा लेकर चले जाते, तब बाबा स्वयं एक आधी बाँह की गंजी पहनकर परिभ्रमण के लिए बाहर निकलते। प्रायः एक घण्टे बाद लौटते और पूर्व की ओर के कमरे के एक कोने में रखी अपनी चौकी पर बैठकर विविध विषयों पर एकत्रित श्रोताओं को उपदेश दिया करते थे।

प्रातः ठीक दस बजे वे भोजन करते। तदुपरान्त आये हुए भक्तगणों के साथ बैठकर विविध विषयों पर शास्त्र-सम्बन्धी आध्यात्मिक चर्चा करते। शास्त्रों के गूढ़ तथा जटिल रहस्यों को सरल भाव से प्रत्यक्ष करके समझा देते। प्रयोजन होने पर रोगियों को देख आते। इस प्रकार एक बजे से चार बजे तक गुष्करा और आसपास के गाँवों के बहुत से ब्राह्मण और पण्डित वहाँ पधारते और अपने संशयों का समाधान करते।

सूर्यास्त होते ही, निश्चित रूप से ठीक क्षण में अपनी नित्य क्रिया करने के लिए, पूजा-गृह में जाकर उसका द्वार बन्द करके परमात्मा के ध्यान में लग जाते थे। दूसरे किसी भी लौकिक कार्य को पूरा करने के हेतु वे कभी भी अपनी क्रिया के इस मूल्यवान् मुहूर्त्त को बीतने नहीं देते थे। ठीक 'सन्ध्या के क्षण' को पकड़ते थे। सन्ध्या-पूजा के बाद नित्य कुछ समय के लिए बाहर आकर बैठते थे। फिर साढ़े-सात बजे रात्रि का अल्पाहार करके और कुछ सत्संग करने के उपरान्त ठीक नौ बजे रात को सो जाते। फिर ग्यारह बजे उठकर महानिशा की क्रिया के लिए स्नानादि में लग जाते।

उपेन्द्र चौधरी महाशय का कहना है कि उपर्युक्त दैनन्दिन कार्य उनकी प्रतिदिन की चर्या थी। इसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता था। यही क्रम उनका प्रायः जीवन के अन्त तक चला। ऐसा था उनका तपस्यामय संयत जीवन।

तीर्थस्वामी अवस्था में रहते विशुद्धानन्दजी ने और अनेक सिद्धियाँ अर्जित कर ली थीं और उनकी स्थिति अत्यन्त ऊँची उठ गई थी जिसका अनुमान उनके गुष्करा जीवन-काल के निम्नलिखित कतिपय आकर्षक प्रसंगों से मिलेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. विश्वनाथ-दर्शन

एक बार दुष्करा में रहते समय बाबा की इच्छा काशी-विश्वनाथ के दर्शन की हुई। ग्रामवासियों से बोले—"मेरा मन विश्वनाथ के दर्शन के लिए छटपटा रहा है—चलो एक बार काशी हो आएँ"—यह प्रस्ताव सुनते ही सब के सब बड़े प्रसन्न हो उठे।

बाबा की मण्डली में बाबा के रिश्ते में श्वशुर श्री यज्ञेश्वर चोंगदार महाशय भी थे। बाबा उन्हें 'श्वशुर' तथा वे बाबा को 'जमाई बाबू' के नाम से सम्बोधित करते थे। यद्यपि बाबा उनकी आयु को देखते हुए उन्हें काशी-यात्रा पर ले जाने के पक्ष में न थे, किन्तु श्वंशुरजी के अनुरोध को वे टाल न सके। सब लोग काशी के लिए चल पड़े तथा वहाँ सकुशल पहुँचकर सबने विश्वनाथजी के सानन्द दर्शन किये। उसके तुरन्त बाद ही प्रयाग-स्नान का एक पर्व था। बाबा ने वहाँ चलने का भी निश्चय किया। इधर सब लोग तैयार हो ही रहे थे कि सहसा चोंगदार महाशय ज्वराक्रान्त हो गये। ज्वर भी मामूली नहीं, एकदम १०७° डिग्री तक पहुँच गया। सब लोग चिन्तित हो उठे और यह सोचकर निराश भी हुए कि अब इस स्थिति में प्रयाग जाना सम्भव नहीं।

बाबा उस समय पूजा में थे और उन्हें चोंगदार महाशय के ज्वर का पता भी न था। जब वे पूजा समाप्त करके कमरे से बाहर निकले तो सबने चोंगदार महाशय के ज्वर की विकट अवस्था बताकर कहा कि ऐसे में तो प्रयाग की यात्रा स्थगित करनी पड़ेगी। बाबा बोले—'नहीं, ऐसा नहीं होगा, संकल्प अवश्य पूरा होगा—टलेगा नहीं, श्वसुरजी को मेरे सामने लाओ।' चोंगदार महाशय लाये गये। बाबा ने अपने दोनों पैर आगे बढ़ा दिये। चोंगदार महाशय का सिर पकड़कर बाबा के चरणों पर रखा गया। पन्द्रह मिनट के बाद सिर उठाने पर देखा गया कि ज्वर बिल्कुल जाता रहा। बाबा ने उसे अपने भीतर खींच लिया। चोंगदार महाशय का शरीर तापरहित होकर पहले की भाँति स्वस्थ हो गया। पूरी मण्डली ने तब काशी से प्रयाग के लिए सानन्द प्रस्थान किया तथा वहाँ पहुँचकर शुभ मुहूर्त में त्रिवेणी में स्थान किया। तदुपरान्त सबने मन्दिरों के दर्शन-पूजनादि कृत्य उल्लाससहित सम्पन्न किये और सानन्द गुष्करा लौट आये।

२. पूजागृह में 'शिवदास' सर्प

गुष्करा में, बाबा के कमरे में एक विषधर सर्प रहता था। जब क्रिया करते-करते बाबा का शरीर भीषण रूप से उत्तप्त हो उठता तब ये उस सर्प को अपने शरीर पर लपेट लेते थे जिससे इनके शरीर को शीतलता प्राप्त होती थी। इस सर्प को बाबा 'शिवदास' नाम से पुकारते थे और पुकारते ही वह बाबा के पास आ जाता था। वह किसी को काटता नहीं था, पर यदि कोई अकस्मात् उस घर में चला जाता तो वह फुफकार उठता था। एक बार जब बाबा परिभ्रमण के हेतु बाहर गये हुए थे, एक नया नौकर, जो सर्प की उपस्थिति से बिल्कुल अनभिज्ञ था, उस कमरे में झाड़ू देने के लिए गया। पर जैसे ही वह घुसा वैसे ही साँप फुफकारता हुआ उसके ऊपर झपट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ा। नौकर भय से मूर्छित होकर गिर पड़ा। कुछ देर बाद जब बाबा बाहर से लौटे तब उन्होंने सेवक को कमरे में बेहोश पड़ा पाया। स्थिति समझते इन्हें देर न लगी। फिर उसका इन्होंने उपचार किया।

३. सत्यासत्य विवेचन की एक घटना

गुष्करा ग्राम में बाबा की सेवा करते हुए एक दिन उपेन्द्र चौधरी महाशय ने बाबा से प्रश्न किया—"गुरुदेव! कुछ लोगों का कथन है कि जगत् मिथ्या है। क्या यह कथन सत्य है ?"

बाबा ने उत्तर दिया, "कुछ लोग संसार को मिथ्या देखते हैं किन्तु विवेकशील पुरुष जिनके प्रज्ञा-नेत्र खुल चुके हैं वे सब कुछ को जो भी दृश्यमान हो रहा है, ईश्वर ही समझते हैं।"

उपेन्द्रनाथ बोले, "बाबा! मुझे तो ज्ञान प्राप्त नहीं है। यह जो कुछ मुझे दीख रहा है, क्या यह सब मिथ्या है ? क्या इस सब का कोई अस्तित्व नहीं ? यदि नहीं, तो फिर संसार की सारी वस्तुएँ हमारी दृष्टि में क्योंकर भासमान हो रही हैं ? कुछ भी न होने से, क्या किसी वस्तु की उत्पत्ति हो सकती है ?"

बाबा ने कहा, "भ्रान्तिवश असत्य सत्य के समान भासित होता है। ज्ञान हो जाने पर जो अस्तित्वहीन भासता है, उसका अस्तित्व प्रकट होता है। सामने जो जवा का फूल तुम देख रहे हो, क्या सचमुच यह जवा का ही फूल हैं ?"

उपेन्द्रनाथ—"हाँ बाबा! मैं अभी उसे तोड़ कर लाता हूँ और आपको दिखाता हूँ। देखिएगा यह जवा का ही फूल है।"

यह सुनकर बाबा मुस्कुराकर बोले, "अच्छा ले आओ अपना वह जवा का फूल।"

उपेन्द्रनाथ तत्काल जवा के पेड़ के पास गये पर फूल तोड़कर देखा वह जवा का न होकर गुलाब का फूल दिखाई पड़ा। वे स्तम्भित होकर वहीं खड़े के खड़े रह गये तथा सोचने लगे कि अभी तो यह जवा का फूल था, गुलाब का कैसे हो गया! उन्होंने फिर ध्यान से जवा के उस पेड़ को देखा तो वह पेड़ भी गुलाब का ही निकला। उन्हें कुछ समझ में न आया कि वह पेड़ उनके देखते ही देखते कैसे जवा से गुलाब बन गया।

बाबा ने समझाते हुए कहा—"तुम्हारी आँखों के सामने जो रंग भासित होते हैं, तुम उन्हीं को देख पाते हो। यह गुण की विषमता का फल है। विश्व की रचना सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं द्वारा हुई है। मानसिक वृत्तियों के समूह के समूह चित्तसागर में उद्भासित होते रहते हैं। वे ही जीव के नेत्र-पटल पर कर्म रूप से बाहर प्रकाशित होते हैं। वे किसी को आनन्ददायी और किसी को विषादकारी प्रतीत होते हैं। यही है गुण-वैषम्य का खेल।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपेन्द्रनाथ—"बाबा, यह आप जो हमारे सामने प्रत्यक्ष हैं, क्या यह भी मिथ्या है ?"

बाबा—"हमारा अस्तित्व है ही कहाँ ?" और इतना कहते ही वे अदृश्य हो गये। उपेन्द्रनाथ भी भौंचक्के होकर ताकते ही रह गए। कुछ क्षणों के बाद बाबा मुख्य द्वार से भीतर आते हुए दिखाई पड़े और आकर अपने आसन पर बैठ गये। बोले—"देखो बच्चा! केवल एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। तुम अपने कर्त्तव्य-कर्म का (योग-क्रिया जो दीक्षा के समय मिली है) ठीक-ठीक पालन करते जाओ, बस फिर धीरे-धीरे सब कुछ समझ में आ जायेगा।"

कुछ देर बाद बाबा ने पूर्व का द्वार खोलकर कमरे में प्रवेश किया तथा उपेन्द्रनाथ को भी उसमें बुलाकर बिठाया और अनेक प्रकार की आश्चर्यजनक घटनाएँ उनको दिखाईं। पृथ्वी की गति और महाशक्ति की क्रिया भी दिखाई, जिसके द्वारा जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ और जीव गतिशील रहते हैं। इस चल जगत् में किस प्रकार उस अविचल वस्तु को प्राप्त किया जा सकता है, वह प्रक्रिया उन्हें समझा दी। चंचल प्रकृति किस गति-विधि से सृष्टि, स्थिति तथा संहार करती रहती है और जड़ तथा चेतन दोनों के योग से किस प्रकार वह संसार का कार्य-संचालन करती है—यह स्पष्टतया प्रत्यक्ष करके दिखाया। उपेन्द्रनाथ अवाक् होकर सब कुछ देखते रहे और उन्होंने उन्हें हृदयंगम करने का प्रयास किया, किन्तु इसमें अनेक बाधाएँ आने लगीं। तब बाबा बोले—"वत्स! साधना के बिना तुम इस तथ्य को स्थायी रूप से धारण करने में समर्थ नहीं होगे। पहले अपने चित्त को साधना द्वारा निर्मल बनाओ, तत्पश्चात् ये सारे रहस्य तुम्हारे सामने स्वतः प्रकट हो जाएँगे। इस समय असद्वृत्तियों ने तुम्हारे चित्त को मलिन कर रखा है। विकारग्रस्त चित्त मनुष्य को नीचे की ओर ले जाता है और निर्मल चित्त ऊपर को उठाता है। अतः जिस उपाय से भी हो सके चित्त को निर्मल करने का भरसक प्रयत्न करो।

४. स्वामी धवलानन्द का ज्ञानगंज से गुष्करा में आना

गुष्करा गाँव से उत्तर-पश्चिम कुछ ही दूर पर कुनूर नदी बहती है। उसके किनारे एक विशाल वट-वृक्ष है। एक बार बाबा के गुष्करा निवास-काल में एक संन्यासी महात्मा वहाँ पधारे और उस वृक्ष के नीचे उन्होंने अपना आसन जमाया। ये थे स्वामी धवलानन्द परमहंस। ये भी ज्ञानगंज योगाश्रम में बाबा के सहपाठी थे और वहाँ के विज्ञान के प्रधानाचार्य श्री श्यामानन्द परमहंसजी के प्रमुख शिष्यों में से थे। बाबा प्रायः इनके पास जाते थे। उन्होंने उस समय मौन धारण कर रखा था और अपना आसन छोड़कर न कहीं जाते थे और न ही कुछ खाते-पीते थे। जो कुछ भी लोग फल-फूल भेंट में लाते, उसे वे भक्तों में प्रसाद-रूप में वितरण कर देते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार अँधेरी रात में बाबा के साथ, श्री केदारनाथ मोदक (हलवाई) तथा श्री कालीदास घटक दोनों, पतीता तथा दूध आदि लेकर उनके दर्शनार्थ लालटेन लेकर चल पड़े। गुप्करा और उपर्युक्त वट-वृक्ष के बीच में एक पुल था जहाँ से वट-वृक्ष करीब एक-डेढ़ फर्लांग पर था। पुल पर पहुँचकर इन्होंने देखा कि पेड़ के नीचे एक ज्योति बार-बार चमकती है और बुझती है। वहीं पुल पर हवा के एक जोर के झोंके से लालटेन बुझ गई। घने अँधेरे में उस निर्जन स्थान में केदारनाथ मोदक को डर लगने लगा और उन्होंने अपना भय बाबा को जताया। बाबा ने तुरन्त लालटेन पर एक फूँक मारी और वह फिर जल उठी। साथ के दोनों व्यक्ति बाबा की इस अद्भुत क्षमता को देखकर चकित हो गये। फिर सब लोग वट-वृक्ष के नीचे साधु महाराज के पास पहुँचे तो देखा कि वह ज्योति जो दूर से क्रमशः जलती-बुझती दिखाई दे रही थी वह वास्तव में स्वामी धवलानन्दजी के शरीर से ही निकल रही थी।

५. कामाख्या-दर्शन

एक बार बाबा की, आसाम-स्थित, कामाख्या देवी के दर्शनों की इच्छा हुई। उनके साथ चलने को सत्रह-अठारह ग्रामवासी भी तैयार हो गये। सबको साथ लेकर बाबा कामाख्या पहुँचे। वर्षा-ऋतु समाप्ति पर थी। धारणा के अनुसार बाबा की इच्छा हुई कि देवी के सिद्ध पीठ पर कुमारियों को भोजन कराया जाये। बाबा ने वहाँ के पण्डों से कुमारियों को निमन्त्रण देने को कहा। उत्तर मिला, "यहाँ अपने स्थान पर बुलाकर कुमारियों को भोजन कराने की प्रथा नहीं है। जिसे भोजन कराना होता है वह देवी-मन्दिर पर अथवा देवस्थान पर ही उसकी व्यवस्था करता है। आप भी वैसा ही करें।" किन्तु बाबा को यह प्रस्ताव स्वीकार न था। उनकी इच्छा तथा संकल्प था कि अपने आवास पर ही कुमारी-भोजन कराएँगे। उन्होंने अपने आवास पर ही पूरी, तरकारी, दही, हलवा आदि बनवाना शुरू किया। फिर कुमारियों के लिए आसन, चरण धोने का जल, आल्ता एवं भोजन-सामग्री सब कुछ सुन्दर ढंग से सजाकर कुमारियों की बाट जोहने लगे। समय बीतने लगा किन्तु एक भी कुमारी आती दिखाई न दी। साथ में आये कुछ वयोवृद्ध लोग परिहास की भावना व्यक्त करने लगे। किन्तु बाबा निश्चिन्त थे। निर्धारित समय पर एक कुमारी अकस्मात् स्वतः वहाँ आकर उपस्थित हो गई। श्रद्धा-सम्मानपूर्वक आमन्त्रित करके उसको सविधि भोजन कराया गया। भोजनोपरान्त उसने दक्षिणा लेकर स्वीकार नहीं किया। सबने साष्टांग प्रणाम किया। तदुपरान्त वह कुमारी अपने घर चली गई।

इसके बाद बाबा ने स्वच्छ रेशमी वस्त्र धारण किये। जगदम्बा कामाख्या देवी के मन्दिर में जाकर दो घण्टे तक माँ की आराधना करके ये बाहर निकले। उस समय इनके कपाल पर रक्त-चन्दन का टीका, शरीर पसीने से भींगा तथा प्रशान्त मुख पर मृदु मुस्कान देखकर सबने आनंद का अनुभव किया। वहाँ से लौट कर बाबा ज्यों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही अपने आवास-स्थान पर पहुँचे कि चारों ओर से कुमारियों का आना आरम्भ हो गया। दीर्घकाल तक आने वाली कुमारियों का स्वागत-सत्कार, पूजन और भोजन कराकर सबने अपने जीवन को धन्य माना।

६. अंग्रेज पुलिस कप्तान का स्वभाव-परिवर्तन

गुष्करा निवास-काल में ही बाबा दो दिन के लिए बर्दवान पधारे और अपने प्रिय शिष्य उपेन्द्रनाथ चौधरी, पुलिस सब-इन्स्पेक्टर के यहाँ ही ठहरे। बाबू ने बड़े मनोयोग से बाबा की सेवा-पूजा तथा शुश्रूषा की। इनके पुलिस कप्तान थे मिस्टर आर० एफ० गाइज़। अफसर स्वभाव का बड़ा ही उग्र और कठोर था और उपेन्द्रनाथ चौधरी के प्रति जो विशेषतः रूखा और अभद्र व्यवहार करता था।

एक दिन उपेन्द्र बाबू ने नियमानुसार रात्रि की पूजा की सारी वस्तुएँ रख दीं किन्तु पूजा के लिए जो फूल लाये थे, उन्हें पूजाघर में रखना भूल गये। बाबा ने यथा-समय पूजाघर में प्रवेश करके कमरा बन्द कर लिया। कुछ देर बाद सारा घर पद्मगन्ध से भर गया। तब उपेन्द्र बाबू को याद आया कि पूजाघर में फूलों को रखना तो भूल ही गया हूँ। अपनी भूल ज्ञात होने पर वे बड़े दुःखी हुए और रातभर चिन्तित रहे। सबेरे आठ बजे जब बाबा ने द्वार खोला तो उपेन्द्र बाबू लज्जा तथा संकोच के कारण भीतर नहीं गये। बाबा ने स्नेह-भरे स्वर से इन्हें भीतर बुलाया। वहाँ का दृश्य देखकर उपेन्द्र बाबू तो चकित रह गये। कमल के सैकड़ों फूलों से कमरा भरा था—सुगन्ध से परिपूर्ण। बाबा ने सस्नेह कहा—"लो, यह प्रसाद और स्नान-जल सबको बाँट दो और स्वयं भी ले लो।"

बाबा पुनः बोले—"फूल देना भूल गए थे ?"

उपेन्द्र, "हाँ बाबा! यह अपराध मुझसे अनजाने हो गया। ले तो आया था पर अन्दर रखना भूल गया। इस भूल के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

बाबा ने हँसते हुए कहा—"अरे, सन्तान का पिता के निकट कैसा अपराध ? वत्स, तुम पुष्प अवश्य लाये थे, किन्तु आज उनसे पूजा नहीं होनी थी, अन्यथा मैं स्वयं तुमसे फूल माँग लेता। जब मैं पूजा करने बैठा तो देखा कि एक सरोवर में बड़े ही सुन्दर पुष्प खिले हैं। मन में आया कि आज इन्हीं पुष्पों द्वारा पूजा सम्पन्न करूँ। बस, इच्छाशक्ति द्वारा वे फूल यहाँ मँगवा लिये और पूजा की।"

उसके बाद बाबा उपेन्द्र बाबू से बोले—"मैंने सुना है, तुम्हारा अफसर तुम पर बहुत नाराज रहता है। वह तुम्हारा अनिष्ट करने की सोच रहा है। सुनो, आज तुम अपने प्रोमोशन के लिए एक प्रार्थना-पत्र लिखकर उसके पास दो। देखें तो क्या होता है।"

उपेन्द्र—"नहीं बाबा, यह काम मैं कैसे कर पाऊँगा ? प्रार्थना-पत्र देखते ही साहब तो एकदम मारने को झपट पड़ेगा। जब मैं अन्य कागज-पत्र भी उसके सामने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत करता हूँ तब भी वह सिर उठाकर मेरी ओर देखता तक नहीं। मैं कागज उसकी ओर नीची आँख किये सरकाता जाता हूँ और काम होने पर चुपचाप वहाँ से चला आता हूँ।''

बाबा बोले—''ठीक है, तो भी आज तुम मेरे लिए ही मार खा आओ। देखें, क्या होता है ?''

उपेन्द्र बाबू ने पदोन्नति (प्रोमोशन) का प्रार्थना-पत्र लिखकर और कागजों के साथ उसको भी डाक-पैड में रखकर बड़े साहब के पास भेज दिया। जब उनकी पुकार हुई तो उपेन्द्र बाबू ने जाकर एक-एक कागज बड़े साहब के सामने पेश करना शुरू किया। और कागजों पर आदेश देने के उपरान्त जब उपेन्द्र बाबू का प्रोमोशन का प्रार्थना-पत्र सामने आया तो साहब ने उपेन्द्र बाबू की ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखा, तथा प्रार्थना-पत्र को दो बार पढ़ा। फिर पूरे एक पृष्ठ का अपना अभिमत उस पर लिख डाला और उपेन्द्र बाबू को उसको पढ़ कर सुना भी दिया और कहा—''तुम्हारे डबल-प्रोमोशन के लिए मैंने कलकत्ते के बड़े अफसर को लिख दिया है। वे यदि तुमको डबल-प्रोमोशन नहीं देंगे, तो मैं स्वयं अब शीघ्र ही उसी पद पर जाने वाला हूँ, मैं तुम्हें स्वयं प्रोमोशन दूँगा।'' सायंकाल घर पहुँचकर उपेन्द्र बाबू ने सारा हाल प्रसन्नचित्त से बाबा को सुनाया तो बाबा के श्रीमुख से निकला—''अहा! नारायण क्या कभी अविचार करते हैं ? वत्स! नारायण के राज्य में अविचार नहीं है। वे जो कुछ भी करते हैं, जीव के मंगल के लिए ही करते हैं। जीव उनकी महिमा क्या जाने। जीव अपनी ओर से जो मनमाना उनसे चाहता है, यदि वह सभी उसे मिल जाय तो क्या कभी उसकी रक्षा हो सकती है ? प्रभु के न देने से मिलने का और कोई उपाय भी नहीं है। वे जो सब समय सब कुछ नहीं देते, यही उनका मंगलमय विधान है। अन्धजीव तमोगुण के कारण अपने को कर्ता मानकर विश्वपति के कौशल को भूल जाता है। अहंकार से उसकी बुद्धि कलुषित हो जाती है, प्रज्ञा का लोप हो जाता है और नश्वर विषय-सुख का आस्वादन करके वह कुपथगामी बन जाता है। सत्य का आदर सदा सर्वकाल रहता है, जबकि मिथ्या का प्राधान्य कुछ समय के लिए होता है, स्थायी नहीं रहता। कोई किसी का शत्रु अथवा मित्र नहीं। काल की प्रबल गति से ही इन भावों का उदय होता है। प्रभु-आज्ञा पर निर्भर होना सीखो। गुरु-उपदिष्ट क्रिया को यथा-रीति सम्पादन करते चलो। आत्म-प्रशंसा को छोड़ो, परनिन्दा को छोड़ो। अहंकार से बचो—यही सब मिट्टी कर देता है।''

दो दिन बाद बाबा गुष्करा लौट गये। तीर्थस्वामी विशुद्धानन्द ने कठोर साधना करके इतनी ऊँची आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर ली कि श्री भृगुरामजी परमहंसदेव इनसे अत्यन्त प्रसन्न और अति सन्तुष्ट हो गये। नीर-क्षीर विवेक से सम्पन्न योगी ही 'हंस' कहा जाता है। 'हंस' होने पर प्रकृति पर स्वामित्व तो मिल जाता है किन्तु वह स्थायी नहीं होता। परन्तु जब योगी द्वन्द्वातीत हो जाता है अर्थात् सुख-दुःख, हर्ष-शोक,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मान-अपमान, राग-द्वेष, अमृत-विष, जीवन-मरण आदि द्वन्द्व भावों से ऊपर उठ जाता है तब वह 'परमहंस' पद का अधिकारी बन जाता है। इस अवस्था में उसका प्रकृति पर स्वामित्व स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त करने पर विशुद्धानन्दजी को गुरुवर्य निमानन्दजी परमहंस के सम्मुख परीक्षा देनी पड़ी थी। उसमें उत्तीर्ण होने पर, इन्हें 'परमहंस' की उपाधि से विभूषित कर दिया गया।

१६१० ई० में उपर्युक्त 'परमहंस' की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त बाबा गुष्करा में और रहे। इस प्रकार ये गुष्करा में प्रायः बाइस वर्ष तक रहे।

तत्पश्चात् सन् १६११ ई० में बाबा गुष्करा छोड़कर बर्दवान चले आये। वहाँ ये दो वर्ष, तदनुसार सन् १६१३ ई० तक, रहे।

श्री विशुद्धानन्द परमहंस एक आदर्श-चरित्र मुक्त-योगी थे। उनके जैसा शुद्ध और पवित्र जीवन; कर्म, ज्ञान तथा भक्ति की पराकाष्ठा; ऐश्वर्य और माधुर्य का अपूर्व सम्मिलन जगत् में बहुत ही कम देखने में आता है। उन्होंने कठोर साधनापूर्वक तथा अलौकिक देव-अनुग्रह द्वारा अन्तर्जगत् तथा बाह्य जगत् के सकल तत्त्वों की अपरोक्षभाव से उपलब्धि करके तत्त्वातीत परमपद की स्थिति लाभ की। उनका आत्मभिमान पूर्ण रूप से विगलित हो गया। महाशक्ति के साथ उनका योग अब स्थायी रूप से स्थापित हो गया था, अभिमान का लेशमात्र भी नहीं रहा था, एक शुद्ध-बोधमात्र रह गया था।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकादश अध्याय

बर्दवान का निवास-काल

सन् १६११ ई० में गुष्करा ग्राम छोड़कर बाबा बर्दवान के रानीगंज बाजार के एक किराये के मकान में आकर रहने लगे। यहाँ वे दो वर्ष तक (तदनुसार सन् १६१३ ई० तक) रहे। यहाँ अनेक अद्‌भुत घटनाएँ घटीं। उनमें से केवल दो-तीन का उल्लेख नीचे किया जा रहा है :—

एक घटना

संसार का नियम है कि जहाँ कुछ व्यक्ति विश्वासी, श्रद्धालु तथा परोपकारी होते हैं, उनके साथ ही कोई-कोई असूया वृत्ति के भी होते हैं। बर्दवान में भी अधिकांश व्यक्ति बाबा के श्रद्धालु भक्त थे किन्तु एक व्यक्ति के मन में बाबा की क्रिया-पद्धति देखने की उत्कण्ठा अति प्रबल हो उठी। और यह जानते-बूझते कि ये क्रिया, कमरा बन्द करके करते हैं और उस समय किसी को भी उसके देखने की आज्ञा नहीं है, यह सज्जन उनके पूजागृह में अवसर पाकर चुपके से घुसकर छिप गये।

बाबा यथासमय पूजा-क्रिया सम्पन्न करने पूजा-गृह में घुसे और किवाड़ बन्द कर लिये। इन्होंने पहले वायु-क्रिया शुरू की। बाह्य वायु को आकर्षित करके, प्रक्रिया विशेष द्वारा उसे जब स्तम्भित कर दिया, तब पूरे कमरे की वायु अवरुद्ध हो गयी। अब तो उस छिपने वाले सज्जन का श्वास लेना बन्द हो चला और जब उसका कण्ठ एकदम रुकने लगा तब वह, श्वासावरोध होने के कारण, एकाएक बड़े जोर से चिल्लाया—"बाबा रे!" उसका चीत्कार सुनकर, बाबा की दृष्टि उधर गयी और ये उसको देखते ही समझ गये कि क्या माजरा है। इन्होंने तुरन्त निःश्वास छोड़कर वायु का साम्य स्थापित कर दिया और इस प्रकार उसके प्राणों की रक्षा हुई। फिर उसे डाँटकर कहा—"देखो, अब आगे कभी भी इस प्रकार से किसी योगी की परीक्षा या उसकी क्रिया छिपकर देखने का दुस्साहस मत करना। तुम पर तत्काल मेरी दृष्टि न पड़ी होती तो तुम्हारा शरीर भस्म होकर राख हो जाता। वह व्यक्ति अत्यन्त लज्जित होकर क्षमा-याचना करता हुआ कक्ष से बाहर निकल गया।

दूसरी घटना

एक बार बाबा सन्ध्या समय पूजा-गृह में क्रिया करने बैठ गये किन्तु कमरे के किवाड़ की साँकल भीतर से लगाना भूल गये। उनको आह्निक में प्रायः दो घण्टे का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समय लगता था। उस दिन पर्याप्त समय बीत जाने पर भी जब बाबा बाहर न निकले तब भक्तगण को चिन्ता होने लगी। रात के आठ बज गये। उसी समय इनकी एक शिष्या (अलीपुर, कलकत्ता कोर्ट के डी० एस० पी० श्रीयुत प्रियानाथ दे महाशय की पत्नी) वहाँ आईं। उन्होंने दरवाजे को ढकेला तो वह खुल गया क्योंकि अन्दर से साँकल नहीं लगी थी। भीतर का अद्‌भुत दृश्य देखकर वह तो चकित रह गईं। देखा कि बाबा एक नन्हें शिशु बने हुए पीठ के बल लेटे हैं और अपनी नन्हीं-नन्हीं हाथ की अँगुलियों से पकड़कर पैर की अँगुलियों को मुख में डालकर चूस रहे हैं। इस अद्‌भुत दर्शन के समय बाँकुड़ा (बंगाल) निवासी डॉ० चन्द्रभूषण बन्दोपाध्याय आदि कई व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने भी यह व्यापार प्रत्यक्ष देखा।

असाधारण देर तक किवाड़ न खुलने पर शिष्यों ने अनेक प्रकार के अनुमान लगाये थे, जैसे—"सम्भव है किसी विशेष प्रयोजन से बाबा अपने योग-बल द्वारा कहीं दूर प्रदेश में चले गये हों और वहाँ से लौटने में विलम्ब हो गया हो" अथवा "क्या पहले की तरह ऐसा तो नहीं हुआ कि बाबा अन्दर ही अन्दर पूजा करके दूर देश में (ज्ञानगंज आदि) चले गये हों।" कुछ अवसरों पर तो एक ही समय उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानों पर भी उपस्थित पाया गया है।

कई भक्तों ने उन्हें आकाश-मार्ग से उड़कर जाते हुए देखा है तथा कइयों ने उन्हें स्वरूप-परिवर्तन करते हुए भी पाया है। इस प्रकार की अनेक सिद्धियाँ और अचिन्त्य शक्ति विशुद्धानन्दजी को प्राप्त थी। इच्छा करते ही उनको अभीष्ट वस्तु हस्तगत हो जाती थी। अपनी कठोर तपस्या के फल-स्वरूप वे योग के शिखर पर आरूढ़ हो चुके थे। उनकी गति-विधि का सन्धान रखने की क्षमता किसमें है ?

तीसरी घटना

बर्दवान में क्षेत्रगोपाल बन्दोपाध्याय नाम के एक ब्राह्मण पण्डित फलित ज्योतिषी थे। वहाँ उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वे वयोवृद्ध थे और कभी-कभी बाबा के पास रानीगंज वाले मकान में आया करते थे और थोड़ी बातचीत करके लौट जाते थे। बाबा पृथक् आसन पर विराजमान होते थे तथा दर्शक, भक्तों और शिष्यों के लिए पृथक् आसन बिछे रहते थे।

क्षेत्रगोपाल बाबू अपने को सर्व-साधारण से विशिष्ट समझते थे, अतः औरों के साथ बैठने में उन्हें संकोच होता था। प्रथम साक्षात्कार के समय, वे बाबा के आसन पर ही, उनसे सट कर एक ओर बैठ गये। उस दिन बाबा ने उनसे कुछ नहीं कहा। परन्तु दूसरे दिन भी जब वे उसी प्रकार बाबा के आसन पर ही बैठने के लिए बढ़े तो बाबा ने शिष्ट भाषा में उनसे एक पृथक् आसन पर बैठने को कहा। इस समुचित सुझाव की प्रक्रिया को अपना अपमान समझकर वे तुरन्त बोले "बाबा! आप भी ब्राह्मण हैं तो मैं भी ब्राह्मण हूँ। आपकी ही तरह मेरे भी अनेक शिष्य तथा यजमान हैं। समाज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में मेरी भी प्रतिष्ठा कुछ कम नहीं। इसके अतिरिक्त मैं आपसे उम्र में भी बड़ा हूँ। इसलिए आपके इस प्रकार के व्यवहार को मैं अत्यन्त अपमानजनक और हेय मानता हूँ।''

यह सुनकर बाबा ने स्थिर गम्भीर भाव से उनसे कहा—''प्रिय बैनर्जी महोदय! सच्चा ब्राह्मण कौन है ? —क्या आप बता सकते हैं ? यदि आप यह जानते तो इस प्रकार की बात कभी न कहते। आप केवल कुल-परम्परागत ब्राह्मणत्व के अहंकार-मद में फूले हैं। यथार्थ ब्राह्मण होते तो आप सम्मान पाने के लिए इतने लालायित न होते। असली ब्राह्मण तो ब्रह्म-तेज से स्वयं महिमान्वित होता है, वह गुणातीत हो जाता है और उसे अन्यान्य गौरव अतितुच्छ प्रतीत होते हैं। वह तो इन्द्रादि देवगणों के पदों को भी तृणवत् उपेणीय समझते हैं। स्वयं विष्णु भगवान् ने ब्राह्मण भृगु की चरणधूलि को अपने वक्षःस्थल पर शृंगार रूप में धारण कर रखा है।''

इस पर क्षेत्रगोपाल बाबू पुनः बोले—''आजकल उस श्रेणी के ब्राह्मण क्या कहीं हैं ? अब वह जमाना बीत चुका जिस युग में ब्राह्मण के नेत्रों के ब्रह्मतेज से अग्नि प्रज्वलित हो उठती थी। आजकल वैसी क्षमता किसी ब्राह्मण में नहीं।''

बाबा बोले—''हाँ, आपका कहना एक प्रकार से सच है क्योंकि वैसे ब्राह्मण आजकल साधारणतः अवश्य देखने में नहीं आते, किन्तु यह मत समझ बैठिए कि इस समय वैसे ब्राह्मणों का सर्वथा लोप हो गया है। इतना कहने के साथ-साथ ही बाबा ने क्षेत्रगोपाल बाबू की ओर किंचित् टेढ़ी नजरों से देखा। आश्चर्य! दृष्टि पड़ते ही तत्क्षण क्षेत्र बाबू के कन्धे पर पड़ी चादर में आग लग गई। उन्होंने चादर को तुरन्त फेंका और देखते-देखते ही वह जलकर भस्म हो गई। क्षेत्र बाबू अवाक् होकर देखते रह गये। अपने पूरे जीवन में आज उन्होंने पहली बार अनुभव किया कि असली ब्राह्मण की क्षमता कितनी अधिक होती है और उसमें कितना ब्रह्मतेज होता है। यदि ब्राह्मण आजकल भी निष्ठापूर्वक अपने शास्त्र-विहित कर्त्तव्य-कर्म को निभाएँ तो उनमें तपोऽर्जित शक्तियाँ प्रचुर मात्रा में एकत्र हो जायँगी क्योंकि ब्राह्मण का शरीर जन्म से ही असाधारण और तेजपूर्ण होता है। इसी से शास्त्रों में कहा है—''ब्राह्मण सदा ही पूज्य हैं और उनको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करना मनुष्य-मात्र के लिए कल्याणकारी है।''

तुलसीकृत रामचरितमानस में भी आता है कि ब्राह्मण सदा ही पूज्य हैं :—

सुनु मम बचन सत्य अब भाई । हरितोषन-व्रत द्विज सेवकाई ॥
अब जनि करसि बिप्र अपमाना । जानेसि सन्त अनन्त समाना ॥
इन्द्र कुलिस मम मूल बिसाला । कालदण्ड हरिचक्र कराला ॥
जो इन कर मारा नहिं मरई । बिप्र रोष पावक सो जरई ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वादश अध्याय

आश्रमों की स्थापना

योगियों को, योग-साधना द्वारा उच्चतम अवस्था प्राप्त करने के पश्चात् योग की धारा को प्रवाहित रखने के हेतु तथा लोक-कल्याण के लिए, योग के शिक्षण और प्रचार का कार्य सम्पादित करना पड़ता है। केवल अधिकारी योगियों को ही उनके गुरुवर्य ऐसा आदेश देते हैं। विशुद्धानन्दजी को भी उनके गुरुदेव ने लोक-कल्याणार्थ शिक्षा और प्रचार का कार्य करने का आदेश दिया था। तदनुसार ही बाबा ने अनेक आश्रमों की अलग-अलग स्थानों पर स्थापना की।

१. बर्दवान में विशुद्धाश्रम

दादा गुरुदेव श्री भृगुरामजी परमहंसदेव के आदेशानुसार सबसे पहला आश्रम बाबा ने बर्दवान में स्थापित किया। वहाँ के रेलवे-स्टेशन से थोड़ी दूर पर १५, जी० एन० मित्र रोड पर आश्रम की स्थापना हुई। बाबा को गुरुदेव से नया नाम प्राप्त हुआ था— विशुद्धानन्द। तदनुसार बर्दवान आश्रम का नाम रखा गया 'विशुद्धाश्रम'। दादा गुरुदेव ने इस आश्रम के संचालनार्थ निम्नलिखित नियम बना भेजे थे—जो उनके द्वारा स्थापित अन्य आश्रमों के लिए भी लागू हैं :—

(क) शिष्यवर्ग योग-कर्म की अवहेलना न करें। उनमें से जब जिसे जो विषय जानने की अथवा देखने की इच्छा होगी, उसे तुरन्त दिखा देना या बता देना होगा। यदि पात्र योग्य न हो तो उसे केवल समझा भर दिया जाए, प्रत्यक्ष दिखाया कुछ न जाए।

(ख) शिष्यगण के साथ योग-सम्बन्धी, शास्त्र-सम्बन्धी तथा किसी भी गोपनीय विषय पर जब चर्चा हो, उस समय वहाँ पर अन्य कोई न रहे, यहाँ तक कि उपयुक्त शिष्य को छोड़ दूसरा कोई शिष्य भी वहाँ नहीं रहना चाहिए। गुह्य विषय के व्यक्त होने से समूह की क्षति होगी, ऐसा जानना।

(ग) सांसारिक कार्य तथा विषय अथवा विषय-सम्बन्धी कोई कार्य लेकर आश्रम में किसी को आने या ठहरने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

(घ) तुम (बाबा विशुद्धानन्द) योग-ज्योतिष के द्वारा किसी के भी सम्बन्ध में कोई बात न देखोगे, न कहोगे। यहाँ तक कि तुम अपने आत्मीयों के सम्बन्ध में भी न देखोगे, न कहोगे। यदि देखोगे या कहोगे तो तुम्हारी समस्त क्रिया ध्वस्त होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ङ) किसी के भी किसी रोग-निवारण या अन्य सम्बन्ध में भी इच्छाशक्ति का प्रयोग नहीं करना है। यदि करोगे तो तुम्हारी समस्त क्रिया ध्वस्त हो जाएगी।

(च) आश्रम में आकर कोई संन्यासी, योगी, भैरवी, ब्रह्मचारी जो कर्मी हों, वे जब तक उनकी इच्छा हो, ठहर सकेंगे। उनकी सभी आश्रमवासियों को ध्यानपूर्वक देखभाल करनी होगी। यदि कर्मी अथवा भक्त यथार्थ न हो तो आश्रम में नहीं ठहर सकेगा।

(छ) कोई स्त्री आश्रम में सहसा न आने पाए। यदि आ भी जाए तो आश्रम में ठहरने न पाए। शिष्यों की स्त्रियाँ आदि सब समय आ सकती हैं परन्तु एक प्रहर या अधिक से अधिक एक दिन ठहर सकेंगी। एक मास से लेकर छह मास तक के पुत्र-पुत्री लेकर कोई भी आश्रम के अन्दर नहीं आने पायेगा। यदि आवे तो सन्तान को अन्यत्र रखकर आवे और दर्शन करके तुरन्त लौट जाय।

(ज) आश्रम में अपरिचित पुरुष यात्री आए तो उसे रात्रि में आश्रम में न ठहरने दिया जाए। ये सब नियम आश्रम के उद्देश्य-साधन के पक्ष में अत्यन्त उपयोगी हैं।

गुष्करा का व्यापक सम्पर्क छोड़कर बाबा का, आश्रमों का निर्माण करके उनमें वास-सुविधा का विशेष उद्देश्य यह था कि इससे एक भाव से प्रभावित, एक ही पथ के पथिक-साधक गण संघ-बद्ध होकर एक दूसरे के अनुकूल रहते हुए जीवन के पथ पर अग्रसर हो सकें। आश्रम एक केन्द्र स्वरूप है जिसके सहारे सम्प्रदाय विशेष का अध्यात्म-राज्य गठित होकर क्रमशः प्रसरित होता है अर्थात् क्रिया-प्रणाली फैलती है।

इसके अतिरिक्त यथार्थ कर्मी शिष्यगण को, विशेष अवसरों पर साथ में रखकर, अनेक गुह्य तत्त्व अच्छी प्रकार समझाने पड़ते हैं और योग्य अधिकारी के संशय-निवारणार्थ बहुत से विषय उसको दिखाने आवश्यक हो जाते हैं। शिष्य की अवस्था के अनुरूप, व्यष्टि भाव से या समष्टि भाव से, इस प्रकार शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था सदा से प्रचलित है। धर्म का अंतरंग तत्त्व सभी बाहरी लोगों के समक्ष प्रकाशित करना उचित नहीं होता क्योंकि ऐसा करने पर अनेक प्रकार से अनिष्ट होते हुए देखे गए हैं। शिष्यवृन्द के एकत्रित होने एवं आवास के लिए एक स्थायी केन्द्र के बिना उपर्युक्त कार्य सम्भव नहीं हो सकते। बर्दवान में 'विशुद्धाश्रम' स्थापित करने का यह एक प्रधान कारण था। इस प्रसंग में उपर्युक्त नियम (क), (ख) और (ग) द्रष्टव्य हैं।

इसी कारण फिर और निम्नलिखित आश्रमों की विविध स्थानों पर स्थापना हुई।

२. बण्डूल में आश्रम-प्रतिष्ठा

श्री श्री बाबा ने अपनी जन्मभूमि बण्डूल ग्राम में, जो बर्दवान से चौदह मील उत्तर-पूर्व में स्थित है, एक आश्रम की स्थापना की थी। इस आश्रम के निर्माण का सारा व्यय उठाया था गुरुदेव के शिष्य ने।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये महाशय बिलासी पाड़ा (आसाम) के धनी-मानी जमींदार राजा थे। इस आश्रम-निर्माण के उपरान्त एक दिन दादा गुरुदेव भृगुरामजी परमहंस का एक पत्र बाबा को मिला। उसमें इस प्रकार का निर्देश था :—

"आश्रमों के अधिकारी तुम नहीं हो, तुम्हारे शिष्यगण हैं।" बर्दवान के 'विशुद्धाश्रम' तथा अन्य आश्रमों के लिए भी यही नियम लागू है। बाबा तो निष्काम तथा निस्संग भाव से रहते हुए, आश्रमों के अधिष्ठातामात्र बने रहे और अपने जीवन-काल में ही, अपने देहावसान के बाद की इनकी समुचित व्यवस्था के लिए ट्रस्ट और नियम बनाकर छोड़ गये। शास्त्र-सम्मत विचार के अनुसार—"परमार्थ के लिए कामना करना सर्व मंगल का हेतु है, जब कि विषय के लिए कामना करना सब अनर्थों का मूल है। परमार्थ भिन्न जो कुछ भी है सभी स्वार्थ कहलाता है, उसी का नाम है 'विषय'। विषय-कामना जागते ही चित्त विषय-चिन्तन में लग जाता है जिससे चित्त में विषय-दोष लिपट जाता है और चित्त विक्षिप्त हो जाता है। इसके विपरीत, आत्मा-सम्बन्धी कामना जागने से चित्त-विक्षेप दूर होकर एकाग्रता आती है और अन्त में चित्त-निरोध होकर विशुद्ध चैतन्य का साक्षात्कार होता है।"

भिन्न-भिन्न स्थानों में बाबा के शिष्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। शिष्य-संख्या बढ़ने के साथ-साथ क्रमशः झाल्दा, पुरी, काशी आदि अनेक स्थानों पर आश्रमों की स्थापना हुई।

३. झाल्दा में 'विशुद्ध-निवास'

यह स्थान पश्चिम बंगाल के मानभूमि जिले में पुरुलिया से तीस मील की दूरी पर स्थित है और साउथ-ईस्टर्न रेलवे का प्रसिद्ध स्टेशन है। यहाँ के जमींदार राजा श्री उद्धवचन्द्र सिंह ने जो बाबा के श्रद्धालु शिष्य थे, यहाँ पर 'विशुद्ध-निवास' नाम से आश्रम निर्मित कराया था।

४. पुरीक्षेत्र का 'विशुद्धानन्द धाम'

यह आश्रम पुरी के जिला-स्कूल के पास आर्मस्ट्रॉंग रोड पर निर्मित हुआ था। इसके निर्माण का समस्त दायित्व, बाबा के परम भक्त शिष्य श्री क्षेत्रगोपाल बन्दोपाध्याय एम० ए०, बी० एल० ने ग्रहण किया। ये कलकत्ता हाई कोर्ट के विख्यात बैरिस्टर थे। किन्ही कारणों से यह आश्रम अब नहीं रहा।

५. काशी का 'विशुद्धानन्द कुटीर'

यह गंगा के किनारे हनुमान घाट मुहल्ले में (जिसे अब अवधगर्बी कहते हैं) है। काशी में पधारने पर बाबा पहले यहीं पर ठहरे थे। यहीं के आवास-काल में उनका यश काशीभर में सर्वत्र प्रसरित हुआ था। यहीं पर पहले-पहल महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने उनका प्रथम बार दर्शन प्राप्त किया था। कलकत्ता हाई कोर्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अधिवक्ता (वकील) श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय और उनकी पत्नी ने एक मकान खरीदकर, उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन और परिवर्धन कराकर, उसे आश्रमोपयोगी रूप दे दिया था। यही है सम्प्रति-विशुद्ध कुटीर।

काशी में, मलदहिया मुहल्ले में 'विशुद्धानन्द कानन' आश्रम स्थापित होने के पश्चात् विशुद्ध कुटीर में अब आश्रम नहीं है।

६. काशी का 'विशुद्धानन्द कानन' आश्रम

यह आश्रम वाराणसी कैण्ट रेलवे स्टेशन से प्रायः आधा मील दूर, मलदहिया नामक मुहल्ले में, इंगलिशिया लाइन से लहुराबीर जाने वाली बड़ी सड़क पर स्थित है। यहाँ पहले कानन था जिस कारण इसका नाम विशुद्धानन्द कानन आश्रम रखा गया। बाबा के कई श्रद्धालु भक्त शिष्यों ने मिलकर इस बड़े बगीचे को खरीदकर उसमें इस आश्रम का निर्माण कराया। बाबा की इच्छा थी कि ज्ञानगंज की तरह काशी में भी योग तथा विज्ञान की शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो। आज भी आश्रम में 'शिक्षा-मन्दिर' तथा 'विज्ञान-मन्दिर' नाम से कक्ष है जिनमें योग की तथा विज्ञान की शिक्षा का लक्ष्य था परन्तु अज्ञात कारणवश (सम्भवतः ज्ञानगंज से अनुमति न मिलने के कारण) बाबा को अन्त में यह प्रक्रिया स्थगित करनी पड़ी।

शिव-मन्दिर

काशीधाम के विशुद्धानन्द कानन आश्रम के शिव-मन्दिर में गौरी पट्ट के ऊपर १०८ (एक सौ आठ) बाण-लिंगों के स्थापना की व्यवस्था है। मई सन् १९८२ तक ७५ (पचहत्तर) बाणलिंग शिष्यों ने प्रतिष्ठित कर दिये हैं। गौरी पट्ट के दक्षिण छोर पर दुर्गाजी की अष्टधातु की, श्री श्री गुरुदेव द्वारा निर्माण कराई गई, सुन्दर मूर्ति है, मध्य में बाबा द्वारा स्थापित बड़ा अखिलेश्वर बाणलिंग है, तथा उत्तर के छोर पर गोपाल मूर्ति है तथा इसके बराबर ही गौरी पट्ट के पास ही उत्तर ओर लकड़ी के छोटे फ्रेम में (जिसमें सामने शीशा लगा है) गोपालजी के चरण-चिह्न स्थापित हैं।

गोपालजी के चरण-चिह्न

इन गोपालजी के चरण-चिह्नों का विशेष इतिहास है। बहुत काल पूर्व जिस समय बाबा पुरी-धाम के आश्रम में निवास कर रहे थे, एक दिन प्रातःकाल के समय बाबा के रिक्त बिछौने पर दो पद-चिह्न दिखाई पड़े। उस समय इनसे बिजली के से ज्योति-स्फुलिंग निकल रहे थे। उसी समय बाबा दो तल्ले के क्रिया-गृह में अपने आसन पर बैठकर भक्त जयदेव रचित पद :—

'देहि पद पल्लवमुदारम्' का मनन कर रहे थे।

कुछ ही क्षणों के बाद अति मधुर नूपुर-ध्वनि बाबा के कान में पड़ी। बाबा नूपुर-ध्वनि की टेर पर तुरन्त एक तल्ले पर आये और देखा कि उनके बिछौने की चादर पर दो छोटे-छोटे उज्ज्वल चरणों की रेखाएँ अंकित हैं। श्री गोपालजी की यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लीला देखकर बाबा भाव-भक्ति में मग्न हो गये। पेन्सिल द्वारा स्पष्ट चिह्नित करके वे चरण-चिह्न सुरक्षित रख लिए गये। बाद में ७, कुण्डू रोड, भवानीपुर, कलकत्ता में बाबा के परम भक्त और शिष्य श्रीयुत योगेशचन्द्र बसु के निवास-स्थान पर कुछ काल तक रखे रहने के पश्चात्, वे काशीधाम लाकर आश्रम में शिव-मन्दिर में स्थापित कर दिये गये हैं। प्रातः-सायं दोनों समय शिव-मन्दिर में आरती-पूजा होती है।

गोपाल-मूर्ति

गोपाल-मूर्ति का भी अद्भुत इतिहास है। एक दिन पुरी के निवास-काल में जब श्री बाबा समुद्र में स्नान कर रहे थे उस समय उन्हें लगा जैसे पैर से कोई वस्तु टकराई है। झुककर उठाया तो देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर तथा सुडौल काले पत्थर की बालरूप गोपालजी की मूर्ति, जिसमें गोपाल घुटनों के बल पर बैठकर दाहिने हाथ में लड्डू लिए होने का भाव प्रदर्शित था। मूर्ति को बारम्बार देखकर बाबा अति प्रसन्न और आह्लादित हुए। बाबा ने पुरी से लाकर पहले तो लड्डू-गोपाल की मूर्ति को बर्दवान के विशुद्धाश्रम में स्थापित किया और फिर कुछ काल के पश्चात् इस गोपाल-मूर्ति को काशीधाम में विशुद्धानन्द-कानन-आश्रम के शिव-मन्दिर में गौरीपट्ट के उत्तरी छोर पर स्थापित कर दिया। यहाँ दोनों समय प्रातः-सायं, इनकी आरती, पूजा तथा भोग की व्यवस्था है।

नवमुण्डी सिद्धासन

जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है, जब ज्ञानगंज से काशी में विज्ञान-शिक्षा केन्द्र स्थापित करने की अनुमति नहीं मिली तो पूज्य गुरुदेव श्री श्री विशुद्धानन्दजी परमहंस देव ने अपने शिष्यों तथा भक्तों एवं लोक के कल्याणार्थ १४ फरवरी सन् १५३५ ई० को, अपनी चालीस वर्ष की कठिन तपस्या के फल को अर्पित करके, श्री श्री नवमुण्डी सिद्धासन की स्थापना की। पृथ्वीतल से प्रायः दो फुट ऊँचे धरातल पर एक बारह फुट लम्बा तथा उतना ही चौड़ा जालीदार घेरा है जिसके मध्य में चार वर्ग-फुट में बालू भरी वेदी-सी है जिसके उत्तर-पूर्व के कोने पर माँ का घट स्थापित है। जालीदार मन्दिर से मिला पश्चिम में एक कमरा पक्की ईंटों का प्रायः अठारह फुट लम्बा और बारह फुट चौड़ा तथा चौदह-पन्द्रह फुट ऊँचा है जिसमें विशिष्ट साधक बैठकर जप कर सकते हैं। इस कमरे के नीचे इसी नाप की दस फुट गहरी एक गुहा है जिसमें जाने के लिए पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं। यहाँ ज्ञानगंज से भैरवी, ब्रह्मचारी, साधक तथा सिद्ध परमहंसयोगी समय-समय पर आकर पूजा करते हैं—यह स्थान केवल उन्हीं के लिए आरक्षित है। ऊपर के कमरे से लगा स्नान घर तथा फ्लश शौचालय भी है जिसमें पानी के नल की व्यवस्था है।

कहा जाता है और पुराने शिष्यों ने प्रत्यक्ष देखा है कि स्थापना के समय जहाँ अब ४'×४' की बालू की वेदी है उस जगह एक बेल का पेड़ था। परन्तु इस आसन के तेज को सहन न कर पाने के कारण वह वहीं कुछ समय में भस्म होकर गिर पडा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिन्न-भिन्न शिष्यों के भिन्न-भिन्न अनुभव हैं। कोई-कोई शिष्य तो आसन पर बैठते ही भूत, प्रेत, शेर, व्याघ्र, आघात, डरावनी आकृतियाँ तथा डरावने शब्द और शोर आदि से डरकर भाग खड़े हुए हैं तथा कुछ को धक्का देकर भगा दिया गया। शुद्ध परमाणु, अच्छे संस्कार तथा गुरु की विशेष कृपा बिना इस आसन पर बैठकर क्रिया करना सम्भव नहीं। जो साधक ऊपर वेदी पर किसी कारणवश न बैठ पावे या बैठने से डरता हो उसके लिए पास ही एक खुले बरामदे में बैठकर क्रिया करने की सुविधा है। यह सिद्धासन आश्रम के दक्षिण ओर स्थित है और प्रायः साठ फुट लम्बे और तीस फुट चौड़े घेरे में है जिसके चारों ओर आठ फुट ऊँची दीवार है और लोहे का एक प्रवेश द्वार है जो प्रातः भोग के बाद साढ़े-दस बजे से सायं साढ़े-तीन बजे तक बन्द रहता है तथा रात्रि की आरती के पश्चात् आठ बजे से प्रातः पाँच बजे तक बन्द रहता है। इस आसन के विषय में बाबा का कथन है—"इस आसन पर शुद्ध भाव से बैठकर जप करने से सफलता अवश्यम्भावी है और कुभाव लेकर जप करने से कुफल अवश्य होगा।"

गुरु-मन्दिर

चौदह जुलाई सन् १९३७ को कलकत्ते में बाबा का देहावसान हो गया। उनके शिष्यों ने कलकत्ते के नामी मूर्तिकार से पद्मासन मुद्रा में संगमरमर की मूर्ति बनवाई और इसे काशी आश्रम में प्रवेश द्वार के पास ही शिव-मन्दिर के सामने एक मन्दिर स्वरूप कमरे में स्थापित किया। इस मन्दिर में भी बाबा के प्रातः-स्नान, तथा प्रातः-सायं दोनों समय पूजा, आरती और भोग की व्यवस्था है।

आश्रम में स्थित सारे मन्दिर प्रातः साढ़े-दस बजे से सायं साढ़े-तीन बजे तक तथा रात्रि में प्रायः सात बजे से प्रातः चार बजे तक बन्द रहते हैं।

धर्मशाला

आश्रम के उत्तर-पश्चिम के कोने में प्रवेश द्वार से सटी हुई एक धर्मशाला है जिसमें केवल शिष्य या उनके आत्मज पत्नियों सहित रह सकते हैं। धर्मशाला के चारों ओर परकोटा है। इसमें ठहरने के लिए तीन बड़े कमरे नीचे तथा तीन दोतल्ले पर हैं। पाकघर, स्नानघर तथा शौचालय और पानी के नलों की समुचित व्यवस्था है।

अनेक आश्रमों की स्थापना करके बाबा ने वह कार्य किया जिससे शिष्यों और भक्तों को साधनों के क्षेत्र में बड़ी सहायता मिली, आसपास के वातावरण में शुद्धता का संचार हुआ। साथ ही साथ सदाचार तथा शास्त्रों में निष्ठा बढ़ने से लोक के विशेष कल्याण की सदा के लिए व्यवस्था हो गई।

बाबा के कार्य, उनकी लीला, उनकी क्षमता तथा उनका योगैश्वर्य सभी अनुपम थे। उनके आश्रमों में पदार्पण करते ही अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है। वहाँ के नियम अति सुन्दर और उचित हैं; उनमें दूरदर्शिता की झलक पर्याप्त देखी जाती है जिस कारण आजकल के कुसमय में भी इन आश्रमों की व्यवस्था असन्तोषजनक न होकर समयानुसार अच्छी ही है।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रयोदश अध्याय

योगिराज विशुद्धानन्द परमहंसदेव का व्यक्तित्व तथा विशिष्ट उपदेश

योगिराज श्री विशुद्धानन्दजी परमहंसदेवजी का शरीर अति अद्भुत, साधनादि आश्चर्यमय तथा जीवन, अत्यन्त विचित्र था। उनका चरित्र अति निर्मल, संयम तथा नियम अति कठोर, करुणा असाधारण, बुद्धि तीक्ष्ण, कार्य-क्षमता दक्षतापूर्ण, स्वभाव स्वातन्त्र्यप्रिय तथा व्यवहार अति सौजन्यपूर्ण था।

जैसा पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, वे एक आदर्श-चरित्र मुक्त योगी थे। उनका-सा शुद्ध तथा पवित्र जीवन जिसमें ऐश्वर्य और माधुर्य का सम्मिलन एवं कर्म, ज्ञान, भक्ति तथा प्रेम की पराकाष्ठा थी, जगत् में आजकल अत्यन्त ही कम देखने में आता है।

उन्होंने अति कठोर साधना तथा अलौकिक दैवअनुग्रह के फल-स्वरूप अन्तर्जगत् तथा बाह्य जगत् के सकल तत्वों की अपरोक्ष भाव से उपलब्धि करके तत्त्वातीत परमपद कैवल्य की स्थिति प्राप्त की थी।

आइये, अब बाबा की उपर्युक्त विलक्षणताओं में से कुछ पर दृष्टि डालें :—

देह की विलक्षणता

श्वास-प्रश्वास के लिए बाबा बाह्य जगत् की दूषित वायु का सेवन न करके, तीव्र साधना के फलस्वरूप स्वशोधित सूक्ष्म अन्तर्वायु का ही सेवन करते थे और वह भी नाभि द्वारा, नासिका द्वारा नहीं। उनकी देह अत्यन्त शुद्ध हो चुकी थी इस कारण उनकी अन्तर्वायु शुद्ध थी और उनकी देह से सदा पद्मगन्ध निकलती रहती थी। सुषुम्ना नाड़ी के भीतर श्वास को चला सकने की क्षमता हो जाने पर देह, वायु तथा चित्त के क्रमशः विशुद्ध होने पर पद्मगन्ध का शरीर से निस्सरण होना प्रारम्भ हो जाता है। बाबा का पसीना तथा मल तक सुगन्धित होता था। क्रिया के समय सारा पूजाघर पद्मगन्ध से भर जाता था।

उनके शरीर में स्वभावतः ही इतनी अधिक तड़ित्-शक्ति क्रिया-तत्पर रहती थी कि बर्रे, ततैया, भ्रमर, मच्छर आदि जीव बाबा के शरीर को काटने पर तत्क्षण निष्प्राण होकर गिर जाते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार एक शिष्य ने प्रश्न किया कि बाबा, योगी के शरीर में और एक साधारण व्यक्ति के शरीर में क्या कुछ भेद होता है ? देखने में तो दोनों एक-से ही लगते हैं।

बाबा ने आसन पर बैठे-बैठे ही अपना हाथ दीवार में घुसा दिया। दीवार दूर थी तथापि बाँह अत्यधिक लम्बी हो गई और हाथ दीवार के उस पार निकल गया।

इसी प्रकार एक बार एक शिष्य विशेष अनुमति से ही बाबा की टाँगें दबा रहा था। अचानक बाबा की टाँगों में से अनेक गोलाकार स्फटिक निकल आए। बाबा ने उठकर उन बड़े स्फटिकों को पुनः रोम-छिद्रों के द्वारा शरीर में घुसा दिया।

नेत्रों का तेज

बाबा के नेत्रों के तेज की तीव्रता इतनी अधिक थी कि उसका अनुमान करना कठिन है। एक बार एक साधु, उस तेज की परीक्षा करने के उद्देश्य से एक कठोर ज्योतिर्मय शिवलिंग बाबा के पास लाया और उसकी बड़ी प्रशंसा की। परन्तु बाबा ने जैसे ही उस शिवलिंग की ओर एकाग्र दृष्टि से ताका वैसे ही वह चूर्ण-विचूर्ण हो गया।

एक और अवसर पर, बाबा ने एक व्यक्ति के कठिन रोग को आकर्षण करके जैसे ही अपने नेत्रों द्वारा बाणलिंग के भीतर भरना चाहा वह बाणलिंग उस तेज को सहन न कर पाने के कारण तुरन्त फट गया।

भोजन

पूज्यपाद बाबा का भोजन दिन में केवल एक बार प्रातः दस बजे भोग-आरती के बाद अति अल्प परिमाण में होता था। किसी विशेष कारणवश यदि वह समय बिना खाये बीत जाता तो उस दिन बाबा कुछ भी नहीं खाते थे। भोजन में प्रायः—चावल, कच्चा पपीता डालकर पकाई मूँग या चने की दाल होती। सब्जी में ओच्छा (अति छोटे करेले), जमीकन्द, काशीफल, बैगन, परवल, निनुआ (तोरई) उन्हें विशेष रूप से पसन्द थे, साथ में कुमारी प्रसाद (कुमारी भोजन के बाद उसकी पत्तल में का थोड़ा सा अंश जिसमें दो-तीन बताशे, दो-एक पके केले के टुकड़े तथा एक रसगुल्ला या चमचम, तथा तनिक-सा गोपालजी के भोग का हलवा)।

निद्रा

बाबा रात्रि में ठीक नौ बजे सो जाते तथा ठीक ग्यारह बजे उठ जाते। उठकर शौच, स्नान आदि से निवृत्त होकर प्रायः साढ़े ग्यारह बजे से लेकर प्रातः साढ़े तीन बजे तक एक ही आसन पर बैठकर क्रिया करते थे। फिर धीरे-धीरे उस उच्च स्तर से अपने आप को सामान्य अवस्था में आने में बाबा को कभी-कभी आधा घण्टा तक लग जाता था।

स्वभाव

बाबा का स्वभाव अभिमानरहित, सरल और बालकों की तरह कोमल था। छल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और कपट का तो नाम ही नहीं था। उनमें अविनय तो था ही नहीं वरन् परिचय जैसे-जैसे घना होता वैसे-वैसे ही उनका प्रेम बजाय घटने के उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। दीन-दुखियों पर उनकी विशेष कृपा रहती थी।

सिद्धियाँ

उनकी सिद्धियों की कोई गिनती नहीं। एक समय पं० गोपीनाथजी कविराज को 'महिमा' सिद्धि की एक प्रणाली समझाते समय उन्होंने अपनी तर्जनी अँगुली को प्रसारित करके इतनी बड़ी और विशाल बना दिया कि अँगुली को पहचानना कठिन हो गया। उनकी अणिमादिक सिद्धियों का प्रदर्शन भी बहुतों ने अनेक अवसरों पर प्रत्यक्ष देखा है। और भी अनेक सिद्धियाँ जैसे—'प्राप्ति', 'आकाश-गमन', 'अन्तर्धान', 'कायव्यूह' आदि भी अनेक शिष्यों ने समय-समय पर प्रत्यक्ष देखी है। इनका वर्णन कई स्थानों पर इस पुस्तक में है।

बाबा वस्तुतः इन सिद्धियों को एक दम तुच्छ तथा नगण्य मानते थे और हम लोगों के सामने, केवल प्रभु में, धर्म में, पूजा में, महाशक्ति की अप्रमेय शक्ति में विश्वास बढ़ाने के लिए ही, आवश्यकतानुसार इनका प्रदर्शन करते थे। इस प्रदर्शन का उन्हें मूल्य भी चुकाना पड़ता था—चाहे विशेष तथा अधिक समय तक क्रिया करके अथवा उचित संख्या में कुमारियों को सादर श्रद्धा सहित भोजन कराकर।

सदाचार तथा शास्त्र निष्ठा

बाबा शास्त्र तथा सदाचार के नितान्त पक्षपाती थे। लोक-हित के लिए वे सामाजिक-व्यवस्था के समर्थक थे तथापि केवल शुष्क आचारमात्र उन्हें वाञ्छित न था।

बाबा कहते—'कर्म किये बिना, केवल ग्रन्थों के अध्ययनमात्र से करोड़ों जन्मों में भी प्राकृत ज्ञान पाना सम्भव नहीं। शास्त्र तो केवल पथ का प्रदर्शनमात्र करता है किन्तु पथ पर चलकर ही। गन्तव्य स्थान पर पहुँचा जाता है—केवल यथार्थ-कर्म द्वारा इसलिए वे सदा इस बात पर ही जोर देते—कर्म करो! कर्म करते चलो!! सदा कर्म में रत रहो॥ अर्थात् 'कर्मभ्यो नमः' क्रिया करते जाओ॥

क्रिया (कर्म) पर जोर

श्री बाबा कहते—"तीव्र पुरुषार्थ द्वारा प्राक्तन कर्म खण्डित किया जा सकता है। पुरुषार्थ का महत्व असीम है। योगाभ्यास ही है मुख्य पुरुषार्थ। सद्गुरु के बताए पथ पर चलते हुए, उनकी दी हुई शक्ति से सम्पन्न होकर नित्य निरन्तर श्रद्धा तथा संयम सहित गुरु-उपदिष्ट योगकर्म का अनुष्ठान करने से चित्त-शुद्धि होने पर ज्ञान का उदय होना अवश्यम्भावी है। ज्ञान से फिर भक्ति और भक्ति से क्रमशः प्रेम उदित होता है। प्रेम की इस अवस्था में हृदय कोमल तथा द्रवित हो उठता है और जगदम्बा के दर्शन के लिए नितान्त उत्सुक हो उठता है। महाशक्ति जगदम्बा को पाने के लिए इस प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम ही एकमात्र साधन है जो कर्म (क्रिया) करते-करते ज्ञान तदुपरान्त भक्ति और तत्पश्चात् प्रेम—इस क्रम से होता है, अतः क्रिया में तैल-धारावत् निरन्तर लगे रहो—कर्मभ्यो नमः। उसी से निर्भरता प्राप्त होगी। सब कुछ समझ सकोगे। क्रिया के द्वारा ही ईश्वर की कृपा प्राप्त की जा सकती है। अरे भाई! प्रभु-कृपा तो निरन्तर बरस रही है पर तुम लोग समझ पाते हो ? स्त्री के पीछे, धन के पीछे और अच्छे भोजन आदि के पीछे तुम भागे फिरते हो। उस समय तो तुम कर्ता होकर पुरुषार्थ करते हो पर जब साधन-भजन की बात आती है तब कहते हो—बाबा कृपा कीजिये।''

एक बार ज्ञानगंज से बाबा के गुरुभाई स्वामी ज्ञानानन्दजी ने बाबा के पास एक पत्र भेजा था जिससे बाबा की योग-सिद्धि के स्तर पर यत्किंचित् प्रकाश पड़ता है। पत्र इस प्रकार है—

''विशुद्धानन्द! तुम तो सब कुछ जानते ही हो। तुम अति श्रेष्ठ हो। तुम अति श्रेष्ठ हो। तुम्हारे जैसे यथार्थ पुरुष का ही संसार में रहना उचित और उत्तम है। महापुरुष दादा गुरुदेव श्रीमद् भृगुराम परमहंसदेव ने तुम्हारे सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह वर्णनातीत है। तुम ही हो यथार्थ भक्त, महापुरुष, योगी, ज्ञानी, गृही और त्यागी तथा असीम सहनशील भी हो।

''दादा गुरुदेव ने एक दिन यहाँ (ज्ञानगंज में) सब योगियों के सम्मुख तुम्हारी योग-सामर्थ्य के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। उन्होंने कहा—''तुम अब भी—उग्र तपस्या करते हो और उसे सब को दिखाया भी था। किन्तु फिर क्षण भर में ही घूमकर देखा तो कुछ भी नहीं दीखा; सब चमत्कारिक ढंग से गायब। देह रोमांचित हो गई। फिर देखा कि जगत् भी लुप्त हो गया। यह क्या खेल है भाई ? यही मैं जानना चाहता हूँ। मुझे जीव के आयु-मान से भी अधिक जीवन प्राप्त हो चुका है। मैंने बहुतेरे हिन्दू, म्लेच्छ, मुसलमान शिष्य अपनाए। बहुत कुछ देखा और बहुत कुछ कर चुका। तुम्हारी जैसी योग-शिक्षा परमाराध्य भृगुराम स्वामी ने मुझे नहीं दी। मैं तुम्हारे पास कुछ दिनों के लिए रहकर तुमसे चात्तर योग और याग-कल्प योग सीखना चाहता हूँ।''

इस पत्र से बाबा की उच्च स्थिति का कुछ-कुछ आभास मिलता है, जो सौ वर्ष से अधिक वयोवृद्ध योगी के द्वारा लिखा गया है। पहले प्रसंगवश उल्लेख हो चुका है कि बाबा की योग में उच्चता को देखकर भृगुराम स्वामी ने अपने गुरु श्रीमहातपा महाराज की अनुज्ञा से आश्रम का सिद्ध बाणलिंग बाबा को प्रदान किया था जो हरिहर बाणलिंग बण्डूलेश्वर के नाम से बण्डूल ग्राम में स्थापित है।

सत्यवादिता

गुरुदेव विशुद्धानन्दजी कभी असत्य नहीं बोलते थे और शिष्यों को भी यही उपदेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देते थे कि किसी भी कारण से सत्य का त्याग मत करो। किन्तु यदि कोई सत्य अप्रिय हो तो ऐसे सत्य को मत बोलो। परन्तु बोलना यदि अनिवार्य ही हो तो सत्य ही बोलो, किसी भी स्थिति में झूठ मत बोलो।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ॥

यह अभ्यास दृढ़ हो जाने पर अर्थात् सत्य में स्थिति हो जाने पर जो कुछ तुम्हारी वाणी से निकलेगा वह ही सत्य होकर रहेगा।

वीतरागता

अपने गुरु महातपा महाराज के आदेशानुसार बाबा ने गृहस्थ जीवन में पदार्पण तो अवश्य किया किन्तु जीवन भर वे लौकिकता तथा मोह से आबद्ध न होकर सदा वीतराग ही रहे। उनके दो पुत्र तथा एक कन्या हुई। बड़े पुत्र का नाम था दुर्गादास तथा छोटे का हरिदास।

बण्डूल में आश्रम स्थापित होने के कुछ ही समय बाद बाबा की धर्मपत्नी का देहान्त हो गया और बाबा के जीवन-काल में ही उनके द्वितीय पुत्र हरिदास तथा कन्या का भी देहान्त हो गया। सन् १९११ ई० में बाबा की माता राजराजेश्वरी देवी का भी देहावसान हो गया।

एक आत्मीय के मरने पर मनुष्य कितनी पीड़ा अनुभव करता है किन्तु बाबा ने पुत्र, पुत्री, पत्नी तथा माता के स्वर्गवास होने के दुःख और सन्ताप को विधि का विधान मानकर बड़े धैर्य्य के साथ सहन किया। उन्होंने अपने मन को असन्तुलित नहीं होने दिया तथा अत्यन्त शान्ति और धैर्य्य के साथ सारी विपत्तियों को सहन करते हुए अपनी वीतरागता का परिचय दिया और यह सिद्ध कर दिखाया कि उन्होंने प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का भेदनकर वह उच्च मनःस्थिति प्राप्त कर ली है जिसमें उनके मन को लौकिक लाभ-हानि प्रभावित नहीं कर सकती। शास्त्र का प्रमाण है ''तरति शोक-मात्मवित्'' अर्थात् जिसने आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, उसे फिर लोक से प्राप्त शोक अभिभूत नहीं कर सकते।

कुछ विशिष्ट उपदेश

१. हम लोग अहंकार में मतवाले होकर सोचते हैं कि हम ही कर्त्ता हैं। हमारी व्यक्तिगत चेष्टा से ही सब कुछ होता है किन्तु यह भ्रान्त धारणा है। जो विराट् शक्ति जगत् के भीतर रहकर सम्पूर्ण जगत् को चालित करती है; जिसके नियन्त्रण में चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, वायु, वरुण आदि सकल पदार्थ अपने-अपने निर्दिष्ट कर्म का यथारीति सम्पादन करते हैं तथा तिलमात्र भी कर्त्तव्य-च्युत होने में समर्थ नहीं होते तथा जिसके मंगलमय विधान से सन्तान-प्रसव से पहले ही माता के स्तनों में दूध की व्यवस्था हो जाती है, उसी विश्व-जननी महाशक्ति के ऊपर निर्भर होने पर जीव को फिर और किसी विषय की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रहती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. नारायण क्या कभी अविचार करते हैं ? उनके राज्य में अविचार कहाँ ? वे जो कुछ भी करते हैं, जीव के मंगल के लिए करते हैं। जीव उनकी महिमा क्या जाने ? जीव जो-जो इच्छा करता है वह उसे मिल जाए तो वह क्या कर डाले, क्या ठिकाना ? उनकी कृपा से उसकी विषयों की सारी कामनाएँ पूरी नहीं होतीं, यही प्रभु का मंगल-विधान है। उनके न देने से मिलने का कोई उपाय भी नहीं।

३. अन्ध जीव तमोगुण के वश होकर अपने को कर्ता समझकर विश्वपति का कौशल भूल जाता है। अहंकार उसकी बुद्धि को कलुषित करके उसके ज्ञान को हर लेता है तथा नश्वर विषयों में सुख का आस्वाद कराकर उसको कुपथगामी कर देता है।

४. मिथ्या का प्राधान्य सामयिक होने से भी चिर-स्थायी नहीं होता। सत्य का आदर चिर दिन होता है।

५. कोई किसी का शत्रु अथवा मित्र नहीं। काल की प्रबल गति से ही इन भावों का उदय होता है।

६. प्रभु जो करते हैं अथवा कराते हैं वही ठीक है। मनुष्य की क्या शक्ति है कि किसी का अच्छा या बुरा कर सके। देखो, जिसको आज घोर विपत्ति समझते हो उसी में परम मंगल निहित है। प्रभु-आज्ञा पर आश्रित रहना सीखो।

७. गुरु-उपदिष्ट क्रिया को यथारीति सम्पादन करते जाओ, सदा मंगल होगा। ईश्वर की कृपा प्राप्त होगी।

८. आत्म-प्रशंसा तथा पर-निन्दा को एकदम छोड़ो। इनमें समय नष्ट मत करो।

९. अहंकार से बचो—यही सब कुछ मिट्टी कर देता है।

१०. भिखारी को खाली हाथ कभी मत लौटाओ। यथासाध्य जितना बन पड़े, उसको दो। कुछ न कुछ, केवल पाँच-दस नये पैसे या बन पड़े तो थोड़ा भोजन या मुट्ठी भर चावल, दाल अवश्य दो, नहीं तो वह तुम्हारा पुण्य लेकर चला जायेगा। इस बात पर गृहस्थ को विशेष ध्यान रखना चाहिए।

११. मन-ही-मन प्रणव मन्त्र का हर समय जप करते रहना चाहिए। जब दुःख अथवा विपत्ति आए तब जप की मात्रा और भी बढ़ा देनी चाहिए।

१२. शारीरिक तथा मानसिक कष्ट द्वारा भी तो हमारे पूर्वकृत पाप ही कटते हैं—इसलिए दुःखी न होकर धैर्य से हारी-बीमारी, हानि-लाभ को सहन करना चाहिए तथा उसको प्रभु की देन समझकर प्रसन्नचित्त रहना चाहिए।

१३. गुरुदेव कहा करते थे—"सहसा किसी का भी विश्वास मत कर लो, नहीं तो ठगे जाओगे।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१४. "इस जगत् का प्रत्येक परमाणु तुम्हारे प्रतिकूल है। अपने एकमात्र मित्र केवल तुम ही हो। अतः तुम स्वयं अपने आपको भूलकर, बाहरी मित्रों की ओर आकर्षित मत होओ। अपने आपको इस जगत् के भीतर मत जकड़ो; जगत् में से अपने बिखरे हुए उपादानों को समेट लो। इतना करते ही तुम्हें अपने पूर्णादर्श घनीभूत इष्ट के दर्शन होंगे। यह है तुम्हारी अतिशय प्रियतम वस्तु, जिसकी खोज में तुम जन्म-जन्मान्तरों से भटक रहे हो। अब इष्ट को पाकर शान्ति-लाभ करो।

श्री श्री बाबा के श्रीचरणों में बस यह करबद्ध प्रार्थना है कि वे हम सबको भगवत्-प्रेम प्रदान करें तथा असत्य से सत्य की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा मृत्यु-राज्य से अमर-धाम की ओर ले चलें।

गुरुदेव तुम्हारी सदा जय हो ।

जय गुरु ! जय गुरु !! जय गुरु !!!

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्दश अध्याय

परमहंसजी के कुछ अद्भुत कार्य तथा घटनाएँ

ज्ञानगंज से, अपने पूज्य गुरुदेव का आदेश मिल जाने पर परमहंस विशुद्धानन्दजी ने शिष्य बनाना आरम्भ किया। कितने ही मुमुक्षु, शान्तिलाभार्थी, रोगाक्रान्त जीव बाबा की शरण में आकर उनसे दीक्षा की प्रार्थना करते। उनकी मनःस्थिति, पूर्वजन्मों के संस्कार आदि का विचार करके, ज्ञानगंज से हर एक के लिए अनुमति लेकर बाबा दीक्षा-प्रार्थियों को यथासमय, यथाविधि दीक्षा देते।

कतिपय शिष्यों के साथ घटी घटनाएँ अद्भुत हैं, उन्हीं में से कुछ का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है :—

१. रायबहादुर गिरीन्द्रचन्द्र मुखर्जी

मुखर्जी महाशय कलकत्ता में पुलिस कप्तान थे। समय आने पर उनके मन में आध्यात्मिक उन्नति की कामना जगी। कुछ काल पहले ही स्वप्न में एक देव-मूर्ति से उन्हें एक गुह्य मन्त्र मिला था। उन्होंने उस स्वप्न में प्रकट हुई देव-मूर्ति के अनुरूप, शिल्पी द्वारा एक धातु-मूर्ति बनवाई और मन में यह संकल्प कर लिया कि जो महात्मा उस स्वप्न में मिल मन्त्र का रहस्य बताएँगे, उन्हें मैं अपना गुरु बनाऊँगा। अनेक महात्माओं का साक्षात्कार किया, किन्तु कोई भी उन्हें इस विषय में सन्तोष न दे सका। इसी क्रम में, बाबा श्री विशुद्धानन्दजी की ख्याति सुनकर वे इनके पास भी पहुँचे।

साक्षात्कार होते ही बाबा बोले—''देखता हूँ, तुमने तो स्वप्न में ही मन्त्र पा लिया है।''

गिरीन्द्र बाबू सहसा कोई बात मान लेने वाले व्यक्ति न थे। फिर बाबाजी ने उन्हें धातु-मूर्ति की बात बताई। इतना ही नहीं, उनके घर जाकर उस सन्दूक को भी दिखा दिया जिसमें मूर्ति रखी हुई थी। अब तो गिरीन्द्र बाबू के मन में विश्वास हो गया और उन्होंने बाबा के चरणों में आत्मसमर्पणकर उनसे दीक्षा ली।

२. डॉक्टर महेन्द्रलाल सरकार

कलकत्ते के अति प्रसिद्ध डॉ० महेन्द्रलाल सरकार एक बार बाबा के दर्शन करने गुष्करा गये। बाबाजी ने बातचीत के बीच उनसे कहा—''मानव-देह में नेत्रों के अतिरिक्त और भी अनेक द्वार हैं, यहाँ तक कि प्रत्येक रोम-कूप भी एक द्वार है। साधारणतः मनुष्यों को तो ये दिखाई नहीं पड़ते किन्तु योगीजन इन्हें देखते हैं और दिखा भी सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डॉक्टर महाशय ने बाबा से यह तथ्य दिखाने का आग्रह किया। उत्सुक भक्तों की भीड़ इकट्ठी हो गयी।

तब बाबा ने कई बड़े-बड़े स्फटिक के दानों को अपने रोम-कूपों की राह से शरीर के भीतर घुसा दिया। तदनन्तर चारों ओर से दबाकर उनको फिर चमड़ी से बाहर निकाल दिया। डॉक्टर साहब अवाक् होकर आँखें फाड़कर यह सब देखते रहे।

तत्पश्चात् बाबा ने एक कपड़ा लिया। उसको घी में डुबोया। उसे उन्होंने मुँह की राह भीतर ले जाकर नाभि-मार्ग से बाहर निकाल दिया। सारे भक्तगण तथा डॉक्टर साहब इसको चकित दृष्टि से देखते रहे।

डॉक्टर साहब ने तब कहा—"स्वामीजी! हम वैज्ञानिकों का देह-तत्त्व का ज्ञान कितना अधूरा है, इसे आज आपने सब के सामने प्रत्यक्ष दिखा दिया।"

३. डॉ० चन्द्रशेखर काली

एक बार डॉ० चन्द्रशेखर काली श्री अक्षयकुमार दत्त गुप्त के साथ बाबा के पास आए। उन्होंने सुन रखा था कि बाबा सूर्य-विज्ञान द्वारा परमाणुओं को रूपान्तरित करके हीरा, मूँगा, मोती आदि रत्न प्रस्तुत कर देते हैं। इसे प्रत्यक्ष दिखाने का उन्होंने बाबा से आग्रह किया।

बाबा ने लेन्स मँगाया और एक रूई के फाहे पर लेन्स द्वारा सूर्य की निर्दिष्ट किरणों को प्रतिफलित करके मूँगा प्रस्तुत कर दिया।

तत्क्षण इस क्रिया-प्रदर्शन के अवसर पर अक्षय बाबू के मन में सन्देह उठा कि इसमें बाबाजी की कोई 'हाथ-की-सफाई' तो नहीं है और उन्होंने तुरन्त ही उठकर बाबाजी का हाथ पकड़ लिया। उनके सन्देह और चापल्य को देखकर बाबा ने उनके गाल पर एक चपत लगाते हुए कहा—'अब देख लो मेरे हाथ में कुछ भी नहीं था'—क्योंकि चपत लगाते समय हाथ को तो खोलना पड़ता है।

इसके बाद बाबा ने अपने आसन के कम्बल से थोड़ी ऊन नोच ली और उसे थोड़ी देर मुट्ठी में बन्द रखकर एक लाल मूँगा प्रस्तुत कर दिया।

इतने पर भी अक्षय बाबू को हस्त-कौशल की शंका में ही लीन देखकर उनके सन्देह-निवारण की दृष्टि से बाबा ने अपनी नाभि को फाड़कर उसमें अपने तकिये (मसनद) का आधा भाग घुसा दिया। इस अमानुषिक कृत्य को देखकर अक्षय बाबू तो भय से मूर्छितप्राय हो गए और उनका सन्देह एक दम जाता रहा।

इसी प्रकार थोड़ी-सी रुई लेकर उस पर लेन्स द्वारा सूर्य की उचित किरणों को संकेन्द्रित करके बाबा ने हीरा बनाकर दिखाया। फिर हीरा और दोनों मूँगों को बाबा ने नदी की धारा में फेंकवा दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक भक्त बोला—'बाबा इन्हें फेंकते क्यों हैं ?'

बाबा ने उत्तर दिया—"साधु को रत्नों से क्या काम ? उसके सामने इनका कोई मूल्य नहीं।"

४. एक संन्यासी का अभिमान-मोचन

एक बार परमहंसजी शान्तिपुर-निवासी अपने शिष्य गिरीन्द्रचन्द मुखर्जी के घर पर विराजमान थे। उसी समय अकस्मात् एक संन्यासी वहाँ पधारे। उनके पास एक सुन्दर ज्योतिर्मय शिवलिंग था। कोई भी साधक उस पर अधिक समय तक निर्निमेष दृष्टि टिका नहीं सकता था। संन्यासी महाशय हर नव-परिचित साधक के हाथ में उसे देकर उसकी शक्ति की परीक्षा का आनन्द लिया करते थे। स्वभावतः उन्होंने विशुद्धानन्दजी की शक्ति-परीक्षा भी लेनी चाही और शिवलिंग उनके सामने प्रस्तुत किया। बाबा ने उसका मनोभाव ताड़ लिया। दो-तीन बार उस शिवलिंग को अपने हाथ में डुलाने के पश्चात् बाबा ने उस पर अपनी स्थिर दृष्टि जमा दी। कुछ ही क्षणों में उस ज्योतिर्मय शिवलिंग के टुकड़े-टुकड़े धरती पर बिखर गये।

यह देख संन्यासीजी हतप्रभ हो गए। उनकी आँखों से आँसू बह निकले।

श्री बाबा उसे दुखी देखकर उससे कहने लगे—"क्यों बाबा, इसके टूटने पर रोने की क्या आवश्यकता ? क्या कोई दूसरा शिवलिंग नहीं मिल सकता ?"

खिन्न भाव से संन्यासी बोला—"बाबा! असल में शिवलिंग मैंने एक दूसरे व्यक्ति से लिया था। यह मेरा नहीं है। इसके टूट जाने से मैं बड़ी आफत में फँस गया।"

बाबा बोले—"बच्चा, तुम इतने अधीर मत होओ। जो इस वस्तु को तोड़ सका वह इसके जोड़ने की क्षमता भी रखता है। किन्तु यह तो बताओ कि तुम यह काम करने यहाँ आये ही क्यों ? यह जान रखो कि जिस साधक की शक्ति की परीक्षा करने चले, यदि उसके हृदय में क्षमा-भावना कुछ कम रही तो तुम्हारा भयंकर अनिष्ट हो सकता है। ऐसा काम आगे कभी मत करना।"

तत्पश्चात्, इधर-उधर बिखरे टुकड़ों को समेटकर उन्हें अंजलि में लेकर बाबा ने कई बार उन्हें शून्य में झकझोरा। और देखा गया कि अंजलि में वह खण्ड-खण्ड हुआ शिवलिंग पुनः अपने पूर्व ज्योतिर्मय रूप में आ गया है। सब लोग यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये।

बाबा नें उसे संन्यासी को दे दिया। उसके हर्ष का तो मानों वारापार ही न रहा। सादर प्रणाम करके वह अपने गन्तव्य स्थान को चला गया।

५. एक चरित्रहीन का सुधार

एक बार एक चरित्रहीन व्यक्ति ने सौभाग्यवश बाबा की कृपा प्राप्त कर ली और थोड़े समय बाद दीक्षा भी ले ली। वह विवाहित था किन्तु एक दुराचारिणी स्त्री के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ उसकी प्रेम-लीला बहुत दिनों से चली आ रही थी। दीक्षा के बाद वह अपने दाम्पत्य जीवन की पवित्रता की रक्षा करने के लिए प्रयत्नशील हुआ। पर वह कुलटा स्त्री उसे सहज ही छोड़ देने को तैयार न थी और बार-बार उसको बहकाने में लगी रहती थी। आखिर, शिष्य ने दुःखी होकर एक दिन यह दृढ़ संकल्प किया कि मैं छिपकर उसके पास जाकर उससे साफ कह दूँगा कि अब हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध सदा के लिए समाप्त हो गया और उसके बहकावे में अब किसी हालत में भी नहीं आऊँगा।

एक दिन आधी रात को उसे यह सुअवसर हाथ लगा, जब उसकी स्त्री बेसुध सो रही थी। वह चुपचाप द्वार खोलकर बाहर निकल चलने को प्रस्तुत हुआ ही था कि उसकी स्त्री ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—"छिः छिः! तुम्हें लाज नहीं आती ? फिर उस कुलटा स्त्री के पास जा रहे हो!"

चकित होकर पति ने पूछा—"अच्छा, पहले तो सच-सच यह बताओ कि यह तुमने कैसे समझ लिया कि मैं वहाँ जा रहा हूँ और तुम्हारी ऐसी गाढ़ी निद्रा अचानक ही टूटी कैसे ?"

स्त्री बोली—"अच्छा तो सुनो यह अचरज की बात। बाबा गुरुदेव ने आकर धक्का देकर मुझे जगा दिया और कहा—'अरी उठ, तू तो मजे में पड़ी सो रही है और देख तेरा स्वामी घर से निकलकर फिर उसी भ्रष्टा स्त्री के पास जा रहा है'।"

उस समय बाबा विशुद्धानन्दजी इस घटना-स्थल से बहुत दूरी पर थे—सैकड़ों मील दूर। इस गहरी रात में भी उनका शिष्य क्या कर रहा है, उनको ज्ञात था।

इस प्रकार यह शक्ति-सम्पन्न महान् योगी अपने शिष्यों की प्रत्येक क्रिया पर हर समय सचेत दृष्टि रखते थे और पग-पग पर उनको सावधान करके बुरे मार्ग से सन्मार्ग पर लाते थे—ऐसे कृपालु, शक्तिशाली तथा सिद्ध-पुरुष थे गुरुदेव।

६. नेपाल के एक राणा की गाथा

बाबा में कृपा के साथ-साथ प्रत्युपकार की भावना भी भरी हुई थी। यदि कोई व्यक्ति, निष्काम भाव से उनकी थोड़ी-सी भी सेवा कर देता, तो वे उसके प्रत्युपकार में तनिक भी शिथिलता तथा कृपणता नहीं दिखलाते थे।

श्री श्री बाबा उस समय कलकत्ते में निवास कर रहे थे। नेपाल के एक राणा उनका पता लगाते-लगाते कलकत्ते में उनके पास आ उपस्थित हुए। कमरे में प्रवेश करते ही उन्होंने बाबा के सामने एक जटाजूट-धारी साधु महात्मा का चित्र रख दिया।

उसे देखते ही बाबा बोले—"हाँ! मुझे सब याद आ गया। अब मेरे पास आने का अपना उद्देश्य बताओ।

अपने साथ की कन्या की ओर संकेत करके राणा बोले—"बाबा! यह कन्या मुझे सबसे प्यारी है। वर्षों से इसे मस्तिष्क-रोग हो गया है। औषधि चिकित्सा तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपचार तो बहुत किये किन्तु सब निष्फल। डॉक्टर लोगों का अन्तिम निर्णय यह है कि यह रोग ठीक नहीं हो सकता। तो क्या मेरी कन्या का जीवन व्यर्थ हो जाएगा और मुझे भी इस दुःख तथा सन्ताप से शान्ति नहीं मिलेगी ? आप कृपा करके इसका रोग-निवारण कर दीजिए और मेरे कष्ट को दूर करिए।"

श्री बाबा ने प्रसन्न मुद्रा से उस कन्या को अपने निकट बुलाया और कुछ क्षणों तक उसका सिर अपने हाथ में पकड़े रहे। उसके बाद बोले—"माँ, तुम्हारा रोग अब बिल्कुल दूर हो गया। अब यह रोग पुनः कभी नहीं होगा।" पीछे देखा गया कि लड़की का वह असाध्य रोग सदा के लिए मिट गया था।

राणा के चले जाने के पश्चात् बाबा ने पुरानी बात सुनाई। वे बोले—

"बहुत वर्ष पहले, संन्यासी अवस्था में एक बार मैं नेपाल गया था और एक घने जंगल में आसन जगाकर बैठ गया। उसी समय यह राणा अपने नौकर-चौकरों के साथ उधर से निकला। मेरे सामने आकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"बाबा, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ? कृपाकर आज्ञा दें।"

मैंने कहा— 'बेटा! तुम्हारी इच्छा ही है तो यहाँ धूनी के लिए थोड़ी सी लकड़ियों की व्यवस्था कर दो।"

राणा साहब ने तुरन्त उत्साहसहित अपने सेवकों द्वारा प्रचुर मात्रा में लकड़ियाँ एकत्र करवा दीं। फिर समय-समय पर वह मेरे पास आने लगा। कथा-वार्ता भी होने लगी। अनुमति माँगकर कुछ समय बाद उसने मेरी एक फोटो भी ली और उसी समय के चित्र को यह अपने साथ लाए थे जो मुझे दिखाया था।

उसकी श्रद्धा-भक्ति को देखकर मैंने वचन दिया था कि कोई संकट पड़ने पर उसके निवारण के लिए मेरे पास चले आना। प्रचुर चिकित्सा कराने पर भी जब उसकी पुत्री की मानसिक व्यथा दूर नहीं हुई और डॉक्टरों ने रोग को असाध्य घोषित कर दिया तब और कोई चारा न देख, निराश होकर अन्त में वह मेरे पास आया। मुझे सन्तोष है कि उसके उपकार का बदला चुका सका।

ऐसी थी बाबा की प्रत्युपकार की विशुद्ध भावना। दयालु हों, साधु हों तो ऐसे हों।

विभूति-प्रदर्शन का उद्देश्य

श्री श्री बाबा की विभूतियाँ अनन्त हैं। उनके जीवन-काल के शिष्यों तथा भक्तों ने समय-समय पर, भिन्न-भिन्न स्थानों तथा परिस्थितियों में अनेक प्रकार तथा रूपों में इन विभूतियों को प्रत्यक्ष देखा तथा अनुभव किया ही है किन्तु चौदह जुलाई सन् उन्नीस-सौ सैंतीस (१७ जुलाई, १९३७) को देहावसान के बाद भी अभी तक अनेक शिष्य तथा भक्तगण उनकी विभूतियों तथा कृपाओं का अनुभव कर रहे हैं। ठीक ही कहा है कि गुरु सदा जीवित रहते हैं और देहावसान के बाद भी भक्तों के कल्याण में नित्य निरन्तर निरत रहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक प्रश्न के उत्तर में बाबा ने कहा था—"विभूति-प्रदर्शन का मेरा यह उद्देश्य कदापि नहीं कि मैं अपने प्रति तुम लोगों की श्रद्धा को जाग्रत् करूँ या अपने ऐश्वर्य की तुम लोगों पर धाक जमाकर अपनी प्रशंसा करवाऊँ। मेरा उद्देश्य केवल इतना है कि इन्हें देखकर शिष्य तथा भक्तगण महाशक्ति में, ईश्वर में, देवी-देवताओं में, धर्म में, मन्दिरों में, प्रभु-चर्चा में, सन्त-साधुओं में, इन्द्रियों से अजित जगत् के सम्बन्ध में प्रेरणा प्राप्त करें। उनकी श्रद्धा तथा विश्वास बढ़े और वे सन्मार्ग पर चलें और पूजा-क्रिया में दृढ़ता से लगें।

एक अवसर पर बाबा ने कहा था कि—"वास्तव में विभूतियों का प्रदर्शन अपराध है।"

शिष्य बोला—"बाबा, आपको अपराध किस बात का ?"

बाबा बोले—"जो लोग विशुद्ध वस्तु देखने के अधिकारी नहीं उन्हें वह वस्तु दिखाना अपराध नहीं तो और क्या है ? हाथी के बोझ को बकरी पर लाद देना तो अपराध ही है।"

प्रश्न—"तो बाबा! इस अपराध का प्रायश्चित्त क्या है ?"

बाबा ने उत्तर दिया—'कुमारी-भोजन।'

कुमारी-भोजन

आरम्भ काल को छोड़कर, पीछे-पीछे तो, विभूति-प्रदर्शन से पहले बाबा दर्शनार्थियों से, विभूति की गुरुता के अनुसार, निर्दिष्ट संख्या में कुमारियों के भोजन के लिए व्यवस्था तथा द्रव्य का संकल्प करा लेते थे और इस विषय में समुचित कड़ाई बरतते थे।

वे कहते—"कुमारियों में महाशक्ति की भावना होती है, देखो, कुमारियों को खिलाने का प्रयोजन मेरे लिए है—अनधिकारियों को विभूति दिखाने का प्रायश्चित्त। जब मैं विभूति दिखाता हूँ तब मेरे शरीर में ताप उत्पन्न होता है। उस ताप की शान्ति के लिए मैं कुमारी-भोजन का आयोजन करवाता हूँ।

तुम लोगों के लिए भी कुमारी-भोजन कराना बड़ा श्रेयस्कर है। एक ब्राह्मण कुमारी प्रतिदिन भोजन करे तो बहुत उत्तम; अन्यथा हर सोमवार अथवा प्रति पूर्णिमा तथा पर्वों पर जैसे नवरात्र में विशेषकर सप्तमी, अष्टमी, नवमी को, अथवा शिवरात्रि अथवा कृष्ण जन्माष्टमी, गणेशचतुर्दशी आदि को कुमारी-भोजन कराना श्रेयस्कर है।

अपनी शक्ति और श्रद्धा के अनुसार भोजन करावें। कुमारियों की संख्या १, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १६, १७ तक उत्तम मानी गई है। कुमारी ब्राह्मण हो तथा ५ से १२ वर्ष तक की हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुमारी-भोजन फल तथा खोवे की मिठाई का भी हो सकता है, अन्यथा पूरी, तरकारियाँ, दाल, दही, रायता, मिठाई (रसगुल्ले, सन्देश, पेड़े, मीठी बूँदी) का। वह ब्राह्मण द्वारा शुद्धतापूर्वक पकाया होना चाहिए। प्याज, लहसुन, अण्डे का सर्वथा निषेध है।

भोजन बारह बजे से पहले, जहाँ तक हो सके, ग्यारह बजे के भीतर-भीतर ही करा देना चाहिए।

भोजन-स्थान को धोकर शुद्ध आसन बिछा, कुमारियों के चरण धोकर, उनमें महाशक्ति की भावना रखकर उनको सप्रेम तथा श्रद्धासहित भोज्य पदार्थों से सन्तुष्ट करना चाहिए।

भोजनोपरान्त प्रतिकुमारी को एक पान, एक चवन्नी तथा हो सके तो एक धोती दें, तथा सादर प्रणाम करके विदा करना चाहिए। आजकल के युग में कुमारी-भोजन सबसे महान् फलदायक यज्ञ है जिससे सब प्रकारके दु:ख, रोग, कष्ट तथा आपत्तियों का निवारण होता है तथा सकल मनोरथों के सफल होने में यथेष्ट सहायता मिलती है।

आश्रम में नियम से एक कुमारी को प्रातः सात बजे फल तथा मिष्ठान्न का भोजन कराया जाता है। यह नियम बाबा के समय से ही चला आता है। उसकी खाई पत्तल से किंचित् प्रसाद निकालकर परमहंसजी को भोजन के समय पहले दिया जाता था। भोजन के समय आश्रम के सब लोगों को भी इसी प्रकार तनिक-तनिक कुमारी-प्रसाद दिया जाता है, तदुपरान्त अन्य भोज्य पदार्थ का कौर लेते हैं। कुमारी सेवा, बाबा की दृष्टि में केवल आचारमात्र नहीं, उनकी दृष्टि से कुमारी साक्षात् जगज्जननी की प्रतीक है। एक दिन इस विषय में चर्चा चलने पर उन्होंने कहा था—'स्वयं जगदम्बा के अतिरिक्त संसार में दूसरी कौन कुमारी है रे बच्चा!—अर्थात् निस्संगा, अद्वितीया आदिशक्ति ही प्रकृति कुमारी है।

कुमारियों में परमहंस श्री विशुद्धानन्दजी अपनी आराध्या महाशक्ति की प्रतिमूर्ति देखते थे। वे शक्तिमान् योगी को भक्ति-साधक से अधिक महत्व देते थे। तैलंग स्वामी, रामदास कठिया बाबा, श्यामाचरण लाहिड़ी, लोकनाथ ब्रह्मचारी, गम्भीरनाथ आदि महापुरुषों को वे यथार्थ योगी मानते थे और उनके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करते थे। देह-त्याग के समय उन्होंने अवश्य 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे'—महामन्त्र को उच्च ध्वनि से गाने को कहा था।

वे कहा करते थे—"कर्म का भोग सभी जीवों—कीट-पतंग, पशु-पक्षी, जड़-चेतन; मनुष्य, देव, दनुज-दानव—के लिए अनिवार्य है। हाँ, जैसे पिता पुत्र के ऋण को चुका सकता है और पुत्रादि पिता के ऋण को, उसी प्रकार गुरु शिष्य के कर्मभोग को अपने ऊपर लेकर शिष्य के ऋण-रूपी कष्ट या रोग को भोगकर शिष्य का उस भोग और कष्ट से त्राण कर सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस नियम के अनुसार कृपालु करुणामय बाबा अनेक बार शिष्यों की आर्त प्रार्थना सुनकर उनके कष्ट और रोग अपने ऊपर लेकर उनको भोगते थे। यहाँ तक कि अनेक शिष्यों के रोगों को अपने ऊपर लेकर रोग-शय्या पर पड़े-पड़े भी, एक शिष्य की माता के आर्त्तनाद को सुनकर जिसका पुत्र मारक रोग की असह्य पीड़ा से कातर होकर रो रहा था, बाबा ने उसका मारक रोग भी अपने ऊपर ले लिया था। तब तो बच गये किन्तु गुरुदेव ने बँगला संवत् १३४४ के आषाढ़ मास की २७वीं तिथि तदनुसार १४ जुलाई सन् १९३७ को अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

सबेरे का समय था, उस दिन उन्होंने उपस्थित शिष्यगण को अपने पास बुलाकर उन्हें 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' महामन्त्र का उच्च ध्वनि के साथ कीर्त्तन करने का आदेश दिया था।

सारा घर कीर्त्तन-ध्वनि से परिपूर्ण हो उठा। बाबा स्वयं भी कीर्त्तन में योगदान दे रहे थे। दिन भर यही ध्वनि चलती रही।

बाबा विभूतिसम्पन्न योगी थे। अन्तकाल में प्रेम का छिपा हुआ ज्वार सहसा हृदय के गह्वर से बाहर निकल पड़ा। सारे शिष्य और भक्तगण इस आकस्मिक भक्त-रूप को देखकर विस्मित रह गये।

परम पुनीत तारक ब्रह्म के नामोच्चारण के बीच सन्ध्या-वेला में बाबा ने अपनी दैहिक लीला का संवरण किया। उस समय उनकी आयु इक्यासी वर्ष की थी।

देहावसान का समाचार बिजली की तरह सारे कलकत्ते में फैल गया और चारों ओर से शिष्यों तथा श्रद्धालु भक्तों की अपार भीड़ देखते-ही-देखते ६, कुण्डू रोड, भवानीपुर स्थित विशुद्धाश्रम में इकट्ठी हो गई। पुष्प तथा पुष्प-मालाओं से बाबा की अर्थी लद गई और घण्टें, शंख-ध्वनि तथा तारक मन्त्र के घोष के साथ हजारों की भीड़ अर्थी लेकर कियातला घाट की ओर चल पड़ी जहाँ बाबा का अन्तिम दाह-संस्कार सहस्त्रों अश्रुपूरित आँखों के सामने हुआ। कियातला में बाबा की समाधि बनी है।

हे दयालु गुरु, इसके साथ ही आपके पवित्र जीवन-चरित की गाथा समाप्त होती है। प्रार्थना अब यही है कि आप, सदा की भाँति कृपा करके हम सबको भगवत्प्रेम प्रदान करें। असत्य से सत्य की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा मृत्यु-राज्य से अमर-धाम को ओर ले चलें—यही आपके श्रीचरणों में हम सबकी विनीत और भक्तिपूर्ण प्रार्थना है।

जय गुरु ! जय गुरु !! जय गुरु !!!

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट-१

ज्ञानगंज योगाश्रम

भारतवर्ष के उत्तर में, हिमालय पहाड़ की गोद में बसे, तिब्बत के भूभाग में, लगभग पाँच कोस के घेरे में, यह ज्ञानगंज योगाश्रम बसा हुआ है। इसका प्राचीन नाम— 'इन्द्रभवन' था। अव्यवस्था के कारण मध्यकाल में यह अपना अस्तित्व खो चुका था। महर्षि महातपा के एक प्रमुख शिष्य स्वामी ज्ञानानन्द परमहंस द्वारा इस अनादि आश्रम का पुनरुद्धार हुआ। उन्हीं की सुव्यवस्था और संरक्षण में आश्रम ज्ञानगंज के नाम से पुनः व्यवस्थित रूप में चलने लगा। यह पुनरुद्धार का कार्य आज से छह सौ वर्ष (६०० वर्ष) पूर्व हुआ था।

यह एक लोकोत्तर साधना-स्थली है, जहाँ के योगी, परमहंस और भैरवियाँ त्रिकालदर्शी, 'अहं ब्रह्मास्मि' की सम्बोधि प्राप्त करके, स्वराज्य में विचरण करते हैं। इस आश्रम की लोकोत्तरता का उल्लेख योगिराज श्री विशुद्धानन्द परमहंस ने अपने शिष्यों के बीच बहुत बार किया था और वहाँ स्थित योगियों की योग-विभूति का यत्किंचित् परिचय भी समय-समय पर दिया था। यहाँ हम उन महान् योगीश्वरों का संक्षिप्त परिचय दे देना यथेष्ट तथा आवश्यक समझते हैं।

महर्षि महातपा

परमहंस विशुद्धानन्दजी के कथनानुसार, महर्षि महातपा की आयु लगभग चौदह सौ (१४०० वर्ष) वर्ष से अधिक है। इनका शरीर भौतिक आवश्यकताओं से मुक्त तथा दिव्य हो चुका है और स्थिति देश-काल से अतीत हो चुकी है। ये किसी भी लोक में अबाध गति से इच्छानुसार जा सकते हैं। योगाश्रम में रहनेवाले शिष्यों में से प्रधान जिनकी आयु सौ वर्ष से अधिक है वे हैं :— श्रीमत् भृगुराम परमहंस, निमानन्द, परमहंस श्यामानन्द तथा परमहंस ज्ञानानन्द।

महर्षि महातपा स्वयं ज्ञानगंज योगाश्रम में निवास नहीं करते। वे तिब्बत के पहाड़ों की एक गुफा में प्रायः रहते हैं। उस गुफा में राजराजेश्वरी देवी की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। देवी के नाम से ही उस स्थान का नाम 'राजेश्वरी मठ' पड़ गया है। वहाँ कोई घर-द्वार नहीं है और जो योगीश्वर वहाँ रहते हैं वे घर-द्वार के बन्धन से मुक्त हो चुके हैं। हिमालय के उस अंचल में ज्ञानगंज योगाश्रम की भाँति अनेक मठ हैं जो सब राजेश्वरी देवी के शासनाधीन हैं। महर्षि महातपा का नित्यनिवास किसी मठ में नहीं है। वे कभी-कभी ज्ञानगंज योगाश्रम में आते हैं तथा कभी-कभी अपनी गुरुमाता क्षेपा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माई के दर्शन करने 'मनोहर तीर्थ' जाया करते हैं। वे नित्य भावमग्र स्थिति में रहते हैं। स्वभाव अधिक बात करने का उनका नहीं है।

परमहंस निमानन्द ने भोलानाथ और हरिपदो, दोनों बालकों को नौ-दस दिन तक ज्ञानगंज योगाश्रम में रखा। उसके बाद दोनों को अपने गुरुवर्य महर्षि महातपा के चरणों में उपस्थित किया। महर्षि ने शिरःस्पर्शपूर्वक शक्ति-संचार करके दोनों को बीज मन्त्र प्रदान किया—अर्थात् दीक्षा दी और अपना शिष्य बना लिया। इस प्रकार से ये अब परमहंस निमानन्द के गुरुभाई बन गए।

श्रीयुत भृगुराम परमहंसदेव

महर्षि महातपा के प्रमुख शिष्यों में, योग के विषय में, श्री भृगुरामजी परमहंसदेव सब में प्रधान हैं। वहाँ के सभी सिद्ध योगियों में ये अद्वितीय हैं। आश्रम में ये योग के सर्व-प्रधानाचार्य हैं। परमहंस विशुद्धानन्दजी को भी योग की शिक्षा इन्हीं से मिली थी। उस पर्वत-प्रान्त में, राजेश्वरी के शासनाधीन जितने मठ हैं, उनके प्रधान अधिष्ठाता भृगुरामजी ही हैं। उन सबके निरीक्षण, नियमन तथा परीक्षण का सारा दायित्व इन्हीं पर है। ये आर्तजनों के मन की पुकार को तुरन्त सुन लेते हैं और तत्क्षण वहाँ उपस्थित हो जाने की क्षमता रखते हैं।

स्वामी विशुद्धानन्दजी, अपने विवाह के पश्चात् पत्नी से दूर-दूर रहते थे। यह जानकर उनकी माता को वंश-वृद्धि के रुक जाने की चिन्ता उत्पन्न हो गई। उन्होंने अत्यन्त दुःख की स्थिति में आर्त्त होकर श्री भृगुरामजी का स्मरण किया। भृगुरामजी तत्क्षण उनके सामने उपस्थित हो गए। माँ की दुःख-गाथा सुनकर उन्होंने विशुद्धानन्दजी से कारण पूछा। विशुद्धानन्दजी बोले—"मैंने योग-ज्योतिष द्वारा देखा है कि मेरी पत्नी पिछले जन्म में नीच कुल में जन्मी थी इसी कारण मैं उससे दूर रहता हूँ।"

भृगुरामजी बोले, "विशुद्धानन्द! एक व्यक्ति ऊँची जाति में जन्म लेकर, साधना द्वारा और भी उन्नत हो गया और एक दूसरे ने पिछले जन्म में नीची जाति में जन्म लेने पर भी इस जन्म में उच्च वर्ण अपनाकर तुम्हारे समान पति प्राप्त किया है—बोलो तो दोनों में किसका संस्कार महान् है ?" यह कहकर भृगुरामजी शान्त भाव से मुस्कराने लगे। विशुद्धानन्दजी से इसका कोई उत्तर न बन पड़ा और वे वैसे ही मौन खड़े रहे। तत्पश्चात्, दादा गुरुदेव श्री भृगुरामजी ने माता से कहा—"आप अब चिन्ता न करें, सब ठीक हो जाएगा। फिर भी यदि कोई चिन्ता का कारण उपस्थित हो, तो स्मरण करते ही मैं आकर उसे दूर करूँगा।" यह कहकर वे अन्तर्धान हो गए।

इस घटना से स्पष्ट सिद्ध है कि भक्तों के अन्तर्मन तक भृगुरामजी की दृष्टि की गति अबाध्य तथा अरोक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे आकाशमार्ग से ही यातायात करते हैं। उनके पैर धरती को नहीं छूते। इस पृथ्वी पर वे ही एकमात्र ऐसे योगी हैं जो सूर्यलोक तक जाते हैं। उनका शरीर पंच-भौतिक और षट्कोशात्मक नहीं है, सिद्ध दिव्य देह है।

श्रीयुत परमहंस नित्यानन्दजी

भोलानाथ (श्री विशुद्धानन्द परमहंस) के बाल्य जीवन के प्रसंग में इन महात्मा के कर्तृत्व का विस्तृत उल्लेख हो चुका है। इन्हीं महापुरुष की दिव्य दृष्टि ने भोलानाथ के भविष्य को पहचानकर उनके परमहंस-पद पाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। पागल कुत्ते के विष से दुःखी होकर जब भोलानाथ हुगली में डूब मरने के विचार से गंगा-तट पर आये थे,वहाँ इन्हीं महात्मा ने उसके प्राण बचाए थे। फिर दो वर्ष बाद जब भोलानाथ और हरिपदो बर्दवान से ढाका जाकर इनसे मिले और योग-मार्ग में अग्रसर होने की इच्छा प्रकट की तो ये ही उनको अपने साथ ज्ञानगंज लाये थे। ये वहाँ के सिद्धि-प्राप्त प्रमुख योगियों और महर्षि महातपा के स्नेहपात्र शिष्यों में से एक हैं।

परमहंस श्यामानन्दजी

श्रीयुत श्यामानन्दजी परमहंस ज्ञानगंज योगाश्रम के विज्ञान विभाग के प्रधानाचार्य हैं। ये वहाँ के योगियों को चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान तथा सूर्य-विज्ञान आदि की शिक्षा प्रदान करते हैं। इन सभी विज्ञानों में सूर्य-विज्ञान का स्थान सर्वोपरि है। उससे अवगत होने के बाद बाकी विज्ञानों का ज्ञान प्राप्त करना सुगम हो जाता है।

सूर्य-विज्ञान का सम्यक् अध्ययन इन्हीं के श्री-चरणों में बैठकर विशुद्धानन्दजी ने किया था। स्वामी विशुद्धानन्दजी ने ही इस पृथ्वी पर सूर्य-विज्ञान के विषय में पहली बार कुछ प्रकाश डाला। इनसे पहले तो इस लोक में किसी को सूर्य-विज्ञान का नाम तक विदित न था। योग के साथ इस विज्ञान का निकटतम सम्बन्ध है। जो योग का पूर्ण ज्ञाता होता है वही सूर्य-विज्ञान का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है। परमहंस श्यामानन्दजी के उक्त विषय पर इस बात से ही किंचित् प्रकाश पड़ जाता है।

श्रीमद् ज्ञानानन्द परमहंस

पहले कहा जा चुका है कि ज्ञानानन्दजी महर्षि महातपा के अति प्रमुख शिष्य थे। इन्हीं के उद्योग से अति प्राचीन समय के 'इन्द्रभवन योगाश्रम' का पुनरुद्धार, आज से प्रायः सात सौ वर्ष पूर्व, 'ज्ञानगंज योगाश्रम' के नाम से हुआ। इस पुनरुद्धार से पहले श्रीयुत ज्ञानानन्दजी की आयु सौ वर्ष से अधिक रही होगी क्योंकि परमहंस-पद की प्राप्ति के बाद ही उन्होंने 'इन्द्र भवन' को नूतन-स्वरूप 'ज्ञानगंज' के नाम से प्रदान क़िया होगा। इस प्रकार से उनकी आयु अब आठ-सौ वर्ष अधिक ही होगी। परमहंस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानानन्दजी ही ज्ञानगंज योगाश्रम के मुख्य अधिष्ठाता हैं। वे एक अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न महान् योगी हैं।

ज्ञानगंज योगाश्रम

कतिपय आधुनिक विद्वानों के मन में यह सन्देह उठना स्वाभाविक है कि संस्कृत शब्द 'ज्ञान' के साथ फारसी का शब्द 'गंज' कैसे जुड़ गया। वस्तुतः 'गंज' शब्द मूलतः संस्कृत है जो भारत से ही फारस पहुँचा था। 'गंज' शब्द 'गजि' नामक भ्वादिगणीय धातु से 'ञ्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ। तो 'गंज' का अर्थ हुआ—'रत्नों का भण्डार'। इस प्रकार इस समस्त पद 'ज्ञानगंज' का अर्थ हुआ—'अनेक प्रकार के ज्ञान का भण्डार'। और इस अर्थ पर दृष्टि रखते हुए ही श्रीमद् ज्ञानानन्द परमहंसदेव ने इस योगाश्रम को नाम दिया—'ज्ञानगंज योगाश्रम'।

यह विशाल योगाश्रम तिब्बत के मध्य चारों ओर पर्वत-श्रेणियों से घिरा, लगभग पाँच कोस के घेरे में बसा हुआ है। आश्रम के चारों ओर परकोटे का वेष्टन है। परकोटे के सहारे-सहारे चारों ओर जलपूर्ण खाई है। उस पर यातायात के लिए एक सुन्दर धनुषाकार पुल बना हुआ है।

आश्रम का प्रत्येक स्तर शिक्षाक्रम के अनुरूप सुसज्जित है। आश्रम में 'योग' और 'विज्ञान' की शिक्षा की व्यवस्था चमत्कारपूर्ण है। 'योग' और 'विज्ञान' के विभाग स्वतन्त्र हैं। योग-विभाग श्रीमद् भृगुरामजी परमहंसदेव के अधीन है तथा विज्ञान-विभाग के प्रधानाचार्य हैं श्रीमत् श्यामानन्दजी परमहंसदेव। आश्रम के प्रमुख अधिष्ठाता हैं श्रीमद् ज्ञानानन्दजी परमहंसदेव।

इस विशाल आश्रम में सहस्रों की संख्या में साधक तथा सिद्ध स्त्री और पुरुष रहते हैं। यहाँ के निवासियों को, उनके साधना-क्रम के अनुसार मुख्यतः चार श्रेणियों में रखा जाता है जो इस प्रकार हैं :—

१. ब्रह्मचारी युवा-वर्ग

योग-साधना के इच्छुक नवागत साधक योग-शिक्षा पूर्ण होने तक इस श्रेणी में गिने जाते हैं। भिन्न-भिन्न योगाचार्य उन्हें प्रथम सीढ़ी से अन्तिम सीढ़ी तक क्रमानुसार शिक्षा देते हैं। जो छात्र अपेक्षाकृत अधिक कुशाग्र बुद्धि होते हैं, उन्हें योग्यतानुसार अगली सीढ़ियों पर शीघ्र पहुँचा दिया जाता है। शिक्षा पूरी होने तक सबके लिए निष्ठापूर्वक कठिन ब्रह्मचर्यव्रत का पालन अनिवार्य है।

२. ब्रह्मचारिणी-कुमारीवर्ग

इन्हें भी युवकों की भाँति ब्रह्मचर्य व्रत को निष्ठापूर्वक निभाना पड़ता है। इनकी योग-शिक्षा भी युवा-वर्ग की ही भाँति सोपान-क्रम से चलती है। शिक्षा पूर्ण होने तक ये योगाश्रम में प्रतिबद्ध भाव से रहती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. विज्ञान-शिक्षार्थीवर्ग

इनमें से अधिकतर प्रथम या द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत हैं, अर्थात् ब्रह्मचारी युवा अथवा ब्रह्मचारिणी कुमारियाँ होती हैं। विज्ञान-विभाग योग-विभाग से पृथक् तथा स्वतन्त्र है। विज्ञान-शिक्षक भी योग-शिक्षकों से पृथक् होते हैं। सूर्य-विज्ञान, चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान, स्वर-विज्ञान, देव-विज्ञान आदि अनेक विज्ञानों की शिक्षा इस विज्ञान-विभाग में स्वतन्त्र रूप से दी जाती है। सूर्य-विज्ञान इन सब विज्ञानों में प्रमुख है। इसके आयत्त हो जाने पर अन्य फिर सरलता से आयत्त हो जाते हैं।

४. सिद्ध परमहंस वर्ग

दीक्षित होने के बाद साधना करते-करते सिद्धि प्राप्त करने वाले परमहंसों की संख्या भी इस अलौकिक आश्रम में सैकड़ों की है। ये दो सौ वर्ष से लेकर हजार वर्ष से भी अधिक आयु वाले हैं।

सिद्धावस्था-प्राप्त परमहंसों में से कितने ही महापुरुष तो निराहार ही रहते हैं तथा कुछ थोड़ा-सा भोजन ग्रहण कर लेते हैं। उदाहरणस्वरूपः—

श्री विशुद्धानन्द परमहंस ने अपने प्रमुख शिष्य महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज को स्वयं अपने श्रीमुख से सुनाया था कि जब वे गिरिनार पर्वत पर निवास कर रहे थे उस समय उन्हें तीन दिन तक लगातार निराहार रहना पड़ा था। निकट में कहीं कोई बस्ती न होने से भिक्षा-संग्रह का भी कोई उपाय न था। उस समय ये 'ब्रह्मचारी' स्थिति में थे। 'ब्रह्मचारी' के लिए, देह की रक्षा के हेतु, अति उत्कट पुरुषार्थ करने का निषेध है। अतः दूर जाकर आहार के हेतु, भिक्षा माँगना उचित न समझा। मन में ऐसा लगा कि अब की बार, आहार के अभाव से, देहपात अवश्यम्भावी है। स्थान निर्जन तथा बीहड़ था। किसी पथिक के उधर अकस्मात् आ निकलने की सम्भावना भी बहुत ही कम थी। पथहीन, भयावह, निर्जन जंगली भूमि थी, जहाँ चारों ओर हिंसक जन्तु निरन्तर फिरते रहते थे। यदि कोई भूला-भटका मनुष्य किसी कारणवश उधर आ भी गया तो उससे भिक्षा मिलने की आशा व्यर्थ। कोई चारा न देख, विशुद्धानन्द आँखें मूँदकर गुरुप्रदत्त अपने इष्ट मन्त्र का ध्यान सहित जप करते हुए गुहा में लेट गए। जप करते-करते तन्द्रा आ गई। थोड़ी देर बाद जब तन्द्रा से जगे और चारों ओर का दृश्य देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। देखा कि उनके सम्मुख दस-पन्द्रह पुरवे नाना प्रकार की स्वादिष्ट सामग्री से भरे रखे हैं। औटाया हुआ दूध, लावे का लड्डू, चिउड़ा, नानाविध मिष्टान्न और फल तथा मीठा सुगन्धित शर्बत। यह देख, जगदम्बा की असीम करुणा का स्मरण करते-करते उनकी आँखों से कृतज्ञता तथा प्रसन्नता के आँसू बरसने लगे। वे तीन दिन से निराहार हैं—इस बात का पता इस जगत् के किसी भी व्यक्ति को नहीं था और न ही इसके पता लगाने की कोई सम्भावना ही थी। तब,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस भयानक जंगल के बीच, एकान्त गुहा के भीतरी भाग में, ठीक उन्हीं के सामने सजाकर ये सब खाने-पीने के स्वादिष्ट पदार्थ मिट्टी के पात्रों में कौन रख गया ? तथा खाने की चीजों में से अधिकतर तो बंगाल की सुपरिचित भोज्य चीजें थीं। वे सब इतनी दूर इधर पश्चिम प्रदेश में कैसे आईं ? किसके आदेश से ? फिर किसने यहाँ पहुँचाईं ? इसको स्नेहमयी विश्वजननी के स्नेह का निदर्शन समझ तथा प्रत्यक्ष अनुभव करके, विशुद्धानन्द प्रेम और आनन्द से गद्‌गद हो उठे।

ज्ञानगंज योगाश्रम को इस प्रकार का सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने का सारा श्रेय उपर्युक्त श्रीमद् ज्ञानानन्दजी परमहंसदेव को है। वे अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न महायोगी ही ज्ञानगंज योगाश्रम के मुख्य अधिष्ठाता हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट-२

अधिकारी शिष्यों के संस्मरण

स्वामी विशुद्धानन्दजी के अनेक शिष्यों ने अपने गुरु-सम्बन्धी संस्मरणों में उनके असामान्य गुणों और सिद्धियों का उल्लेख किया है। उनमें महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराज का प्रथम स्थान है। उन्होंने स्वसम्पादित 'विशुद्धवाणी' (बंगला) के दस भागों में अपने अनेक संस्मरण दिए हैं, जो बड़े ही उपादेय हैं। उनके अतिरिक्त रायसाहब श्री अक्षयकुमार दत्त गुप्त, मुनीन्द्रमोहन कविराज, श्री सुबोधचन्द्र रक्षित, श्री जीवनधन गांगुली, श्री अमूल्यकुमार दत्त गुप्त, श्री गौरीचरन राय, श्री राजबाला देवी, श्री विश्वेश्वर दत्त, श्री वीणापाणि देवी, श्री फणिभूषण चौधरी आदि ने भी श्री योगिराजाधिराज के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहकर उनकी योग-विभूतियों का जो परिचय प्राप्त किया था, उसे संस्मरण के रूप में उपन्यस्त किया है। इन संस्मरणों से उनके दिव्य और असामान्य जीवन का एक स्पष्ट चित्र सामने उपस्थित होता है। सभी प्रमुख अधिकारी शिष्यों के संस्मरण यहाँ दिये जा रहे हैं। इन्हें पढ़कर किसी जिज्ञासु पाठक के मन में शंका के लिए अवकाश न रहेगा, ऐसा विश्वास है।

वे गुरु-चरण

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज

[१]

बहुत दिनों की बात है। मैं तब अध्ययन-जीवन का परिशिष्ट भाग व्यतीतकर सेवा-जीवन में प्रवेश कर चुका था। उसके भी लगभग साढ़े-तीन वर्ष बीत चुके थे। तब विद्या-अर्जन और विद्या-वितरण ही बहिर्जीवन का प्रधान लक्ष्य था। परिगृहीत सेवा-जीवन भी उस लक्ष्याभिमुखी गति के अनुकूल ही था। साक्षात् रूप से जिनके अधीन मैं सेवा-जीवन में नियुक्त हुआ था वे भारतीय न होने पर भी भारतीय संस्कृति की तत्कालीन विद्वन्मण्डली में अप्रतिम पथदर्शक थे एवं व्यक्तिगत जीवन में मेरे गुरुस्थानीय थे (अध्यापक और संरक्षक की दृष्टि से)। अध्यात्म-पथ पर, अन्तर-जीवन के पथ पर, ऐसे एक महापुरुष मुझे आदर्श-रूप में प्राप्त हुए थे, जो परा और अपरा दोनों विद्याओं में प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षा के सब विभागों में समान रूप से शिक्षित थे। इस प्रकार के वातावरण में नाना प्रकार के ज्ञान की आलोचना के मध्य मेरे कर्म-जीवन की धारा बही जा रही थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दिन एक युवक ब्रह्मचारी ने, जो मेरे एक घनिष्ठ बन्धु के अति परिचित मित्र थे, एकाएक बातचीत के सिलसिले में मुझसे कहा, "यहाँ कुछ दिनों से एक महात्मा आये हुए हैं, वे इच्छा करते ही अँगुली के स्पर्श से नाना प्रकार की गन्ध की सृष्टि कर सकते हैं। उनके शरीर से भी निरन्तर दिव्य सुगन्ध निकलती है। सुना है, वे बहुत समय तक तिब्बत में रहे एवं वहीं से उन्होंने सिद्धि प्राप्त की है। मैं उनके दर्शन करने एकाधिक बार गया था; मुझे बहुत अच्छे लगे हैं। आप एक दिन जायँ।" मैंने इच्छा प्रकट की। मेरे बन्धु समीप में ही थे। उन्होंने ब्रह्मचारी के कथन का समर्थन कर कहा कि बात यथार्थ है, मैंने बहुतों के मुँह से यह बात सुनी है। मैं तिब्बत का नाम सुनकर महात्मा के दर्शनों के लिए उत्कण्ठित हुआ। अलौकिक रूप से गन्ध-सृष्टि करना मैं अन्यत्र एक बार देख चुका था। एक मुसलमान फकीर को इस काशी में ही कुछ दिन पहले ड्रेन की दुर्गन्धमय काली मिट्टी को हाथ की मुट्ठी में लेकर स्थायी सुगन्धयुक्त करते मैंने देखा था। यह कोई सम्मोहन का काम नहीं है, यह भी मुझे ज्ञात हुआ था। क्योंकि, उन्होंने जो काली मिट्टी मेरे दाहिने हाथ में लगा दी थी, उसकी सुगन्ध कई दिनों तक हाथ में विद्यमान रही थी एवं खूब तीव्र थी। निकटवर्ती सभी लोग उसका अनुभव करते थे। मैंने ब्रह्मचारी से पूछा, "वे कहाँ हैं ?" ब्रह्मचारी ने कहा, "वे हनुमानघाट[1] के निकट एक मकान में हैं। यदि आपको दर्शन करने की इच्छा हो तो मैं आपको अपने साथ ले जा सकता हूँ।" कल अपराह्न ब्रह्मचारी आकर मुझे ले जायँगे, यह निश्चय हुआ। तब जाड़े के दिन थे—सम्भवतः नवम्बर महीने का अन्तिम भाग रहा हो अथवा दिसम्बर मास का आरम्भ रहा हो (१९१७ ई०)। इसलिए कुछ दिन रहते ही जाने की व्यवस्था करने के लिए मैंने कहा।

यही हुआ। दूसरे दिन चार बजे के पहले ही ब्रह्मचारीजी आये। उनके साथ मैं रवाना हुआ। यह मेरे जीवन का एक अति स्मरणीय दिन था। हनुमानघाट के निकट बाबाजी के आश्रम में जब पहुँचा तब मालूम हुआ कि चार बज चुके हैं। ब्रह्मचारीजी ने कहा, "मैं आपको पहुँचाकर वहाँ अधिक देर रह नहीं सकूँगा, कुछ ही देर रहूँगा। मेरा एक काम है, इसलिए मुझे शीघ्र ही लौटना पड़ेगा। आप जितनी देर तक चाहें, रह सकते हैं।" आश्रम एक छोटा-सा तिमंजला मकान था। पहली मंजिल में कई रहने के कमरे थे। तीसरी मंजिल में छत थी और छोटे-छोटे दो कमरे थे। इन दो कमरों में से एक में बाबाजी शयन और सन्ध्यादि आह्निक कृत्य करते थे एवं निकटस्थ दूसरे कमरे में उनका भोजन तैयार होता था। बीच में खुली छत थी। उस शयन-गृह के प्रायः समानान्तर दो तल्ले में एक कमरा था—वह अन्यान्य कमरों की अपेक्षा कुछ बड़ा था। वहाँ आह्निक के बाद और दोपहर के भोजन के उपरान्त बाबाजी बैठते। यह कमरा सत्संग का स्थान था। जो लोग उनके दर्शन करने के लिए आते थे, इसी कमरे में बैठते थे एवं वहीं दर्शन और बातचीत होती थी।

---

१. काशी-स्थित, गंगा के एक घाट का नाम ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्रम में पहुँचते ही मुझे एक अपूर्व सुगन्ध का अनुभव हुआ। यह अनुपम दिव्य गन्ध कहाँ से आ रही है, यह पहले मैं समझ न सका। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि यह बाबाजी के शरीर की गन्ध है। मैंने दूसरी मंजिल के सभागृह में प्रवेश किया। कमरा उत्तर-दक्षिण लम्बा था। उत्तर की ओर एक चौकी पर मोटा गलीचा बिछा हुआ देखा, उसके ऊपर विशाल व्याघ्रचर्म का आस्तरण था; उस पर सौम्यमूर्ति सुदर्शन जोगिया रंग का रेशमी वस्त्र पहने एक महापुरुष बैठे थे। ये ही वे महायोगी थे, जिनके चरणों के दर्शनों की लालसा में मैं उपस्थित हुआ था। उनकी अवस्था तब साठ से ऊपर होने पर भी उनको देखने से ५५-५६ वर्ष की प्रतीत होती थी। मुँह पर प्रज्ञा और करुणा की अभिव्यंजिका सफेद-काली दाढ़ी, कानों तक फैले दो विशाल नेत्र, घुटनों तक लम्बी भुजाएँ, लम्बोदर, कण्ठ में लम्बायमान शुभ्र यज्ञोपवीत और निरन्तर चारों ओर दिव्य गन्ध फैला रही सुडौल देह थी। दर्शन करते ही अपने-आप उन पावन चरणों में मेरा मस्तक नत हो पड़ा। सारा कमरा विभिन्न जाति के भक्तों से ठसाठस भरा था। भक्त लोगों में पुराने वयस्क लोगों के साथ युवकों की संख्या भी कम नहीं थी। युवकों में अधिकांश कॉलेज के—नूतन स्थापित हिन्दू-विश्वविद्यालय के—छात्र थे।

बाबाजी का दर्शन करते ही न मालूम क्यों, वे मुझे अतिपरिचित आत्मीय ऐसे प्रतीत हुए थे। भारतीय सिद्ध पुरुष और दार्शनिकों की मण्डली में अग्रगण्य महामहेश्वर अभिनवगुप्तपाद की श्मश्रु-विभूषित शान्त मूर्ति की स्मृति-जिस मूर्ति का उनके शिष्यों ने दर्शन किया है[1]—बाबाजी के दर्शन करते ही मेरे मन में जाग उठी थी। मैं कमरे में प्रवेश करते ही बाबा को प्रणामकर उनकी चौकी के सामने बाईं ओर बैठ गया।

ब्रह्मचारीजी कुछ दूर में थोड़ा स्थान बनाकर बैठ गये। बाबा ने मेरा नाम पूछा एवं कहाँ रहते हो, क्या करते हो ? यह जिज्ञासा की; मैंने उत्तर दिया। मैं नवागत था, बैठे-बैठे सब देखने लगा। उस समय बाबा सूर्यविज्ञान का कुछ खेल दिखा रहे थे। तब सूर्यविज्ञान[1] क्या है—यह मैं जानता न था। पहले उसके विषय में सुना भी नहीं था। बाद में सुना, उससे सृष्टि, स्थिति और संहार सब कुछ हो सकता है। वे तिब्बत

---

१. इस वर्णन में एक श्लोक यों है—

> आनन्दान्दोलिताक्षः स्फुटकृततिलको भस्मना भालमध्ये
> रुद्राक्षोल्लासिकर्णः लसितकचभरो मालया लम्बकूर्चः ।
> रक्ताङ्गे यज्ञ-पङ्क्षोल्लसदसितगलो लम्बमुक्तोपवीतः
> क्षौमं वासो वसानः शशिकरधवलं वीरयोगासनस्थः ॥

आश्चर्य की बात है कि इसके सात वर्ष बाद अभिनवगुप्त की साक्षात् शिष्य-परम्परा में परिगणित साधकश्रेष्ठ काश्मीर के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० बालकृष्ण कौल को उन्हीं के अनुरोध से श्रीगुरुदेव के निकट ले जाकर उनसे परिचय करा देने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। बालकृष्णजी काशीस्थ तात्कालिक हिन्दू कॉलेज के अन्यतम प्रतिष्ठापक थे। बालकृष्णजी ने स्वयं भी अभिनवगुप्त की तरह लम्बी दाढ़ी धारण कर रखी थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अन्तर्गत ज्ञानगंज नामक गुप्त योगाश्रम में योग-साधना के लिए बहुत दिन रहे थे। तब वहाँ उन्हें नाना प्रकार की विज्ञान-शिक्षा भी प्राप्त हुई थी। उन सब विज्ञानों में सूर्य-विज्ञान मुख्य था। मैंने देखा, बाबा कमरे के भीतर प्रार्थियों के इच्छानुसार किसी के हाथ में, किसी के रूमाल में, किसी की चादर के छोर पर नाना प्रकार की सुन्दर-सुन्दर गन्ध केवल दाहिने हाथ की अँगुली के स्पर्श द्वारा दे रहे थे। वे सब गन्ध केवल आकर्षक थीं सो बात नहीं, वे सब दीर्घकाल तक रहती थीं। कभी-कभी तो कपड़ा धोने पर भी गन्ध नहीं हटती थी। जो-जो माँग रहा था उसे वही दे रहे थे—चन्दन, गुलाब, हेना, खसखस, चम्पक, बेला, जूही आदि नाना गन्ध दे रहे थे। किसी-किसी के साथ योग और आध्यात्मिक प्रसंग की भी बातें चल रही थीं; पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। कभी किसी के ज्ञानगंज के आश्रम के सम्बन्ध में कुछ जानने की उत्कण्ठा प्रकट करने पर उस विषय में भी समुचित उत्तर प्रदान कर रहे थे। बहुत व्यापार देखें, बहुत प्रकार की बातें सुनीं। ब्रह्मचारी कुछ देर रहकर चले गये—क्रमशः अन्यान्य सब लोग भी एक-एक करके जाने लगे, क्योंकि तब सन्ध्या बढ़ रही थी। सभा भंग-कर बाबा के भी उठने का समय हुआ था। वे तीसरी मंजिल पर सन्ध्या के कमरे में आह्निक करते थे। कभी किसी भी कारण से समय का लंघन न करते थे। सब लोगों के चले जाने पर मैंने भी प्रणाम किया। प्रणाम करते ही उठने पर बाबा ने पूछा, "हार्ट की अवस्था अब अच्छी है ना ? अब कोई कष्ट तो नहीं होता ?" "हाँ बाबा, इस समय अच्छा ही हूँ।" उन्होंने कहा, 'चिन्ता की कोई बात नहीं है। दीक्षा होने पर एकदम अच्छा हो जायगा। आज के लिए जा रहा हूँ। कल आओगे तो ?" यह कहकर वह उठ पड़े—मैं भी बाहर आ गया।

अकेले ही लौटा, क्योंकि ब्रह्मचारीजी पहले ही चले गये थे। मन में नाना प्रकार की भावनाओं की तरंगें खेलने लगीं। मैंने सोचा कि मैं हार्ट की बीमारी से पीड़ित रहा, यह उन्होंने कैसे जाना ? यह सन् १९११ ई० की बात है। लगभग छह वर्ष पहले की घटना, फिर बहुत-से लोग उसे जानते भी नहीं। उसके अतिरिक्त उन्होंने ये बातें ऐसे कहीं, मानों कितने आत्मीय जन हैं तथा कितने काल के परिचित हों। मुझे भी उनको देखते ही वे आत्मीय प्रतीत हुए। यह सोचते-सोचते मैं घर लौटा। घर आकर भी वे ही विचार मन पर अधिकार कर बैठे थे।

मन में सोचता था कि इस प्रकार सुगन्धि का निकलना और कहीं भी तो आज तक मैंने देखा नहीं। सुगन्धि पैदा करना अवश्य दूसरी बात है। सुना है कि बुद्धदेव का शरीर गन्धमय था। वे जिस कुटी में रहते थे, वह गन्धकुटी के नाम से प्रसिद्ध थी। गन्धकुटी नाम के हेतु के सम्बन्ध में नाना लोग नाना प्रकार के अनुमान लगाते हैं। नाना प्रकार की सुगन्धित पुष्पराशि से, जो उनके चरणों में नियमतः चढ़ाई जाती

---

१. सूर्य-विज्ञान के विषय में विस्तृत लेख आगे पढ़ें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी, शायद कमरा सुगन्धित रहता था, यह भी किन्हीं-किन्हीं का अनुमान है। किन्तु देह की गन्ध से कमरा सुगन्धित रहता है, ऐसा किसी ने सोचा नहीं; क्योंकि ऐसा अनुभव सर्वदा होता नहीं। श्रीकृष्ण की अङ्ग-गन्ध की बात मैंने चैतन्य-चरितामृत में पढ़ी है—

"निरन्तर नासाय पसे कृष्ण परिमल ।
गन्ध आस्वादिने प्रभु हइला पागल ॥"

(श्रीचैतन्यचरितामृत, अन्त्यलीला, १६ परिच्छेद)

गोविन्दलीलामृत में श्रीकृष्ण की अङ्ग-गन्ध के वर्णन के प्रसङ्ग में लिखा है—

"कुरङ्गमदजिद्वपुः परिमलोर्मिकृष्टाङ्गनः
स्वकाङ्गनलिनाष्टके[1] शशियुताब्ज[2] गन्धप्रथः ।
मदेन्दुवरचन्दनागुरुसुगन्धिचर्चार्चितः
स मे मदनमोहनः सखि तनोति नासास्पृहाम् ॥" (८।६)

भक्तगणों को श्रीकृष्णाङ्ग से निकली हुई जिस पुण्य गन्ध का अनुभव प्राप्त होता था वह मृगमद या कस्तूरी, कपूर, नीलोत्पल, चन्दन, अगुरु, तुलसीमञ्जरी आदि सुगन्धि-द्रव्यों की सम्मिलित गन्ध के तुल्य थी। श्रीराधा की देह से नियमतः पद्म-गन्ध निकलती थी—वे 'पद्मिनी' थीं। योगी लोग कहते हैं, योग की चार अवस्थाओं में से प्रारम्भ की अवस्था में ही देह की शुद्धि के साथ-साथ देह में दिव्य-गन्ध का उदय होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी योगी की 'शुभगन्ध' की बात पाई जाती है। गोविन्ददास के विवरण से ज्ञात होता है कि महाप्रभु श्री चैतन्यदेव की देह से विशेष-विशेष समय में पद्म-गन्ध निकलती थी। ललितासहस्रनाम स्तोत्र में भगवती त्रिपुरसुन्दरी 'दिव्यगन्धाढ्या' कही गयी हैं। विन्दुजय अथवा ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठा सिद्ध होने पर देह में सुन्दर गन्ध का आविर्भाव होता है।[3] इस प्रकार विविध प्रकार का आलोडन मन में चल रहा था—धारणा हो रही थी कि ये दिव्य पुरुष, योगिराज, करुणामय हैं, इसमें सन्देह नहीं।

दूसरे दिन फिर बाबा के दर्शन करने के लिए मैंने हनुमानघाट की ओर यात्रा की। उस दिन एक घण्टा पहले ही अर्थात् तीन बजे रवाना हुआ। जाकर देखा—बाबा

---

१. देश के अङ्ग—चक्षु २, मुख १, नाभि १, कर २ और पद २-८।

२. रत्ती-कपूर।

३. पाश्चात्य सन्तों में भी किसी-किसी की देह में दिव्य गन्ध का प्रकाश होता था। सुना जाता है कि सन्त टेरेसा (St. Teresa) की देह से दिव्य गन्ध निकलती थी—यहाँ तक कि मृत्यु के बाद भी निकलती रही। Mrs. St. Clair Stobert ने कहा है : It was for instance attested by many that after her death, as well as during her life, strange fragrance emanated from her. This is a phenomenon which was not peculiar to Teresa, it is found in a certain stage of trance in many mediums. And is this not possibly the origin of the phrase "to in the odour of sanctity ?"

—*Torch-bearers of Spirituaism. p. 172*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसन पर बैठे हैं। कमरे में दो-चार ही भक्त थे। मेरे लिए तत्त्वालोचन की सुविधा हुई।

मैं प्रणामकर पूर्व दिन की जगह बैठ गया। बाबा ने पूछा, "कहो, कैसे हो ?" मैंने कहा, "अच्छा हूँ, बाबा!" मैंने और भी कहा—"बाबा, आप जो कुछ अर्थात् गन्धादि वस्तु दिखाते हैं वह क्या योग का कार्य है, अथवा और कुछ ?"

बाबा—नहीं, यह ठीक योग नहीं है—यह विज्ञान का व्यापार है। सूर्य-विज्ञान के द्वारा सब दिखाता हूँ। सूर्य-विज्ञान से अर्थात् सूर्य-रश्मि पहिचान सकने पर और उन सब रश्मियों को यथाविधि मिश्रित कर सकने पर सब कुछ तैयार किया जा सकता है—नष्ट भी किया जा सकता है, गढ़ा भी जा सकता है, यदि प्रयोजन हो तो रखा भी जा सकता है। सूर्य को जो तुम लोग सविता कहते हो, उसका मूल यही है।

मैं—रश्मियाँ तो चन्द्रमा की भी हैं। क्या उनसे नहीं होता ?

बाबा—होता है, पर कम होता है। सूर्य ही मूल है। अवश्य चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान आदि भी हैं।

ज्ञानगंज में हमलोगों को ये सब विज्ञान सीखने पड़ते थे। वहाँ प्रकृति की चर्चा और योग की शिक्षा साथ-साथ चलती थी। विज्ञान-विभाग के उपदेष्टा श्रीमद् श्यामानन्द परमहंस थे। वे असाधारण विज्ञानवेत्ता थे। योगशिक्षा श्रीमद् भृगुराम परमहंस देते थे। ये सभी श्रीयहातया के शिष्य थे। मनुष्य के वयःक्रम से इनका वयःक्रम बहुत ऊपर था। सूर्य-विज्ञान सीखने पर सब प्रकार के विज्ञानों का द्वार खुल जाता है—स्वयं भी अनेक सूक्ष्म विज्ञान आयत्त किये जा सकते हैं। मैंने भी सूर्य-विज्ञान आयत्तकर बहुत से अवान्तर विज्ञान अपने प्रयत्न से आयत्त किये हैं और अब भी कर रहा हूँ।

मैं—बाबा, पश्चिमी देशों में विज्ञान की चर्चा खूब अधिक है। हमारे देश में योग और धर्म की चर्चा अधिक है, यही सबका विश्वास है।

बाबा—प्रकृष्ट विज्ञान अभी तक भी जगत् में विशेष रूप से अभिव्यक्त नहीं हुआ। विशिष्ट ज्ञान ही विज्ञान है। कर्म और ज्ञान दोनों को आयत्त किये बिना विज्ञान में अधिकार प्राप्त नहीं किया जा सकता। ज्ञान रहने पर कर्म नहीं रहता और कर्म रहने पर ज्ञान भी नहीं रहता—एक साथ दोनों की सत्ता अत्यन्त दुर्लभ है। यह मानों बाघ और बकरी की मैत्री है। इसीलिए यथार्थ विज्ञान इतना कठिन है।

मैं—योग और विज्ञान क्या एक ही भूमि की विद्याएँ हैं ?

बाबा—दोनों में पार्थक्य है। योग-बल से भी सृष्टि होती है, विज्ञान-बल से भी सृष्टि होती है, किन्तु दोनों में अन्तर है। कौन बड़ा है और कौन छोटा है, यह नहीं कहा जा सकता। इच्छाशक्ति का पूर्ण विकास ही योग है। किन्तु ज्ञान के बिना उसका होना सम्भव नहीं। ज्ञान के बिना विज्ञान भी नहीं हो सकता। अज्ञानी के पास योग भी नहीं रहता, विज्ञान भी नहीं रहता। जगत् में जिस विज्ञान की उन्नति हो रही है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उससे मूल का अज्ञान रह जा रहा है। यह अज्ञान जब तक न हटे, जब तक क्रिया की सामर्थ्य सीमाबद्ध न रहे, ऐसा नहीं हो सकता।

मैं—यह सब आलोचना पीछे होगी, सरसरी तौर पर मुझसे योग के सम्बन्ध में कुछ कहने की कृपा करें।

बाबा—तुम्हारे शास्त्र योग के सम्बन्ध में क्या कहते हैं ?

मैं—इस सम्बन्ध में बहुत बातें हैं। पर मोटामोटी यही कहा जाता है कि चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है। वह निरोध ऐसा होना चाहिए कि तब द्रष्टा पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित रहे और बुद्धि की तरंगों में अपने को खो न डाले, अर्थात् वृत्तिसारूप्य से मुक्त हो। यह चित्त की वृत्तिहीन अवस्था है, किन्तु जड़त्व नहीं है। क्योंकि साक्षी जागरूक रहता है। ऐसा यदि न रहे तो वह योग की अन्तराय होगी। इसीलिए शास्त्र के मतानुसार विदेह और प्रकृतिलीन गणों की चित्तवृत्ति न रहने पर भी उन्हें योगी नहीं कहा जाता।

किसी-किसी स्थान पर जीवात्मा और परमात्मा के संयोग को भी योग कहते हैं। इस प्रकार की बहुत बातें हैं। आप योगी किसे कहते हैं ?

बाबा—देखो, मूल वस्तु महाशक्ति है। उनके साथ यदि किसी का स्थायी अथवा नित्य योग हो अथवा रहे तो उसे योगी कहना ठीक है। उदाहरण के रूप में अग्नि को लो। जो लोहे का टुकड़ा दीर्घकाल तक अग्नि में पड़ा रहने के कारण अग्नि की लालिमा और दाहिकादि शक्ति धारण करता है, वह अग्नि के साथ युक्त है। उसको योगी का दृष्टान्त समझ सकते हो। लोहा-लोहा ही है पर अग्नि के संयोगवश वह अग्निभावापन्न और दाहशक्ति-सम्पन्न होता है। उसी प्रकार जीवात्मा के उस महाशक्ति के साथ युक्त होने पर उसमें अनन्त शक्तियों के द्वार खुल जाते हैं—वह योगी होता है। यह शक्ति का विकास जीवधर्म नहीं है—यह महाशक्ति के अनुग्रह से प्राप्त सम्पत् है, जो योगवश जीव में प्रकाशित होती है। यही योगैश्वर्य है।

मैं—लोहा कुछ काल बाहर रहने पर फिर लाल नहीं रहता, दहनशील नहीं रहता, यहाँ तक कि नरम भी नहीं रहता। तब तो योग रहता ही नहीं। पक्षान्तर में निविड़तम योग के कारण लोहखण्ड के एकदम गल जाने की भी आशंका है।

बाबा—हाँ, यह सत्य है। वह सम्बन्ध यदि नित्य और अच्छेद्य हो तभी उसे योग कहना बनता है, अन्यथा नहीं। अग्नि-सम्बन्ध यदि सार्वकालिक हो तो लोह में अग्निधर्म सर्वत्र विद्यमान रहता है। अग्नि यदि लोह को भस्म कर डाले तब फिर लोहे की अपनी सत्ता कहाँ रही ? यह योग नहीं है। अवश्य यह अवस्था भी है। उसी प्रकार लोहे को यदि अग्नि स्वीकार न करे तो भी सम्बन्ध न होने के कारण योग नहीं हुआ। यह मायालीन अवस्था अथवा संसारभाव है। योग यदि समझना हो तो दोनों (छोरों) का त्यागकर मध्य की स्थिति पकड़नी चाहिए अर्थात् अग्नि का सान्निध्य इतना अधिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो सकता है कि लोहे में लौहभाव फिर रह नहीं सकता, वह अग्नि में लीन हो जाता है। दूसरे पक्ष में लोहे तथा अग्नि की सन्निधि में व्यवधान इतना अधिक हो सकता है कि अग्नि का कोई धर्म ही मानों उसमें संचारित न हो—लोहा साधारण लोहा ही रह जाय। ये दो प्रान्त-भाव हैं। योग के उत्कर्ष से अभेद होता है और अपकर्ष से भेद होता है। मध्य अवस्था ही वास्तविक योग है। अन्यथा महाशक्ति के साथ योग तो सभी का सदा ही रहता है। उससे किसी को भी योगी कहना नहीं बनता।

मैं—ऐसा भी तो हो सकता है कि लोहा अग्नि हो जाने पर भी लोहा ही रहे। उसका स्वरूप लुप्त नहीं हो और वह अग्नि के साथ अभिन्न हो जाये। वह अग्नि होकर भी अग्नि नहीं है और अग्नि न होकर भी अग्नि है।

बाबा—बहुत ठीक है। यही वास्तविक योगी की अवस्था है। जागतिक योगी का यही आदर्श है। वास्तविक योग अभेद को प्राप्त होकर भी भेद की रक्षा करता है। फिर भेद में रहकर भी अभेद के गौरव से महीयान् है। यह न होने पर आस्वादन नहीं रहता। मोटामोटी यही जान रखो। इसके भीतर बहुत गुह्य बातें हैं। कर्मपथ पर चलने पर उन्हें जान सकोगे।

मैं—बाबा ऐसे योगी कौन हैं ?

बाबा—वही ईश्वर। वे महायोगी हैं, योगेश्वर हैं। वे योगी-मात्र के आदर्श हैं। वे ही उपास्य हैं।

मैं—वे और महाशक्ति क्या अभिन्न नहीं हैं ? महाशक्ति और ईश्वर को एक ही महासत्ता के दो नाम नहीं कहा जा सकता क्या ?

बाबा—कह सकते हो। पर वह बहूत दूर की बात है। इस समय यह नहीं कह सकोगे। इस समय समझ रखो—ईश्वर उपासक है और महाशक्ति उपास्य है। ईश्वर होकर ही महाशक्ति की उपासना करनी चाहिए—इसीलिए योगी का पथ ईश्वर का पथ है। योगी प्रयत्न करता है ईश्वर होने के लिए—इसलिए महायोगी ईश्वर ही योगपथ का आदर्श है। योगी के ईश्वरत्व पाने पर भी उनका निज स्वरूप लुप्त नहीं होता। वैसे ही ईश्वर भी नित्ययोगी होने से निरन्तर महाशक्ति की उपासना कर रहे हैं—उसके कारण उनके साथ एकात्मता-लाभ कर रहे हैं। फिर भी ईश्वररूप से उनका अपना स्वरूप लुप्त नहीं हो रहा है।

मैं—अर्थात् लुप्त होते हैं, एकत्व का बोध होता है अथ च लुप्त नहीं होते—एकत्व रहने पर भी उपासक ईश्वरभाव विद्यमान रहता है। यही क्या आपका अभिप्राय है ? इसे एक प्रकार से भेदाभेद कहा जा सकता है।

बाबा—हाँ, अधिकांश में वैसा ही है। पर इसकी भी परावस्था है—जहाँ अद्वैत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सिवा दूसरा कुछ कहना नहीं बनता। पर उस अवस्था को इस समय रहने दो। महाशक्ति की दिशा से कहा जा सकता है कि उन्हीं का एक रूप नित्य उनका भजन करता है। महाशक्ति को समझो जननी—ईश्वर को समझो उनकी एक अग्रज सन्तान।

मैं—जीव भी तो उन्हीं की सन्तान हैं—अनुज सन्तान कहना, प्रतीत होता है, ठीक होगा।

बाबा—निश्चय। वे ही तो एकमात्र माँ हैं। जीव उन्हें पहचानता नहीं, ईश्वर उनको पहचानते हैं। ईश्वर जीव को उनका परिचय या पहचान करा देते हैं।

मैं—तब तो ईश्वर ही गुरु—विश्वगुरु है।

बाबा—इसमें सन्देह क्या ? ईश्वर के सिवा माँ को कौन पहचानता है—कौन पहचान कराता है ?

मैं—माँ कौन हैं ?

बाबा—(हँसकर बोले) माँ आत्मा-स्वयम्। तुम्हारी आत्मा, मेरी आत्मा, विश्व की आत्मा, ईश्वर की भी आत्मा—एक अद्वितीय परम आत्मा। ईश्वर जानते हैं कि माँ उनसे अभिन्न हैं, माँ से वे अभिन्न हैं, किन्तु जीव में वह बोध नहीं है। माँ को जानते हैं, इसीलिए ईश्वर का भी नाम भगवान् है।

मैं—ईश्वर की क्या पृथक् अपनी शक्ति नहीं है ?

बाबा—एक ही महाशक्ति है—वे ही अखंण्ड शक्ति हैं, सबकी शक्ति, ईश्वर की भी शक्ति, मूल में वही सब हैं। जहाँ जो शक्ति देखते हो, सभी का मूल उन्हीं में है। सभी शक्तियाँ उनका आभासमात्र हैं। जिस आधार में जितनी प्रकट होती हैं उतने का ही आभास दिखाई देता है।

तब सन्ध्या सन्निकटप्राय थी। बाबा का उठने का समय हो जाने के कारण फिर मैंने चर्चा नहीं की। मैं उठ पड़ा, बाबा भी उठे। प्रणाम करने के बाद बाबा ने कहा—''फिर आना और भी बातें होंगी।''

[२]

इसके बाद मैं प्रायः प्रतिदिन ही अपराह्न में बाबाजी के निकट पहुँच जाता था। साधारणतः अकेले ही जाता था, किन्तु कभी-कभी साथी भी जुट जाते थे। मैं तब पिशाचमोचन[1] में रहता था, वहाँ से सारा मार्ग पैदल ही तयकर, साधारणतः बंगाली-टोला के मध्य से केदारघाट अथवा चिन्तामणि गणेश के निकट में हरिश्चन्द्र रोड पारकर, आश्रम में उपस्थित होता था। आश्रम में सर्वदा ही बहुत लोगों का समागम होता था।

---

१. काशी के उत्तर की ओर स्थित एक मुहल्ला, जो बाबा के तत्कालीन आश्रम से लगभग ३ मील दूर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई अपना मार्मिक दुःख निवेदन करने जाते तो कोई रोग-शान्ति के लिए आते थे एवं अति विरल कोई-कोई ही पारमार्थिक मार्ग-दर्शन के लिए जाते थे, किन्तु अधिकांश लोग कौतूहलवश इस अभिनव विज्ञान के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए जाते थे। वहाँ नाना प्रसंग उठते एवं प्रयोजनानुसार बीच-बीच में बाबाजी जिज्ञासुओं को सूर्यविज्ञान का खेल भी दिखाते थे। मैं चुपचाप एक ओर बैठकर सब देखता और सुनता था, मन में सन्देह उठने पर प्रश्न पूछकर मीमांसा कर लेता था। मेरे साथ शिक्षित सम्प्रदाय के अनेक लोग गये थे और कोई-कोई इच्छा रहते भी जा नहीं सके थे। क्वींस कॉलेज के तात्कालिक संस्कृताध्यापक कैम्ब्रिज विद्यालय के डॉक्टर टी० के० लड्डू अत्यन्त व्याकुलता रहते भी जा नहीं सके थे। डॉ० वेनिस अस्वस्थ होने के कारण नहीं जा सके। उनकी इच्छी थी कि उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर का बाबाजी से साक्षात्कार कराया जाय, किन्तु वह अवसर फिर आया नहीं, क्योंकि कुछ दिनों के बाद ही वेनिस साहब का परलोकवास हो गया (अप्रैल १९१८)।

रायबहादुर अभयचरण सान्याल क्वींस कॉलेज के फ़िजिक्स के प्रधान अध्यापक थे—वे उस समय सेवानिवृत्त थे। सूर्यविज्ञान देखने की उनकी बड़ी उत्कण्ठा थी—मुझसे विशेष अनुरोध करने पर मैंने एक दिन नियतकर उनके लिए बाबाजी के दर्शन-लाभ की व्यवस्था कर दी थी। उस दिन उनके साथ मैं स्वयं भी गया था। उन्होंने एक दिन बातचीत के सिलसिले में मुझसे कहा था कि सूर्य-रश्मियों से पदार्थों की सृष्टि होना वैज्ञानिक दृष्टि से असम्भव है। वे उस पर विश्वास नहीं करते थे। उनकी धारणा थी कि इस व्यापार को जो लोग देखते हैं, वे दृष्टिभ्रमवश गलत देखते हैं। किन्तु उन्होंने यह कहा था कि यदि मैं अपनी आँखों से देख सकूँ तब अवश्य ही विश्वास करूँगा। मैं उनसे कुछ न कहकर, जिससे उन्हें सूर्य-विज्ञान का व्यापार प्रत्यक्ष देखने का अवसर प्राप्त हो, ऐसा उपाय ढूँढ़ने लगा। एक दिन मैंने बाबा से उनके विषय में सब बातें निवेदन कीं और कहा कि इस प्रकार के एक विशिष्ट विज्ञानवेत्ता को हमारे प्राचीन हिन्दूविज्ञान के दो-एक रहस्य दिखाना उचित प्रतीत होता है। बाबा ने कहा—"अपने वैज्ञानिक को कल अथवा परसों प्रातःकाल यहाँ ले आओ। वे वैज्ञानिक हैं, इसीलिए अपनी आँखों से कुछ बिना देखे एवं उस विषय में आलोचना बिना किये केवल सुनी बात पर विश्वास कैसे करेंगे ?" तदनुसार मैंने अभय बाबू को खबर दी एवं बाबा के निर्दिष्ट दिन में उपस्थित होने के लिए उनसे अनुरोध किया।

निर्दिष्ट दिन अभय बाबू आये। उनके साथ और दो-तीन सज्जन थे। बाबा पहले से ही अपने आसन पर बैठे थे और उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं आकर यथास्थान बैठ गया। प्रसंग उठते ही अभय बाबू ने स्पष्ट रूप में कहा—"बाबाजी जो कह रहे हैं उसे मैं विज्ञानविरुद्ध होने से स्वीकार नहीं कर सकता। अपने सन्तोष के लिए मैं उसको स्वयं प्रत्यक्ष देखने की इच्छा करता हूँ एवं उसके पहले मैं स्वामीजी से अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे यदि अपनी इच्छानुसार वस्तु की सृष्टि न कर मेरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्देश के अनुसार वस्तु की सृष्टि कर दिखा सकें तो मैं इस सृष्टि-व्यापार को प्रामाणिक मान सकता हूँ। यदि यह बात वे स्वीकार कर लें तो मैं एक वस्तु का नाम ले सकता हूँ।" उन्होंने आगे और भी कहा, "दिखाते समय कोई अवान्तर वस्तु उनके निकट न रहे एवं वे अपने दोनों हाथ धोकर बैठें।" बाबा उसी में सम्मत हुए। बाबा ने कहा, "बाबा, तुम जैसा चाहते हो वैसा ही होगा। जिससे तुम्हें तसल्ली हो एवं संशय न रहे, वही करना उचित है। कहो, तुम किस वस्तु की रचना देखना चाहते हो ?" अभय बाबू ने अनेक क्षणों तक विचार किया। प्रतीत हुआ कि वे एक अद्‌भुत वस्तु ढूँढ़ रहे हैं, जो सहसा सूझ नहीं रही। विचार करने के उपरान्त उन्होंने धीरे-धीरे कहा—"एक टुकड़ा ईंट के रंग का कड़ा ग्रेनाइट पत्थर सूर्यरश्मि द्वारा तैयार करें। यह हो सकता है क्या ?" बाबा—"निश्चय ही हो सकता है। तुम सृष्टि के अन्तर्गत जिस किसी वस्तु का नाम लोगे, वही हो सकेगी। यहाँ असम्भव कुछ भी नहीं है। जिन रश्मियों के संघात से समग्र विश्व उत्पन्न हुआ है, उन रश्मियों को पहचानकर उनके योग-वियोग की प्रणाली से परिचित होने पर विज्ञानवेत्ता योगी के लिए कोई भी सृष्टि असम्भव नहीं मानी जा सकती।"

अभय बाबू—वह क्या यथार्थ सृष्टि होगी अथवा कल्पित मानसिक सृष्टि होगी जिसको सम्मोहन-विद्या में निपुण पुरुष संकल्प के बल से सम्मोहित व्यक्तियों को दिखलाते हैं।

बाबा—तुम लोगों ने अधिक पढ़ना-लिखना सीखा है, इसलिए सरल विश्वास से वंचित हुए हो। अभी तुम्हारे सामने तुम्हारे ही निर्देश के अनुसार जिस वस्तु का निर्माणकर मैं दिखाऊँगा उसे देखने पर तुम स्वयं ही समझ सकोगे कि यह कल्पना है अथवा वास्तविक। जो निर्माण शक्ति से प्रकट होता है उसे सभी देख पाते हैं एवं उससे अन्यान्य बाह्य वस्तुओं के तुल्य व्यवहार करना भी सम्भव है।

यह कहकर बाबा ने आगे भी कहा, "इस वक्त थोड़ी शुद्ध रूई ले आओ, जिस पर सूर्य-किरणों का संचार किया जायगा। चाहे और कोई पदार्थ हो तब भी होता है, परन्तु साधारणतः रूई होने पर ही अच्छा होता है। रश्मि-ग्रहण करने के लिए यह आवश्यक है। क्रमशः उत्पादन के आकर्षण के साथ-साथ यह विलीन हो जायगी। निरालम्ब रूप से किसी शक्ति का आकर्षण नहीं किया जा सकता, आधार चाहिए।" जो हो, इसके बाद थोड़ी रूई मँगाई गई एवं अभय बाबू ने उसकी अपने हाथ से परीक्षाकर, देखभालकर वह बाबा के हाथ में दी। तब बाबा ने एक लेन्स बाहर निकाला, जिसके द्वारा निर्दिष्ट सूर्य-रश्मियाँ आकर्षण करके आधार के ऊपर फेंकी जायें। इस प्रकार के विभिन्न शक्ति वाले बहुत-से लेन्स बाबा के निकट मौजूद रहते थे। उनमें से एक छोटा-सा लेन्स बाबा ने बाहर निकाला। लेन्स को देखते ही अभय बाबू ने कहा, "यह तो एक Magnifying glass मालूम पड़ता है।" बाबा ने कहा, "वैसा प्रतीत होता है यह ठीक है, किन्तु यह glass या काँच नहीं है, स्फटिक है। विशेष रीति से तिब्बत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के आश्रम में यह बनाया जाता है। वहाँ की विज्ञानशाला में प्रत्येक विज्ञान-विद्यार्थी को विज्ञानशिक्षा के लिए एक-एक लेन्स उपहार दिया जाता है। शक्ति के तारतम्य के अनुसार नाना प्रकार के लेन्स हैं उसके अतिरिक्त सबका आकार भी एक प्रकार का नहीं है। इस तरह की वस्तु तुम लोगों के पाश्चात्य जगत् में मिलेगी नहीं।'' अभय बाबू लेन्स को देखकर मन्त्रमुग्ध हो बोले, ''लेन्स तो देखने में अत्यन्त सुन्दर है एवं हैण्डिल अपूर्व देखकर प्रतीत होता है कि यह किसी विशिष्ट कारीगर की रचना है।''

इसके अनन्तर बाबा दाहिने हाथ से लेन्स पकड़कर बाँयें हाथ में स्थित रूई के ऊपर उसकी सहायता से विशिष्ट आलोक की छटा फेंकने लगे। प्रत्येक छटा में एक विशिष्ट रंग था। जो छटा जब डाली, उसके पहले ही उसके रंग की बात कह जाने लगे, किन्तु उस सूक्ष्म रंग का उपस्थित सब लोग भलीभाँति अनुसरण नहीं कर सके। बाबा ने कहा, 'देखो, रूई किस प्रकार क्रमशः जम रही है। तीव्रभाव से पाक की क्रिया चल रही है।'' सबको दिखाई दिया कि सचमुच ही रूई मानों लम्बी होकर पक रही है। जमने का भी अच्छी तरह ज्ञान हुआ और एक लाल आभा भी दिखाई दी। बाद में ज्ञात हुआ कि इस जमी रूई का कुछ भाग कड़े काठ के आधार का हो गया है, शेष भाग पूर्ववत् रूई ही रह गया है। ८-१० सेकेण्ड के बाद सारी की-सारी रूई ने लम्बे काष्ठ का आकार धारण कर लिया। लाल ईंट का रंग अधिक साफ दिखाई देने लगा। तब फिर रूई का लेशमात्र भी अवशिष्ट नहीं रहा। यह देखकर अभय बाबू का मुँह और आँखें आश्चर्य से स्तब्ध प्रतीत होने लगीं। बाबा ने वह टुकड़ा अभय बाबू के हाथ में दिया एवं कहा, ''यह एक पर्व हुआ। इसके आगे के पर्व में यह टुकड़ा पत्थर के रूप में परिणत होगा।'' अभय बाबू भलीभाँति परीक्षाकर देखने लगे तथा बोले, ''यह काठ-सा प्रतीत हो रहा है।'' इसके अनन्तर बाबा ने दूसरी बार उसे हाथ से पकड़कर लेन्स द्वारा रश्मि-पात करना शुरू किया। १०-१५ सेकेण्ड में ही वह तथाकथित काठ का टुकड़ा खूब सख्त पत्थर के टुकड़े के रूप में परिणत हो गया। देखने में अपूर्व सुन्दर लाल रंग का ग्रेनाइट स्टोन हो गया। बाबा ने कहा, ''देखो, हुआ है या नहीं।'' अभय बाबू अब क्या कहते ? उन्होंने कहा, ''देख तो रहा हूँ अति आश्चर्य व्यापार है। मैं इसे ले जा सकता हूँ क्या ? मेरी इच्छा है, इसे मैं अन्यान्य बहुत से लोगों को दिखाऊँ। सभी इसे देख सकेंगे न ?'' बाबा ने कहा, ''निश्चय ही देख सकेंगे। तुम इसे निःसंकोच ले जा सकते हो।''

अभय बाबू ने पत्थर ले लिया। तब मैंने उनसे कहा, ''अब तो आप सूर्य-विज्ञान को स्वीकार करेंगे ? प्रत्यक्ष से बढ़कर तो और कोई प्रमाण नहीं है ?'' अभय बाबू ने कहा, ''प्रत्यक्ष देख रहा हूँ यह सत्य है। यह ग्रेनाइट स्टोन है यह भी सत्य है। किन्तु सूर्य के आलोक से यह किस प्रकार प्रस्तुत हो सकता है, यह नहीं समझ पा रहा हूँ। विज्ञान के मतानुसार सूर्य-रश्मि से यह सम्भव नहीं है। बाबाजी ने सम्भवतः योगबल से यह रचना की है। मैं इसे विज्ञान की सृष्टि नहीं मान सकता।''

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाबाजी—"तुम क्या योगबल या इच्छाशक्ति का तत्त्व कुछ जानते हो ? जो इच्छाशक्ति नहीं जानता, सूर्यविज्ञान भी नहीं जानता उसके लिए ज्ञानी-कर्मी का वाक्य, बिना ननु-नच किये, स्वीकार कर लेना कर्त्तव्य है।" अभय बाबू ने सिर झुकाकर उसे स्वीकार किया। अन्त में उन्होंने कहा, "हुआ है सही, किन्तु किस प्रकार हुआ, यह कुछ भी मेरी समझ में नहीं आ सका।" उन्होंने बाबा को प्रणामकर पत्थर लेकर प्रस्थान किया।

लगभग इसी समय के आसपास और एक विशिष्ट जिज्ञासु पुरुष बाबा के निकट आ उपस्थित हुए। उनको उन्हीं की इच्छानुसार एक फूल को अंशतः भिन्न-भिन्न फूलों के रूप में परिणतकर और शेष अंश को पत्थर के रूप में परिणतकर अखण्ड एक फूल के आकार में रचनाकर बाबा ने दिखाया। समग्र वस्तु एक फूल मालूम पड़ता था, जिसकी एक पंखुड़ी गुलाब की, एक पंखुड़ी अड़हुल की, एक पंखुड़ी कमल की, एक पंखुड़ी चम्पा की और शेष अंश पत्थर का था।

एक दिन मैंने आलोचना के सिलसिले में आकृति (Form) और द्रव्य (Matter) के परस्पर सम्बन्ध के विषय में बाबा से प्रश्न किया। बाबा ने कहा, "विज्ञान के बल से जिस किसी आकार का जिस किसी द्रव्य में संचार किया जा सकता है।" किस प्रकार वह होता है, उसे प्रत्यक्ष दिखाने के लिए एक पान का पत्ता भाण्डार-गृह से लाने को कहा। वह लाया गया। यह पान का पत्ता बंगाल देश में प्रचलित बड़े आकार का पान था, काशी का छोटा मघई पान भी मँगाया गया। तब बाबा ने कहा, "इस बँगला पान को काशी के मघई पान में परिणत किया जाता है।" तब वहाँ उपस्थित एक भद्र पुरुष ने कहा, "काशी का पान अच्छा होता है सही, किन्तु वह आकार में बहुत छोटा है।" इसके बाद बाबा ने काशी के पान के पत्ता का बँगला पांन में संचार किया और बँगला पान का पत्ता लेकर काशी के पान के आकार के अभिनव पान की रचना की। काशी का पान ठीक बँगला पान के तुल्य बड़े आकार में हुआ एवं बँगला पान काशी के पान के तुल्य छोटे आकार का हुआ। देखा गया तो स्वाद भी दोनों का बदला हुआ प्रतीत हुआ।

देखते-देखते प्रयाग महाकुम्भ का पर्व आ पहुँचा। बाबाजी कई एक शिष्यों और भक्तों के साथ ९ जनवरी को प्रातःकाल इलाहाबाद चले गये। यह सन् १९१८ ई० की बात है। मैं भी इलाहाबाद को रवाना हुआ। मेरे साथ भूषणचन्द्र वसु, मास्टर महाशय (खुलनावासी उपेन्द्रचन्द्र भट्टाचार्य) और राजस्थान जयपुर-निवासी विजयचन्द्र चतुर्वेदी (काशी संस्कृत कॉलेज में आगे चलकर ये वेदाध्यापक नियुक्त हुए)। ये वर्त्तमान वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के वेदाध्यापक श्रीभगवत्प्रसाद मिश्र के बहनोई थे। जार्जटाउन में एक भद्र पुरुष के मकान में बाबा के रहने की व्यवस्था की गई थी। हम तीन लोगों ने भी उसी मकान में स्थान ग्रहण किया था। प्रयाग में महाकुम्भ का यही प्रथम दर्शन मेरा था। इसके पूर्व सन् १९१२ ई० में मैं प्रयाग में अर्धकुम्भ का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दर्शन करने गया था सही, किन्तु तब उस तरह दर्शन हुए नहीं। इस बार बाबाजी के साथ साधु-दर्शन का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने कई अच्छे अर्थात् औरों की अपेक्षा अधिक उन्नत साधुओं को दिखा दिया था। उनमें-से नेपाल की एक संन्यासिनी की खूब अधिक प्रशंसा की थी।

जार्जटाउन में रहते समय पहली रात में एक विशेष घटना घटी थी। बाल-बाल बच जाने के कारण जो एक दुर्घटना में परिणत नहीं हुई। जार्जटाउन के मकान के जिस कमरे में श्री श्रीगुरुदेव के रहने की व्यवस्था की गयी थी, ठीक उससे सटे हुए दूसरे कमरे में उनके शिष्य और संगी लोगों के रात्रिवास की व्यवस्था हुई थी। इन दोनों कमरों के बीच में एकमात्र दरवाजा था। उसको खोल देने पर एक कमरे से दूसरे कमरे में गमनागमन किया जाता था। रात्रि के समय यह दरवाजा बन्द किया गया था सही, किन्तु अर्गल बन्द नहीं किया गया। रात्रिशेष में श्री श्रीगुरुदेव क्रियासन से उठकर अपने नित्यकृत्य के अन्तर्गत चण्डीपाठ कर रहे थे। उस समय दूसरे कमरे से रामऋषि नामक एक व्यक्ति ने शौच के लिए बाहर जाने के निमित्त तन्द्रा के आवेश में भ्रमवश दूसरा दरवाजा न खोलकर बाबा के कमरे की ओर का दरवाजा खोल डाला। खोलते ही देखते हैं कि बाबा आसन पर बैठकर चण्डीपाठ करने के लिए प्रवृत्त हुए हैं। देखते ही उन्हें झटका लगा एवं अपनी भूल समझकर उन्होंने वह दरवाजा बन्द कर दिया। वह व्यक्ति दूसरा कोई नहीं था, बाबा के नित्य साथ रहने वाला रामऋषि नामक पाठक ब्राह्मण था। बाबा उस पर बहुत स्नेह करते थे, इसके थोड़ी देर बाद ही बाबा पाठ समाप्तकर, किसने एकाएक कमरे में प्रवेश किया था यह जानने के लिए दूसरे कमरे में पधारे और सबसे पूछा। रामऋषि ने अपना भ्रम स्वीकारकर बाबा के चरणों में मस्तक नवाकर क्षमा-प्रार्थना की। बाबा ने तब कहा, ''ऋषि, तुम बाल-बाल बच गये हो। यदि ५ मिनट पहले तुम कमरे में प्रवेश करते तो प्रवेश करते ही तत्क्षण अचेतन हो पड़ते। यहाँ तक कि और भी तीव्र वैद्युतिक आघात पाने की सम्भावना थी। क्योंकि मैं जब आसन पर था तब सारा कमरा अत्यन्त उत्कट तडित्-शक्ति से परिपूर्ण था, विजातीय तडित्-शक्ति का संस्पर्श होते ही वह उस पर आघात करता। अस्तु, जगदम्बा ने तुम्हारी रक्षा की है। ऐसी गलती फिर कभी न हो।'' वस्तुतः ही बाबा की क्रिया के कमरे से सटे किसी कमरे में रहना, विशेषकर रात्रि के समय, निरापद नहीं है— यह तब सभी की समझ में आया।

बाबा कई एक दिनों के बाद ही इलाहाबाद से काशी लौट आये। उसके कुछ दिनों के बाद ही मेरा दीक्षा-कार्य सम्पन्न हुआ। वास्तव में मैंने उनके इलाहाबाद जाने के पूर्व ही एक छात्र की मार्फत पत्र भेजकर दीक्षा का दिन स्थिर करने के लिए उनसे अनुरोध किया था। इसके बाद १७ जनवरी को मैंने दूसरी बार उन्हें स्मरण करा दिया। मेरी दीक्षा का दिन निश्चित हुआ २१ जनवरी, १९१८ ई० अथवा सौर ८ मास, १३२४ बं० सं०। मेरी दीक्षा के लिए अनुमति की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। क्योंकि प्रथम दर्शन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के दिन ही बाबा मुझे दीक्षा देंगे, ऐसा आभास बाबा ने स्वयं ही मुझे दे दिया था। जो कुछ विलम्ब हुआ था वह केवल दिन निश्चित करने में ही हुआ था। ५।२८१ दिलीपगंज विशुद्धानन्द कुटीर में अर्थात् हनुमानघाट के आश्रम में मेरी दीक्षा हुई थी। उसी दिन और भी एक वृद्ध भद्रपुरुष को दीक्षा प्राप्त हुई थी। उनका नाम क्षेत्रनाथ बन्द्योपाध्याय था। वे लम्बी दाढ़ी वाले तथा पुष्ट शरीर के थे, प्रायः १६ वर्ष तक लगातार अनुरोधकर प्रतीक्षा में दीर्घकाल व्यतीत करने के बाद उन्हें अनुमति मिली थी। दीक्षा के पहले दिन प्रचलित नियम के अनुसार दीक्षा की उपयोगी वस्तुएँ एकत्रकर सन्ध्या समय मैंने आश्रम में रामत्रृषि के निकट पहुँचा दी थीं। उन सामग्रियों में मुख्य कतिपय ये थीं—एक कुशासन, उसके ऊपर बिछाने के लिए एक गलीचानुमा आसन, सबके ऊपर बिछाने के लिए एक रेशम का आसन, एक ताँबे का तावीज, पाँच छटाँक विशुद्ध गोघृत, उसके अनुरूप एक काँसे की थाली, अपने पहनने के लिए एक जोड़ा पट्टवस्त्र, कुमारी को देने के लिए लाल किनारे की साड़ी और एक योगदण्ड। इनमें से घी का संग्रह करना ही सबसे अधिक कठिन था; क्योंकि विशुद्ध गोघृत होना आवश्यक था। उसका भूषण बाबू ने मेरे लिए संग्रह कर दिया था। तीन आसन बाबा विधिपूर्वक संस्कार-कर दीक्षार्थी को उसके बैठने के लिए लौटा देते थे। ताँबे का तावीज वस्तुतः रक्षा-कवच है। वह अति मूल्यवान् तथा शिष्य की अकालमृत्यु का निवारक है। विशुद्ध गोघृत पाँच छटाँक काँसे की कटोरी में रखकर उसके ऊपर इष्ट-मन्त्र के उच्चारण की क्रिया करनी पड़ती है। उसमें मन्त्र के प्रभाव से अपने-आप ही अग्नि-प्रज्वलन होता है, बाह्य अग्नि की आवश्यकता नहीं होती। यही चिदग्नि है, इसके द्वारा ही कुमारी के वस्त्र का संस्कार करना चाहिए। यह संस्कारयुक्त वस्त्र दीक्षार्थी को लौटा दिया जाता है एवं उसे किसी एक कुमारी को पहनने के लिए देकर यथाविधि कुमारी की सेवा की व्यवस्था करनी चाहिए—अवश्य दक्षिणा के साथ। इस सम्प्रदाय में होम के बदले ऐसी व्यवस्था है। इसमें लौकिक अग्नि के बदले इष्टमन्त्रात्मक कुमारी शक्ति-रूप चिदग्नि का उपयोग किया जाता है। यह अवश्य दीक्षादाता गुरु ही किया करते हैं। अस्तु, पहले दिन यह सब सामग्री पहुँचाकर दूसरे दिन प्रातः अर्थात् बहुत तड़के गंगा-स्नानकर और शुद्ध वस्त्र पहनकर दीक्षा के लिए मैं आश्रम में उपस्थित हुआ।

दीक्षाकार्य विधिपूर्वक समाप्त हुआ। गुरुदेव ने मस्तक पर शिवहस्त प्रदान किया, कान में इष्टमन्त्र प्रदान किया, अपने मस्तक से अपकर्षणकर उनके सहस्रारस्थ ज्योतिर्लिंग को ताँबे के तष्टा में रखकर उसमें मेरे इष्टमन्त्र द्वारा, पुष्प आदि उपचारों से मुझसे मेरे इष्ट देवता की पूजा कराई तथा क्रिया-पद्धति सिखा दी, रक्षाकवच प्रदान किया एवं सम्प्रदायगत समयचार बतला दिया। विधि-निषेध में जो-जो उन्होंने कहा था उनमें से सस्त्रीक ब्रह्मचर्य-पालन आदि और भोजन के विषय में अण्डा, प्याज, लहसुन का वर्जन आदि मुख्य हैं। जप और क्रिया का परस्पर सम्बन्ध कैसा है, यह बतला दिया। प्रातःकाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और सन्ध्या को यथासम्भव क्षण पकड़कर यदि कार्य किया जा सके तो उत्तम है, यह भी बतला दिया था। इसके अतिरिक्त मेरे व्यक्तिगत अध्यात्म-जीवन के इतिहास के सम्बन्ध में उन्होंने जो-जो कहा था, गोपनीय होने से, उसका मैंने यहाँ उल्लेख नहीं किया। साधन-जीवन के गुह्यतत्त्व बाहर प्रकाशयोग्य नहीं हैं। विश्वास और कर्म के सम्बन्ध के विषय में प्रश्न करने पर बाबा ने कहा था—"यथाविधि कर्म करने की चेष्टा करनी चाहिए—कर्म ही मूल है। इससे विश्वास अपने-आप ही होगा—ज्ञान, भक्ति, प्रेम अपने-आप ही अभिव्यक्त होंगे। प्रत्यक्ष विषय में विश्वास न हो, यह सम्भव नहीं। भोजन करने पर उदरपूर्ति के लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए।" इसके अनन्तर आगे और भी कहा था "हमलोगों को अनेक कठिन तपस्याएँ करनी पड़ी हैं, सुदीर्घकाल तक नाना प्रकार के नियन्त्रणों में नाना प्रकार के कष्ट सहन करने पड़े हैं। तुमलोगों के लिए वे सब कृच्छ्रसाधन आवश्यक नहीं होंगे; क्योंकि सारभूत वस्तु तुम लोगों के लिए मैने रखी है—वही तुम लोगों को आधार के अनुरूप मैं देता हूँ। कर्म का विधान भी खूब सरल है। नैतिक जीवन को विशुद्ध रखकर विधि-विधान के अनुसार कर्म करने पर कोई कमी नहीं रहती, रह नहीं सकती।" तब समय अधिक नहीं था; क्योंकि मेरे बाद ही फिर एक व्यक्ति की दीक्षा की व्यवस्था थी। मैंने सोचा, जो-जो जिज्ञास्य है उसकी जिज्ञासा पीछे करूँगा। कर्म के अन्त में दक्षिणा देकर और प्रणामकर चला आया।

एक बात इस प्रसंग में कह रखता हूँ। दीक्षा के समय श्रीश्रीगुरुदेव का जो चेहरा मैंने देखा था उसे कभी न भूल सकूँगा। वह विश्वगुरु की मूर्ति थी—पूर्ण प्रज्ञा और महाकरुणा का एकत्र सम्मिश्रण था, असीम ऐश्वर्य और अक्षय वात्सल्यरस का अभूतपूर्व मिलन था। मेरी दीक्षा के समय भी बड़े गुरुदेव श्रीश्रीभृगुराम स्वामी का श्रीश्रीगुरुदेव की काया में दीक्षा देते समय आवेश हुआ था। दोनों सत्ताएँ एक सत्ता में परिणत हुई थीं। अवश्य कुछ दिनों के बाद यह प्रथा उठ गई थी—तब आदेश की आवश्यकता फिर नहीं रही।

आश्रम से मकान में लौट आकर मैंने कुमारी-भोजन की व्यवस्था की। तभी से देह में एक नवीन भाव के संचार और स्पर्श का मैं अनुभव करने लगा। विशुद्ध बैन्दव देह किसे कहते हैं, यह मैं उस समय अवश्य जानता न था—यह जो सद्गुरु द्वारा प्रदत्त दीक्षा के प्रभाव से मायिक देह के साथ अस्पर्शयोग से युक्त होकर अभिन्न की तरह कार्य करता रहता है, उसका रहस्य तब मैं जानता न था। न जानने पर भी उसके जरा-जरा आभास का मैं अनुभव करने लगा। मैंने सन्ध्या-पूजा के लिए एक अलग कमरे की व्यवस्था की। उस कमरे में पूजनीया मातृदेवी के सिवा साधारणतः और किसी को भी जाने का आदेश न था। यहाँ तक कि मेरी पत्नी को भी नहीं; क्योंकि तब उनकी दीक्षा हुई नहीं थी। मैं स्वयं भी जागतिक भाव लेकर उस कमरे में जाता न था। इस कारण कमरे में एक अद्भुत तेजोमय शक्ति का अधिष्ठान हुआ था, जिसके प्रभाव से अनेकानेक अद्भुत अनुभव और प्रत्यक्ष दर्शन निरन्तर हो रहे थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरी दीक्षा के थोड़े दिनों के बाद ही बाबा काशी से चले गये। जितने दिन यहाँ रहे थे, मैं प्रतिदिन उनके निकट जाता था और विविध आध्यात्मिक विषयों की चर्चा करता था। यह दीक्षा-व्यापार अत्यन्त रहस्यमय है। गुरुदेव साधारणतः उस रहस्य को खोलते न थे। उनके साथ बाद को इसके सम्बन्ध में मैंने बहुत आलोचना की है। शास्त्रों का गूढ़ अभिप्राय भी समझने की यथाशक्ति चेष्टा की है एवं थोड़ी-बहुत स्वानुभूति भी गुरु-कृपा से मुझे प्राप्त हुई है। अन्तर्जीवन-यात्रा के इस प्रथम पर्व में उनसे मुझे जो-जो उपदेश मिले थे, उनका सारांश यह है—

१. साधन-जीवन में कर्म ही प्रधान है। पुस्तक का ज्ञान शुष्क ज्ञान-मात्र है। उन्मादिनी भक्ति भी यथार्थ भक्ति नहीं है। वास्तविक ज्ञान और वास्तविक भक्ति महत्वपूर्ण वस्तुएँ हैं—उनका विकास कर्म से अपने-आप ही होता रहता है।

२. केवल कृपा के ऊपर निर्भर रहना सुविवेक का कार्य नहीं है। कृपा अत्यन्त पवित्र वस्तु है। वह निरन्तर ही उस महाशक्ति से टपक रही है। उसके सिवा जीव की ऊर्ध्वगति का दूसरा कोई उपाय नहीं है, किन्तु कर्म के बिना उसको धारण नहीं किया जा सकता। इसलिए कर्म ही प्रधान है। कर्म से असाध्य-साधन होता है। कर्म माने क्रियाशक्ति, यह स्मरण रखना चाहिए।

३. उपासना उच्च आदर्श का अनुसरण है। देव-देवी सभी इस महाआदर्श के बाह्य प्रकाशमात्र हैं। सभी देवता मूल में एक और अभिन्न हैं। देवताओं में कभी भी छोटे-बड़े का भेद नहीं करना चाहिए। पर अभ्यास के लिए अपने इष्टभाव में दृढ़ रहना चाहिए।

४. कर्म किये जाओ—उसके बाद जो होने वाला है, वह अपने-आप ही होता रहेगा।

५. नित्यक्रिया के समय साधारणतः जो सब दर्शन आदि होते हैं, संस्कार के अनुसार वे विभिन्न लोगों के भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। उन दर्शनों की ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहिए। संस्कार का खेल अपने-आप ही जो होता है, होता रहे। इन सबकी उपेक्षा करनी चाहिए एवं अपने लक्ष्य की ओर यथाशक्ति सर्वदा दृष्टि रखनी चाहिए।

६. साधक और योगी एक नहीं हैं। अनेक लोग साधकों को योगी समझते हैं, यह भूल है। दीक्षा के समय कौन साधक है और कौन योगी है—इसकी गुरु को परीक्षा करनी चाहिए, अन्यथा हाथी का बोझ बकरे को देने पर वह उसे सहन नहीं कर सकता एवं बकरे का बोझ हाथी को देने पर वह उससे प्रभावित नहीं होता।

७. बाहर से देव-दर्शन का मूल्य नगण्य है। स्वयं देवत्व-लाभ किये बिना देव-दर्शन को बाहरी देव-दर्शन कहते हैं। जो-जो नहीं होता, वह उसको जान नहीं सकता। इसलिए यदि देवता को जानना हो तो स्वयं देवता होना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

८. किन्तु जीव जीव ही रहता है, दिव्यभाव होने पर भी उसकी वह स्वरूप-सत्ता जाती नहीं। इसीलिए वह योगी हो सकता है। अन्यथा साधक के स्तर से उठना उसके लिए कठिन है। योगी अपनी सत्ता को खोता नहीं, पर एक ओर अखण्ड सत्ता के साथ और दूसरी ओर अनन्त खण्ड सत्ताओं के साथ अभिन्न होकर प्रकट हो सकता है।

९. "शनैः पर्वतलङ्घनम्" धीरे-धीरे जो होता है वही ठीक है। शीघ्रता में विशिष्ट भाव का विकास भी बहुधा अच्छा नहीं होता। रूपान्तर-लाभ मनुष्य के जीवन का चरम आदर्श है, वही यथार्थ मुक्ति है। तब जन्म-मरण हट जाते हैं, अपनी पूर्ण सत्ता जाग जाती है और अद्वैतभाव का स्फुरण होता है। किन्तु योगी इस चरम अद्वैत में भी 'अहम्-त्वम्' (मैं-तुम) भाव को रख दे सकते हैं। इसीलिए योगी के सिवा ज्ञान के बाद भक्ति का आस्वादन दूसरा कोई कर नहीं सकता।

१०. तुम्हें किसी विषय में चिन्ता करनी नहीं चाहिए। मैं सदा ही तुम्हारे निकट हूँ और रहूँगा। ठीक तरह कर्म करने पर यह समझ सकोगे और किसी विषय में तुम्हें अभाव-बोध होगा नहीं।

मेरी दीक्षा के कुछ दिन बाद ही, जहाँ तक स्मरण होता है, २५वीं जनवरी के आसपास, बाबा काशी से बर्दवान चले गये। वहाँ से कलकत्ता होते हुए कुछ समय के लिए बालेश्वर गये। वहाँ से उनके दो कार्ड मुझे मिले। यह फरवरी महीने की बात है। वहाँ से लौटकर वे बर्दवान आये (अप्रैल में) और बर्दवान से १७ सौर वैशाख को पुरी जाने के लिए कलकत्ता गये। पुरी में नया आश्रम बना था। तब तक भी आश्रम का सर्वांग संस्कार हुआ नहीं था। फिर भी वह रहने लायक हो गया था, इसलिए पुरी के गुरुभाइयों के विशेष अनुरोध से बाबा को वहाँ जाना पड़ा। कलकत्ता से वे पुरी गये १३२५ बँगला सं० (१९७५ वि०) के ज्येष्ठ मास में—सम्भवतः १८ सौर ज्येष्ठ के कुछ पूर्व। इस बार उनका पुरी में अधिक दिन रहना नहीं हुआ। लगभग १ महीना पुरी-आश्रम में रहकर वे लौट आये एवं थोड़े समय के लिए शान्तिपुर पधारे। तदुपरान्त कलकत्ता होकर सौर २७ आषाढ़ के पूर्व ही बर्दवान लौट आये।

उस समय तक कलकत्ता में रहने योग्य आश्रम स्थापित नहीं हुआ था। हम लोगों के गुरुभाई कलकत्ता कॉरपोरेशन के कलक्टर बाबा के परम भक्त स्व० योगेशचन्द्र वसु महाशय ने अपने भवानीपुर-स्थित नं० ८, कुण्डूरोड के भवन में एक ओर का भाग बाबा के रहने योग्य बना दिया था। उसमें बाबा के आह्निक और निवास का एक कमरा और बाबा की उपस्थिति में सत्संग के योग्य एक विशाल हाल-कमरा था। मार्बल द्वारा दोनों स्थानों का फर्श बनाया गया था एवं हाल में बाबा का एक विशाल तैलचित्र और उसी के निकट बाबा के उपवेशन के लिए शय्यासन रखा गया था। बाबा के आह्निक के अथवा शयन के कमरे में साधारण लोगों का प्रवेशाधिकार नहीं था। किन्तु हाल-कमरे में जाति-पाँति के भेदभाव के बिना उनके दर्शनों के लिए सभी उपस्थित हो सकते थे। जब तक रूपनारायणनन्दन लेन में बाबा के आश्रम की स्थापना नहीं हुई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तब तक बाबा कलकत्ता आने पर साधारणतः इसी स्थान पर निवास करते थे। योगेश दादा परम प्रीति के साथ केवल बाबा की ही सेवा करते थे सो बात नहीं थी, ये समागत गुरुभ्राता और अन्य भक्तवर्ग का भी यथोचित आदर-सत्कार द्वारा आप्यायन करते थे। योगेश दादा के मकान का वह भाग दूसरे भाग से एक प्रकार पृथक् ही था एवं आश्रम न होने पर भी आश्रम के तुल्य उसकी पवित्रता सुरक्षित रहती थी।

दीक्षा तो हो गई। किन्तु अधिक दिन श्रीगुरुचरणों के सत्संग का आनन्द लेने के पहले ही उनके काशी से चले जाने के कारण मैं मन में अत्यन्त अभाव का अनुभव करने लगा। उनके पुनः काशी आने के समय तक सत्संग और साधुदर्शनकर अवकाश का समय काटने लगा। इस समय के सत्संग में मेरे पूर्वपरिचित दो महापुरुषों के नाम उल्लेख-योग्य हैं। उनमें से एक सज्जन का नाम भार्गव शिवरामकिंकर (योगत्रयानन्द) था। इनके वृत्तान्त का मैं पहले ही इंगित के रूप में उल्लेख कर चुका हूँ। ये परा और अपरा विद्याओं में तथा प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षा में समान रूप से शिक्षित थे। इनका पूर्व नाम शशिभूषण सान्याल था। ये गृहस्थ होकर भी अन्तःसंन्यास-सम्पन्न थे। मैंने मनुष्यत्व के एक अक्षुण्ण आदर्श की इन्हीं के जीवन में पहले उपलब्धि की थी। इनके साथ मेरा प्रथम परिचय लगभग ८ वर्ष पूर्व हुआ था। तभी से मैं घनिष्ठ रूप से इनसे बराबर मिलता-जुलता रहता था एवं इनके जीवन का प्रभाव मेरे व्यक्तिगत जीवन पर पड़ने लगा था। पूज्यपाद स्व० रामदयाल मजूमदार प्रभृति महात्माओं ने भी इनके सम्पर्क में आकर आध्यात्मिक जीवन में यथेष्ट उपकार प्राप्त किया था। मजूमदार महाशय के साथ मेरा सन् १९०६ ई० से ही परिचय था एवं उनकी प्रवर्तित 'उत्सव' पत्रिका पहले से ही मेरे अध्यात्मजीवन की प्रधान सहायक बन चुकी थी। वे भी जिन पर गुरु के रूप में श्रद्धा करते हैं वे कितने उच्च स्तर के महापुरुष हैं, मैंने स्वयं उन्हें न समझ सकने पर भी, यह धारणा की थी। भार्गव शिवरामकिंकर के 'आर्यशास्त्र-प्रदीप', 'मानवतत्त्व' प्रभृति ग्रन्थों से मैं पहले से हो परिचित [1] था। किन्तु उनके पवित्र जीवन की तुलना में उनका असाधारण पाण्डित्य भी फीका प्रतीत होता था। उनका मैं लौकिक और अलौकिक दोनों विषयों में ऋणी था एवं उनको अपने धर्मजीवन का एक प्रकार से उपदेष्टा गुरु ही मानता था।

दूसरे सज्जन का नाम था स्व० सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय। वे पूजनीय स्व० विजय-कृष्ण गोस्वामी महाशय के शिष्य थे एवं कलकत्ता डन-सोसाइटी के प्रतिष्ठाता थे। वे चार वर्ष पहले गुरु के आदेश से डन-सोसाइटी और डन-मैगनीज के कार्य से अवसर ग्रहणकर निवास करने काशी आये थे। जे ४७ नं० टेढ़ीनीम में निवास करते थे। काशी में आने के कुछ दिन बाद से हीं उनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ।

---

१. 'साधु-दर्शन और सत्प्रसंग' नाम के मेरे द्वारा बंगभाषा में रचित ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में पृ० ४९ से ८८ तक इनका संक्षिप्त विवरण प्रकाशित है। हिन्दी अनुवाद विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तब प्रयाग का कुम्भ समाप्त हो चुका था। बहुत साधु-सन्त प्रयाग से ही विश्वनाथ-दर्शन के लिए काशी आये थे एवं महाशिवरात्रि तक काशी में रहे थे। कोई-कोई साधु शिवरात्रि के बाद भी बहुत काल तक काशी में रहे थे। इनमें से अधिकांश दशाश्वमेध और प्रयागघाट में ही रहते थे। कोई-कोई गंगा के उस पार रेती में कुटी बनाकर रहते थे। भाग्य रहने पर इन सब साधुओं में कभी-कभी अति उत्कृष्ट महापुरुषों के दर्शन प्राप्त होते थे। प्रायः सभी भक्तमण्डली द्वारा परिवृत रहते थे। श्रीगुरुदेव के चले जाने के बाद जनवरी से मई मास के मध्य तक मुझे विशेष रूप से निम्नलिखित कई एक महात्माओं का सत्संग प्राप्त हुआ था—

१. सदानन्द ब्रह्मचारी
२. आनन्द या कालिकानन्द अवधूत
३. मायानन्द चैतन्य
४. वसन्त साधु
५. ब्रह्मानन्द स्वामी
६. स्वा० नवीनानन्द
७. योगिराज देवानन्द स्वामी

ठाकुर तरणीकान्त सरस्वती के साथ भी इसी समय मेरा प्रथम परिचय हुआ। वे फरवरी १८ तारीख को मेरे साथ भेंट करने के लिए मेरे कर्मस्थान 'सरस्वती-भवन' में आये थे एवं उन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि एक दिन मैं उनके निवास-स्थान में जाऊँ और उनके साथ भेंट करूँ। उन्होंने ४ नं० साक्षी विनायक में, आनन्द-आश्रम के श्रीलक्ष्मीनारायण-शिला की स्थापना की थी। ठाकुर तरणीकान्त ने कई अलौकिक शक्तियों के कारण प्रसिद्धि प्राप्त की थी। वे पातालेश्वर में रहते थे। उसके लगभग छह दिनों के बाद एक दिन जाकर मैंने उनसे भेंट की। उनके शक्ति-प्रदर्शन एवं इस सम्बन्ध में श्रीगुरुदेव के अलौकिक खेल का आगे यथासमय मैं वर्णन करूँगा। धुनिया पहाड़ के महात्मा के दर्शनों की प्राप्ति के लिए अत्यन्त आकांक्षा रहने पर भी उनके दर्शन नहीं हो सके। श्रीरामठाकुर महाशय का पता भी एक बन्धु से मुझे लग गया था। तब वे मानसरोवर के निकट किसी स्थान पर रहते थे। किन्तु उस समय उनके दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। कुछ दिनों के बाद प्राप्त हुआ।

सदानन्द ब्रह्मचारी तब हरिश्चन्द्रघाट के निकट रहते थे, बाद में विश्वनाथ-गली में पूर्व की ओर की पंक्ति में ढुण्ढिराज गणेश के प्रायः निकट ही एक दुतल्ले मकान में रहने लगे। इन्होंने अपने साधन-जीवन के अधिकांश समय तक तिब्बत में वास किया था एवं योगी नाम से प्रसिद्ध थे। मैंने सुना था कि भार्गव शिवरामकिंकर भी इन पर श्रद्धा करते थे।

आनन्द अवधूत काली के उपासक थे। अनेक लोग इन्हें सिद्ध पुरुष मानते थे। ये जलदर्पण, नखदर्पण आदि कई छोटी-छोटी सिद्धियों के अधिकारी थे। किन्हीं-किन्हीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का ऐसा विश्वास था कि इन्होंने जगदम्बा के दर्शन प्राप्त किये हैं। इनके साथ अधिक घनिष्ठता का अवसर मुझे प्राप्त नहीं हुआ। मैंने सुना था कि इनका पूर्व-निवासस्थान पावना जिले के मथुरा ग्राम में था।

मायानन्दजी महाराष्ट्र देश के अच्छे साधु थे। नर्मदा-तट पर ओंकारेश्वर के निकट निवास करते थे। मुझे ये ज्ञानी और भक्त प्रतीत हुए थे। इनके द्वारा रचित किसी-किसी ग्रन्थ का अध्ययन करने का बाद में मुझे सुयोग प्राप्त हुआ था। उनमें मराठी-ग्रन्थ ज्ञानेश्वर के गीताभाष्य का हिन्दी-अनुवाद प्रधान है। अवश्य, मैं जिस समय की बात कह रहा हूँ उस समय वह प्रकाशित नहीं हुआ था। वे गीतोक्त पुरुषोत्तम-योग और विश्वरूप-दर्शन के सम्बन्ध में बीच-बीच में व्याख्यान देते थे एवं जिज्ञासुओं को उक्त दर्शन की प्रक्रिया का भी उपदेश देते थे। उन्हें काशी अहल्यावाई-घाट-निवासी दण्डीस्वामी परलोकगत विशुद्धानन्द सरस्वतीपाद से यह योगरहस्य का ज्ञान उपदेशरूप में प्राप्त हुआ था। पूछने के बाद मुझसे उन्होंने उसे प्रकट किया था। वे दशाश्वमेध घाट पर पुटिया के मन्दिर के नीचे दक्षिण की ओर सीढ़ियों के पत्थरों पर दिन-रात रहते थे। भीषण घाम में पत्थरों के उत्तप्त होने पर भी वे अपना स्थान छोड़ते न थे।

वसन्त साधु का पूरा नाम वसन्तकुमार भट्टाचार्य था। उनकी साधु लोगों की-सी कुछ भी वेशभूषा न थी। वे सफेद कपड़े पहनते एवं ब्रह्मचारी अवस्था में रहते थे। अवस्था भी अधिक नहीं थी, मैं समझता हूँ, पैंतीस-चालीस वर्ष से अधिक अवस्था के नहीं होंगे। किन्तु वे असाधारण ज्ञानी थे। उनसे मैं प्रायः नित्य ही मिलता था एवं उनके अनुभूत ज्ञान के सम्बन्ध में चर्चा करता था। वे योग, चक्र, मन्त्र आदि के सम्बन्ध में अपने व्यक्तिगत अनुभव कहते थे। उन्होंने एक गुह्य तत्त्व का थोड़ा-सा आभास मुझे दिया था, जिस विषय में पहले मैंने कभी सुना नहीं था। उन्होंने कहा था कि योगी को सहस्रार से यदि हृदय में आना हो तो गुह्यिनी नाड़ी की सहायता लेनी चाहिए। इस नाड़ी के साथ सृष्टि का सम्बन्ध है। एक घण्टा पिंगला में, एक घण्टा इड़ा में और एक घण्टा सुषुम्ना में व्यास की स्थिति होनी चाहिए। पिंगला की क्रिया के समय योगी की चिन्ता का केन्द्र रहता है उदर, किन्तु इड़ा की क्रिया के समय चिन्ता का केन्द्र होता है मस्तिष्क एवं सुषुम्ना में क्रिया के समय चिन्ता का केन्द्र होता है हृदय। हृदय कर्म और ज्ञान का सन्धि-स्थान है। सुषुम्ना ज्ञान-नाड़ी है। सहस्रार श्मशान या शिवस्थान है। तैंतीस करोड़ देवताओं का प्रकाश सहस्रार में होता है। वहाँ शान्ति नहीं है। शान्ति एकमात्र हृदय में है। गुह्यिनी नाड़ी का स्पर्श किये बिना जगन्माता के साथ वार्त्तालाप होना सम्भव नहीं है। बंगाल देश के गौड़ीय सम्प्रदाय द्वारा प्रवर्तित कीर्त्तनतत्त्व में एक वैज्ञानिक रहस्य निहित है। मृदंग की आवाज पिंगला में कार्य करती है, करताल की ध्वनि क्रिया करती है मस्तिष्क में, दोनों को एक साथ बजाने पर वे परस्पर को निरुद्ध करते हैं और हृदय में साम्य-भाव का उद्बोधन करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदय की यह महत्व की बात बहुत समय बाद स्वर्गीय गणपति शास्त्री 'काव्यकण्ठ' के विवरण से स्पष्ट हुई। उनके द्वारा विरचित 'उमासहस्रम्' नामक स्तोत्र-ग्रन्थ में इसका उल्लेख है एवं उनके शिष्य विद्वद्वर कृपाली शास्त्री की व्याख्या से वह साधारण लोगों के समझने योग्य हुआ है। संवित् का मूल स्थान हृदय अथवा दहर-कलम है। वहाँ से वह आज्ञाचक्र अथवा भ्रूमध्य होकर सहस्रार में जाती है और सहस्रार से देह में संचरित होकर बाह्य विषयों में संचरित होती है। संवित् को सहस्रार से उत्तारकर आज्ञा के मार्ग से पुनः हृदय में स्थापित करना ही योगी का कर्त्तव्य है। महर्षि रमण का भी इस सम्बन्ध में ऐसा ही इंगित है।

ब्रह्मानन्द योगी का पूर्व नाम था मतिलाल गांगुली। ये पहले मेरठ में नौकरी करते थे। एक महापुरुष की कृपा से कुछ-कुछ सत्य की उपलब्धिकर एकान्त में वास करते थे। बाह्य दृष्टि से ये गृहस्थ थे और देवनाथपुरा में रहते थे। इनका पुत्र कुछ दिनों के बाद मेरे साथ परिचित हुआ और विद्याचर्चा में मेरा साथी बना। तब वह सम्भवतः हिन्दू कॉलेज में बी०ए०, अथवा एम०ए० कक्षा में पढ़ता था। ब्रह्मानन्दजी देखने में साधुवेषधारी नहीं थे, यह ठीक है; किन्तु बहुत से साधु-संन्यासी उनका अनुगमन करते थे। उनके प्रधान शिष्य थे आँखकट्या स्वामी नाम से प्रसिद्ध एक संन्यासी। वे प्राचीन रसायन-विद्या में निष्णात थे एवं पारद आदि के भस्म द्वारा बहुत लोगों की दुःसाध्य व्याधियों को शान्त कर देते थे। पहले से ही मेरे ऊपर वे बहुत स्नेह करते थे। अधिक क्या कहूँ, एक दिन उन्होंने अपने निवासस्थान में मुझे बुलाकर उन्हें प्राप्त रहस्यविद्या के सम्बन्ध में भी कुछ-कुछ उपदेश दिया था। उन्होंने कहा था, 'तुम्हें सद्‌गुरु के निकट उपदेश प्राप्त हुआ है, यह उसी का फल है।''

जब मैंने पहले दीक्षा पाई थी तब मैं पिशाचमोचन में एक बगीचे के मकान में रहता था। सन् १९१८ ई० की फरवरी के आखिर तक लगभग दो वर्ष चार महीने मैं उस मकान में रहा। बाद में वहाँ असुविधा होने के कारण पहली मार्च से विक्टोरिया पार्क के उत्तर फाटक के निकट ही 'परिमल-वास' नामक दुमंजिले मकान में निवास करना मैंने आरम्भ किया। इस मकान में लगभग चार वर्ष पाँच महीने रहा।

बाबा के काशी से प्रस्थान करने के कुछ अधिक दो मास बाद ही मेरे व्यक्तिगत लौकिक जीवन के प्रधान अवलम्बन, मेरे शिक्षागुरु, संरक्षक और परम हितकारी डॉ० वेनिस का कुछ दिन गलगण्ड रोग भोगने के उपरान्त १४ अप्रैल को नैनीताल में देहावसान हो गया। उनके अभाव में मैं एक प्रकार से पितृविहीन और असहाय अवस्था में परिणत हो गया था। इस दुःसमय में एकमात्र श्रीगुरु का स्नेह-सम्बन्ध ही मेरी सान्त्वना का मूल आधार रहा।

बाबा के पुरी और शान्तिपुर से लौटकर बर्दवान में आने की बात मैं पहले ही कह चुका हूँ। वे बर्दवान से आषाढ़ ३१ सौर (१३२५ बं०सं०) को काशीधाम आते हुए मार्ग में धनबाद स्टेशन में गुरुभाई स्व० ब्रजेन्द्रनाथ वसु के मकान में ठहरे। वहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से श्रावण २ सौर को रवाना होकर श्रावण ३ सौर को काशी आ पहुँचे। हम सभी लोग उनका स्वागत करने के लिए स्टेशन पर गये थे। राधिका वापुली दादा ने आश्रम में यथाविधि बाबा के और उनके संगियों के भोग की व्यवस्था कर रखी थी।

बाबा काशी में रहे लगभग चार मास अर्थात् श्रावण ३ सौर से कार्तिक मास के अन्त तक। इसी वर्ष वर्षा के बाद से शीत काल तक अर्थात् आश्विन से पौष मास तक संक्रामक एन्फ्लुएन्जा रोग का भयानक प्रादुर्भाव हुआ था। केवल काशी में ही हुआ था सो बात नहीं है। भारतवर्ष में सर्वत्र ही, यहाँ तक कि पृथिवी के सभी देशों में इस महामारी का भयंकर प्रकोप हुआ था। यह तब War fever अर्थात् युद्ध-ज्वर के नाम से सर्वत्र वर्णित होता था, क्योंकि सन् १६१४ ई० से चल रहे जर्मनी के भीषण महायुद्धवश अन्तरिक्ष-मण्डल के विषाक्त होने के कारण इस रोग का आविर्भाव हुआ था, यही अनेक लोगों का विश्वास था। तब काशी में अहोरात्र व्यापक रूप से मृत्यु की ताण्डवलीला चलती दिखाई देती थी। दिन-रात इतने अधिक लोग काल के गाल में समाते थे कि काशी के प्रसिद्ध दो श्मशानों में शवदाह के लिए स्थान नहीं मिलता था। कई एक नवीन श्मशान बनाये गये थे। गंगा के उस पार भी शवदाह होता था। श्मशानों नें भी कभी-कभी एकाधिक शव एक ही चिता में जलाये जाते थे। यह सब होने पर भी बहुत से मुर्दे बाध्य होकर गंगा में फेंक दिये जाते, फलतः गंगाजल में जगह-जगह सड़े मनुष्य-शरीर दिखाई देते थे। प्रातः प्रत्येक घर में शवदाह की विकट दुर्गन्ध वायु-वेग से बहकर आती थी। हनुमानघाट के आश्रम में भी सन्निकटवर्ती हरिश्चन्द्रघाट की श्मशान-भूमि के शवदाह की दुर्गन्ध का जब-तब अनुभव होता था।

श्री गुरुदेव के इन चार महीनों के काशीनिवास-काल में जिन लोगों ने उनसे दीक्षा प्राप्त की थी, उनमें पूर्ववर्णित भूषण दादा प्रधान थे।

ठाकुर तरणीकान्त के वृत्तान्त का मैं पहिले ही उल्लेख कर चुका हूँ। ये अपने को विशेष शक्ति-सम्पन्न मानते थे एवं बहुत लोगों के निकट अपनी उपार्जित शक्ति का प्रदर्शन भी करते थे। इस सम्बन्ध में उनको एक विशेष अभिमान था। उनके साथ जब भी विचार-चर्चा छिड़ती, मैं देखता कि वे सूर्य-विज्ञान पर विश्वास करते न थे। वे कहते थे कि मैं अपनी आँखों से देखे बिना विज्ञान के सम्बन्ध में विश्वास नहीं कर सकता। श्री गुरुदेव से अनुमति लेकर एक दिन मैं उनको सूर्य-विज्ञान की प्रक्रिया दिखाने के लिए हनुमानघाट के आश्रम में ले गया। यह सन् १६१८ ई० की तारीख १३ नवम्बर की बात है। उन्होंने जो-जो देखना चाहा था, बाबा ने विज्ञान के बल से उनको वही दिखाया था। इसके कारण सरस्वती (तरणीकान्त) महाशय इच्छा न रहने पर भी विज्ञान को सत्य मान लेने के लिए बाध्य हुए थे।

इस प्रसंग में ठाकुर तरणीकान्त के सम्बन्ध में एक और विशिष्ट घटना लिखने की मुझे इच्छा है। यह घटना यद्यपि कुछ दिनों के बाद घटी थी तथापि इसे प्रासंगिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझकर इसी स्थान में वर्णित करना उचित प्रतीत होता है। एक दिन मैं किसी विशेष काम से विश्वनाथ की गली से होकर चौक की ओर जा रहा था। यह तीन या चार बजे की बात है। ठाकुर महाशय आनन्द-आश्रम के दरवाजे के सामने बैठे थे एवं मुझे देखकर आश्रम के भीतर आने के लिए उन्होंने आमन्त्रित किया। बहुत दिनों से ही उनकी इच्छा थी कि अपनी उपार्जित कई एक शक्तियों के खेल मुझे दिखावें। मैं आमन्त्रित होकर उनके साथ आश्रम के दोतल्ले में एक खुले स्थान पर जाकर बैठा। आश्रम में तब उनके और मेरे सिवा और कोई आदमी नहीं था। उन्होंने कहा, "गोपी बाबू, अनेक दिनों से ही आपको मैं कई एक शक्तियों के खेल दिखलाना चाहता हूँ। आज दिखाऊँ, यह सोचकर मैं आपको बुला लाया हूँ। आप सामने के कमरे में जाकर बैठें। चारों ओर के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्दकर नोटबुक से एक सादा कागज लेकर उसके चार टुकड़ेकर प्रत्येक टुकड़े में अपनी इच्छा के अनुसार कोई प्रश्न अथवा कोई नाम लिखें। अपनी पेन्सिल से ही लिखें। लिखने के बाद कागज के इन चार टुकड़ों की गोली बनाकर मुट्ठी में उन चार गोलियों को बन्दकर मेरे पास लौट आवें।" उनके निर्देशानुसार मैंने सामने के कमरे में जाकर वैसा ही किया एवं गोलियों को मुट्ठी में रखकर उनके निकट लौट गया। उन्होंने कहा, "इन गोलियों को मुट्ठी में रखकर ही उलट-पुलट कर डालें।" मैंने वैसा ही किया। उन्होंने कहा, "इन चार गोलियों में किसमें आपने क्या लिखा है, आप स्वयं बता सकते हैं क्या ?" मैंने कहा, "नहीं।" उन्होंने उसके बाद मुझसे जिस किसी एक गोली को अपने हाथ से उठाने को कहा एवं उसमें जो लिखा था वह बतला दिया। उसके अनन्तर गोली खोलकर देखा गया तो उन्होंने ठीक ही कहा था। प्रत्येक स्थल में शब्दों का वर्ण-विन्यास तक उन्होंने बतला दिया था। उस समय रवीन्द्रनाथ जापान गये थे। मैंने एक में लिखा था, "रविबाबू इस समय कहाँ हैं ?" उन्होंने वह ठीक-ठीक बतला दिया था एवं मुझसे कहा था रवि लिखने में व के बाद ह्रस्व इकार क्यों दिया है ? रवीन्द्र लिखने में तो व के बाद दीर्घ ईकार होता है। तब मैंने कहा था कि रवीन्द्र शब्द में वकार के बाद दीर्घ ईकार होने पर भी रवि शब्द में वकार के बाद ह्रस्व इकार ही हुआ करता है। यह बात कहने का उद्देश्य यह है कि उन्होंने अलौकिक उपाय से केवल मानस-ध्वनि सुन पाई हो सो बात नहीं थी। प्रश्न-वाक्यों के वर्णविन्यासों को भी स्पष्ट रूप से उन्होंने देखा था। अर्थात् यह केवल Thought reading नहीं था Clairvoyance भी था। उन्होंने चार कागज के टुकड़ों में क्या-क्या लिखा है, यह ठीक-ठीक बतला दिया था। तनिक भी भूल नहीं हुई थी। इस प्रदर्शन-व्यापार में उन्होंने मेरा अथवा मेरे हाथ में रखे किसी कागज का भी स्पर्श नहीं किया एवं आसन से उठे भी नहीं। इसके बाद बाहर से एक आदमी जिज्ञासु के रूप में उनके निकट आया। तब उन्होंने उस आदमी का अवलम्बनकर Thought transference की एक प्रक्रिया मुझे दिखलाई, अर्थात् अपना एक विचार उस आदमी में संचरितकर वह उस आदमी के अपने विचार के रूप में किस प्रकार प्रकाशित हो सकता है उसकी प्रक्रिया दिखलाई। इसके बाद सरस्वती महाशय को धन्यवाद देकर मैं उनके आश्रम से चला आया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह प्रक्रिया देखने के बाद मैंने सरस्वती महाशय में कुछ शक्ति है, ऐसा सोचना आरम्भ किया था एवं एक दिन प्रसंगतः इस घटना की बात श्री श्रीगुरुदेव के निकट कही भी थी। यह सन् १९१८ ई० की बात नहीं है, कुछ बाद की बात है, यह पहले ही मैं कह चुका हूँ। जिस दिन बाबा के निकट इस प्रसंग में बातचीत हुई उस दिन उनके किसी जगह आमन्त्रित होकर जाने की बात थी। वे जाने की तैयारी कर रहे थे, किन्तु मेरी यह बात सुनकर उन्होंने तत्क्षण बाहर जाने का आयोजन स्थगितकर मुझसे पूछा, "तुमने जो देखा है, उससे तुम्हें क्या प्रतीत हुआ ?"

मैं—मुझे प्रतीत हुआ कि भद्रपुरुषमें कुछ-कुछ शक्ति का विकास हुआ है। ऐसा यदि न हुआ होता तो उन्होंने इस प्रकार का व्यापार दिखाया कैसे ? यह एक विशिष्ट शक्ति का खेल है, इसमें सन्देह क्या हो सकता है ? हाँ, शक्ति अल्प हो सकती है। अल्प होने पर भी शक्ति शक्ति ही है।

बाबा—यह सब कुछ नहीं है। यह वास्तव में शक्ति का खेल ही नहीं है। यह एक प्रकार की चालाकी है। तुम्हारे नेत्र सूक्ष्म नहीं हैं, इसलिए तुम चालाकी पकड़ नहीं पाये।

बाबा का यह उत्तर सुनकर सचमुच मैं सन्तुष्ट नहीं हो सका, क्योंकि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार देखने में उनकी कोई चालाकी ताड़ नहीं पाया था। इसलिए बाबा के उस व्यापार को चालाकी कहने पर भी मेरी बुद्धि सत्यानुसन्धानेच्छु होकर चालाकी मान न सकी। मैंने प्रतिवादकर बाबा से कहा, "बाबा, आपने जो कहा है वह निश्चय ही सत्य है, किन्तु मैं अपनी बुद्धि में इसकी धारणा नहीं कर सक पा रहा हूँ। मैंने जो प्रत्यक्ष देखा है उसका मैं कैसे अपलाप करूँ।"

मेरा चित्त अब अत्यन्त संशयाकुल था। एक ओर गुरुवाक्य एवं दूसरी ओर तथाकथित प्रत्यक्ष अनुभव। मैं दोनों का समन्वय नहीं कर पा रहा था। मेरी यह व्याकुलता देखकर बाबा ने कहा, "तुम्हारा चित्त अत्यन्त पीड़ा का अनुभव कर रहा है। संशय-निवृत्ति न होने तक यह स्वाभाविक है।" यह कहकर उन्होंने मुझसे कहा, "जाओ, तुम नीचे की मंजिल में चले जाओ, पूजा के कमरे से[1] धूपदानी और एक दियासलाई साथ ले जाओ। बीच की मंजिल में अथवा नीचे की मंजिल में किसी एक कमरे में जाकर अपनी नोटबुक से एक सादा (कोरा) कागज फाड़कर उससे अपनी इच्छानुसार चाहे कोई प्रश्न लिखना। उसके बाद जिस पर प्रश्न लिखा हो, उस कागज को मोड़-माड़कर

---

१. बाबा जब हनुमानघाट के आश्रम में रहते थे तब तीसरी मंजिल के कमरे में वे पूजा करते थे और उसी कमरे में रात्रि में शयन करते थे। इसीलिए वह उनका पूजा-गृह और शयन-गृह दोनों ही था। तीसरी मंजिल में ही कुछ दूर एक छोटे कमरे में उनकी रसोई होती थी, बीच में प्रशस्त छत थी। दूसरी मंजिल में उनका बैठकखाना (बैठने का कमरा) था, जहाँ दर्शनार्थी, शिष्य, भक्त आगन्तुक, सन्त-साधु सभी इकट्ठे होते थे। दूसरी मंजिल के अन्यान्य कमरों में व नीचे की मंजिल में शिष्यवर्ग और भृत्य आदि रहते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitlzagtion by eGangotri

इस धूपदानी में रखकर दियासलाई से उसमें अग्नि लगा देना। उसके सम्पूर्ण भस्म हो जाने पर उस भस्म को दोनों हाथों से मलकर उड़ा देना। इतना हो जाने पर निश्चिन्त हो धूपदानी और दियासलाई साथ लेकर ऊपर चले आना। बाबा का आदेश पाकर मैंने तदनुसार सब कुछ किया एवं अपना लिखित प्रश्न जिस कागज पर था उसे जलाकर, भस्म उड़ाकर तीसरी मंजिल में बाबा के पूजा के कमरे में बाबा के निकट लौट आया। बाबा तब चौकी पर बैठे थे। पीछे एक तकिया था। मेरे जाकर उन्हें प्रणाम करते ही उन्होंने पूछा, "लिखा था ना ? कागज जला दिया ना ?"

मैं—बाबा, जलाकर मैंने वह भस्म उड़ा भी दिया है।

बाबा—ऐसी स्थिति में तुम्हारा लिखा वह कागज अब नहीं है ?

मैं—नहीं बाबा! अब यहाँ वह कहाँ प्राप्त हो सकेगा ?

यह कहने के साथ-ही-साथ अपने टेक दिये तकिये के नीचे से उन्होंने एक कागज मुझे देकर कहा, "यह लो बेटा, अपना कागज और प्रश्न का उत्तर भी उसमें है।" कागज देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया, क्योंकि यह कागज वही नोटबुक का कागज था एवं उसमें मेरे हाथ का लिखा प्रश्न भी था। केवल इतना ही नहीं, उसके नीचे के हिस्से में आलता से लाल-लाल अक्षरों में मेरे प्रश्न का उत्तर भी लिखा था। वह लिखा बाबा के हाथ का नहीं था एवं आश्रमस्थ किसी आदमी के हाथ का भी नहीं था। लड़की के हाथ का लिखा मालूम पड़ता था। आश्चर्य का एक कारण यह था कि जिस कागज को मैंने अपने हाथ से नष्ट कर दिया था, ठीक वही कागज मेरे अपने हाथ के लिखे ठीक उन्हीं प्रश्नों को लेकर दूसरी बार किस तरह आया ? दूसरी एक बात—प्रश्न के उत्तर ही किसने लिखे ? स्पष्ट रूप में लिखा उत्तर पाया गया, पर किसने लिखा, इसका पता पाने का कोई उपाय नहीं। तब मैंने विस्मयविमुग्ध चित्त से बाबा से कहा, "यह तो अत्यन्त आश्चर्य है, कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ। सरस्वती महाशय के निकट जो मैंने देखा था, यह उससे भी अद्‌भुत है, यह तो और भी उच्चतर शक्ति का परिचायक है।" बाबा ने हँसकर कहा, "बेटा, यह भी धोखा है, तुम चाहे कितने ही आश्चर्यान्वित क्यों न होओ, किन्तु मूल में यह धोखे के सिवा और कुछ नहीं है। यथार्थ योग के मार्ग में यह विघ्न है। तुम लोगों के नेत्र अभी खुले नहीं, इसलिए तुम लोग वास्तविक सत्य का दर्शन नहीं पा रहे हो। असत्य को सत्य मान रहे हो। सत्य का साक्षात्कार-लाभ करना ही योगी का कार्य है। योग के बिना ज्ञान कहाँ ? यह किस तरह हुआ एवं इसे किस प्रकार देख रहे हो, इसका रहस्य मैं तुम्हें समझा दूँगा। जान रखो, यह भी मायाजाल है। समस्त विश्व में यह मायाजाल व्याप्त है। इसका भेदन करना ही चक्षु का उन्मीलन है। जिसका चक्षु उन्मीलित हुआ है उसको कोई धोखा नहीं दे सकता, यहाँ तक कि विश्वस्रष्टा महामायावी की माया से भी वह मुग्ध नहीं होता; क्योंकि वह सब कुछ देख पाता है। कर्म के पथ पर चलो, क्रमशः सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जान सकोगे।" इसके बाद उन्होंने इस रहस्य की प्रक्रिया समझा दी। यहाँ मैंने उसे उद्‌घाटित नहीं किया।[१]

बाबा की संक्षिप्त उपदेशवाणी से महाभारत के शान्तिपर्व में उक्त नारद के श्वेतद्वीप गमन और नारायण के श्रीविग्रह-दर्शन की कथा का मुझे स्मरण हो आया। श्वेतद्वीप योगी भक्तों के लिए भी अति दुर्गम स्थान है। मैंने नारायण की परा प्रकृति अथवा परम स्वरूप का दर्शन किया है, ऐसा सोचकर नारद आत्मतृप्ति तथा उल्लास का अनुभव कर रहे थे। उसी समय आकाशवाणी हुई, "नारद, मेरे सत्य स्वरूप के दर्शन तुमने कर लिये हैं, ऐसा विचारकर तुम गर्व का अनुभव कर रहे हो। किन्तु निश्चय जानो, तुमने जो देखा है वह मेरे द्वारा रची गई केवल माया है—

"माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद ।"

योगाचार्य वार्षगण्य ने कहा था—

"गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।
यत्तु दृष्टिपथं यातं तन्मायैव सुतुच्छकम् ॥"

बाबा की उपदेशवाणी से मुझे ज्ञात हुआ कि सत्यनिष्ठ योगी के लिए इन सब दर्शनों से मुग्ध होना उचित नहीं। दृश्य-दर्शन के अन्तराल में जो सत्य निहित है उसी को धरने, हृदयंगम करने की चेष्टा करना उचित है। दृष्टि का पर्दा खुल जाने पर ही वह सम्भव है।

बाबा के साथ मेरा परिचय लगभग एक वर्ष पूर्व हुआ था। इस एक वर्ष के मध्य लगभग साढ़े पाँच मास वे काशी में नहीं रहे। इसलिए शेष साढ़े छह मास मात्र

---

१. इस प्रसंग में Prof. Bert Reese के वृत्तान्त का स्मरण हो आया। उनमें इस प्रकार की असाधारण क्षमता थी। श्री Hereward Carrington ने सन् १९११ ई० के मई महीने की तीसरी तारीख को उनके द्वारा प्रदर्शित कई अलौकिक घटनाओं का वर्णन किया था। उन्होंने कई प्रश्न अलग-अलग कागजों में लिखे थे और दो आदमियों के नाम लिखे थे। बाद में उन सबको मोड़कर परस्पर मिलाकर एक-एक करके एक-एक दराज में अपने हाथ से रख दिया था। Reese ने इनमें से किसी का भी स्पर्श नहीं किया। इसके बाद उन्हें एक कागज दिया गया। उसे उन्होंने जला डाला। तदनन्तर दर्शकों की इच्छानुसार एक-एक दराज का प्रश्न और उसका उत्तर उन्होंने कहना शुरू किया। बाद में ज्ञात हुआ कि सब ठीक थे। Carrington का यह वर्णन फ्रांस से फ्रेंच भाषा में प्रकाशित Annals of Psychic Science नाम की पत्रिका में सन् १९१३ ई० के नवम्बर मास में प्रकाशित हुआ था। उसी पत्रिका में Dr. J. Maxwell और Dr. Schrenk Notzing ने स्वलिखित प्रबन्ध में अपने समक्ष पेरिस में प्रदर्शित घटना का वृत्तान्त भी लिखा है। बहुत जगह इस प्रकार की घटनाएँ छपती रहती हैं। अनेक स्थानों में निम्नस्तर की विदेह आत्मिक सत्ताओं द्वारा वे सब संघटित हुआ करती हैं। ये सब आश्चर्य होने पर भी इनका मूल्य अधिक नहीं है।

बाबा ने जो खेल दिखाया, विशेषज्ञ लोग उसे Psychograph कहते हैं। वस्तुतः उसका भी आध्यात्मिक मूल्य अधिक नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनका संगलाभ हुआ, यह कहा जा सकता है। हनुमानघाट-आश्रम में रहते समय बाबा की जीवनधारा मुझे बहुत अच्छी लगी थी। तब अत्यन्त घनिष्ठ रूप से उनके साथ हिलने-मिलने का सुयोग मुझे प्राप्त हुआ था, जिसके कारण उनका अतुलनीय ऐश्वर्य रहते भी ऐश्वर्य-निमित्तक व्यवधान का मैं कभी भी अनुभव नहीं कर सका। उनका प्रेम कितना गहरा है, इसका आभास पाकर ही तब मैं मुग्ध हो पड़ा था। वे कितने बड़े हैं, इसका मैं बहुधा ध्यान नहीं रख पाता था। वे अक्सर कहते थे, ''माँ का प्रेम ही वास्तविक प्रेम है। अन्य सब प्रेमों में स्वार्थ रहता है, और तो और, पत्नी के प्रेम में भी स्वार्थ है। माँ के प्रेम में सन्तान की कल्याणकामना के सिवा कोई स्वार्थ नहीं है।'' इसलिए बहुधा मातृंगतप्राण बाबा में माँ का ही मूर्त्त रूप मैं देख पाता था। उनको सुख-दुःख का साथी समझता था। उनके निकट मुख खोलकर कुछ भी कहना नहीं पड़ता था। कातर हृदय का नीरव क्रन्दन वे सुन पाते थे, एवं सुनते थे। केवल यही नहीं, साथ-ही-साथ प्रतिवेदन भी देते थे। किन्तु यह जानने नहीं देते थे कि वे ओट में रहकर सब कुछ देखते हैं एवं प्रयोजन के अनुसार प्रतिवेदन देते हैं।

उस समय हम लोग अपराह्न में प्रायः प्रतिदिन ही घूमने जाते—नाव से भी जाते थे, पैदल टहलते हुए भी जाते थे, जब जैसी सुविधा होती। नाव से यदि जाते तो कभी उस पार से रामनगर की ओर, कभी प्रवाह के प्रतिकूल उस पार से अस्सी-संगम लाँघकर नगवा की ओर एवं कभी-कभी प्रवाह के अनुकूल मणिकर्णिका तथा पंचगंगा होते हुए आदिकेशव की ओर अर्थात् वरुणा-संगम की ओर जाते थे। साथ में हमलोग आठ-दस जन रहते थे। नाव में भी ज्ञान, विज्ञान और योग का प्रसंग चलता था। कभी विख्यात गायक भक्त योगेन्द्र राय यदि उपस्थित रहते तो हारमोनियम के साथ भजन-संगीत होता था। पैदल टहलते हुए, चाहे नाव से, अस्सी की ओर जाने पर हमलोग पूजनीय हरिहर बाबा के साथ भेंट करते थे। उनके लिए कुछ भाँग घोंटकर एक पवित्र पात्र में ले जाते थे और उनके दर्शन करते थे। हरिहर बाबा तब तुलसी-घाट में रहते थे। वे उसे प्रेम से ग्रहण करते थे और पानकर तृप्त होते थे।

मेरे दीक्षा-जीवन के इस प्रथम वर्ष में ही दुर्गापूजा के समय (१३२५ बं०सं०) परम श्रद्धास्पद मेरे बाल्यकाल के शिक्षागुरु-स्थानीय परम सुहृत् श्रीयुत अक्षयकुमार दत्तगुप्त को काशी में प्रथम बार बाबा के दर्शन प्राप्त हुए थे।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुदेव की स्मृति में

श्री मुनीन्द्रमोहन कविराज

[मुनीन्द्रमोहनजी ने चौदह-पन्द्रह साल की उम्र में अपने कुलगुरु से मन्त्र-दीक्षा ले ली थी। कुछ दिनों मायाजाल में भटकने के बाद बाबा का यश सुनकर उनके जन्मस्थान बर्दवान जिला के बण्डूल गाँव में जाकर उनसे मन्त्रदीक्षा की प्रार्थना की। बाबाजी ने पहले ही बता दिया था कि तुम्हारी दीक्षा हो चुकी है, किन्तु इनकी विनीत प्रार्थना पर इन्हें दीक्षामन्त्र दे दिया था। गुरुदेव का संस्मरण इन्होंने कई लेखों में सविस्तार किया है। उसका कुछ विशिष्ट अंश दिया जा रहा है।]

[१]

किस साल की यह बात है यह नहीं कह सकता तो भी यह प्रायः चालीस वर्ष पहले की घटना है, इसमें सन्देह नहीं। उस समय एक दिन बर्दवान आश्रम के बड़े कमरे में श्री श्रीगुरुदेव पलंग के ऊपर अपने आसन पर विराजमान थे। सामने हमारे बड़े गुरुभाई श्री हरगोविन्द मुखोपाध्याय, श्री उपेन्द्रनाथ चौधरी, श्री कालाचाँद मजूमदार, श्री विनोदविहारी भट्टाचार्य आदि बैठे थे। हम लोग कुछ दूर हटकर बैठे थे। प्रसंगवश सृष्टि के रहस्य के सम्बन्ध में बात चली। बाबा एक साधारण कागज का टुकड़ा लेकर दो अँगुलियों में रखकर उसकी गोटी बनाने लगे। उसके बाद उसे हवा में हिलाते हुए उन्होंने हम लोगों से कहा, 'देखो, यह कपूर हो गया।' उनकी बात सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने उसका थोड़ा-थोड़ा हिस्सा लेकर अपने मुँह में डाल लिया। देखा गया कि उच्च कोटि का क़पूर बना था। उसके शेष भाग को हाथ में लेकर उसकी गोटी बनाते हुए उन्होंने कहा, 'यह देखो स्फटिक हो गया।' सबने उसे साफ-साफ देखा। किसी-किसी ने उसे देखकर कहा कि स्फटिक तो सचमुच हो गया है किन्तु उसमें छेद नहीं है। यह सुनकर बाबा ने उसे फिर हाथ में लेकर मुट्ठी में घुमाते-घुमाते आँवले में बदल दिया। यह सबने देखा। उसे फिर दो अँगुलियों में पकड़कर मुट्ठी में हिलाते हुए उसे एक मँझले आकार के कच्चे मीठे आम का रूप दे दिया। उस आम को काटकर उसका थोड़ा-थोड़ा टुकड़ा सभी को खाने को दिया गया। जो शेष बचा उसे बाबा ने मुट्ठी में घुमाते-घुमाते कहा, 'यह देखो, जवा का फूल हो गया।' एक लाल रंग का जवा-पुष्प सबने देखा। उसकी ढेंपी पकड़कर बाबा ने सबको दिखा दिया। फिर बायें हाथ के तलवे की विपरीत दिशा में फूल को लटका दिया। देखते-देखते फूल, धीरे-धीरे फूल का सिरा, पंखुड़ियाँ और अन्त में हरी ढेंपी भी उनके हाथ में छिप गयी। हम सब यह दृश्य देखकर अवाक् हो गए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[२]

पारसाल जन्माष्टमी के समय बर्दवान गया था। बात के सिलसिले में बाबा ने बताया कि अभी मैंने विज्ञान द्वारा ब्रह्मा के परमाणु को पकड़ रखा है। यह सुनकर कुछ गुरुभाइयों ने उसे देखने की उत्सुकता प्रकट की। तब बाबा के कथनानुसार चाँदी की थाली और राँगे का टुकड़ा लाया गया। इसके बाद एक दूसरी थाली पर राँगे के टुकड़े को रखकर नीचे से आग की आँच में गर्म करके थाली पर राँगे की कलई की गयी। यह सबेरे की बात है। बेला ढलते-ढलते बहुतेरे शिष्य आ जुटे। तब विनोद दादा ने बात चलाई। बाबा के आदेशानुसार एक शीशी, जो कार्क से बन्द थी और चाँदी की थाली के साथ राँगे की कलई वाली थाली लाई गई। सब लोग बाहर की रोशनी में लाकर उसे देखने लगे। देखने पर मालूम हुआ कि राँगे की थाली सफेद नहीं है। साथ ही राँगे की जैसी थाली बनाने की बात थी वैसी ही बनी थी। तब उन्होंने चाँदी की थाली के ऊपर इस थाली को रखकर शीशी के कार्क को खोलकर एक छोटी-सी लकड़ी को शीशी में डालकर उसे कार्क लगाकर थाली में फेंक दिया। तब 'सो' ऐसा शब्द हुआ। यह शब्द सुनते ही बाबा ने सबसे कहा, 'यह शब्द सुनो—परमाणु अपना काम कर रहा है।' थोड़ी देर बाद जब 'सो' का शब्द हो गया तब राँगे की थाली हाथ में लेकर स्वयं देखकर बाबा ने उसे उजाले में रखने को कहा। सभी शिष्यों ने देखा। राँगे की थाली में लिखा हुआ 'ओंकार' चमकता दिखाई पड़ा। विनोद दादा ने पूछा, 'शीशी तो टूट भी जा सकती है।' जवाब में बाबा ने कहा—'नहीं जी, नहीं। वह इस प्रकार रखी गयी है जिससे टूटे नहीं। किन्तु शीशी को यदि खोलकर रख दिया जाय तो दोतल्ले और तितल्ले की छत को फोड़कर आकाश में जा मिलेगी।'

[३]

हम लोग ठेठ गाँव के गरीब शिष्य थे। इसलिए बाबा जब भी आते, हम लोग बर्दवान के आश्रम में जाकर उनका दर्शन करते। इस साल जन्माष्टमी पर हम सभी पहुँचे थे। बाबा ने कहा, 'आज तीन-चार दिन से आह्निक के समय घर में गोटी खेलने के शब्द से क्रिया में विघ्न हो रहा है। एक दिन सहसा आँखें खोलकर देखा, गोपाल हमारे लक्ष्मी-नारायण के साथ गोटी खेल रहे हैं। देखते ही गोपाल और लक्ष्मीनारायण हँस पड़े।'

यह बात उपेन चौधरी दादा के साथ हो रही थी। प्रायः १२ या एक बजे के समय पुलिस अधिकारी श्री गिरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय एक सुन्दर गोपाल की मूर्ति और उनके पुत्र भुजंग बाबू (सम्भवतः अलीपुर के डिप्टी मजिस्ट्रेट) (मूर्ति के लिए) कार्पेट बिछा काठ का एक सिंहासन लेकर आश्रम में आ पहुँचे। बाबा की आज्ञा से श्रीगोपाल को पूजा-घर में सिंहासन पर रखा गया। बेर ढलने पर अपने इच्छानुसार गिरीन दादा ने गाड़ी की और उस पर उपेन दादा, मैं और गिरीन दादा बैठकर बाजार से श्रीगोपाल के लिए लाल किनारे की धोती और चादर खरीद लाए। बाबा ने पूछा—"क्या लाए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो ?'' गिरीन दादा ने कहा, ''धोती और चादर।'' हाथ में देते ही बाबा ने कहा, ''चिर-काल का नंग-धड़ंग बच्चा—क्या वह कपड़ा पहनेगा या उसे रख सकेगा ? जो हो, पहना दो, तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाय।'' कपड़ा पहनाया गया। गले में एक छोटा हार (सम्भवतः गिरीन दादा की स्त्री का दिया हुआ) और उत्तरीय चौहराकर उढ़ाया गया। दूसरे दिन देखा गया, गोपाल पसीने-पसीने हो गये हैं। वस्त्र और चादर से पसीना चूकर सिंहासन भी लाल रंग से रँग गया। देखने से लगता था कि किसी ने लाल रोशनाई गिरा दी है। श्रीश्री बाबा ने कहा, 'यह देखा बच्चा, उन्हें क्यों कष्ट दे रहे हो ? एक दिन पहना दिया अच्छा किया, अब उतार दो।' बाबा ने गोपाल के हाथ में अंगूर दे दिया। कुछ समय ऊपर के तल्ले पर बैठकर बात करने के बाद देखा गया कि गोपाल ने अंगूर खा डाला है। रस का दाग दिखाई पड़ रहा है। इसके अलावा कभी-कभी गोपाल की आँखों में आँसू दिखाई पड़ते थे। अन्त में एक दिन श्रीपतिचरण दादा की घर की स्त्रियों ने घर में बनाये छेना, मक्खन और तरह-तरह की संदेश आदि मिठाइयों का भोग लगाया। उसके बाद आँखों में आँसू नहीं आये। इस गोपाल-मूर्ति के मिलने की भी एक घटना है।

[४]

पारसाल जन्माष्टमी के समय सर्पी (इच्छापुर अंचल) के प्रायः सभी शिष्य एक साथ एक ही ट्रेन से बर्दवान के आश्रम में आ पहुँचे। मैं भी साथ में था। उस समय आश्रम की व्यवस्था श्री वीरेन्द्रकृष्ण मुखोपाध्याय कर रहे थे। जन्माष्टमी का कार्य सम्पन्न करने का भार—पहले दिन की सन्ध्या और उत्सव वाले दिन की दोनों बेला की सन्ध्या—एक अतिरिक्त ब्राह्मण को सौंपा गया था। किन्तु किसी विशेष कारण से ब्राह्मण आ नहीं सका। तब वीरेन्द्र दादा बहुत घबरा गए थे। उन्होंने हम लोगों को देखते ही कहा, ''अब ये इच्छापुर के लोग आ गए हैं, कोई चिन्ता की बात नहीं।'' इसका कारण यह था कि इच्छापुर के लोग सभी प्रकार के कार्यों में पटु होने के साथ-साथ सेवा के अवसर पाने को अपना सौभाग्य समझते थे। यह बात बाबा से कह दी गयी। यथासमय विधिपूर्वक सभी कार्य सम्पन्न हो गए। साढ़े-तीन बजे ट्रेन का समय था। उसके पहले ही पूज्य श्रीराधिकाप्रसाद राय चौधुरी विदा लेकर आ गए। वे मेरे हेडमास्टर थे। उनके बाद मैंने भी बिदा ली। साथ ही साथ दोनों व्यक्तियों ने स्टेशन जाते हुए फुटबाल का मैदान पार करते समय यह संकल्प किया कि आज से हम लोग सबेरे तीन बजे पूजा-पाठ पर बैठ जाया करेंगे और छह बजे उठ जाएँगे। मेरे मन में यह संकल्प जोरों से उठा था और मैं सचमुच उस दिन से सबेरे ढाई बजे उठ जाता था। शौच आदि से निवृत्त होकर ठीक तीन बजे पूजा पर बैठ जाता था और ठीक तीन घंटे बाद आह्निक से उठ जाता था। इस प्रसंग में बाबा की एक बात याद आ रही है। वे कहते थे, ''बच्चा रे, आग को चाहे दादी कहो, चाहे साली कहो, वह तो जलाएगी ही।''

तुम चाहे जिस प्रकार जप करो, काम तो बनेगा ही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय मैं शिशु कक्षा में अवश्य था, इसलिए उस समय की बात नहीं कही। किन्तु अब भी देखता हूँ कि मन हर समय स्थिर नहीं रहता—जप जरूर चलता रहता है, उसी के अनुसार अँगुलियाँ भी चलती हैं, किन्तु मन किसी दूसरी ही चिन्ता में उलझा रहता है। विषयान्तर से उसे हटाकर फिर यथास्थान लाना पड़ता है किन्तु वह फिर चला जाता है। सामान्यतः ऐसा ही हुआ करता था—अपने मन की यह दशा देखकर काशी में रहते समय एक दिन मैंने गुरुदेव से निवेदन किया, ''बाबा चाकर बाउल के एक गाने की बात सदा ही मन में रहती है। गाना इस प्रकार है:—

जो होने को नहीं वही क्यों मन में घिर-घिर आएगी,
साधारण वह वस्तु नहीं है जो मुझको मिल जाएगी ।
वन के शुक को दूर उड़ाकर बगुली को अपने घर लाकर,
सोचा, मेरे कहने पर 'राधो-मोहन' दुहराएगी ।
किन्तु दुष्ट यह चिड़िया ऐसी मुझे वेदना देती कैसी,
राधा-कृष्ण नहीं कह कर यह—'कोक-कोक' रट लाएगी ।
यदि यह उत्तम चिड़िया होती सीख अवश्य ग्रहण कर लेती,
हरे कृष्ण, अब हरे कृष्ण, यह कभी नहीं कह पाएगी ।

बाबा, यह कुलीन पक्षी नहीं है, कैसे होगा ? केवल आपकी कृपा का भरोसा है।''

इस प्रकार तीन दिनों तक ठीक तीन बजे से सबेरे छह बजे तक आह्निक पूरा हुआ। चौथे दिन सबेरे शौचादि के लिए मैदान में गया था। सहसा एक पागल सियार चुपके से आकर मुझे काटकर चला गया। बत्ती हाथ में लेकर पीछे मुड़कर देखा, ऐसा सियार था जिसकी देह पर एक भी बाल नहीं था। देखकर पोखरे में गया और वहाँ पानी से घाव को धो डाला। फिर घर आकर कार्बोलिक एसिड से उसे जला दिया। इसके बाद आह्निक करने बैठा। आह्निक पूरा करके बाबा को सारा ब्यौरा लिखकर लिफाफे में भेज दिया। इस बीच सुना कि कमलपुर गाँव में दो आदमी कुत्ते के काटने से मर गए हैं। मन चंचल हो गया। दस-बारह दिनों बाद सर्पी के श्री जगदानन्द को एक पत्र लिखकर बाबा ने एक दवा के पेड़ का नाम लिखकर उसे मुझे देने को कहा। इसके अलावा मुझे अधिक मात्रा में घी खाने को कहा। उन्होंने और भी लिखा था, ''यह पेड़ अगर मिल जाय तो ब्रह्मा का लेख भी मिट सकता है, यह जान लो। इसके जरिए साधारण जनों का उपकार कर सकते हो।'' जगदानन्द दादा तो अब परलोकवासी हो चुके हैं। उनके पुत्र श्रीमान् गुरुमति गोस्वामी ने उनकी जीवित अवस्था में ही उनके आदेशानुसार श्री दुर्गादास से दीक्षा ले ली थी। मेरे पिता महोदय उद्विग्न होकर बाबा के पास गये थे। बाबा ने उनसे कहा, ''आज ही जगदानन्द को दवा लिखकर भेजी है। कोई चिन्ता नहीं। घर या गाँव में यदि किसी के पास सुलतानी वनस्पति (बनात) हो तो एक आना वजन के मुताबिक लेकर घी के साथ खिला दो।'' मैं उसी से ठीक हो गया। उसके दो-एक साल बाद दो कुत्तों ने आपस में लड़ते हुए मुझे काट लिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तब भी उसी दवा से मैं अच्छा हो गया। इसके बाद जब बाबा का दर्शन करने के लिए मैं धनबाद गया था तब बाबा ने कहा था, "कुत्ता मर जाएगा।" घर पहुँचने पर खबर मिली कि कुत्ते को रक्त की टट्टी हो रही है। उसके तीन-चार दिन बाद वह मर गया।

[५]

बं० सन् १३३० में जब मैं और मेरी पत्नी दोनों ही घर नहीं थे तो रात में चोरी हो गयी। उसमें मेरी मँझली पुत्री के सारे गहने, बड़े लड़के मदन की सोने की जंजीर जो उसके ससुर ने दी थी, मेरी स्त्री तथा और सबका जो कुछ था, चला गया। इसके अलावा एक सन्दूक में जो कपड़े थे, वे विजयादशमी की यात्रा के चौबीस रुपये और एक घड़ी सब चोरी हो गया। श्रीबाबा को खबर देकर मैने प्रार्थना की, हम लोगों की जो चीजें चली गयीं, उनके लिए हमें दुःख नहीं है, किन्तु कन्या के गहनों के लिए मुझे बड़ा दुःख है, क्योंकि फिर से गहने देने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। इन्हीं गहनों के लिए मुझे जीवनभर निन्दा, लांछना और अपमान सहना होगा। इस पत्र के उत्तर में बाबा ने लिखा, 'मैं तो चिन्ता का कोई कारण नहीं देखता। मेरे उपदेश के अनुसार कर्म करोगे तो सब बातों में आनन्द ही आनन्द पाओगे।'

बाबा की चिट्ठी की बात सब जान गये। उधर पुलिस की भी फाइनल रिपोर्ट गयी थी। चोरों ने चोरी का माल अपने जिस सम्बन्धी के पास रखा था, एक दिन रात्रि के समय १० बजे उसके पुत्र के हाथ में किसी जन्तु ने काट खाया। देखते ही देखते उसका हाथ जोरों से सूज गया और लड़का पीड़ा से छटपटाने लगा। यह देखकर मालिक ने कहा, "मैंने सुना है कि मुनीन्द्र के गुरुदेव स्वयं महायोगी शिव हैं, मैं दूसरे के लिए अपने इकलौते पुत्र से हाथ धो रहा हूँ।"

यह सुनकर उसकी स्त्री ने चोरी के सब सामान लाकर पति के हाथ में देते हुए कातर भाव से कहा, "यह लौटा दो, जिससे लड़का बच जाए और हम पर कोई आफत न आए।"

गहने आदि जब मेरे किसी सम्बन्धी के हाथ लौटा दिये गये तब लड़के का कष्ट जाता रहा और उसके हाथ की सूजन भी धीरे-धीरे दूर हो गयी। इसके बाद पुरुष ने स्त्री से कहा, "उनका विचित्र खेल देखा। अब तो समझ में आ गया कि वे भगवान् हैं।"

[६]

बं० सन् १६३१ के अधिकांश दिनों में शाम को अन्दाल लौटकर रात में आराम करता था। सुबह होते ही अन्दाल के रोगियों में दवा बाँटकर दस बजे खाना खाता। फिर इच्छापुर, सर्पी आदि अंचल के रोगियों को दवा देने जाता और शाम को घर लौटता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह मेरा प्राय: नित्य का नियमित काम था। एक दिन गर्मियों में घर लौटते समय मुझे देर हो गयी। रात में एक पोखरे के किनारे की नीची राह में मैं तेजी से आ रहा था कि मुझे लगा कि किसी जन्तु ने मुझे काट लिया और इसके बाद एक साँप उछलकर भागा। मुझे लगा कि साँप सम्भवतः पैर के नीचे दब गया। बक्स ढोने वाली ने कहा, 'काकाजी, विषैला साँप सफेद था।' जलन हो रही थी। बक्से में आयोडीन थी। उसे अच्छी तरह लगा दिया। नौकरानी कहने लगी, 'गोष्ठ काका के यहाँ लौट चलिए।'' श्रीयुत गोष्ठबिहारी चक्रवर्ती इच्छापुर के हमारे गुरुभाई थे, वे बहुत अच्छे सर्प वैद्य थे। मैंने कहा, ''नहीं, घर पर भी मत बताना।''

श्रीगुरुदेव का स्तोत्रपाठ करता हुआ चला। जलन के होते हुए भी तेजी से पैर बढ़ाता घर पहुँचा। किन्तु नौकरानी ने मेरी पत्नी को बता दिया। गाँव के दो ओझाओं के आते ही मैंने पूछा—''क्यों भाई, क्या जरूरत है ?'' उन्होंने कहा, ''तुम्हीं ने तो बुलाया है।'' मैं समझ गया। पैर दिखाया। एक तरफ एक दाँत धँसा था, दूसरी ओर पहले स्थान से दूसरे स्थान तक खाली था। बाल लगाकर देखा गया, दाँत नहीं है, किन्तु जलन हो रही थी। ''दवा दे दूँगा किसी को भेज दो।'' मैंने कहा, ''नहीं, दवा नहीं खाऊँगा।'' इसी समय मेरे लड़के गुरुपद ने कहा, ''श्रीगुरुदेव की दवा एक पेड़ है। उन्होंने पोटु दादा को दी थी। थोड़ी सी घर में है। उसे पीस देता हूँ।'' वही दवा 'जयगुरु' कहकर मैंने खा ली। ओझों ने खाने और सोने को मना किया था। चाय पीकर मैं आह्निक करने बैठा। थोड़े ही समय में मेरी जलन शान्त हो गयी। भूख लगी थी, किन्तु ओझों के कहने से लोग दे नहीं रहे थे। अन्त में दूध और लाई ले ली। मिट्टी के कोठे पर जाकर सो गया। इधर नीचे से माँ और लड़कियाँ सचेत करने लगीं, कहने लगीं, ''सो तो नहीं गए ?'' तनिक शान्ति होते ही फिर नींद का झोंका आने लगा। उत्तर की ओर का जँगला खुलने की आवाज हुई। नीचे से सवाल आया, ''उत्तर ओर का जँगला खोला है क्या ?'' नींद छोड़कर आँखें खोलकर देखा मानों अनेक सर्च लाइटें एक साथ जल उठीं हों, साथ-ही-साथ बाबा के शरीर की भीनी-भीनी सुगन्ध आने लगी। तब कहीं मन शान्त हुआ और मैंने स्त्री और पुत्रियों को यह देखने के लिए बुलाया। वे सब तुरन्त दौड़ती हुई आ पहुँचीं, और हर्ष से कह उठीं, ''अब आप निश्चिन्त होकर सोइए, जब श्रीबाबा आ गए तब डर किसका ? और चिन्ता ही कैसी ?''

[७]

हम लोगों में से हर एक ने बाबा की इस कृपा को जानने का थोड़ा-बहुत सौभाग्य प्राप्त किया है। एक बार मैं जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में सपी की कुछ अरवी, नेनुवाँ आदि सब्जियाँ लेकर बर्दवान के आश्रम में गया था। बीरेन दा ने उसे भण्डार घर में भलीभाँति रख दिया। कलकत्ते से बहुतेरे गुरु भाइयों ने बेला, कमला नीबू, सेव, बेदाना आदि लाकर बीरेन दादा को दिया। देखकर मेरे मन में कुछ क्षोभ हुआ। मन में आया कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सबने अच्छी-अच्छी चीजें लाकर दीं और मैं लाया सिर्फ अरवी। सन्ध्या होने तक बहुतों ने बहुत कुछ लाकर दिया। हर बार मेरे मन में एक हीनता का भाव आता था।

शाम होने से पहले ही ऊपर जाते समय श्री श्री बाबा सहसा भण्डार-घर में जाकर फर्श पर या खाँचियों में क्या-क्या चीजें हैं, एक-एक को देखते लगे। अन्तर्यामी ने मेरे मन के क्षोभ को मिटाने के लिए 'देखूँ क्या है' कहकर नेनुवाँ आदि के बाद अरवी देखते ही कहा, 'मैं समझता हूँ मुनीन्द्र ले आया है ? यह अरवी अच्छी है। मेरी माँ इसे बहुत पसन्द करती हैं। यहाँ के लिए रखकर कल थोड़ी भेज देना।' मुझे अब कुछ कहने को क्या रह गया ? हाँ, क्षोभ दूर हो गया। मन-ही-मन प्रणाम करके मैंने कहा, 'भगवन्, आपका खेल कौन समझे ?'

उस वक्त मैं बाबा के पास ही रहता था। कोई कहता, नौकरी कर रहा हूँ, और कोई-कोई कहते, गरीबी के कारण नौकरी के नाम पर बाबा ने पास रख लिया है। किन्तु सचाई यह थी कि बाबा मेरे मृत्यु-योग को जानकर मुझे अपने पास से दूर नहीं जाने देते थे। उन्होंने कहा था, "तुम्हारा मृत्युयोग चल रहा है, इसलिए यहाँ से जाना उचित नहीं है। मैं पिता हूँ, इसलिए इस वक्त तुम्हें काल के गाल में नहीं झोंक सकता। अपनी पत्नी और बच्चों आदि से कह दो कि यहाँ मेरी नौकरी लग गयी है। पचीस रुपये वेतन होगा, दोनों वक्त आश्रम में खा लोगे। समझाकर कहने पर सब राजी हो जाएँगे।"

साल भर का तीन सौ रुपये से अधिक बाबा देते थे। घर भेजने के लिए रुपये बाबा ही देते थे। मदन की और मेरी बड़ी 'माँ' दोनों ही शिष्या थीं, उनका कष्ट समझकर ही बाबा चालीस-पचास रुपये देते थे। कहते, 'भेज दो।' इसके अलावा कपड़े, कुर्ते, स्वेटर, कम्बल, मसहरी आदि की तो कोई बात ही नहीं थी। मैं बिना हुक्म लिये आश्रम के बाहर नहीं जा सकता था। पहले रासबिहारी दादा का सहायक था, बाद में रासबिहारी दादा को दो सौ रुपये देकर तीर्थयात्रा पर भेज दिया गया तब बाबा की सेवा का भार मेरे ऊपर आ पड़ा। जब रासबिहारी दादा लौट आए तब उन्हें बण्डूल के आश्रम में स्थान दिया गया। जीवन के अन्तिम दिन तक वे वहीं रहे। बाबाजी की कुशलता मैं बाद में समझा। इस समय तरह-तरह से मेरी परीक्षा करके अपने पास आनेवाले पत्र, रुपया-पैसा आदि सभी विषयों का बार मुझे सौंप दिया था। शिष्य लोग, खासकर कटक की तरफ के शिष्य गंजामी रेशम की धोती देकर जब प्रणाम करते थे तो बाबा सारी धोतियों को कुमारी कन्याओं को देने के लिए उन पर किनारी देकर जोगिया रंग में रँगाने का भार रमेश मैत्र दादा को देते थे। वे रंग कराकर समय पर बाबा को दे देते थे। मेरे पास ये सब रखी रहती थीं। इस प्रकार की बारह धोतियाँ जब किनारी के साथ रँगकर तैयार हो जाती थीं तब मैं बाबा को सूचित कर देता था। तब वे मुझे आज्ञा देते, "इन सब साड़ियों को सन्दूक में अच्छी तरह पैक करो, डी०एम०सी० धागे से बाँधो और दो-तीन मुहरें लगा दो।" वे सील-मुहर देते थे। मैं सील करके उनके हाथ में दे देता था। चारों ओर की सील की जाँच करके देखते, फिर कहते, "कुमारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माताओं के लिए यह सब भेज दिया जाय।'' यह कहकर सन्दूक को दीवार की ओर फेंक देते थे—साथ-ही-साथ सन्दूक गायब हो जाता था। आधे घण्टे के भीतर वही सन्दूक और वही धागा केवल—'ज्ञानगंज स्वामीजी का आश्रम' लिखा हुआ सील किया हुआ तितल्ला और दुतल्ला की छत पार कर बाबाजी के आह्निक वाले घर में सुगन्धित रूप में गिर पड़ता। यह सब अलौकिक कृत्य भाग्यवश अनेक बार देखने का अवसर मुझे मिला है।

[८]

काशी, रामनगर के उस समय के चीफ जज साहब के पुत्र श्रीयुत सूरजप्रकाश मुशरानी एम०ए० हमारे गुरुभाई थे। वे सख्त बीमार पड़े। तीन दिन तक बेहोश रहे। डॉक्टरों ने जज साहब से अपनी राय कह दी कि बचने की आशा कम है। तब जज साहब ने बाबा को सूचित करते हुए लिखा, 'बाबा, आपका शरीर स्वस्थ नहीं है, इसीलिए कुछ कह नहीं पा रहा हूँ। एक बार चरणों की धूल देने आइए।' बाबा ने कहा—'अच्छा देखा जाएगा।' बाबा उसी दिन रात में सूक्ष्म शरीर से गए और सूरजप्रकाश दादा ने चिल्लाते हुए कहा—'श्री श्रीगुरुदेव आए हैं।'—उनके पिता और दूसरे सबने गुरुदेव के अंग की सुगन्ध का अनुभव किया। सूरजप्रकाश की चेतना लौट आई और उन्होंने पाँच-छह दिनों बाद पथ्य लिया। इसके फलस्वरूप जज साहब ने अपने मित्र के साथ आकर पाँच सौ रुपये एक लिफाफे में बन्द करके बाबाजी को देते हुए कहा, 'ये रुपये ज्ञानगंज की कुमारी माताओं के भोजन के लिए दिये हैं।' बाबा ने लिफाफा खोलकर देखा, सौ-सौ रुपये के पाँच नोट। उस समय बहुत से शिष्य उपस्थित थे। बाबा ने कहा, 'पाँच-सौ रुपये ?' उत्तर, 'हाँ बाबा।' ईजी चेयर के हत्थे पर रुपयों सहित लिफाफा रखकर दो बड़े और एक छोटा आघात देते हुए कहा, 'भेज देता हूँ।' साथ ही लिफाफा लुप्त हो गया। करीब पाँच-मिनट बाद लिफाफा छत का भेदन करते सौरभ बिखेरते हुए आ गिरा। बाबा ने देखकर कहा, 'यह देखो जी, तुम्हारा लिफाफा लौट आया, इसे घर ले जाओ।'

[९]

एक बार शिवरात्रि के अवसर पर रात साढ़े दस बजे के समय काशी आश्रम के तितल्ले के बरामदे में रोहिणीकुमार चैल दादा खड़े थे—मैं भीतर सोया था। श्री बाबा अपने कमरे से आकाशमार्ग में जा रहे थे। यह देखकर रोहिणी दादा ने सबको बुलाकर कहा—''श्री बाबा आकाशमार्ग से जा रहे हैं।'' चटपट बाहर देखा, एक प्रकाशपिण्ड ऊपर जाता हुआ धीरे-धीरे अदृश्य हो गया। रोहिणी दादा ने कहा, ''पहले ही पहचान लिया गया था।''

[१०]

मैं उस समय काशी आश्रम में बाबा के पास ही था। एक दिन कथा-प्रसंग में बात आई कि हर एक चीज में छिद्र होते हैं। मेरे दस-बारह गुरुभाई भी वहीं थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई कह पड़ा, "काठ में ?" (श्रीबाबा के तखत को दिखाते हुए)। श्री बाबा ने कहा, "निश्चय ही।" कहकर बिछौना हटाकर अँगुली से घिसकर कहा, "यहाँ एक धातु का रुपया रखो।" रखा गया। वह उसी में मिल गया। इस तरह एक-एक करके दस रुपये रखे गये। दसों रुपये काठ में लुप्त हो गये और ऊपर काठ का आवरण पड़ा रहा। एक भाई ने कहा, "वे मिल सकते हैं ?" जवाब मिला, "अवश्य, किन्तु कुमारी भोजन कराओ।" कहने के साथ सब चुप रह गये। बाबा ने फिर कहा, 'मैं ही कुमारी-भोजन का इन्तजाम करूँगा।" कहकर उसी जगह अँगुली से फिर रगड़ दिया। देखते-ही-देखते एक-एक करके दसों रुपये ऊपर आ गए। बाबा ने कहा, "जिसका जो है उठा लो।" सबने उठा लिया।

[११]

मैं बर्दवान आश्रम में था। उखरा के हेडपण्डित श्रीसत्यकिंकर मेरे मित्र थे। उन्होंने बाबा के दर्शन की प्रार्थना की। मैंने ज्यों ही बाबा से निवेदन किया त्यों ही बाबा ने उन्हें ऊपर लाने की आज्ञा दे दी। बाबा के साथ बहुत सी बातें करके उन्होंने बिदा ली। उनके जाने पर बाबा ने कहा, "अच्छा लड़का है।" वे बर्दवान में श्रीमती शक्ति बीबी के घर पर ठहरे थे। मैंने बाबा से उनके साथ जाने की अनुमति माँगी। बाबा ने कहा, "हाँ, जाओ देख आओ। महिला एक अच्छी महिला है।" मैं साथ जाकर अपने मित्र के गुरुदेव श्री ज्ञानानन्द परमहंस (श्री श्रीमायीजी) का दर्शन करके लौट आया। दूसरे दिन सबेरे पूज्य दुर्गादादा के मित्र श्री देवीप्रकाश कपूर ने मेरे मित्र के साथ आकर दुर्गादादा से बाबा के दर्शन की प्रार्थना की। बाबा ने कहा, "चलो नीचे चल रहा हूँ।"

प्रणाम करने के बाद दोनों ने कहा, "सूर्यविज्ञान द्वारा सृष्टि देखने के लिए आए हैं। कृपा करके दिखा दीजिए।" बाबा ने कहा, "सिल्क का रूमाल लाए हो क्या ?" उन्होंने कहा, "हाँ बाबा, एक नया और एक धोया हुआ लाए हैं।" "किसी एक से काम हो जाएगा।"—बाबा ने कहा। फिर उन्होंने जर्दा की डिबिया से जर्दा निकालकर उसे पानी से धोकर फिर गंगाजल से धोने को कहा। दादाजी ने गंगाजल लाकर दिया। बाबा में उसे रूमाल में रखकर ढक्कन से ढककर देवी बाबू को दिया। फिर लेन्स फोकस (रश्मिपात) किया—दो बार फोकस देने पर भी वह भारी नहीं हुआ। बाबाजी ने पूछा। उन्होने कहा, "बाबा! समझ में नहीं आता।" बाद में कहा, "हाँ, ठीक हो गया।" ढक्कन खोलकर देखा गया तो देवघर का पेड़े का बना सन्देश था। सबने थोड़ा-थोड़ा खाया। जो बचा उसे देवी बाबू अपने घर ले गए।

[१२]

श्रीगुरुदेव के पुत्र श्री दुर्गादादा ने भी शक्ति प्राप्त कर ली थी। यह शक्ति मेरे देखने में तीन-चार बार आई। उनमें से एक को दिए बिना मुझे चैन नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस वक्त मैं इच्छापुर गाँव में था। वह अन्दाल से चार-पाँच मील दूर है। बीच में "तामला का पुल" है। सावन का महीना—ग्यारह दिनों तक लगातार वर्षा हुई। अन्दाल में मेरा बड़ा पुत्र मदन भी, बाबा का शिष्य है। नौ दिन बुखार चला, छोड़ता नहीं था। किसी के जरिए सूचना भी नहीं दे पाया। अपने भांजे से भेंट हो गयी। उससे विशेष अनुरोध से कहा कि ग्रैंड ट्रंक रोड के तामला पुल को पार करके घूमकर ११-१२ मीलका रास्ता तय करके पिताजी को समाचार दे दो। चार-पाँच माह के बाद दस-पाँच रोगियों से बुलावे मिले थे। इसी समय यह खबर मिली। दूसरे दिन बारह बजे तक रोगियों के लिए दवा का इन्तजाम करके, खाने के बाद घर से निकले। हम दोनों तैरना जानते थे। साथ ही पुल की धारा की विशेष जानकारी थी। हम दोनों ने अँगोछे पहन लिए और इन्जेक्शन के छोटे से बक्से के साथ कपड़े—कुर्ते सब को बाँधकर पोटली बना ली। भयंकर बाढ़ थी। 'जय गुरु' कहकर पोटली को सिर पर बाँधकर प्रकृत नालों को तैरकर पार किया। एक मील तक कमर तक पानी में चलते हुए पार किया। ग्रैंड ट्रंक रोड पर आकर कपड़े पहनकर सभ्य वेश में दोनों घर पहुँचे। अच्छी तरह परीक्षा करने पर समझ में आया कि टाइफायड है। किसी को बिना बुलाए स्वयं "जयगुरु" कहकर दवा करना शुरू किया। दूसरे दिन सबेरे दवा देकर भोजन के बाद इच्छापुर लौटा। ऐसे ही रोज जाने लगा। बीसवें दिन की रात में डेढ़ बजे लेटे-लेटे चिन्ता करते नींद आ गई। रात के ढाई बजे श्रीदादा ने मेरे पूजा के आसन पर बैठकर मेरे बाएँ हाथ को जोर से खींचते हुए कहा, "मनीदादा, मनीदादा!" दुखती पलकें खोलकर देखा, दादा बैठे हैं—कमीज के ऊपर कोट है और छाती के ऊपर वाली जेब में 'राजा' कलम है। मैंने चरण छूकर प्रणाम किया। श्रीदादा ने कहा, "क्यों मनीदादा, तुम डॉक्टर होकर इतने घबराए हुए हो ?"

मैंने कहा—क्या कहते हैं दादा, चार-पाँच महीने तो बैठे ही बीत गए। इतनी बड़ी गृहस्थी चलानी, फिर लड़के को टाइफायड है, क्या करूँ ?

श्रीदादा—चिन्ता न करो। मैं पश्चिम को (ज्ञानगंज को) चिट्ठी लिख देता हूँ।

यह कहकर जेब से कलम और पोस्टकार्ड निकालकर पत्र लिखा और कहा, "मैं खुद डाक में छोड़ दूँगा।"

मैंने कहा, "यह तो ठीक है दादा। इस तरह कितने दिन आना-जाना पड़ेगा ? तिस पर रात का जागरण।"

श्रीदादा—बुखार आज ही छोड़ देगा। फिर भी दो-चार दिन जाना-आना। स्वस्थ हो जायेगा, चिन्ता न करो।

मैं—ऐसा ही हो, आपकी इच्छा में ही मंगल है।

श्रीदादा—मैं जाता हूँ। चिन्ता न करना, बुखार आज ही छोड़ देगा।

मैंने प्रणाम किया। श्रीदादा सीढ़ियों से नीचे उतर गए। मैं फिर निश्चिन्त होकर घड़ी देखकर सो गया। सबेरे छह बजे उठकर मदन को देखा, उसे थर्मामीटर दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखा, बुखार एक सौ ढाई है। अन्य दिनों एक सौ डेढ़ रहता था। सोचता हुआ पोखरे की ओर चला गया—यह क्या सपना देखा है ? यदि ऐसा ही है तो हाथ की केहुनी का दर्द अभी भी क्यों बना है ? शौचादि से निवृत्त होकर पूजा पर बैठा, किन्तु वह भी ठीक से न हो सकी—यह सपना या सच था, यही भाव मन में चलने लगा। जप चलता था, अँगुलियाँ भी चलती थीं। करीब सात बजकर पन्द्रह मिनट पर उठा। थर्मामीटर फिर दिया। देखा, वह साढ़े निन्यानबे है। मदन ने कहा, "बहुत पसीना हो रहा है।" चाय पाने के बाद देखा, साढ़े सत्तानबे डिग्री है। कुर्ता, कपड़ा, बिछौना सब नया दे दिया। खुशी के साथ मदन से रात में दादा के आने और उनसे बातचीत की बात कही। उसने कहा, आप दवा देकर चले जाइए। दो-तीन दिन आने की जरूरत नहीं है। चौबीसवें दिन बुखार नहीं रह गया। इस तरह विपत्ति में दादा ने हमारी मदद की है। जब वर्दवान में श्रीगुरुदेव थे तब मेरे छोटे पुत्र के कहने पर श्रीदादा ने उसे दीक्षा दी थी। हाँ, बाबा के कहने पर।

मैंने बाबा के मुँह से सुना है कि दुर्गादादा बहुत परिश्रम करते हैं और दादा भी कहते थे, "बाबा भी धीरे-धीरे जो मुझे देना है, दे रहे हैं।" यह भी गुरु-स्मरण ही है—"गुरुवत् गुरुपुत्रेषु"—इस वचन को अमान्य नहीं कर सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरु-स्मृति

श्री गौरीचरण राय

[१]

बं० सन् १३२६ साल (ई० सन् १६१६) बैशाख १ को पुरी में 'विशुद्धानन्दधाम' आश्रम की स्थापना हुई। आज आश्रम का जो स्वरूप देखने में आता है, उस समय वैसा कुछ भी नहीं था। तीन तल्ले का घर आश्रम की स्थापना के कई साल बाद बना। आर्मस्ट्रांग रोड के सामने अंग्रेजी ढंग का एक ही एकतल्ला मकान था। उसके बीच दो बड़े कमरे और उनके दोनों ओर छोटे-छोटे दो स्नानघर और ड्रेसरूम थे। बाबा दाहिनी ओर के कमरे को काम में लाते थे। उत्तर ओर का कमरा शिष्यों के लिए था। उत्तर की ओर एक रसोईघर और उससे थोड़ी दूरी पर दो पाखाने-मात्र थे।

कोई चहारदीवारी नहीं थी। चौहद्दी जताने के लिए जगह-जगह काँटे का घेरा लगा हुआ था। तब फल-फूल का कोई पेड़-पौधा नहीं था। केवल बालू की ढेरी तपती रहती थी। धूप होने पर बालू की ढेरी इतनी गर्म हो जाती कि नंगे पैर कोई घर से बाहर नहीं जा सकता था। तनिक तेज हवा चलने पर घर में बालू भर जाती। किन्तु यह स्थिति ज्यादा दिन नहीं रही। उस समय उड़ीसा में बाबा का कोई शिष्य नहीं था। केवल श्री अक्षयकुमार चक्रवर्ती नौकरी के सिलसिले में (वे पुलिस इंस्पेक्टर थे) यहाँ रहते थे। एक गुरुभाई सुरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती भी यहाँ थे। वे कोई थोड़े वेतन की सरकारी नौकरी करते थे। इन दोनों के अलावा और कोई गुरुभाई यहाँ मेरी जानकारी में नहीं था। इस बार बाबा ने पुरी में कुछ अधिक दिन निवास किया और उनकी महिमा चारों और फैल गयी। फिर तो क्रमशः उड़ीसावासी बंगाली और उड़िया आकर बाबा के चरणों की शरण लेने लगे। वहाँ के गुरुभाइयों के परिश्रम और शिष्य-मण्डली के सम्मिलित प्रयास से दो-तीन साल के भीतर आश्रम पुष्पवाटिका से घिर गया। फिर क्रमशः आम आदि फलों के पेड़ भी लगाए जाने लगे।

यह बाग तैयार करने में रुपये और परिश्रम कम नहीं लगा। पहले कँटीले पौधे उखाड़ फेंककर ईंटों की चहारदीवारी तैयार की गयी। बालू पर बाग-बगीचा नहीं लग सकता; इसलिए दूर से बैलगाड़ियों पर मिट्टी लाकर बिछाई गयी और उसमें खाद मिलाकर उपजाऊ बनाया गया। दोनों ओर के बड़े रास्तों पर छाई डालकर राह बनाई गयी। बगीचे के बीच-बीच में सँकरी राह बना उनके बीच क्यारियाँ बनाकर पेड़ रोपे जाने लगे। दो माली स्थायी रूप से काम करते थे और जरूरत पड़ने पर दो-चार मजदूर भी लगा लिये जाते। इस तरह दो साल में बगीचा तैयार हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्रम की स्थापना के तीसरे साल रथयात्रा के कुछ दिनों पहले मैं पुरी गया था। एक दिन सबेरे सामने के बरामदे में अनेक आदमी बाबा के पास बैठे थे, मैं वहाँ से कुछ हटकर अनमने भाव से बैठा था। इसी समय किसी ने बाबा के हाथ में एक फूल देकर कहा, "बाबा, नए पौधे में एक सुनहला फूल खिला है, देखिए।" मैं सुनहले फूल का नाम सुनकर चटपट बाबा के पास आ गया।

मेरी जन्मभूमि नुनीग्राम के हमारे चण्डीमण्डप के सामने एक बड़ा पुराना स्वर्णपुष्प का पेड़ था। फूल थे गहरे लाल गुलाबी रंग के, फूलों में एक मनोहर सुगन्ध थी। वह गन्ध मुझे बहुत प्रिय थी। इसलिए मैं खूब सबेरे उठकर सबसे पहले उसके फूल तोड़कर भगवान् की पूजा के लिए दे देता था। प्रसादरूप में प्राप्त फूलों को अपने पास रखता था। पेड़ को टँड़ा कीड़ों ने जर्जर कर दिया था। जब मैं बारह-तेरह साल का था, आँधी में वह पेड़ गिर गया। तब से किसी बगीचे या गाँव में मैंने फिर वह सुनहला फूल नहीं देखा।

बहुत से हाथों से होता हुआ जब वह फूल मेरे हाथ में आया तब मुझे आनन्द की जगह दुःख ही अधिक हुआ। जैसा फूल मैने पहले देखा था, आकार में वैसा होते हुए भी वह रंग इसमें नहीं था। इस फूल का रंग सफेद था। सबसे बड़ी दुःख की बात यह कि फूल में गन्ध थी ही नहीं। मैंने सन्देह के स्वर में बाबा से पूछा, "बाबा, क्या यह कांचन पुष्प है ?"

बाबा ने कहा, 'हाँ जी, क्या बात है कहो ?"

मैंने बाबा से नुनीगाँव के सुगन्धित कांचन पुष्प की बात बता दी। मेरी सारी बात सुनने के बाद बाबा ने मेरे हाथ से फूल ले लिया। सिर्फ उसे छू दिया। "अब देखो" कहकर फूल मुझे लौटा दिया। आश्चर्य है, फूल लेते ही मेरे मन में पचीस-तीस साल पहले के फूल की याद ताजा हो गई। कांचन फूल की अपूर्व सुगन्ध से वह जगह भर उठी। मैं कुछ क्षणों के लिए अपने को भूल गया। मैंने दीक्षा लेने के बाद लेन्स की सहायता से, हाथ से, नाखून से, फोकस देकर जाने कितने प्रकार की सुगन्ध उत्पन्न करते हुए बाबा को देखा था, बाबा के पवित्र शरीर से भिन्न-भिन्न प्रकार की सुगन्ध का आनन्द लिया है, किन्तु ऐसा आनन्द मुझे कभी मिला नहीं।

फूल को मेरे हाथ से लेकर सभी देखने लगे। हाथों हाथ घूमता हुआ फूल किसके पास रह गया, खोजने पर भी मैं पा नहीं सका। उस पेड़ से और भी सुनहले फूल निकले, किन्तु सब निर्गन्ध थे। बाबा ने केवल उसी फूल में सुगन्ध ला दी थी। कुछ दिन बाद मैंने आबू पहाड़ पर जाकर बहुतेरे गुलाबी रंग के सुगन्धित कांचन फूल के पेड़ देखे थे। मैंने अपने बगीचे में भी कांचन फूल का पेड़ लगा दिया था। उसका रंग और सुगन्ध ठीक थी। किन्तु दो साल तक फूलने के बाद उसमें फूल आना बन्द हो गया। दस-पन्द्रह साल में पेड़ खूब बड़ा हो गया, किन्तु कीड़ा लग जाने से वह सूख गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[२]

बं० सन् १३२५ (ई० सन् १९१८) में काशी के पुराने आश्रम में मेरी दीक्षा हुई। माननीय श्री हरगोविन्द मुखोपाध्याय दादा (पेंशन-प्राप्त सब-जज) को बाबा के साथ रहते मैंने देखा है, किन्तु इस बार पुरी जाने पर वे मुझे दिखाई नहीं पड़े। सुना कि काशी में गंगा के किनारे टहलते समय एक साँड़ ने उन्हें धक्का देकर गिरा दिया था, जिससे वे चलने-फिरने में बिलकुल असमर्थ हो गये थे। ऐसी दशा में आश्रमवास सम्भव नहीं था और वे अपने घर पर ही रहने लगे थे। इस समय श्री दुर्गाकान्त राय (रिटायर्ड सब-जज) आश्रम में रहकर बाबा की सेवा और आश्रम का संचालन करते थे। आश्रम में रहते समय मुझे भी उनकी थोड़ी-बहुत मदद करनी पड़ती थी।

एक दिन चालीस-पैंतालीस कुमारी माताओं की सेवा तथा गुरुभाई और भक्तों को मिलाकर लगभग साठ जनों के भोजन का आयोजन हुआ।[1] दुर्गाकान्त दादा ने बाजार की सहायता के लिए मुझे साथ ले लिया। सूची के अनुसार सभी चीजें खरीदकर कुलियों के सिर पर उन्हें रखने के बाद मिठाई की दुकान पर गए। जब कुमारी-भोजन के लिए रसगुल्ला खरीदना हुआ तब दुर्गाकान्त दादा ने कहा, "आश्रम में किसी के आ जाने पर बाबा उसे जलपान कराने की आज्ञा देते हैं। उसके लिए कुछ मिठाई अलग से खरीद लेना अच्छा रहेगा।" अलग मिठाई खरीदी गयी किन्तु ले चलने वाले के अभाव में उसी हाँडी में मिठाइयाँ रख दी गयीं। यह तय हुआ कि आश्रम में पहुँचकर इन मिठाइयों को अलग कर लिया जायेगा।

---

१. आश्रम की प्रतिष्ठा के बाद कुमारी-भोजन की जरूरत पड़ने पर बाबा चैतन्य शृंगारी नामक पण्डे को बता देते थे। वे आवश्यकतानुसार कुमारियों को भेज देते थे। कुछ दिनों बाद कालूराम नाम के सूपकार पण्डा बाबा के बड़े भक्त हो गए, बाबा भी उन्हें खूब मानते थे। दवा आदि लाने की जरूरत पड़ने पर उन्हीं से कहते। धीरे-धीरे कुमारियों को लाने का भार भी उन्हीं पर पड़ा। वे जरूरत के अनुसार पचास कुमारियों को ला देते। उनमें से अधिकतर कुमारियाँ पण्डों के घर की ही होती थीं। इस बारे में दादा अनन्तदास आदि उड़ीसा के ब्राह्मण शिष्य आपत्ति करने लगे। उनका कहना था—"जगन्नाथ के पण्डों में कोई भी ब्राह्मण नहीं है। राजा इन्द्रद्युम्न ने पहले व्याधों के घर में 'नीलमाधव' का दर्शन किया था। जब उन्होंने जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की उसी समय उन्होंने जगन्नाथजी के निर्देश के अनुसार व्याधों को ही उनका सेवक नियुक्त कर दिया। आज के सभी पण्डे उन व्याधों के ही कुल के हैं। राजा इन्द्रद्युम्न ने जन-साधारण का मन रखने और सबके सन्तोष के लिए उनके गले में जनेऊ पहना दिया था। उड़ीसा के कुलीन ब्राह्मण जगन्नाथजी के मन्दिर में महाप्रसाद तो लेते हैं किन्तु पण्डों के घर पर भोजन को कौन कहे, उनका छुआ पानी भी नहीं पीते।" किन्तु यह बात सभी लोग नहीं मानते। बहुतों का कहना है, "केवल 'दयिता' पण्डे उन व्याधों के वंशज हैं, शृंगारी, पुजारी, सूपकार आदि सब पण्डे ब्राह्मण हैं।" इस बात पर विश्वास करने का यथेष्ट प्रमाण भी है। स्नानयात्रा या रथयात्रा के समय, मैंने देखा है, दयिता पण्डे ही सब कुछ करते हैं। वे ही मूर्तियों को स्नान कराते, मंच तथा रथ के ऊपर रखते हैं। वे ही रथ के ऊपर नाचते हैं। स्नान के बाद वे दरवाजा बन्द करके मूर्तियों को अंगराग लगाते हैं, नई मूर्ति बनाने के समय वे ही मूर्तियाँ बनाते हैं और पुरानी मूर्तियों को समाधि देते हैं। उसके बाद दस दिन अशौच में रहकर अन्तिम दिन मुण्डन और क्षौर कराते हैं। ग्यारहवें दिन श्राद्धकर्म की तरह क्रियाएँ करके ब्राह्मण भोजन कराते हैं। ऐसी बहुतेरी घटनाएँ मैंने अपनी आँखों देखी हैं।

इस तरह का विरोध जब बाबाजी के कान में पहुँचा तब उन्होंने (चाहे जिस कारण से हो) पण्डों के घर से कुमारियों को बुलाना बन्द कर दिया। इसके बाद एक बार जब कुमारी-भोजन की जरूरत पड़ी तब बहुत प्रयास करने पर भी चौदह-पन्द्रह से अधिक कुमारियाँ नहीं मिलीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्रम में लौटने पर हमने देखा, कई सज्जन बाबा के पास बैठे हैं। कोई सत्प्रसंग चल रहा था, मैं जाकर बाबा के पास बैठ गया। दुर्गा दादा लाए गए सामान को व्यवस्थित ढंग से रखने लगे। तनिक देर बाद ही सज्जनों ने बाबा को प्रणाम करके विदा माँगी। बाबा ने अपने नियम के अनुसार उन्हें जलपान कराने को कहा। तब तक मिठाइयाँ सब एक ही हाँडी में थीं, अलग-अलग रखी नहीं जा सकी थीं। उसी हाँडी से रसगुल्ले निकालकर उन्हें जलपान कराया गया। यह कार्य सर्वदर्शी बाबा की आँखों से छिपा नहीं रहा। सज्जनों के जाने के कुछ ही क्षण बाद बाबा ने दादा दुर्गाकान्त को बुलाया और उनसे पूछा कि अभ्यागतों को किस चीज से जलपान कराया गया। दुर्गाकान्तजी ने कहा—"बाबा, आगत सज्जनों के लिए अलग से रसगुल्ला खरीदा गया था।" बाबा ने कहा—"खरीदा तो गया था, लेकिन क्या उसे अलग रखा गया था ?" दुर्गाकान्तजी ने कहा—"नहीं बाबा, अलग रखने की बात थी, लेकिन रखा नहीं गया। आपकी आज्ञा से हाँड़ी में से ही निकालकर उन्हें जलपान कराया गया।" बाबा ने कहा, "वह सब जूठा हो गया है। उन्हें कुमारी-भोजन में परसा नहीं जायगा।" दुर्गाकान्त दादा ने विनय के साथ समझाने की बहुत कोशिश की किन्तु व्यर्थ। दूसरे दिन सबेरे फिर से मिठाई मँगाकर कुमारी-भोजन कराया गया। वह बचा रसगुल्ला बाबा के भोग में भी नहीं लगा, इसलिए शिष्यों ने भी नहीं खाया। अन्त में उसे भिखारियों और गरीबों में बाँट दिया गया।

अब भी मुझे कुमारी-भोजन और ठाकुरजी के भोग के लिए फल, मिठाइयाँ आदि खरीदनी पड़ती हैं। दुकानदार मुझसे खाकर जाँच लेने को कहते हैं, किन्तु खाने की बात सुनते ही जैसे मुझे सुनाई पड़ता है कि बाबा कह रहे हैं—"सावधान, खाने पर जूठी हो जाएगी, उसका भोग नहीं लगेगा।" बिना जाँच खरीदने पर अक्सर ठगा जाने में आता है किन्तु खाकर जाँचने में मैं असमर्थ हो जाता हूँ।

[३]

इस घटना के कई साल बाद की बात है। उस समय पुरी का तितल्ला भवन बनकर तैयार हो गया था। नीचे के और दूसरे तल्ले पर दो कमरे थे और दक्षिण की ओर बरामदा था। तीसरे तल्ले पर बाबा की पूजा के लिए एक कमरा, पूजाघर और स्नानघर था। बाबा ऊपर के कमरे में रहते थे। तीसरे पहर शिष्यों के साथ दोतल्ले के बरामदे में बैठते थे। शिष्यों में कोई दूसरे तल्ले और कोई नीचे के तल्ले पर रहता था। बाबा अपने नियम के अनुसार दोनों वक्त पैदल टहलने कभी मन्दिर की ओर, कभी समुद्र के किनारे आते थे। नीचे के तल्ले पर बाबा के लिए एक आराम कुर्सी रखी रहती थी। बाबा टहलकर लौटने पर उसी पर बैठकर आराम करते थे। उसके बाद ऊपर जाते थे। अगर बाहर से कोई आ जाता था तो यहीं बैठकर उससे जरूरी बातें कर लिया करते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाबा एक दिन टहलकर लौटने पर आराम कुर्सी पर बैठ गये। मैं पास ही खड़ा था। इसी समय एक उड़िया मक्खी आकर बाबा के बाएँ हाथ पर बैठ गई। बाबा उसे देखकर बोल पड़े, "यह तो मर गई।" यह सुनकर मैंने उधर देखा। मक्खी के पैर और पंख जल गये थे। उसका शरीर काला हो गया था। उसके पैर नहीं थे। लेकिन हाथ हिलाने पर उड़ती नहीं थी जैसे आटे से चिपक गयी हो। बाबा ने दाएँ हाथ से उसे उठा लिया और हथेली में रखकर उसे धीरे-धीरे हिलाने लगे। मक्खी का शरीर हथेली पर लुढ़कने लगा। मैने 'देखूँ बाबा' कहकर उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाया। चटपट मुट्ठी बन्द करते हुए बाबा ने कहा, "छूना मत।" फिर वे पहले की तरह उसे हथेली में हिलाने लगे। देखते-ही-देखते मक्खी के पैर उग आए और वह पैरों के बल खड़ी हो गयी। कुछ क्षण बाद उसके पर भी उग आए। मक्खी अपने पिछले पैरों पर खड़ी होकर पंखों को फड़काती हुई उड़ गयी।

बाबा के अंग को छूते ही अनगिनत मच्छरों, मक्खियों और खटमलों के मर जाने की बातें बहुत बार सुनी हैं तथा चूहे आदि की सृष्टि की बातें भी, किन्तु अपनी आँखों देखा नहीं। मरे हुए को जिलाने की बात भी कभी नहीं सुनी। इसी से एक मक्खी को जिलाते देखकर अचरज से चकित रह गया था। बाबा के श्रीमुख से सुना है, "उनकी (ज्ञानगंज के गुरुवर्ग की) अनुमति यदि मिल जाए तो एक ब्रह्माण्ड की रचना कर सकता हूँ।" ऐसे सर्वशक्तिमान् बाबा के लिए एक मक्खी को जिला देना किसी गिनती में नहीं है। अपने क्षुद्र ज्ञान और बुद्धि से उनकी शक्ति की सीमा जानने का प्रयास हम लोगों की धृष्टता ही होगी।

■

देहत्याग के बाद

सुबोधचन्द्र रावत

उनके स्थूल शरीर के रहते उनकी जो असंख्य लीलाएँ हमने देखीं, उनके न रहने पर भी उनकी सदैव जाग्रत् चित्शक्ति की लीला का प्रकाश आज भी गतिमान है। इस लेख में उनके देह-त्याग के बाद की कतिपय मुख्य घटनाओं का उल्लेख करके मैं उनकी रहस्यमयी लीलाओं का प्रसंग खत्म करूँगा। महापुरुषों की सारी जीवन-कथा का वर्णन सम्भव नहीं है, जिससे उनके विराट् तत्व और गोपनीय रहस्य कभी संसार के सामने न आ सकें।

[१]

श्री गुरुदेव के देह-त्याग के ठीक तीन-चार दिन बाद की बात है। मेरी एक खास आत्मीया सुदूर नैनीताल जिले में एक जगह कुछ दिनों तक निवास करती रही थीं। बाबा के सम्पर्क में आने के बाद बाबाजी के प्रति उनमें गहरी श्रद्धा और भक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्पन्न हो गयी थी, किन्तु वे शिष्या नहीं थीं। जिस घर में वे रहती थीं, उसमें भूत का बड़ा उपद्रव था। इस घर को लेने के पहले यह बात मालूम नहीं थी। बाबा के कलकत्ते में देहावसान के तीन-चार दिन बाद दिन में उन्होंने बाबा का दर्शन किया। बाबा जैसे सामने आकर हँसते-हँसते बोले—मैं तो अब चला, तुम अब मुझे सशरीर नहीं देख सकोगी……… भूत का उपद्रव अब नहीं होगा, हाँ, तुम अपने बिछौने के पास मेरी यह तस्वीर हमेशा रखे रहना। ………लौकी खाना तुम्हारे लिए विशेष लाभदायक है। यह कहकर वे धीरे-धीरे लुप्त हो गए। दुःखमय इस सपने को देखकर, बहुत ही व्यथित होकर, मेरी आत्मीया ने चार-पाँच दिनों के भीतर ही मेरे पास उपर्युक्त भाव का एक पत्र लिखा। उस समय भी विरह की ज्वाला से हम लोगों के हृदय जल रहे थे। इस पत्र को पाकर मैं अभिभूत हो गया।

इस घटना के पाँच-छह महीने बाद, मैं उपर्युक्त आत्मीया के पास जाकर कुछ दिनों रहा। मैंने सुना कि उन्होंने उस घर में फिर कभी भूत का उपद्रव होते नहीं देखा, यद्यपि आस-पास के घरों के लोग अपने घरों में उपद्रव देखते थे।

[२]

निर्जन में अकेले घूमने की मेरी आदत है। एक दिन, दिन के समय घूमते-घूमते मैं एक जंगल के किनारे जा पहुँचा। सहसा मैंने देखा कि एक विशेष बड़ा भेड़िया पहाड़ के ऊपर से मेरी ओर दौड़ता आ रहा है। मेरे पास छाते के अलावा अपनी रक्षा के लिए और कुछ नहीं था। अचानक भेड़िये को देखकर मैं अपने अन्तकाल की बात सोचने लगा—उस समय श्री गुरुदेव का नाम याद करने के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं था, भय से व्याकुल होकर मैं उसकी राह देखने लगा। भेड़िया दौड़ता हुआ आकर मुझसे पाँच-छह गज की दूरी पर रुक गया और भयंकर रूप से गुर्राता हुआ रास्ते के दूसरे किनारे से धीरे-धीरे जंगल में चला गया। हतप्रभ होकर मैं सोचने लगा—किसी प्रकार प्रभु ने मुझे बचा लिया।

[३]

श्री श्रीबाबा के शरीर-त्याग के आठ मास बाद ही मुझे पिता का वियोग सहन करना पड़ा। ऊपर-ही-ऊपर इस कठिन आघात से अचेत होकर काशी को छोड़ देना ही मुझे शान्तिदायक प्रतीत हुआ और राँची में रहकर अपने काम में तन्मय हो जाना मैने अच्छा समझा। वहाँ कुछ दिनों बाद मैंने एक दुकान भी खोल ली। वहाँ करीब दो साल तक मैं रहा। काशी का घर बेचकर वहीं एक घर बनाने का मैंने निश्चय किया। पाँच सौ रुपये बयाना देकर एक जमीन खरीदने का इन्तजाम करीब-करीब पक्का हो गया था। बयाने के आधार पर रजिस्ट्री होने के ठीक एक दिन पहले वहाँ एक ऐसी पारिवारिक घटना घट गयी जिससे कुछ दिन बाद ही काशी लौट चलने का मैंने निश्चय कर लिया। मेरे व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में यह घटना चिरस्मरणीय रहेगी, जिसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण इसके द्वारा हम लोगों के भविष्य की जीवन-धारा पूर्णतया नियन्त्रित हो गयी थी। काशी को छोड़कर राँची में स्थायी रूप से रहने पर हम लोगों के दुःख का अन्त नहीं होता—यह बाद में समझ में आया। 'उनकी करुणा किसे किस राह से कहाँ ले जाती है ?'

[४]

राँची में अधिक दिनों रहने के लिए मैं वहाँ अपनी आवश्यक पुस्तकें और नित्य की साथी डायरी ले गया था। उसमें श्रीगुरुदेव-सम्बन्धी जो सारी बातें मैंने बीच-बीच में लिख डाली थीं, उसे पढ़ता था और वहाँ जाने पर भी मैंने उसमें बहुतेरी बातें लिखी थीं। उक्त घटना के कई महीने बाद राँची का बासा दूसरे को देकर काशी लौट आया। बहुत-सा सामान था, इससे बहुत सारा माल गाड़ी से भेजना पड़ा था। सामान के सन्दूक जब घर पर खोले तो पाया कि एक सन्दूक का बहुत सा सामान चोरी हो गया है। उसमें दूसरी किताबों के साथ मेरी डायरी भी थी। कई कीमती चीजें, कुछ किताबें और डायरी न उस सन्दूक में मिलीं, न और कहीं। माल के सन्दूक की कील खोलकर वह सब रास्ते में चुरा लिया गया था। डायरियों की चोरी का मुझे भारी धक्का लगा। मन में आया कि गुरुदेव को मैंने यह दूसरी बार खो दिया है। दुःख और व्यथा के कातर होकर कई दिन उनके चरणों में आँसू बहाए और न जाने कितने प्रश्न किए। उस डायरी में जो सब बातें लिखी थीं उसे पढ़ने पर लगता था—मानों वे मेरे सामने बैठे बातें कर रहे हैं। इस लेख के पहले तक की सारी बातें उसमें लिखी गयी थीं। राँची जाते समय मैंने दो-तीन बक्से अपनी माताजी के पास काशी के घर में रख गया था। यहाँ लौटने के कुछ दिन बाद उन सन्दूकों को खोलने की जरूरत आ पड़ी। उसमें से एक सन्दूक खोलते ही यह देखकर मैं दंग रह गया कि सारी खोई हुई निजी-डायरी तथा पुस्तकें ठीक ऊपर की तह में पड़ी हैं। बहुत दिनों बाद यदि भटका हुआ पुत्र माता के पास आ जाय तो माता के हृदय में जिस भाव का उदय होता है, मेरी भी ठीक वही दशा हुई। मन पुलकित हो उठा। बाबा की असीम करुणा और अनहोनी लीला देखकर मैं रो पड़ा और घर के सभी लोग इस लीला को देखकर मुग्ध हो गए।

[५]

राँची के व्यवसाय को तोड़कर काशी लौट आने पर काम-काज के लिए विशेष प्रयास करने लगा। किन्तु कहीं स्थिर रूप से रह नहीं सका। अन्त में पाँच हजार रुपये की जमानत रखने पर एक प्रसिद्ध बैंक में कोषाध्यक्ष की जगह मिली। इस काम की पहले से कोई जानकारी नहीं थी। एक साल इस जगह रहने पर, एक दूसरे बैंक में अप्रत्याशित रूप में वहीं काम फिर मिल गया। उस कार्यालय में तीन महीने काम करने के बाद ही पहला बैंक सहसा दिवालिया हो गया। उसके एक महीने पहले मेरा सारा रुपया मुझे लौटा दिया गया था—अन्यथा मेरा सारा रुपया डूब जाता और मेरा सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ नष्ट हो गया होता। परम करुणामय गुरुदेव के अतिरिक्त किसने उस दारुण विपत्ति से मेरी रक्षा की थी ?

लगभग दस साल तक मैंने कोषाध्यक्ष का काम किया था। यद्यपि यह बैंक बहुत बड़ा था तथापि मेरा कोई सहकारी नहीं था, मुझे अकेले ही कई हजार रुपयों का लेन-देन करना पड़ता था। रोज काम का इतना अधिक भार था कि मैं थक जाता था। बीच-बीच में ग्राहकों को अधिक रुपये दे दिया करता था। एक बार काम के आधिक्य से थककर मैंने एक आदमी को एक हजार रुपये अधिक दे दिये थे। बात दस-बीस रुपयों की नहीं थी। गुरुदेव की कृपा से हर बार अधिक रुपयों को लोग मुझे लौटा देते थे और ऐसे कृपालुओं को बीच-बीच में कुछ रुपयों का पुरस्कार भी देना पड़ता था।

[६]

एक बार काशी के आश्रम में जाने पर श्री गुरुदेव के चरित्र-विषयक नया प्रकाशित एक ग्रन्थ मुझे दिखाई पड़ा। उसमें सच्ची घटनाओं को इतने सुन्दर ढंग से लिखा गया था कि उसके कतिपय पृष्ठों को पढ़कर ही मैं मुग्ध हो गया। उसका एक खण्ड खरीदने के लिए मन में ललक उठी, किन्तु उस पुस्तक में जो सारी तस्वीरें दी गयी थीं, उनमें एक को देखकर मुझे विशेष व्यथा हुई। सूर्य की प्रखर किरणों के बीच जुगनू के प्रकाश की चेष्टा जैसे तुच्छ लगती है वैसे ही यह तस्वीर भी मुझे लगी। एक असाधारण महापुरुष की बगल में उनका स्थान मेरे मन में अनुताप उत्पन्न करने लगा। मैंने सोचा, पुस्तक खरीदने के बाद वह तस्वीर निकाल कर फेंक दूँगा। और कोई उपाय था नहीं। उस समय आश्रम में बेचने के लिए केवल पाँच प्रतियाँ बची थीं और उन सबमें सहज ही वह तस्वीर मैंने देखी। चार-पाँच दिन के बाद वह पुस्तक खरीदने के लिए आश्रम में गया और एक प्रति खरीद ली। जो प्रति मैंने सबसे पहले उठाई उसमें वह तस्वीर मैं खोजने लगा—पुस्तक से उसे निकाल बाहर करने के लिए। बड़े ही आश्चर्य की बात यह थी कि तीन-चार बार ढूँढ़ने पर भी वह तस्वीर मुझे पुस्तक में नहीं मिली। यह देखकर मन में बड़ा कुतूहल उत्पन्न हुआ, फिर दूसरी चार प्रतियों के पृष्ठ खोलकर मैंने देखे, वह अवांछित तस्वीर सब में मौजूद थी। बाबा की करुणा के विषय में सोचता हुआ मैं पुस्तक को घर से ले आया।

इन घटनाओं को हुए कई वर्ष बीत चुके हैं, किन्तु अब भी मैं अपने दैनिक जीवन में बाबा के दिव्य स्पर्श को कितने रूपों में अनुभूत और प्रत्यक्ष करता हूँ, सबका विवरण देना सम्भव नहीं है। वह सतत जाग्रत् चिन्मय शक्ति जैसे सर्वदा हम लोगों को खींचती हुई सत्य के पथ पर लिये जा रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीगुरुकृपा-स्मृति

श्री जीवनधन गांगुली

मैं श्रीगुरुदेव का एक अदना शिष्य हूँ। पूर्वजन्म के किसी पुण्य के बल से मुझे श्रीचरणों की प्राप्ति हुई थी। यद्यपि मैंने चौबीस परगने के बेलघरिया गाँव के प्रसिद्ध गांगुली वंश में जन्म लिया था, भाग्य के दोष से छह साल के बाल्य-जीवन में ही मुझे पिता का वियोग प्राप्त हुआ। पुण्यशीला मेरी माताजी के अतिरिक्त अन्य कोई अभिभावक न होने के कारण मेरी बहुत-सी सम्पत्ति नष्ट हो गयी थी। यहाँ तक कि बचपन में तरह-तरह के रोगों के कारण मरणासन्न हो गया था। जब मेरी उम्र पन्द्रह साल की थी तब कलकत्ते में पहले-पहल बेरी-बेरी रोग देखने में आया था और मुझे वह रोग हो गया था—मेरे बचने की कोई आशा नहीं थी। उसी समय मेरे बाएँ कन्धे की पेशी में पक्षाघात हो गया। बायाँ हाथ अशक्त हो गया। कलकत्ते के तत्कालीन सुप्रसिद्ध डॉक्टरों ने चिकित्सा की, किन्तु कोई फल नहीं हुआ। कलकत्ता मेडिकल कॉलेज के तत्कालीन प्रिंसिपल डॉक्टर कर्नल कालबर्ट ने अपने सहकर्मी कर्नल वार्ड आदि चार प्रसिद्ध डॉक्टरों के साथ मेरी परीक्षा करके कहा था कि यह रोग असाध्य है और दायीं-बाँह पर भी इसके आक्रमण की सम्भावना है। तब मैं पंगु हो जाऊँगा बल्कि मेरे जीवन के खत्म हो जाने की आशंका है। अनेक प्रसिद्ध ज्योतिषियों द्वारा मेरी जन्मकुण्डली पर विचार करने पर मालूम हुआ था कि २३ वर्ष की आयु में मेरी अकाल मृत्यु का योग है। इसी समय श्रीगुरुदेव ने मेरे छोटे मौसा (कलकत्ते के बहुत प्रसिद्ध व्यवसायी श्रीउमेशचन्द वन्द्योपाध्याय) के घर अपनी चरण-धूलि दी। इस सुअवसर पर मेरी मौसीजी ने बहुत कातर होकर श्रीगुरुदेव को मेरे बारे में बताया और श्रीबाबा ने मुझ पर कृपा-दृष्टि डाली। मेरे सौभाग्य से कुछ दिन बाद ही उन्होंने मुझे दीक्षा दी और दीक्षा सम्पन्न हो जाने पर बताया कि मेरे जीवन को अब कोई खतरा नहीं। साथ ही यह भी बताया कि बड़े-बड़े डॉक्टर चाहे जो कहें, मेरे जीवन का अन्त नहीं होगा और मैं दिनों-दिन स्वस्थ होता हुआ अपने काम करने लगूँगा। बड़े आश्चर्य की बात है कि मेरी दीक्षा के बाद मेरा शरीर स्वस्थ होने लगा था और मैं दो साल में ही अच्छी तरह कोई भी कार्य सम्पन्न करने योग्य हो गया था। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना ठीक होगा कि २३ साल की वय में मैं अपनी मौसी के साथ धाम में वायु-परिवर्तन के लिए गया था। वहीं मैं टायफायड से आक्रान्त हो कर लगभग मौत के मुँह में जा पहुँचा था। उस समय वहाँ के सिविल सर्जन डॉ० पुलीपाका ने मेरी दवा की थी और एक दिन मेरी मरणासन्न दशा देखकर मेरे जीवन की आशा छोड़ दी थी। इस पर मेरी मौसी आदि सबने रोना-पीटना शुरू कर दिया, किन्तु उसी समय मैंने ऐसा अनुभव किया था और तुरन्त चेतना प्राप्त करके मैने कहा, 'मेरे जीवन की रक्षा होगी, तुम सब रोओ नहीं।' दूसरे ही दिन श्री गुरुदेव का एक अभयदानी पत्र भी मुझे मिला था। उसके बाद से मेरा शरीर क्रमशः ठीक होने लगा था और कुछ दिनों बाद तो मैं विशेष हृष्ट-पुष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और बलवान् हो गया था। बाबा की कृपा से मेरी आर्थिक स्थिति भी सुधरने लगी थी। दीक्षा के बाद बाबा मेरे जीर्णशीर्ण घर में पधारे थे और उसी समय मेरे मौसेरे जीजा खिदिरपुर-निवासी श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय, कलकत्ता हाई कोर्ट के वकील (पूर्वोक्त श्री उमेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय के जामाता) ने उन्हें मेरे पूर्वजों की अट्टालिका के ध्वस्त हो जाने का विवरण दिया। सुनकर श्री बाबा ने कहा था कि भवन का निर्माण फिर होगा और जो भूमि और सम्पत्ति नष्ट हो गयी है वह सब भी मिलेगी। उस समय की अपनी शारीरिक और आर्थिक दशा को देखते हुए मैं सोच भी नहीं सकता था कि यह सब होना सम्भव है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि श्री श्रीगुरुदेव की कृपा और उनकी शुभकामना से सात-आठ साल के भीतर ही मेरे पैत्रिक सिंहासन का पुनर्गठन हो गया था तथा बर्बाद भूमि और सम्पत्ति के अधिकांश का पुनरुद्धार हो गया था और, और भी नई सम्पत्ति की प्राप्ति भी हुई थी।

जब मैं चौंतीस साल का था, मेरी पत्नी ने एक पुत्री को जन्म दिया। उसके बाद पत्नी को रक्तदोष (Septic) और सूजन (Phlegmatia) के रोग हो गये। सुप्रसिद्ध डॉक्टरों ने उसके जीवन की आशा छोड़ दी थी। तब मैंने बहुत कातर होकर बाबा को सूचित किया। उन्होंने कहा, ''तुम्हारी स्त्री बच जायगी और तीस दिन बाद रोग दूर हो जायगा।'' इस पर मेरी पत्नी के मौसा महाशय, विख्यात डॉक्टर श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय (स्वामी सच्चिदानन्द गिरि महाराज) ने श्री गुरुदेव के श्रीचरणों का दर्शन करके कहा था कि, उस लोग का दूर होना कठिन है, क्योंकि मैंने अपने प्रैक्टिस-काल में कभी उस रोग से मुक्त होते किसी को नहीं देखा। इस पर श्री बाबा ने कहा था, ''तुम्हारे जैसा डॉक्टर भी भयभीत होता है ? जाओ, निश्चिन्त रहो, ६० दिन के बाद ही रोगी को बर्दवान से बेलघरिया ले जाया जायगा, क्योंकि तुम्हारे कलकत्ते की अपेक्षा बर्दवान आने-जाने में विशेष कष्ट होता है।'' बड़े अचरज की बात है कि साठ दिन बाद ही रोगी की हालत विशेष रूप से सुधरने लगी और रोगी को रिजर्व (सुरक्षित) कमरे में इनवैलिड चेयर से बेलघरिया स्थानान्तरित किया गया था। रोगी का स्थान बदलने के समय बर्दवान के दो प्रसिद्ध डॉक्टर, जो उपर्युक्त डॉक्टर देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के साथ रोगी की चिकित्सा में लगे थे, उन्होंने प्रचार कर दिया था कि दूसरी जगह ले जाते समय रोगिणी राह में ही मर जायगी। किन्तु मैंने और डॉक्टर देवेन्द्र बाबू ने बाबा पर निर्भर रहकर किसी प्रकार का भय नहीं किया। बाद में रोगी के निर्विघ्न रूप से बेलघरिया पहुँच जाने की खबर पाकर बर्दवान के दोनों डॉक्टर विस्मय में पड़ गये। इसके बाद इस रोगी की जाँघ से लेकर पैर की गाँठों तक सड़न शुरू हो गयी। अनेक तरह की दवाओं और सुइयों के देने पर भी घाव दबा नहीं। किन्तु बाबा ने सूर्यविज्ञान से तैयार किया हुआ एक मरहम दिया था, जिसको लगाने से रोगिणी ने पूरी तरह से मुक्ति पा ली थी। मेरी जीवन-संगिनी स्त्री जीवित नहीं रह सकती थी किन्तु श्रीबाबा की कृपा से ६७ साल तक मुझे स्त्री-वियोग नहीं झेलना पड़ा है, बल्कि मेरी स्त्री अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृद्धावस्था तक (मेरी बड़ी पतोहू की मृत्यु के कारण) इनकी सन्तानों के लालन-पालन तथा अन्य लौकिक कर्मों को करने में अभी भी समर्थ है।

विवाह के पहले बारह साल की उम्र में मेरी बड़ी पुत्री के सिर के बाल उड़ गए, सिर का अधिकांश भाग चण्डूल हो गया था। अनेक प्रकार की आयुर्वेदिक तथा विलायत-रिटर्न चर्मरोग के विशेषज्ञों (Skin Experts) द्वारा चिकित्सा कराने पर भी जब कोई लाभ नहीं हुआ तब अत्यन्त कातर भाव से बाबा की शरण में गया। उन्होंने मुझ पर कृपादृष्टि डालते हुए कहा, "यदि कमल के लासा का जुगाड़ कर सको तो एक अचूक दवा बना सकता हूँ।"

बड़ी कोशिश से मैंने अनेक तरह के कमलों का लासा इकट्ठा किया था, यहाँ तक कि फ्रांस से भी उसे लाया था। किन्तु किसी लासे में वह प्रकृत चीज मिली नहीं। बाद में कलकत्ते की राथोट कम्पनी की दुकान से एक शीशी लासा मिला। बाबा ने उसे देखकर कहा कि इसमें केवल छह बूँद असल चीज है। उन्होंने वह शीशी बिना खोले ही, यहाँ तक कि शीशी का पैकेट तक बिना तोड़े, एक छोटे पात्र को पास रखकर लेन्स से फोकस देकर शीशी से छह बूँद लासा छोटे पात्र में निकाल लिया था। फिर सूर्य-विज्ञान द्वारा एक दवा तैयार कर दी थी। उपर्युक्त प्रक्रिया से छह बूँद लासा निकालते देखकर मेरे गुरुभाई श्री योगेन्द्रचन्द्र बसु (कलकत्ता कॉरपोरेशन के भूतपूर्व कलेक्टर) ने कहा था, "बाबा, इस प्रकार तो आप राथगेट कम्पनी के भवन से दवा का जुगाड़ कर सकते थे।"

इस पर बाबा ने हँसते हुए जवाब दिया था, वह जरूर हो जाता, किन्तु तब वह चोरी होती। कहने की जरूरत नहीं कि सूर्य-विज्ञान द्वारा प्रस्तुत की गयी बाबा की दवा मेरी कन्या के सिर पर एक सप्ताह लगाने के बाद ही पहले से भी अधिक घने और काले बाल उग आये थे और मैंने भी बाबा की असीम कृपा से कन्या-दान से उद्धार पा लिया था।

इकतालीस साल की उम्र में मैं फिर दु:साध्य रोग से आक्रान्त होकर निकम्मा हो गया था। कलकत्ते के प्रायः सभी चिकित्सकों से आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक और एलोपैथिक दवा कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में हताश होकर पुरी धाम चला गया। वहाँ भी रोग की शान्ति नहीं हुई। करुणामय श्री बाबा की कारुणिक दृष्टि मुझ पर पड़ी। सहसा एक दिन खबर मिली कि वे पुरी आ रहे हैं। जिस दिन वे पुरी धाम पहुँचे, मैं उनका दर्शन करने स्टेशन पर गया था। गाड़ी से उतरने के पहले ही उन्होंने मेरे पुत्र को दीक्षा देने की बात प्रकट कर दी। आश्रम के भवन में बैठकर मेरी ओर देखते हुए उन्होंने कहा, तुम्हारे शरीर में बहुत कष्ट हो रहा है, इसलिए इसका प्रतिकार कर दूँगा। दूसरे दिन सबेरे आश्रम पर जाते ही उन्होंने सूर्यविज्ञान की प्रक्रिया से किसी दुष्प्राप्य वस्तु को तैयार करके मेरी दाहिनी बाँह की पेशी में उसे प्रविष्ट करा दिया। मैं उसी दिन से अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगा। फिर तो दिन पर दिन मेरा स्वास्थ्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुधरता गया। उनकी कृपा से आज ६७ साल की अवस्था में भी मैं नौजवान की तरह काम करने में समर्थ हूँ।

मेरे बड़े पुत्र को १६ साल की उम्र में अकाल मृत्यु का योग था, अतः श्री बाबा ने अपनी सहज करुणाशीलता से श्री पुरीधाम में पहुँचते ही उसकी दशा खराब होते हुए भी उसे दीक्षा दी और बाहर आकर कहा कि मेरा बाकी काम पूरा हो गया। अब मैं इस संसार में रहूँगा नहीं और पुरी धाम से लौटते ही शरीर त्याग दूँगा। मैं भलीभाँति समझ लिया था कि मेरे और मेरे पुत्र की जीवन-रक्षा के लिए अपनी शारीरिक अवस्था को बिना बताए उन्होंने पुरी धाम तक की यात्रा की थी। उनकी कृपा मुझे मिली, किन्तु बहुत सी बातों का उल्लेख अनुचित समझकर उनका उल्लेख मैंने नहीं किया।

■

लौकिक-अलौकिक

डॉ० सुरेशचन्द्रदेव डी० एस० सी०

बाबा गुष्करावास के अन्तिम दिनों में अथवा गुष्करा छोड़ने के बाद अर्थात् १६११ ई० में बण्डूल में श्रीहरिहर की प्रतिष्ठा हुई थी, उनका मन्दिर बना था, नियमित पूजा आदि की व्यवस्था हुई थी और उनकी महिमा का कुछ-कुछ आभास लोक-सामान्य को मिलने लगा।

उस समय श्री बाबा स्वयं बण्डूल में उपस्थित थे। उनका स्नान तब भी बन्द नहीं हुआ था। वे प्रतिदिन उषाबेला में पास के पोखरे में नहाने जाते और स्नानादि समाप्त करके थोड़ा उजाला होते-होते घर लौट आते। तब गाँव के दूसरे लोगों का पोखरे पर जाने का समय होता। हम लोगों की माता ठकुरानी भी उसी समय उठकर अपनी समवयस्क सहेलियों को लेकर स्नानादि के लिए जाती थीं।

श्रीश्रीमाताजी को पान खाने का अभ्यास था। सबेरे उठकर एक बीड़ा पान मुँह में लेकर सखियों के साथ बातचीत करतीं वे पोखरे के किनारे जातीं, यह उनका नित्य कर्म था। एक दिन इसी तरह पान चबाती और सहेलियों से बातें करतीं उन्होंने अनजाने पीक थूँकी। वह पीक जाकर हरिहर के मन्दिर की दीवार पर पड़ी और तुरन्त लाल होकर वह सद्यः परिस्कृत दीवार की ओर सबकी दृष्टि खींचने लगी।

श्री श्रीबाबा स्नान करके घर लौटते समय पान की वह पीक देखते ही समझ गए कि यह किसकी करतूत है। वे मन ही मन खिन्न हुए। उन्होंने घर पहुँचते ही अपनी माताजी को बुलाकर उनका ध्यान मन्दिर की दीवार की ओर खींचा और कहा कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे अपनी बहू को समझा दें कि ऐसा आगे फिर कभी न हो। यदि फिर भूल हुई तो शिवजी का कोप-भाजन बनना पड़ेगा।

हमारी गुरुमाताजी अपनी पुत्रवधू के लौटने की राह देखने लगीं। उनके आते ही उन्होंने सब बात उन्हें बताईं और पान की पीक को धोकर साफ कर देने को कहा। अपनी करनी की ओर नजर पड़ते ही माताजी का सिर लज्जा से झुक गया और उन्होंने तुरन्त जल लेकर दीवार से पान की पीक का दाग धोकर साफ कर दिया। इसके बाद वे दूसरे काम में लग गयीं। किन्तु अभी घटना का समापन नहीं हुआ। मन्दिर की दीवार साफ-स्वच्छ हो जाने से श्री बाबा अवश्य प्रसन्न हुए।

उस समय बाबा गहरी रात में महानिशा की क्रिया में लीन थे। वे रात में भी उसी रूप में अपने एकान्त मन्दिर में थे। माताजी घर के अन्दर अपने कमरे में सो रही थीं। आधी रात को सहसा उनकी नींद खुल गयी और उन्होंने देखा कि घर के भीतर एक व्यक्ति खड़ा होकर उनकी ओर क्रुद्ध दृष्टि से देख रहा है। उसका चेहरा जैसा भयंकर है वैसा ही रुक्ष भी। झबरे-झबरे बाल हैं—हाथ में एक मोटी लाठी है। उस लाठी को जमीन पर ठोंकते हुए वह उन्हें धमका रहा है। श्री माताजी यह देखकर बहुत डर गयीं और बाबा को बुलाने लगीं। तब बाबा वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने उस व्यक्ति को जाने के लिए कहा। वह बावा की बात सुनकर भी जैसा सुनना नहीं चाहता था, वह बार-बार यही कहता था कि 'अब मन्दिर की दीवार गन्दी करने पर बच नहीं सकेगी।' जो हो, अन्त में वहाँ से उसे जाना पड़ा और बावा भी वहाँ से अन्तर्हित हो गए। बाबा को देखकर माताजी के शरीर में जैसे प्राण आ गए। उन्होंने साहस करके बच्चों को देखा कि वे मजे से हैं या नहीं। देखकर वे फिर सो गयीं। वह रात डरते-डरते उन्होंने बिताई।

इस बात को दूसरे दिन सुनकर श्रीबाबा ने कहा था, "शिव का भैरव भयंकर रूप में चढ़ आया था और यदि मैं उसे न लौटाता तो न जाने वह क्या कर बैठता।" कहने की जरूरत नहीं कि बाबा महानिशा की क्रिया में लीन होते हुए भी भैरव के सामने आ पहुँचे थे। वाहर से उस कमरे के भीतर यदि वे लौकिक रूप में आते तो घर के सभी लोग जाग जाते, किन्तु उनके आने का पता किसी को नहीं चला, कोई दरवाजा तक किसी ने नहीं खोला।

इस घटना का जिक्र बावा इतना रस ले-लेकर करते थे कि कोई अपनी हँसी रोक नहीं पाता था। माताजी पूर्ण रूप से गाँव की महिला थीं। उनकी बातचीत में भी गँवारूपन बहुत था। उनकी ग्रामीण भाषा की नकल करते हुए जब वे उनकी चर्चा करते थे तब हँसी की मधुर ध्वनि से घर मुखरित हो उठता था। माताजी ने दूसरे दिन सबेरे अपनी सहेलियों से रात की घटना का उल्लेख किया था। उन्होंने सोचा था कि कोई डाकू-साकू आया था। उन्होंने यह नहीं समझा था कि वे भैरव थे। उन्होंने कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था—"वह दुर्गा के पिता की ओर देखना भी नहीं चाहता था, सिर्फ लाठी ठकठकाता और मेरी ओर घूरकर देखता था। अन्त में जब दुर्गा के पिता ने धमकाते हुए चले जाने को कहा तब वह डरता हुआ चला गया और मैं लम्बी साँस लेती बच गयी।"

श्री श्रीबाबा सांसारिक व्यक्ति नहीं थे। उनके जन्म ने इस संसार को अलौकिकता दी है और इसे प्रगतिशील बनाने में सहायता पहुँचाई है। एक प्रकार से उनका सारा जीवन एक अलौकिक व्यापार था। ऐसा होते हुए भी वे इस संसार के ही व्यक्ति थे, क्योंकि उनके शरीर के अंश-स्वरूप लोग जिन्हें उनकी कृपा प्राप्त थी वे अब भी पूर्णतया मनुष्य ही हैं। ऐसा लौकिक और अलौकिक का समन्वय इतने सुन्दर रूप में प्रस्फुटित होते किसी दूसरे में देखा नहीं गया। इसी से उनका योगदर्शन भी प्रचलित योगदर्शन से सर्वत्र मेल नहीं खाता। यहाँ भी वैसा ही समन्वय था जिसके कारण जीव का आधार ले भागवती शक्ति की क्रिया अपने आप होती रहती थी। हम उन्हें खण्ड रूप में देखने के अभ्यस्त थे, यह उनके पूर्ण रूप का विरोधी था। हमारी इस भूल को उन्होंने सहज ही दूर कर दिया था। वे आज एक सर्वव्यापी सत्ता हैं। उस व्यापक सत्ता का ज्ञान जब हमें हो जाएगा तब उनका मूर्तरूप हमारे सामने प्रकट हो जाएगा।

■

बाबा विशुद्धानन्द-स्मृति

श्री अमूल्यकुमार दत्तगुप्त

मैं पण्डित नहीं, साधक नहीं, यहाँ तक कि बाबा का शिष्य भी नहीं हूँ। स्वभावत: बाबा के बारे में कुछ कहने का अधिकार मुझे नहीं है। यदि पण्डित होता तो अध्यात्मशास्त्र का मन्थन करके सूत्ररूप में बाबा की उपलब्ध तात्त्विक बातों को किसी विशेष चिन्ताधारा में आबद्ध करके विद्वत्समाज के सम्मुख उपस्थित कर सकता। यदि अनुभूति-सम्पन्न साधक होता तो बाबा की उन सारी विभूतियों के विषय में, जिन्हें मैंने अपनी आँखों देखा है, विस्तार से बताता कि वे साधना या सिद्धि की किस अवस्था में विकसित हो जाती हैं। यदि मैं शिष्य होता तो बाबा के विषय में कितना कुछ नहीं कहने को होता, क्योंकि शिष्य का जीवन सद्गुरु का लीला-निकेतन होता है। उन्हें परमपद के योग्य निर्मित करने के लिए न जाने क्या-क्या जोड़-जोड़ करना पड़ता है। अत: मैं उपर्युक्त किसी भी अधिकार का अधिकारी नहीं हूँ, अत: मेरे लिए उनके विषय में कुछ कहना विडम्बनामात्र ही है। तथापि इस सम्बन्ध में कुछ कहने का जो साहस मुझे मिला है वह केवल कृतज्ञ अन्तःकरण की प्रेरणा से ही। क्योंकि शिष्य न होने पर भी मैंने बाबा द्वारा शिष्य से भी अधिक स्नेह पाया है। विपत्ति में मुझे अभय मिला, रोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पीड़ा से व्याकुल होकर उनकी अयाचित करुणा प्राप्त करके मैं निरोग हो गया हूँ। इसके अलावा, सद्‌गुरु की लीलाओं के स्मरण से भी मन की मलिनता मिट जाती है।

बाबा से मेरा परिचय बहुत दिनों का नहीं। उनके देह-त्याग के कुछ साल पहले उनके दर्शन का सौभाग्य मुझे मिला। तब से कभी लम्बे समय तक के लिए लगातार उनका साथ मुझे नहीं मिला। शारदीय पूजा की छुट्टियों में श्रीकाशी धाम में और गर्मियों में कलकत्ते में मुझे कभी-कभी उनके दर्शन हुए हैं। कलकत्ते से अधिक काशी में ही मुझे बाबा का संग मिला है और मैंने लक्ष्य किया कि यहाँ के परिवेश में कुछ ऐसी विशेषता थी जिसके कारण बाबा की लीला-माधुरी जिस प्रकार यहाँ विकसित हो उठती थी, वैसी कहीं अन्यत्र देखी नहीं गई। काशीधाम के प्रति बाबा का भी कुछ विशेष पक्षपात था, यह बहुत बार उनकी बातों और व्यवहार से प्रकट हो जाता था। एक बार मैंने बाबा से कहा था, ''बाबा, इस समय तो आपका शरीर स्वस्थ दिखाई दे रहा है। कलकत्ते में जैसा मैंने देखा था इस समय बहुत अच्छा है।'' बाबा ने कहा, ''काशी है मुक्ति का स्थान, यहाँ शरीर क्यों स्वस्थ नहीं रहेगा ?''

काशी और कलकत्ता दोनों ही स्थानों पर बाबा के पास लोगों की अधिक भीड़ होती थी, यद्यपि उसमें उनके शिष्यों की ही संख्या अधिक होती। उस समय वे हम लोगों से जो बातचीत करते, उसमें तत्त्वालोचन अधिक नहीं होता था। यदि हमने से कोई तत्त्व-सम्बन्धी प्रश्न करता भी तो वे उसका उत्तर बहुत संक्षेप में देते, क्योंकि वे यह जानते थे कि हममें से बहुसंख्यकों के लिए तत्त्वालोचन कल्पना-विलासमात्र था। साधन विमुख मन तत्त्वालोचन की गम्भीरता का वहन नहीं कर सकता। इसीलिए घास की ढेरी में मोती बिखेरने का उत्साह बाबा ने कभी नहीं दिखाया। वे प्रायः कह देते थे, ''यदि तत्त्वालोचना सुनना चाहो तो गोपीनाथ के पास जाओ और यदि कुछ प्रत्यक्ष करना चाहते हो तो मेरे पास जाओ।'' किन्तु इसे लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि वे तत्त्वालोचना बिलकुल करते ही नहीं थे। क्योंकि बाबा के प्रधान शिष्य ''परमपण्डित और परम ज्ञानी'' महामहोपाध्याय श्रीयुत गोपीनाथ कविराज महाशय जब आते तब उनके साथ तत्त्वालोचना करते मैंने बाबा को देखा है किन्तु उन सारी तत्त्वालोचनाओं का रहस्य समझना लोक-साधारण के लिए बहुत कठिन था। वह इतने संक्षिप्त रूप में होती कि उसे सुनकर प्रायः ऐसा प्रतीत होता कि किसी सांकेतिक भाषा की सहायता से वह हो रही है। शब्द मेरे कान में पड़ते अवश्य थे किन्तु वहाँ से बुद्धि में पहुँचने की राह न पाकर वे दूसरे कान की राह निकल जाते थे। प्राप्ति की दृष्टि से विचार करने पर रिक्तता ही हाथ लगती थी, किन्तु तृप्ति की दृष्टि से उसे शून्यता नहीं कहा जा सकता। किसी विराट् और महान् के सामने आने पर जैसे मन हर्ष और विस्मय से स्वतः अभिभूत हो उठता है, गुरु और शिष्य की आलोचना भी वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करती थी।

एक दिन की बात बताता हूँ—पिछले पहर का समय था। विज्ञान मन्दिर के दो तल्ले के बरामदे में हम सब बैठे थे। गोपी बाबू भी हममें थे। तरह-तरह की बातों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सिलसिले में बाबा ने कहा, "मनुष्य कभी भी भगवान् नहीं हो सकता। गोपीनाथ, तुम क्या कहते हो ?"

गोपीबाबू—यह तो सच बात है।

बाबा 'सोऽहम्' का कथन भी द्वैत-बोधक है—वह और मैं दो तो रह ही गए।

गोपीबाबू—सो तो यथार्थ है।

इसके बाद गुरु-शिष्य में प्रकृति-विकृति इत्यादि के विषय में आलोचना चल पड़ी, उसका एक अक्षर भी मेरी समझ में नहीं आया। मैं अवाक् होकर गुरु-शिष्य को ताकता रह गया। बीच-बीच में किसी-किसी के मुख का भाव भी लक्षित करने लगा। किन्तु सर्वत्र यही देखने को मिला कि किसी के हाथ कुछ भी नहीं आ रहा है।

अस्तु, कुछ देर इस प्रकार तत्व-विमर्श चलने के बाद बाबा ने डॉ० शोभाराम से पूछा, "शोभाराम, तुम्हारा क्या विचार है ?" डॉ० शोभाराम इतनी देर बाबा की देह को ही ताकते रहे थे। उन्होंने जवाब दिया, "बाबा, मैं तो इतनी देर आपका पेट ही देखता रह गया।" यह जवाब सुनकर हम सब हँस पड़े। बाबा ने हँसते हुए कहा, "तुम्हारी बात सुनकर मुझे एक किस्सा याद आ गया—

—एक बार दुर्गापूजा के समय एक अफीमची मूर्ति के दर्शन करने गया। उसने स्तवन आरम्भ किया, 'अस्तीकस्य मुनेर्माता'। उसे इस प्रकार स्तुति-पाठ करते देखकर वहाँ उपस्थित लोगों ने उससे कहा, "बेटा, इतने देवी-देवताओं के रहते तू यह साँप की स्तुति क्यों कर रहा है ?" उसने कहा, तुम लोग सारी बातें जानते नहीं इसी से ऐसा सवाल कर रहे हो। यदि जानते तो ऐसा न कहते। तो सुनो, मैं सच्ची घटना सुना रहता हूँ,—गत रात मैं अफीम खाने गया। जाकर देखा कि डिब्बे में अफीम नहीं है। जो थोड़ी-सी थी उसे मुँह में डालकर सोचा कि इस बार कैलास पर जाकर थोड़ी भाँग का इन्तजाम कर आऊँ। सोचने के साथ ही मैं कैलास को चल पड़ा। बड़े परिश्रम के बाद कैलास पर पहुँचकर ज्यों ही कैलासपति के घर में घुसना चाहा त्यों ही एक विराट् पुरुष ने आकर मेरा गला पकड़ लिया और कहा, "तू कौन है ? यहाँ क्या चाहता है ?" मैंने बड़े कष्ट के साथ कहा, "मैं भँगेड़ी हूँ। यहाँ थोड़ी भाँग के लिए आया हूँ।" यह सुनकर उसने मेरा गला छोड़ दिया और मुझे बैठ जाने को कहा। फिर थोड़ी भाँग लाकर मुझे खाने को दी। साहस पाकर मैंने पूछा, "आप कौन हैं ?" उसने कहा, "मैं नन्दी हूँ।" फिर मैंने उसके साथ जी भरकर भाँग खाई। उसके चले जाने के बाद मैंने फिर घर में घुसने की ज्यों ही कोशिश की त्यों ही एक दूसरे आदमी ने आकर मुझे रोका और मेरा परिचय जानना चाहा। मैंने नन्दी से जो कहा था, उससे भी कह दिया और पूछकर जाना कि वह भृंगी है। उसके साथ भी अधिक मात्रा में भाँग की खवाई हुई। बाद में मैंने प्रार्थना करते हुए उससे कहा, "भाई, इतना कष्ट झेलकर इतने दूर देश से यहाँ आया, क्या एक बार माताजी और पिताजी को नहीं देख सकता ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृपा करके तुम उनकी एक झाँकी करा दो ना ? भृंगी ने कहा, "घर के भीतर बहुत गड़बड़ है। अच्छा, तुम सावधानी से मेरे साथ आओ। दूर से ही बाबा को देखकर चले जाना। सावधान, उनके पास जाने की कोशिश न करना।"

जो आज्ञा, कहकर मैं उसके साथ भीतर पैठा। एक किवाड़ की आड़ से माँ और बाबा का दर्शन किया और उनके बीच जो बात चल रही थी उसे भी सुना। बाबा माँ से कह रहे थे, अब की पूजा में तुम बंगाल जाओ। माँ ने कहा, यह कैसे हो सकता है ? मुझे तो अभी अमरावती जाना है। तब बाबा ने कार्तिक, गणेश आदि से एक-एककर बंगाल जाकर पूजा ग्रहण करने को कहा, किन्तु सबने कोई-न-कोई उज्र दिखाकर जाने में असमर्थता प्रकट की। अन्त में बाबा ने सर्प से कहा, तो बच्चा, तुम्हीं जाओ। सर्प ने कहा, मैं आपका दास हूँ। आपकी आज्ञा मेरे सिर-माथे पर है। अब की पूजा में मैं ही बंगाल जाऊँगा। यह बात सुनकर मैं कैलास से चला आया। इस बार समझो कि पूजा में देवी-देवता कोई नहीं आया। आया केवल सर्प। इसीलिए तो मेरी यह स्तुति है।"

यह कहानी सुनाकर बाबा ने कहा, "हम लोगों की इतनी अच्छी-अच्छी बातें हुईं; शोभाराम ने उनमें से कुछ भी नहीं सुना, उसने अगर कुछ देखा तो सिर्फ मेरे पेट को।"

बाबा की बात को सुनकर हम लोग हो-हो करके हँस पड़े।

यद्यपि तत्वालोचना के विषय में बाबा हम लोगों से विस्तार के साथ चर्चा नहीं करते थे तथापि हम लोगों के लिए जो नितान्त उपयोगी होता उसका उपदेश हमें दिया करते थे। आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने के लिए सरलता, सत्य-निष्ठा और माता-पिता के प्रति जिस श्रद्धा-भक्ति की एकमात्र आवश्यकता होती है उसे हमें बार-बार समझाया था। अपने जीवन की घटनाओं से दृष्टान्त दे-देकर हमें उसी राह पर चलने को उत्साहित करते थे।

बाबा की मातृभक्ति दर्शनीय वस्तु थी। काशी के विज्ञान-भवन के हाल कमरे में वे जब भी प्रवेश करते, दीवार में लगी हुई माँ की मूर्ति को प्रणाम किए बिना कभी भी आसन पर बैठते नहीं थे। वे सदैव कहा करते, "संसार में यदि कहीं निस्वार्थ प्रेम है तो वह माता का है और सबके प्रेम में न्यूनाधिक रूप में स्वार्थ की गन्ध होती है किन्तु माँ का प्रेम नितान्त शुद्ध होता है।" उन्होंने अपनी माता की बात करते हुए एक दिन हम लोगों ने कहा था, "छुटपन से ही मैं उनकी भक्ति करता था। देवी-देवताओं को मैं बड़ा नहीं मानता था, क्योंकि माँ ही सबकुछ थीं। माँ जब भी जो कुछ करने को कहतीं, मैं बिना विचारे वही करता था। जीवन में सिर्फ एक दिन मैं माता को उपदेश देने गया था—एक बार माताजी एक आदमी को रुपये उधार देने जा रही थीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह देखकर मैंने कहा था, "माँ, उसे उधार देने पर सब रुपये बर्बाद हो जाएँगे, क्योंकि उधार चुकाने की उसमें शक्ति नहीं है।" माँ ने मेरी बात अनसुनी करके उस आदमी को रुपये उधार दिये। यह देखकर और माँ को अयाचित उपदेश देने के कारण मुझे बहुत पश्चात्ताप हुआ। जब मुझसे वह कष्ट सहा नहीं गया तब माँ के पैरों पर गिरकर मैंने कहा, "माँ, मुझसे भारी अपराध हुआ है। मैंने आपके कार्य में सन्देह प्रकट किया है, आपको सिखाने गया था। आप मुझे दण्ड दें। ऐसा न करने पर मेरा अनुताप जायगा नहीं, मेरे मन को भी सन्तोष नहीं मिलेगा।" मेरी बात सुनकर माँ ने हँसते हुए कहा, "अच्छा, चान्द्रायण व्रत करो।" मैंने वह प्रायश्चित्त किया। इसके बाद कभी माँ को उपदेश देने नहीं गया। बिना विचारे उनकी आज्ञाओं का मैंने पालन किया और देखा कि वही सब प्रकार से हितकर सिद्ध हुआ। माँ ने जिस आदमी को रुपये उधार दिये थे, कुछ दिनों बाद वह बहुत सारा जिनिस-पत्र देकर कर्ज चुका गया। माँ ने मुझे बुलाकर कहा, "देखो, तुम्हारे रुपयों से कितनी चीजें आ गयी हैं।"

सरलता और सत्य-निष्ठा की बात करते हुए एक दिन बाबा ने कहा था, "पहले मैं (महाकवि) कालिदास से कम मूर्ख नहीं था। कालिदास जिस डाल पर बैठे थे उसी डाल को काटते हुए उन्होंने अपनी बुद्धिहीनता का परिचय दिया था। किन्तु मैं उनसे एक डिग्री ऊपर था। एक बार कई संन्यासी विन्ध्याचल में थे। एक दिन पहाड़ के ऊपर एक आम के पेड़ पर एक पका आम दिखाई पड़ा। हम सब लोगों की दृष्टि एक साथ ही उस पर पड़ी और उसे पाने के लिए सभी लोग दौड़ते हुए वहाँ पहुँचकर पेड़ पर चढ़ गए। सबसे पहले आम को पाने के लिए बिना आगा-पीछा सोचे डाल से उछलकर मैंने आम को हाथ में ले लिया। फल जैसा था उसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। हाथ का आम हाथ में ही रहा। मैं ऊँचे पहाड़ से नीचे धरती पर आ गिरा। गिरने के कुछ क्षण बाद तक होश रहा, बाद में मैं बेहोश हो गया। जब मैं होश में आया, तो देखा कि दादा गुरुदेव (श्रीमद् भृगुराम स्वामी) मुझे आकाशमार्ग से विन्ध्याचल पहाड़ के ऊपर लिए जा रहे हैं। दादा गुरुदेव को देखकर मैं डर गया। वहीं बैठाकर मुझे मूर्ख कहकर उन्होंने गाली दी। मैं मूर्ख हूँ, इस बारे में कोई सन्देह नहीं। मैं चुप हो गया। उन्होंने मुझसे आम खाने को कहा। पहले मैंने इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, "इस आम के लिए ही तो इतना बड़ा काण्ड हुआ। उसे खा डालो। मैंने वैसा ही किया। पहाड़ से गिरने के कारण मेरी देह और जाँघ कई जगह कट गयी। घावों पर लगाने के लिए दवा देकर उन्होंने कहा, "बता, अब तो कभी ऐसा काम नहीं करेगा ?" मैंने कहा, "क्यों नहीं करूँगा ? मैं फिर करूँगा।" वे अवाक् होकर मेरा मुँह ताकते रह गये। उन्हें इस तरह ताकते देखकर मैंने कहा, "मैं ऐसा काम क्यों नहीं करूँगा ? मुझे हुआ क्या है ? आपके रहते मुझे डर किसका ?" दादा गुरुदेव सन्तुष्ट होकर मेरे सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देकर चले गए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दादा गुरुदेव के स्नेह की बातें करते-करते बाबा ने आगे कहा, ''बचपन से सत्य के प्रति मेरा अनुराग था। झूठी बातें कह नहीं सकता था। इसी से दादा गुरुदेव मुझसे बहुत स्नेह करते थे। ज्ञानगंज में एक दिन मैं स्नान करने जा रहा था; उसी समय एक कुमारी को स्नान करते देखकर मेरा चित्त चंचल हो उठा। मैं बिना स्नान किए दादा गुरुदेव के पास चला गया। मुझे असमय आते देखकर वे तनिक हँसे। मैंने बिना किसी प्रकार की भूमिका बाँधे गम्भीरता के साथ अपने मन की शोचनीय स्थिति उनके सामने खोलकर रख दी। मैंने कहा, ''सम्भव हो तो मेरे इस पाप के लिए प्रायश्चित्त की व्यवस्था कर दें नहीं तो मुझे आश्रम से निकाल बाहर कर दें। मेरे जैसा आदमी यहाँ रहने के योग्य नहीं है।'' दादा गुरुदेव ने हँसते हुए कहा, ''मैं आशीर्वाद देता हूँ, आज से तुम कभी काम के वशीभूत नहीं होगे। यदि कामभाव जगे तो समझो संसार का नाश होगा।'' यह कहकर उन्होंने मुझे प्रक्रिया सिखाई और उसका अभ्यास करने को कहा। दादा गुरुदेव की शक्ति अप्रतिम है। देवता भी उनके भय से काँपते हैं।

दिव्य जीवन की प्राप्ति के लिए खाद्य और अखाद्य का उपयोगी विचार भी वे हमारे सामने व्यक्त करते थे। वे सत्संग और उपयोगिता पर बल देते थे। वे कहते, बिना कर्म किये फल नहीं मिलता। साधना के विषय में जो जितना कर्म करेगा वह उतनी ही जल्दी फल पाएगा। सबसे पहले चरित्र उत्तम न होने से कुछ भी होना सम्भव नहीं। अल्पाहार और कम निद्रा ठीक है। क्रिया करते-करते यह भी हो जाता है। धर्म का सदैव सहारा लिए बिना शान्ति कहाँ ? और धर्म का आश्रय ग्रहण करने पर शान्ति-प्राप्ति निश्चित है।''

कहानी के बहाने बाबा हम लोगों की साधना-विमुखता और उत्साह-हीनता की ओर हमारा ध्यान खींचने की चेष्टा करते थे। एक दिन बाबा ने यह कहानी सुनाई— ''एक बूढ़ी विधवा थी। उसके पास अथाह धन-सम्पत्ति थी। उसे ही लेकर वह दिन-रात मतवाली रहती थी, इसी से उसे रात में भी नींद नहीं आती थी। नींद के अभाव में उसकी देह दिन-पर-दिन क्षीण होने लगी और स्वभाव भी रूखा होने लगा। इसी से वह अपने और पराए सबको जलाने लगी। नींद आने के लिए उसने बहुत कुछ दवा-पत्र किया, किन्तु सब बेकार। नींद न आने से वह पगला-सी गई। यह देखकर उसके एक स्वजन ने उसे एक जप-माला दी और कहा, ''तुम सबेरे और शाम को यह माला लेकर भगवान् का नाम- जप करना। इससे तुम्हारे मन को शान्ति मिलेगी और तुम्हारा शरीर भी स्वस्थ हो आयगा। उस स्वजन के कहने के अनुसार एक दिन शाम को बूढ़ी जप की माला लेकर भगवान् का नाम जपने के लिए बैठी। आश्चर्य की बात कि जो इतना उपचार करने पर भी सो नहीं सकी थी, उस दिन नाम-जप शुरू करते ही वह सो गई। इसके बाद जब भी उसे नींद के अभाव का अनुभव होता तभी वह चिल्लाकर कह उठती, 'अरी, मेरी जप की माला तो ले आ।' यह कहानी सुनाकर बाबा ने हम लोगों से कहा, ''तुम्हारी दशा भी उस बूढ़ी की-सी है। संसार के सब काम करते हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम थकते नहीं, किन्तु ज्यों ही नाम-जप का समय आता है, तुम्हारे हाथ-पैर सुन्न हो जाते हैं।" यह कहानी सुनकर हम सभी खूब हँसने लगे। बाबा भी हमारे साथ हँसने लगे।

किसी-किसी शिष्य की कमजोरी को लेकर बाबा कभी-कभी हँसी-ठट्ठा भी करते थे। किन्तु वह भी इस भाव से करते थे कि उससे शिष्य हतप्रभ नहीं होता था बल्कि बाबा उसको लेकर हास-परिहास कर रहे हैं, यह जानकर वह भी आनन्दित ही होता था। ब्रह्मपद नामक बाबा के एक शिष्य हैं। वे आश्रम की मूर्तियों की सेवा-पूजा करते हैं। एक दिन उनके सम्बन्ध में बाबा ने हम लोगों से कहा, ब्रह्मपद दही खाने से डरता है, क्योंकि वह उससे सहा नहीं जाता। एक दिन लालच में पड़कर उसने थोड़ा सा दही खा लिया था। खाते समय ही उसे भय हुआ कि खाने के बाद कहीं कष्ट न हो। फिर वह एक गिलास पानी पीकर घर गया और वहाँ उछलने-कूदने लगा। उसे ऐसा करते देखकर परमेश्वर (नौकर) ने पूछा, 'आप यह क्या कर रहे हैं ?' ब्रह्मपद ने जवाब दिया, 'मैं पेट के दही को मट्ठा बना रहा हूँ।'

"फिर एक दिन देखा ब्रह्मपद बाग के पौधों को एक बार उखाड़ और फिर उन्हें मिट्टी में गाड़ रहा है। मैंने उससे पूछा, यह क्या कर रहे हो ? उसने कहा, बाबा, पौधों को उखाड़कर देखता हूँ कि ये मिट्टी में लग गए कि नहीं।

"कभी-कभी देखते हैं कि वह दीवार में अपना माथा ठोंक रहा है। यदि उससे इसका कारण पूछा जाय तो वह कहता है, 'बीच-बीच में मेरी साँस रुक जाती है, इसलिए माथा ठोंककर उसे फिर चला देता हूँ।'

"इन सब बातों से हमें परेशानी होती है। इन सबमें बढ़ती होने पर भी वह बहुत सत्यवादी है। प्राणान्त में भी वह झूठ नहीं बोलता।"

तत्वालोचना, उपदेश, हास-परिहास के अलावे बाबा के दरबार में कभी-कभी राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर भी चर्चा होती थी। उनके बारे में बाबा बीच-बीच में ऐसा मत व्यक्त करते जिन्हें हम भविष्यवाणी के रूप में धर लेते थे और बाद में हमने देखा कि बाबा का कहना अक्षरशः सच उतरा।

उस समय की बात है, इटली ने अबीसीनिया पर हमला किया था। इस खबर को समाचारपत्र में पढ़कर मैने बाबा से कहा, "बाबा, दो साल पहले आपने कहा था कि युद्ध छिड़ जाने पर रुकता नहीं। अब तो सचमुच युद्ध छिड़ गया।"

बाबा—यह तो कुछ नहीं है। एक बड़ा युद्ध आ रहा है, जिसमें अंग्रेज भी शामिल हो जाएँगे।

मैं—यह तो भय की बात है। हम भी तो उससे अलग नहीं रह सकेंगे ?

बाबा—नहीं, उसमें थोड़ी देर है। अंग्रेज झूठी बातों से हमें ठगने की कोशिश करेंगे, किन्तु ठग नहीं सकेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँच साल बाद जब द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ तब उसमें कांग्रेस की सहानुभूति और सहायता पाने के लिए क्रिप्स साहब जो सारे प्रस्ताव लेकर भारत आए थे उसंका जो फलाफल हुआ था वह इस समय सबको मालूम है किन्तु ऐसा होगा, इसे बाबा ने घटना से छह-सात साल पहले ही कह दिया था।

कभी-कभी सामाजिक दुर्नीति की बात भी उठती थी। समाज और धर्म के क्षेत्र में दुर्नीति का जोर देखकर हम लोग हताश भाव से जब बाबा की दृष्टि इस ओर खींचते तो वे विशेष दृढ़ता से कहते, "चिन्ता का कोई कारण नहीं है। हम लोग धीरे-धीरे मंगल की ओर ही बढ़ रहे हैं। हिन्दू धर्म लोप होने को नहीं है। जो लोग इसके विनाश का प्रयास करेंगे उनका ही सर्वनाश हो जायगा।" मन में आता है कि हमारे राष्ट्रनेता लोग यदि इन बातों की ओर तनिक ध्यान देते तो उन लोगों का कल्याण ही होता।

हास-परिहास की बातों के अलावा जनसाधारण जो बाबाजी के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट होता था उसका कारण था, बाबा की विभूति का चमत्कार। बहुतेरे केवल यही देखने बाबा के पास आते-जाते रहते थे और बाबा भी यह सब दिखाने में कंजूसी नहीं करते थे। लोगों के आग्रह-अनुरोध के अलावा उन्होंने अनेक बार अपनी मर्जी से हम लोगों को यह सब दिखाया था। दो-एक बार हँसी-ठट्ठा में भी उन्होंने हमें दो-एक विभूतियाँ दिखाई थीं। एक दिन काशी के आश्रम में सबेरे-सबेरे पहुँचकर मैंने देखा कि बाबा आश्रम की फुलवारी में चारों ओर टहल रहे हैं। यह उनका नित्यकर्म था। ब्राह्मबेला में ही उठकर मोटर कार से कुछ क्षण घूमकर आने के बाद वे फुलवारी की नौ बार प्रदक्षिणा करते। बाबा कहते थे, "इस फुलवारी के चारों ओर नौ बार चक्कर लगाने पर एक मील हो जाता है।" अस्तु, बाबा को इस तरह टहलते देखकर हम लोग भी उनके साथ-साथ टहलने लगे। इस फुलवारी में कई मोरपंखी फूल के पेड़ थे और उनके फूलों ने खिलकर जैसे सारे बगीचे को आलोकित कर दिया था। यह देखकर हममें से एक व्यक्ति ने कहा, "देखने में फूल अच्छे हैं किन्तु उनमें गन्ध नहीं है।" यह सुनते ही बाबा ने हम लोगों की ओर मुड़कर कहा, "क्या कहा ? आश्रम के फूलों में गन्ध नहीं है।" यह कहकर उन्होंने एक मोरपंखी फूल तोड़ लिया और उसे एक बार चक्राकार घुमाकर हमारे हाथ में देकर कहा, "देखो, देखूँ गन्ध है कि नहीं ?"

हमने सूँघकर देखा, उसमें से अपूर्व गन्ध निकल रही है। यह सिर्फ बाबा की विभूति का फल है, यह समझते हमें देर नहीं लगी।

बाबा की विभूति के अनेक खेल मैंने देखे हैं। बहुतों ने देखा है। इसलिए उनका उल्लेख करके लेख का कलेवर बढ़ाना नहीं चाहता। तथापि उन विभूतियों के खेल बाबा जिस प्रकार दिखाते थे और वे जैसे विचित्रतापूर्ण होते थे, उन्हें देखकर लगता कि सर्वशक्तिमयी प्रकृति बाबा के किसी भी आदेश का पालन करने के लिए मानों दासी के समान सदा उनके पद-चिह्नों का अनुसरण करती चलती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम लोगों ने जिस किसी वस्तु की सृष्टि करते बाबा को देखा है, वे सब उन्होंने योगबल से किया है, बाबा ऐसा स्वीकार नहीं करते थे। सूर्य-विज्ञान, वायु-विज्ञान, शब्द-विज्ञान आदि के नाम लेकर कहते कि मैं अधिकांश रचनाएँ इन्हीं के द्वारा करता हूँ। किन्तु इन विज्ञानों से योग-विभूति में कितना अन्तर है, इसका निर्णय करना हमारी शक्ति के बाहर है। एक दिन वायु-विज्ञान द्वारा बाबाजी ने कपूर तैयार करके हम लोगों को दिया था। मैंने देखा, बाबा ने अपने दाहिने हाथ की तर्जनी को दो-एक बार सर्पिल गति से और ऊर्ध्व गति से संचालित किया। साथ-ही-साथ उसके अगले भाग में शीत-बिन्दु की भाँति स्वच्छ एक बूँद पैदा हुई। धीरे-धीरे उसका आकार बढ़ने लगा। बाद में देखा गया कि एक खण्ड कपूर बाबा की तर्जनी के सिरे पर आ लगा है। उसे हम लोगों को दिखाकर बाबा ने कहा, "संसार की ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो कपूर के इस टुकड़े को मेरी उँगली से अलग कर सके।" यह कहकर वे बार-बार जोर से अँगुली को झटकने लगे, किन्तु कपूर का टुकड़ा अपनी जगह से हटा नहीं। अन्त में बाबा ने स्वयं उसे हटाकर हम लोगों को दिया। हमने प्रसाद समझकर थोड़ा-थोड़ा ले लिया। बाजार के कपूर से यह कितना उत्कृष्ट था, यह कहने की जरूरत नहीं।

इन सारी विभूतियों के सम्बन्ध में बाबा ने एक दिन हम लोगों से कहा था, "बचपन में मैं विभूतियों की बात पर विश्वास नहीं करता था। इस विषय में शास्त्र में जो लिखा है उसे काल्पनिक कहानी समझता था। किन्तु ज्ञानगंज में जाने पर देखा कि वहाँ सब कुछ विचित्र ही है। वह जैसे कोई मायापुरी हो। वहाँ क्या होता है और क्या नहीं होता, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह सब शक्ति का चमत्कार देखकर उसे प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प मन में पैदा हो गया। जब वे सब शक्तियाँ मुझे मिल गयीं तब उन्हें लोगों को दिखाने का बड़ा चाव था और बहुत-कुछ मैंने दिखाया भी, इसलिए कि उन्हें देखकर लोगों में यह विश्वास जगे कि हमारे शास्त्र सत्य हैं। किन्तु अब कुछ भी दिखाने की इच्छा नहीं होती। लगता है कि इससे लाभ क्या है ? हम लोगों के भीतर अज्ञान और अविश्वास के अभेद्य प्राचीर को लक्ष्य करके उन्होंने कहा था या नहीं, कौन जाने!

शिष्यों में से यदि कोई किसी विभूति को देखने का आग्रह करता तो बाबा उससे कुमारी-पूजा की शर्त करवाकर विभूति का प्रदर्शन करते। यह देखकर मैंने बाबा से पूछा था, "बाबा, ये सब विभूतियाँ दिखाने पर कुमारी-पूजा क्यों करनी पड़ती है।"

बाबा—यह सब दिखाना मेरा अपराध है।

मैं—बाबा, आपका और फिर अपराध ?

बाबा—अपराध तो है ही। जो लोग विशुद्ध वस्तु देखने के अधिकारी नहीं हैं, मैं उन्हें वह दिखाता हूँ। यही मेरा अपराध है। हाथी के बोझ को बकरी पर लादना अपराध नहीं तो क्या है ? इसके अतिरिक्त जो ये सब विभूतियाँ देखते हैं उनका भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनिष्ट होता है। यही सब दूर करने के लिए मैं सारा दायित्व भगवती को सौंप देता हूँ। वे ही सारे दोष काट देती हैं।

अब तक मैंने जो भी बाबा के सम्बन्ध में कहा है, वह सब बाहरी है। यद्यपि ये सब विशेषताएँ हैं, तथापि इनसे बाबा का महत्त्व सूचित नहीं होता। जिस जादू के बल से वे सबके हृदय को जीतकर उन पर राजराजेश्वर के रूप में शोभित होते थे वह थी उनकी पारावारहीन अहैतुकी कृपा। इस विषय में वे धनी-गरीब, उच्च-नीच, पापी-पुण्यात्मा का तनिक भी विचार नहीं करते थे। आदमी का दुःख देखकर उनका हृदय विगलित हो जाता था और वे अपनी अलौकिक शक्ति के प्रभाव से उसे यथासम्भव इतना कम कर देते थे कि वह व्यक्ति उसे आसामी से सहन कर लेता था। असहाय भाव से यदि कोई उनके मुँह की ओर देखता था तो वह बाबा की कृपा से वंचित नहीं रहता था। बाबा का अन्तिम जीवन इसी प्रकार शिष्यों से भोग लेकर बीता और अन्त में किसी शिष्य के कल्याणार्थ अपनी आहुति देकर उन्होंने अपने जीवन का अन्त कर दिया था। भगवान् की कृपा-शक्ति को ही गुरु कहा गया है। बाबा थे परम करुणामय। इसी से मैंने उनसे एक दिन पूछा था, "बाबा, कृपा का भाव अधिक न होने से गुरु नहीं हुआ जा सकता ?"

बाबा—गुरु का अर्थ होता है, जो गुरु-भार को ग्रहण कर सके। शिष्य का शोषण करना तो गुरु का काम नहीं है।

किसी दूसरे दिन मैंने बाबा से पूछा था, "बाबा, शिष्य के साथ आपका क्या सम्बन्ध है ?"

बाबा—पिता-पुत्र का।

मैं—यह सम्बन्ध आप जितने दिन जीवित हैं, उतने ही दिन रहेगा या उसके बाद भी रहेगा ?

बाबा—यह जन्म-जन्मान्तर में रहेगा। यह सम्बन्ध टूटने का नहीं।

मैं—बाबा, आपने कलकत्ते में मुझसे इस सम्बन्ध में कुछ और ही कहा था। मैंने जब आप से पूछा था कि आपके जो शिष्य इस जन्म में मुक्त नहीं होंगे वे क्या अगले जन्म में आपकी कृपा प्राप्त करेंगे ? उत्तर में आप ने कहा था, "मेरा क्या फिर जन्म होगा कि वे कृपा प्राप्त करेंगे ?"

बाबा—वह तो सच बात है। सूर्य और चन्द्रमा को क्या रोज चलाना पड़ता है ? शिष्य पर जन्म-जन्म में क्यों कृपा करनी होगी ? केवल एक बार चला दिया गया है, उसी से वे चल रहे हैं। उसी प्रकार शिष्य के साथ जो सम्बन्ध हो गया है, वह चिरकाल तक रहेगा। यह रुई की आग है, जो बुझने वाली नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले ही कह चुका हूँ कि मैं बाबा का शिष्य नहीं हूँ। तो भी कितने रूपों में मैंने बाबा का अनुग्रह प्राप्त किया है, उसे कहकर पूरा नहीं किया जा सकता। एक बार दुर्गा-पूजा के समय मैं अपनी पत्नी के साथ काशी गया था। उस समय मेरी सास कलकत्ते में बहुत बीमार थीं। सहसा एक दिन मुझे तार मिला कि उनकी हालत संगीन है। मैंने सोचा कि तुरन्त मैं स्त्री के साथ कलकत्ते चलूँ। जब यह खबर मिली तब मेरे लिए काशी छोड़ना बहुत असुविधाजनक था। एक बार मन में आया कि चलकर बाबा से कहूँ कि कृपा करके आप कुछ दिन और सास माता को बचा लें। किन्तु यह कहने के लिए मुँह से बोल नहीं फूटा। यह व्यक्तिगत प्रार्थना करना उचित होगा या नहीं, इस विषय में भी सन्देह जगा। किन्तु विपत्ति में कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। रातभर मन-ही-मन बाबा की प्रार्थना चलती रही। मैंने सोचा कि बाबा तो अन्तर्यामी हैं, वे अवश्य ही इसे सुन रहे हैं। दूसरे दिन तीसरे पहर आश्रम में गया। देखा कि बाबा के सामने लोगों की भीड़ जमा है। मैंने भी उनके बीच एक कोने में जगह ले ली। तरह-तरह के प्रसंग चलने लगे। इसी बीच सहसा मेरे मुँह की ओर देखकर बाबा ने कहा, "देखो जी, आयु समाप्त हो जाने पर आगे रोका नहीं जा सकता। बड़ी कोशिश करने पर तीन-चार महीने रोका जा सकता है।" बाबा की बात इतनी अप्रासंगिक थी कि उनका अर्थ कोई समझ नहीं सका, किन्तु वह अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँच गई। मैंने उसी दिन कलकत्ता तार भेजकर जानना चाहा कि कैसी हालत है। उत्तर मिला, कुछ ठीक है। इसके प्रायः एक सप्ताह बाद कलकत्ते पहुँचकर देखा कि सासजी पहले से कुछ अच्छी हैं। किन्तु वे अधिक स्वस्थ होकर उठी नहीं। जिस दिन उनकी मृत्यु की सूचना मिली, उस दिन हिसाब करके देखा कि पूर्वोक्त घटना के प्रायः चार मास बाद उन्होंने शरीर त्यागा था। जिस परमायु का उन्होंने भोग किया वह बाबा की कृपा के कारण था या नहीं, कौन कहे ?

एक दूसरे समय की बात कह रहा हूँ—उस समय ढाका में हिन्दू-मुस्लिम दंगा चल रहा था। अवश्य ही ये दंगे आदि अंग्रेज शासकों के प्रोत्साहन और उनकी अनुकूलता से उत्पन्न और परिपुष्ट होते और इस सबका एकमात्र उद्देश्य था, भारत के स्वाधीनता-आन्दोलन को नष्ट करना। कुछ दिन दंगा चलने के बाद उसे दबाने के लिए सरकार ने वहाँ गोरी सेना बुला ली। हम सबने समझ लिया कि उसका उद्देश्य दंगा दबाना नहीं, हिन्दुओं का दमन करना है, क्योंकि इस दंगे के निवारण के लिए सेना की जरूरत नहीं। गोरी पल्टन की छावनी पड़ी मेरे घर के पास ही प्रायः ५०० गज के भीतर ही। इसे मैंने विपत्ति ही समझा, क्योंकि हमारा घर था शहर के बहुत कम आबादी वाले क्षेत्र में। उस समय मैं कलकत्ते में था। मैंने सोचा कि ढाका जाकर उस घर पर नहीं रहूँगा। सेना के पड़ाव से जितनी दूर सम्भव हो, आबादी के बीच कोई नया निवास बनाऊँगा। उस समय बाबा भी कलकत्ते में थे। उनसे पूछकर कर्त्तव्य निश्चय करना मैंने उचित समझा। एक दिन जाकर बाबा को सब बात बता दी। स्थिर चित्त से मेरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बात सुनकर उन्होंने अपनी सुन्दर बड़ी-बड़ी आँखों को फैलाते हुए कहा, ''कोई चिन्ता की बात नहीं, जिस जगह हो वहीं रहना।'' बाबा की यह बात सुनने के साथ ही मेरा चंचल हृदय शान्त हो गया। बाद में मैंने देखा था कि सैनिकों ने किसी-किसी दूसरे घर में उपद्रव अवश्य किया किन्तु मेरे घर की चारों सीमाओं के भीतर वे नहीं आए।

और भी एक बार अपनी पत्नी की बीमारी से मैं बहुत घबरा गया था। ढाका में उसकी जितनी हो सकती थी, दवा कराई किन्तु रोग की शान्ति का कोई लक्षण दिखाई न पड़ा। सोचा कि कलकत्ते में किसी विशेषज्ञ से दवा कराऊँगा। इसी उद्देश्य से ढाका से निकल पड़ा। हरिद्वार, देहरादून आदि स्थानों पर घूमता हुआ काशी आ पहुँचा। यहीं बाबा के साथ साक्षात्कार हुआ। मैं चार-पाँच दिनों काशी में रहकर कलकत्ता लौटने के इरादे से बाबा से जब अनुमति चाही तो उन्होंने कहा, ''इस बार तो तुम बहुत थोड़े समय काशी में रहे ?'' स्त्री की वहाँ चिकित्सा कराने के लिए ही इतनी जल्दी जाना पड़ रहा है, मुझसे यह सुनकर उन्होंने स्त्री का रोग जानना चाहा। मेरे बताने पर उन्होंने कहा, ''इतने दिन मुझसे यह बात बताई क्यों नहीं ? बाबा के सामने सन्तान को लज्जा किस बात की रे ?'' यह कहकर उन्होंने तुरत मुझे दवा की दो पुड़ियाँ देते हुए कहा, ''अभी जाकर बहू को एक पुड़िया खिला दो। तीसरे पहर मुझे इसका फलाफल बताना।'' मैंने वही किया। केवल एक बार के औषध-सेवन से काफी लाभ दिखाई पड़ा। तीसरे पहर बाबा को जब बताया, उन्होने कहा, ''इसके स्थायी प्रभाव को बनाए रखने के लिए कुछ अधिक दिनों तक दवा का सेवन करना पड़ेगा।'' यह कहकर उन्होंने और अधिक दवा मुझे दे दी। ढाका से भी उन्होंने दो बार डाक के जरिये दवा भेजी थी, जिसके सेवन से मेरी स्त्री पूर्ण रूप से निरोग हो गयी।

बाबा की ये सब अयाचित करुणा की बातें जब भी स्मृति-पथ पर उदित होती हैं, कृतज्ञता से मेरी आँखें आँसू से भीग जाती हैं। ऐसा दयालु स्वामी और कहाँ मिलेगा ? आज के इस दुर्दिन में बाबा का अभाव जैसे नया होकर घनीभूत रूप में हृदय में जाग उठता है, क्योंकि राष्ट्रीय वात्याचक्र में सूखे पत्ते की भाँति स्वदेश और स्वजनों से अलग होकर दूर आ पड़ा हूँ। बुढ़ापे की भयंकर छाया ने जीवन को घेर लिया है। आशा और कामना के लिए अब कुछ भी अवकाश नहीं है। वर्तमान अनिश्चित और भविष्य अन्धकाराच्छन्न है। दुश्चिन्ता और भय अब नित्य के सहचर हैं। आज मैं अपने को जितना असहाय और दुर्बल अनुभव कर रहा हूँ, ऐसा कभी नहीं किया। इस समय यदि हमारे प्रेम-देवता सशरीर होते तो फिर डरने की बात क्या थी, अथवा चिन्ता फिर कैसी ? क्योंकि उन दीर्घ नयनों के कृपा-कटाक्ष के सामने दुर्दैव भी नहीं टिक सकता था।

बाबा नहीं हैं, यह बात जिस प्रकार मर्मभेदी रूप में सत्य है, उसी प्रकार वे नित्य वर्तमान हैं यह भी सत्य है, क्योंकि सद्गुरु मृत्युंजय, अविनाशी और शाश्वत होते हैं। वे चिर प्रकाशित और चिर अप्रकाशित रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम-लीला आज भी कैसे चलती रहती ? सुनने में आता है कि कोई-कोई भाग्यशाली आज भी उनके पवित्र स्पर्श का अनुभव हृदय में करते हैं और किसी-किसी को तो उनका प्रत्यक्ष दर्शन तक मिलता है।

चारों ओर से घिरे खण्ड प्रलय के बीच हम लोग भी अक्षत शरीर से जो टिके हुए हैं, यह भी उन परम दयालु की कृपा का फल है या नहीं, कौन कहेगा ? अतः आज श्रद्धावनत हृदय से उस पतितपावन के चरणों में साष्टांग प्रणिपातपूर्वक कहता हूँ—

'तुम्हारी जय हो।' 'हे जगद्गुरो!'

अन्य शिष्यों के संस्मरण

श्री देवकृष्ण त्रिपाठी

यह १३४६ साल (बंगला) की बात है। मेरी स्त्री शिवकुमारी देवी एक दिन सबेरे से ही अस्वस्थ हो गयी। बार-बार पाखाने जाती थी, किन्तु मुझसे कुछ कहती न थी। शाम तक उसकी हालत बहुत खराब हो गयी। तब भी मुझे कुछ मालूम नहीं हुआ। रात के आठ-नौ बजे से उल्टी भी साथ-साथ शुरू हो गयी। तिस पर भी मुझे खबर नहीं मिली। रात के ग्यारह बजे जब दशा असह्य हो गयी तब मुझसे कहा— "मेरी हालत बहुत खराब है—भीतर मन जाने कैसा हो रहा है।" तब उसने दिन भर का सारा हाल मुझे बताया। सुनकर मेरा चित्त व्यग्र हो उठा। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। इस असमय में डॉक्टर को लाना मुझे असम्भव प्रतीत हुआ। उस समय मैं काशी के मलदहिया मुहल्ले में रहता था और आज भी वहीं हूँ। उस समय चारों ओर लोगों की बस्ती नहीं थी, सिर्फ खेत थे। मैं घर में अकेला था। घर में अकेले रोगी को छोड़कर जाऊँ कैसे ? छोटे-छोटे बच्चे सो रहे थे। उस समय वर्षा की झड़ी भी लगी हुई थी। मैं निष्क्रिय होकर स्त्री को गोदी में लेकर बैठ गया। तनिक देर बाद ही उसे जोर की उल्टी हुई। बिछौना खराब हो जाने से जमीन पर कम्बल बिछाकर रोगी को उस पर लिटा दिया। दो-तीन मिनट बाद मुझे लगा कि उसकी देह छूट गयी। मैंने उसके पैरों को सीधा किया और एक दूसरा कपड़ा उढ़ा दिया। फिर बिछौने को धो-साफ करके बैठ गया। उस समय सम्भवतः साढ़े ग्यारह या बारह बजे होंगे। उधर छोटा बच्चा माँ का दूध पीने के लिए रोने लगा। उस समय मेरे दुःख की सीमा नहीं थी। किसी तरह बच्चों को सुलाया। मेरे इस दुःख को पिताजी श्रीगुरुदेव सह नहीं सके। तभी देखता हूँ कि घर दिव्य सुगन्ध से भर उठा है। रात के प्रायः दो बजे मेरी पत्नी के शरीर में प्राण लौट आए। उसने कहा—"गाय का जो दूध बच्चों के लिए रखा हुआ है वह थोड़ा-थोड़ा करके मुझे पिलाओ।" मैंने वैसा ही किया। लगभग आधा घण्टे बाद जब उसके शरीर में कुछ बल आया, वह कहने लगी—"आज बाबा को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत झगड़ा करना पड़ा है।" मैंने पूछा, सो कैसे ? उसने कहा—

"ज्यों ही शंकरजी के दूत मुझे देह से बाहर खींचकर ले जाने की तैयारी करने लगे त्यों ही बाबा (गुरुदेव) जाने कहाँ से आ पहुँचे और दूतों को एक-एक करके छुड़ाकर हटाने लगे। दूतों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। बाबा भी एक-एक को उठाकर फेंक रहे थे। इसके बाद बाबा ने अपना हाथ घुमा दिया। इससे दूत अपने-आप दूर फेंकाने लगे। जब दूत अपनी सारी शक्ति लगाकर कुछ कर नहीं पाए, तब उनमें से एक कुछ नरम पड़कर बाबा से कहने लगा—"आज इस स्त्री की आयु पूरी हो गई है, हम लोग इसे लेने को आए हैं। आप बाधा क्यों डाल रहे हैं ?" तब बावा ने कहा—"तुम लोग मुझसे पूछने वाले कौन होते हो ? यदि शक्ति हो तो ले जाओ। जिन्होंने तुम्हें भेजा है उन्होंने मुझसे पूछा क्यों नहीं ?"

इसके बाद ही शिवजी और ज्येष्ठ गुरुदेव (भृगुराम परमहंसदेव) आ गए। तब बाबा ने मुझसे कहा, "इन लोगों को प्रणाम करो। मैंने प्रणाम किया। तब बाबा ने जोरों से शंकरजी से कहा, "आश्चर्य है कि मैं जानता नहीं और आपने मेरे शिष्य को ले जाने के लिए दूत भेज दिये थे।" शिवजी ने कहा, "मैं जानता भी नहीं। यह काम रुद्रगणों के जिम्मे है। आयु पूरी हो गयी थी, इसलिए रुद्र ने दूत भेजे होंगे।" इसके बाद मैंने देखा कि और भी कुछ व्यक्ति जुट आये हैं। तब शिवजी और बाबा में खूब वाद-विवाद हुआ। बाबा ने सारी शंकाओं का समाधान कर दिया। शिवजी और ज्येष्ठ गुरुदेव के मतानुसार सिद्धान्त स्थिर हुआ। शिवजी ने बाबा से कहा, "जब आपने ही इसका पूरा दायित्व अपने ऊपर ले लिया है, तब पूरी और अधूरी आयु का कोई भी प्रश्न ही सचमुच नहीं उठता। आप इसके विषय में जैसा चाहें वैसा करें।"

ज्येष्ठ गुरुदेव ने कहा, "बिचारी के प्राण बच गए।"

इसके बाद सभी अदृश्य हो गये, दूतगण भी भाग खड़े हुए।

इसके बाद बाबा ने मेरी स्त्री से कहा, "आज बहुत सी सधवा स्त्रियाँ गयी हैं। ये ही सब दूत उन्हें भी ले गये हैं। सधवाओं के लिए पहले से ही विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है। उसके बाद उसे ले जाते हैं। उनकी गति के बारे में विशेष लक्ष्य रखना पड़ता है।" उन्होंने और भी कहा, "दूत पहले तुम्हारे गाँव में गए थे, तुम्हें मारने के लिए। वहाँ न पाकर वहाँ के ग्रामदेवता और कुलदेवता से पूछा। बाद में काशी आकर भैरवजी से पूछा। अन्त में यहाँ आए थे। इन्हें यह भी मालूम नहीं कि कहाँ जाना है, पूछना पड़ता है। ये मेरे शिष्यों की आयु की बात पूछते हैं। मैंने शिष्यों के लिए ही शरीर छोड़ा है—फिर भी ऐसा होता है।" बाबा ने आगे कहा—"गुरु-गुरु कहते हुए मेरे उपदिष्ट काम करती रहना।" यह कहकर उन्होंने मेरी स्त्री को कितने ही कार्यों का उपदेश दिया। तदनन्तर बावा ने उससे कहा, "चली जाओ, चली जाओ।"

मेरी पत्नी ने बताया कि बाबा के ऐसा कहते ही उसके प्राण उसके शरीर में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लौट आए। किन्तु किस प्रकार उन्होंने प्रवेश किया, इसे वह समझ न सकी।

■

श्री फणिभूषण चौधरी

गत पूर्ण कुम्भ के अवसर पर स्नान के लिए मैं अपने गुरुभाई श्री शचीकान्त राय के साथ इलाहाबाद गया। जहाँ गाड़ी पर बैठने की बात थी वहाँ टिकने की कोई सुविधा न होती देख हम लोग हताश हो गये। बाद में रास्ते में उतरकर हम सोच ही रहे थे कि इतने में सहसा शचीकान्त दादा के एक सहकर्मी से विचित्र ढंग से भेंट हो गयी। वे भी कुम्भ-स्नान के लिए एक दिन पहले आए थे। एक होटल में कष्ट से उन्हें जगह मिली थी। उस समय वे स्टोव के लिए तेल खरीदने जा रहे थे। इस अप्रत्याशित भेंट से हम दोनों को भी आश्रय मिल गया। बाद में निर्दिष्ट दिन पर हमने यथाविधि पर्व-स्नान सम्पन्न किया। प्रयाग तीर पर उस दिन जो दुःखद दुर्घटना घटित हुई—सहस्रों स्नानार्थियों की प्राण-हानि हुई थी—उसे जानपर हम लोग हतबुद्धि हो गए और उसी दिन इलाहाबाद छोड़कर मैं लखनऊ रवाना हो गया। वहाँ सरस्वती-पूजा तक रहकर दूसरे दिन ६ फरवरी को काशी चल दिया। जब अमृतसर मेल बनारस के कैण्ट स्टेशन पर पहुँची तब प्रयाग से लौटे अगणित यात्रियों की भीड़ देखकर मैंने लोगों का प्रमाद माना। गाड़ी के आते ही मेरे दरवाजे के पास पहुँचने के पहले ही लगभग सौ से अधिक यात्री डिब्बे में पिल पड़े और उस भीड़ में मेरी साँस रुक गयी। गाड़ी से उतरने की कोई आशा ही मुझे दिखाई नहीं पड़ी। तब मन-ही-मन गुरुदेव का स्मरण करके सोचने लगा कि यहाँ उतरकर आश्रम का दर्शन मेरे भाग्य में नहीं बदा है। इसी समय खिड़की के पास से किसी की आवाज आई—"उतरने नहीं सकता, हमारे कांँध पर चला आओ।" घूमकर देखते ही मैं आश्चर्यचकित रह गया। सफेद दाढ़ी वाला एक सौम्यमूर्ति कुली अयाचित भाव से मेरा उद्धार करने को पुकार रहा है। मैं थोड़ा टाल-मटोल करने लगा। त्यों ही फिर पुकार आई, "घबराते काहे, जल्दी हमारा कांँध पर उठो।" तब कुछ और सोचने का अवसर न पाकर खिड़की की राह उसके कन्धे पर चढ़ गया और उसकी सहायता से स्टेशन से बाहर आ गया। फिर उसका मेहनताना चुकाकर विदा कर देने के बाद मन में आया कि बहुत दिनों से तो काशी आ रहा हूँ, कितनी ही बार आया हूँ किन्तु कभी ऐसी सफेद दाढ़ी का ऋषि-समान कुली देख नहीं सका था। बाद में मैंने बहुत तलाश की किन्तु वह रूपाकृति फिर दृष्टि में न आई। मुझे लगा कि विपद् में फँसे पुत्र का उद्धार करने के लिए दयामय पिता कुली के वेश में आ गए थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस बार शिवरात्रि की एक घटना का विवरण दे रहा हूँ। बाबा का जन्मस्थान बर्दवान जिले का बण्डूल गाँव है। बाबा ने वहाँ 'हरिहर' शिव की प्रतिष्ठा की थी। बहुत दिनों से इच्छा थी कि एक बार बण्डूल आश्रम में शिवरात्रि-व्रत का पालन करूँगा। कई एक साथी जुट गए, और उन सबके आग्रह से जाने का उत्साह और बढ़ गया। उनमें एक सज्जन भवानीपुर के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० नीरदरंजन घोष भी थे। वे बाबा के शिष्य तो नहीं, किन्तु उनके एक विशिष्ट भक्त थे। एक दूसरे व्यक्ति हमारे गुरुभाई श्री यतीशचन्द्र वसु के पुत्र श्री जगदीशचन्द्र बसु (पुकारने का नाम तारु) थे। हम तीनों आदमी ७वें फाल्गुन को बनारस एक्सप्रेस से तीसरे पहर बर्दवान पहुँचे। वहाँ से बस करके ग्यारह मील दूर कुचुट गाँव को चल पड़े। वहाँ मेरे श्रद्धेय भाई श्री शिवनाथ चौधुरी ने एक बैलगाड़ी का इन्तजाम कर रखा था। उनके घर सन्ध्या-पूजा करके जलपान के बाद हमलोग बैलगाड़ी से रवाना हुए। मन में एक सन्देह था, अपनी तो कोई बात नहीं किन्तु अपने साथ एक कुली डॉक्टर बाबू और एक पुत्रोपम युवक को ले चल रहा हूँ। उन्हें कभी इस तरह रात में मैदान में होते हुए जाना नहीं पड़ा है। मुझे भी इसका कोई अनुभव नहीं है, तो भी मुझे अपने वास्ते कोई चिन्ता नहीं थी। अस्तु, एक हरीकेन की रोशनी के सहारे गाड़ी आगे बढ़ी और हम लोग, बीच-बीच में गाड़ीवान से पूछकर कि रास्ता ठीक है या नहीं, निश्चिन्त थे। प्रायः दो घण्टे की राह तै करने पर रोशनी बुझ गयी और हम लोग चिन्तित हो उठे। हमारे साथ टॉर्च थी, किन्तु गाड़ीवान ने कहा कि बैल टॉर्च की रोशनी में चलने के अभ्यस्त नहीं हैं। इसकी सहायता से वे चल नहीं सकेंगे। कुछ दूर जाने पर गाड़ीवान ने पूछने पर बताया कि रास्ते का ठीक पता नहीं चल पा रहा है। हमने तब प्रमाद समझा और सोचा कि लगता है, इस तरह सारी रात मैदान-मैदान में भटकते बीतेगी। कौन जाने किसी डाकू के हाथ में न पड़ जाएँ। तब हतबुद्धि होकर इष्टदेव को याद करना पड़ेगा। उसी अँधेरे में अजानी राह से गाड़ी आगे बढ़ती चली। तब चारों ओर सूता पड़ गया था, विशेषतः गाँव-गाड़े के खेत, आस-पास कहीं घर-मकान नहीं। रात के भी प्रायः साढ़े नौ बज रहे थे। किसी सहायता की सम्भावना ही व्यर्थ थी। हम लोगों की दशा पालहीन नौका के यात्रियों-सी थी। इस अभूतपूर्व अवस्था में कुछ समय कट गया, सहसा पेड़ों के एक झुरमुट में रोशनी दिखाई पड़ी। साथ-ही-साथ मन के कोने में आशा की किरण चमक उठी। सोचा, दयामय की कृपा के बिना इस समय हाथ में रोशनी लिये कौन आयेगा! जो हो, ज्यों ही गाड़ी उस रोशनी के पास पहुँची, हमने रोशनी वाले से बण्डूल की राह पूछी। उन्होंने बताया कि आप लोग रास्ता भूल गये हैं। उन्होंने गाड़ीवान को सही राह बतला दी किन्तु उसने उनकी बात ठीक से न समझकर जिस ओर गाड़ी बढ़ाई उस ओर अँधेरे में यदि हमारी गाड़ी थोड़ा-सा और आगे बढ़ती तो वह एक पोखरी में गिरती और हम सबका प्राणान्त हो जाता। त्यों ही क्षण भर के भीतर वह लालटेन-धारी व्यक्ति सामने आ गया, उसने गाड़ीवान को फटकारा। फिर उन्होंने हमारे जाने की सही राह उसे अच्छी तरह समझा दी। उस समय वे ठीक हमारे सामने थे किन्तु दिशाभ्रम होने के कारण उस समय मन की ऐसी अवस्था हो गयी थी कि हम ठीक से उन्हें देख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं सके। बाद में जब वे राह बताकर चले गये; डॉक्टर नीरदबाबू ने कहा, "तभी तो, इतने अँधेरे और इतनी रात में सुनसान निचाट मैदान में किस तरह एक आदमी यहाँ आ पहुँचा?" तब तक हमारी चेतना कुछ-कुछ लौट आई थी। ध्यानपूर्वक देखा लालटेनधारी फिर कहीं दिखाई नहीं पड़ा। मन तरह-तरह के तर्क-वितर्क में उलझा था कि कुछ ही क्षणों में गाड़ी बण्डूल आश्रम पर पहुँच गयी। हमने चैन की साँस ली। दूसरे दिन वहीं शिवरात्रि-व्रत का पालन किया गया। मेरे जीवन में यह पहली बार बण्डूल में शिवरात्रि-व्रत का सुअवसर प्राप्त हुआ। सुनता हूँ, जब बाबा सदेह थे, तब वहाँ विराट् उत्सव का आयोजन होता था, यथापि यह निस्संशय कह सकता हूँ कि इस बार भी आनन्द बहुत कम नहीं मिला। एक अद्भुत अभिज्ञता मिली जिसे भाषाबद्ध करने का प्रयास मेरे जैसे आधुनिक की धृष्टता होगी।

आकर्षण इतना बढ़ गया कि २९वें फाल्गुन के दिन जन्मोत्सव में जाने को तैयार हो गया। इस बार दो साथी थे—एक मद्रासी इनकमटैक्स अफसर, सम्प्रति बाबा के विशेष भक्त और दूसरे बाबा के शिष्य श्री ब्रजेन्द्रनाथ वसुके पुत्र चन्दननगर-निवासी श्री विमलप्रसाद वसु। २८वें फाल्गुन शनिवार के दिन उसी बनारस एक्सप्रेस से रवाना हुए। इस बार देखा कि राह में सारी सुविधाएँ प्रस्तुत हैं। कुटुट में जो गाड़ी हमारी राह देख रही थी वह बण्डूल की थी। आई तो थी वह दूसरे यात्रियों को लेने, किन्तु न जाने किसकी लीला से, हमें ले जाने का इन्तजार कर रही थी। उसके दिन में ही लौट जाने की बात थी, इसलिए आते समय लालटेन लाने को वहाँ के लोगों ने मना कर दिया था, किन्तु गाड़ीवान दैवी प्रेरणा से अपने साथ लालटेन लेकर आया था। इसलिए इस बार रास्ते में कोई असुविधा नहीं हुई। बहुत थोड़े समय में बण्डूल पहुँच गये। दूसरे दिन आनन्द-उत्सव के बीच जन्मोत्सव मनाया गया। लौटकर मैं फिर अपने काम में लग गया।

किन्तु कुछ दिनों में ही मेरा शरीर रुग्ण हो गया—अम्लवायु के उत्पात से शरीर पर वृद्धता छा गयी। चिकित्सकों की राय लेकर बण्डूल की यात्रा की। उद्देश्य था कि शरीर के सुधार के साथ-साथ मन भी कुछ उन्नत होगा। इस बार मेरी सहधर्मिणी साथ थीं। १७वें वैशाख के दिन कलकत्ते से 'क्यूल फास्ट पैसेंजर' से रवाना हुए। बर्दवान में बाबा के आश्रम में हमारा विशेष आदर-सत्कार हुआ। मेरे मन में यह सन्देह था कि मेरी पत्नी कभी शहर छोड़कर गाँव में रही नहीं, अतः ठेठ गाँव के निचाट मैदान में उसका मन नहीं लगेगा और इसी कारण मेरी यात्रा का उद्देश्य भी निष्फल हो जायगा। किन्तु करुणामय की ऐसी लीला कि एक नवागत और अनजान को उत्साह देने और सहायता करने के लिए घटनाचक्र से हमारे जाने के कई दिन पहले बाली की एक गुरुबहिन (शिवराम दादा की पत्नी) बण्डूल जाकर वहाँ मानों हमारे आने की राह देख रही थीं। पहुँचकर उन्हें देखते ही मैंने निश्चिन्तता की साँस ली। मेरा सन्देह और दायित्व दोनों ही बहुत कम हो गए। कलकत्ते से प्रस्थान वाले दिन के सवेरे पूजा पर बैठते ही सहसा अर्थ-चिन्ता से कुछ खिन्न हो गया था। पारिवारिक खर्च पूरा करने पर जितने रुपये साथ ले चल रहा हूँ उससे खर्च पूरा नहीं होगा, ऐसा लगा था। इसलिए मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में चिन्ता उत्पन्न हुई। इसी समय एक स्पष्ट स्वर कानों में सुनाई पड़ा—"व्यर्थ क्यों चिन्ता कर रहे हो ? जो मनन करते हो वही करते रहो। तुम्हारे पास अक्षय की 'योगिराजाधिराज' पुस्तक का एक खण्ड है, उसे लेते जाना। इस पुस्तक को बेचकर जो रुपया मिले उससे काम चला लेना।" सुनते ही चकित और साथ-ही-साथ प्रसन्न हो गया। मुझे याद पड़ गया कि मेरे गुरुभाई श्री अक्षयकुमार दत्त गुप्त ने अपनी लिखी पुस्तक 'योगिराजाधिराज विशुद्धानन्द' का एक खण्ड विक्रय के लिए मेरे पास रख दिया था। तुरन्त पूजा समाप्त करके पुस्तक निकालकर अपने साथ ले ली। वस्तुतः मैंने जो कान से सुना था वह कार्य रूप में फलित हो गया। अप्रत्याशित रूप में कुचुट गाँव में ही पुस्तक बिक गयी और उससे प्राप्त द्रव्य से उस समय मेरा काम चल गया। मैं बण्डूल में १८ दिन रहा। वहाँ पैर रखते ही शरीर की अस्वस्थता जाने कहाँ चली गयी। बाबा और श्री बण्डूलेश्वर की कृपा से स्थान के माहात्म्य से इतना परिवर्तन हो गया कि मैं स्वयं चकित हो गया। कलकत्ते की चिकित्सा से जो काम नहीं हुआ, जन-साधारण के लिए अज्ञात एक जगह वही इस प्रकार आश्चर्यजनक ढंग से सिद्ध हो गया, यह सबकी बुद्धि के लिए अगम्य होने पर भी अत्यन्त सत्य है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि बण्डूल आश्रम का वातावरण अति निर्जन और मनोरम है और वहाँ प्रतिष्ठित श्रीहरिहर के जिस अपूर्व माहात्म्य को देखा जाता है उसे जानने वाले ही जानते हैं। यद्यपि विश्वेश्वर, वैद्यनाथ या तारकेश्वर के समान बण्डूलेश्वर आज भी जनसाधारण में प्रसिद्ध नहीं हैं, तथापि मुझे लगता है कि जल्दी ही द्वितीय पंच-वार्षिक परिकल्पना के कार्यरूप में परिणत होते ही यातायात की राह सुगम हो जाने पर बण्डूलेश्वर का माहात्म्य प्रकट होगा और यह अपूर्व गुप्त तीर्थ लोक-क़ल्याण-साधना के लिए प्रकट हो जायगा। मुझे याद आता है कि इस तरह की एक बात गुरुदेव के मुख से भी किसी-किसी ने सुनी थी।

अस्तु, बण्डूल में कई दिन बड़े ही आनन्द और शान्ति से कट गए और बाबा की सस्नेह सजग दृष्टि आज भी हम सब पर रहती है, जैसे मन में स्पष्ट हो उठा। उनकी कृपा के अतिरिक्त उनकी महिमा के वर्णन की सामर्थ्य मेरे जैसे क्षुद्र जीव में नहीं है। उनके चरणों में मैं अपनी प्रणति निवेदित करता हूँ।

■

श्री नरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय

लीलामय की अनन्त लीलाओं के एक कणमात्र के वर्णन की शक्ति मुझमें नहीं है। सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि बाबा सदैव हम लोगों को छाती से लगाए रखते हैं। कब से, यह कहने की क्षमता मुझमें नहीं है। लगता है कि जिस मुहूर्त में चिंगारी की भाँति अलग हुआ उसी मुहूर्त में छाती से लगाकर उन लाखों जन्म-मरणों के बीच अश्रान्त दौड़े चल रहे हैं, कहाँ उसका अन्त है, यह वे ही जानते हैं। हम लोगों को कोई चिन्ता नहीं, निश्चिन्त भाव से उनकी छाती से चिपके हुए केवल उनकी लीला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को व्यक्त करने योग्य भाषा नहीं है। हम लोगों के साथ उस अनन्तदेव की अनन्त लीला है—नीचे दी गयी कतिपय घटनाओं से उसका कुछ आभास मिल जायगा।

एक बार मैं कई साल पहले काशीधाम से भागलपुर जा रहा था। क्यूल स्टेशन पर गाड़ी बदलकर जाना पड़ता है। ट्रेन जिस वक्त क्यूल पहुँची, मैंने देखा कि दोनों ओर के प्लेटफॉर्म असंख्य जनों से भरे हुए हैं। सुनने में आया कि जसीडीह में कोई एक मेला है, सब वहीं जाएँगे। ज्यों ही ट्रेन रुकी, मैं जिस छोटी बोगी में था उसके दोनों ओर के द्वारें से इतने आदमी घुस पड़े कि मैं उतरने की बात तो दूर, उनसे दब गया। प्राण जाने की नौबत देखकर बाबा को मैंने याद किया, कहा, "बाबा, आज क्या इस भीड़ में प्राण निकल जाएँगे ?" स्मरण करते ही शरीर में एक प्रबल शक्ति का अनुभव हुआ, और उसी शक्ति द्वारा जिस खिड़की के पास बैठा था फिर उसी के पास जाकर बैठकर बाहर प्लेटफॉर्म के पीछे की ओर देखा, खाकी पोशाकधारी फौजी के समान एक व्यक्ति खड़ा होकर मेरी ओर देख रहा है। मैंने उससे कहा, "भाई, मैं उतर नहीं पा रहा हूँ, इस खिड़की से उतरूँगा, तुम दया करके मुझे तनिक सहारा दे दो।" वह जैसे इसके लिए तैयार था। यह कहते ही उसने एक हाथ मेरी कमर में डाला और दूसरे हाथ में मेरे पैरों को लेकर धीरे से उतार दिया और भागलपुर जाने वाली ट्रेन को दिखा दिया। अब तक कुछ सोचने का समय नहीं मिला। अब निश्चिन्त निरापद रूप में भागलपुर की गाड़ी पर बैठकर मैंने सोचा। यह बाबा की ही लीला थी, यह समझते देर न लगी। वे हमसे क्षण भर भी अलग नहीं रहते, यह भलीभाँति समझ लिया।

एक दूसरी बार की बात है, मैं साइटिका रोग का शिकार होकर बिस्तर पर पड़ गया। तब बाबा ने देह-रक्षा की थी। मेरी स्त्री मेरे बिस्तर पर बैठकर मालिश कर रही थी। उसने स्पष्ट सुना, जाने कौन उसके कान के पास आकर कह गया, 'बीस दिन।' ठीक बीसवें दिन मैं रोगमुक्त हो गया।

तीसरी बार की बात है, बाबा के देहावसान के बाद मलदहिंया आश्रम से लौट रहा था। उस समय काशी में पहले साइकिल रिक्शे का चलना आरम्भ हुआ था। मेरे गोदौलिया पर उतरकर पैदल आने की बात थी। मैं उस समय बाबा के अवधगर्बी वाले आश्रम पर रहता था। मैंने रिक्शा वाले से कहा, "भाई, तुम्हें दो आने और दूँगा, तुम मुझे हरिश्चन्द्र घाट तक पहुँचा दो।" वह राजी होकर चल पड़ा। मदनपुरा के स्थान पर जब मैं पहुँचा तब दूसरी ओर से एक बड़ा महाजनी इक्का बड़े वेग से आकर मेरे रिक्शे को धक्का देता चला गया। धक्का लगते ही मैं कई हाथ दूर जा गिरा। ज्यों ही छिटककर मैं ऊपर शून्य में उठा, मेरे मुँह से निकला—"बाबा।" त्यों ही जाने किसने मुझे पकड़कर गिरने से रोक लिया, अन्यथा यदि मैं गिरता तो मेरा माथा वहीं पड़े हुए एक पत्थर से जा टकराता, फिर तो तुरन्त मेरा प्राणान्त हो जाता। मैं उस बड़े पत्थर के ऊपर एक किनारे गिरा, मेरा माथा पत्थर से तनिक ऊपर हो गया था। गिरने पर मेरी छाती में ऐसा धक्का लगा कि मैं उठ नहीं सका। उस समय वहाँ कई मुस्लिम युवक बैठे थे, उन्होंने चटपट आकर मुझे उठा लिया और एक ओर ले जाकर कुर्सी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर बिठाया। मैं उन्हें अनेक धन्यवाद देकर अवधगर्बी आया। वहाँ मेरे एक नाती और मुहल्ले के एक लड़के ने मुझे सहायता देकर ऊपर पहुँचाया। आश्चर्य की बात कि न तो मेरी कोई हड्डी टूटी और न कोई दूसरी सांघातिक चोट पहुँची। अपने परम हितैषी श्रीवंशीधर कविराज की एक महीने की चिकित्सा से मैं स्वस्थ हो गया।

इस प्रकार मैं पद-पद पर श्रीबाबा की असीम करुणा और उपस्थिति का सदैव अनुभव करता हूँ।

श्री उमातारा दासी

मैं बाबा की एक दीन-हीन शिशु सन्तान हूँ। मेरे पास ज्ञान-बुद्धि वा विद्या कुछ भी नहीं है। मैं जिस घटना का उल्लेख कर रही हूँ, वह मेरे घर पर ही घटित हुई थी। वह हम सबकी आँखों देखी घटना है। यह विगत सन् १३५६ (बं०) साल की बात है।

वह बरसात का आषाढ़ महीना था। उस समय मेरा एक पौत्र बहुत बीमार होकर शय्या पर पड़ा था। उसका नाम था अरुणकुमार। उसका रोग इतना सांघातिक हो गया था कि उसके बचने की आशा नहीं थी। घर के सब लोग आशंकित थे कि जाने किस क्षण क्या हो जाय। सबके मन में बेचैनी थी। घर में चार डॉक्टर लड़के की हालत देख रहे थे। दस या साढ़े-दस बजे लगा कि अरुणकुमार समाप्त हो चुका है। उधर बहू का करुणक्रन्दन शुरू हो गया था। ऐसी शोचनीय दशा में मनुष्य स्वभावत: धैर्य खो बैठता है। मैं भी अधीर हो गयी। मैंने जब देखा कि मनुष्य की कोई शक्ति काम नहीं दे रही है तब आकुल प्राणों से दयालु ठाकुर को पुकारने लगी। मेरी पुकार का फल था या बाबा की स्वाभाविक दया-दृष्टि से हुआ हो, गुरुदेव सन्तान की व्यथा सहन नहीं कर सके, उन्होंने तुरन्त अपनी शक्ति दिखाई। पुकार के साथ-ही-साथ घर उनकी देह-सुगन्ध से भर गया। समझ गई कि बाबा ने अभय-दान दे दिया। मानो उन्होंने देह-सौरभ के माध्यम से कह दिया, ''अब डरना मत, मैं आ गया हूँ।'' प्राय: आधे घण्टे तक वह सुगन्ध रही। अरुणकुमार की बुआ और उसके काका उसके सिरहाने बैठे थे। वे बोल पड़े, ''तुम सब चुप हो जाओ, डरने की बात नहीं है। अरुण छटपटाने पर भी मरेगा नहीं, दादू-गुरुदेव आ गए हैं।''

तब हम सब रोगी के कमरे में आ गए। तब भी रोगी के पास बाबा की दिव्य अंग-सुरभि मौजूद थी। रोगी स्वस्थ हो गया था और आँखें खोलकर ताक रहा था। उसने जल पीना चाहा, उसे जल पिलाया गया। उसके बाद धीरे-धीरे उसकी दशा अच्छी होने लगी। फिर उस रोग का कोई भी चिह्न उसमें दिखाई नहीं पड़ा।

गुरुदेव की अचिन्त्य शक्ति और करुणा का विवरण देना मानवशक्ति के परे है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट ३

विविध संस्मरण

महाभारत-काल के अग्नि-बाण का प्रत्यक्ष प्रदर्शन

एक दिन की बात है कि झाल्दा (पुरुलिया के पास) के राजा श्री उद्धवनारायण सिंह ने (जो बाबा के शिष्य और हमारे गुरुभाई थे) श्री बाबा से कहा कि ऋषि वेदव्यास जी ने लिखा है कि महाभारत में अग्नि-बाण तथा वायु-बाण का प्रयोग किया गया था। क्या यह बात सच है ?

बाबा बोले—हाँ, बिल्कुल सच है। क्या तुम इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखना चाहते हो ?

उद्धव सिंह बोले—गुरुदेव, यदि दिखा दें तो बड़ी कृपा होगी।

गुरुदेव ने कहा—सामने जो सरकण्डे लगे हैं उनमें से तीन काटकर मेरे पास ले आओ। तब तीनों में से एक सरकण्डे का छिल्का उतरवाकर उसका एक धनुष बनाया। फिर कुछ मन्त्र पढ़े और वह धनुष धातु का सुन्दर धनुष बन गया। अब दूसरे सरकण्डे को अभिमन्त्रित किया, वह स्टील का पैनी नोक वाला पुष्ट तीर बन गया।

बाबा बोले—देखो, यह एक सामान्य तीर और कमान है।

अब मन्त्र द्वारा बाबा ने अग्नि देवता को अभिमन्त्रित करके तीर की नोक में प्रवेश करा दिया। फिर इस बाण को धनुष पर चढ़ाकर बाबा ने उसे सामने खड़े एक बड़े बरगद के वृक्ष पर छोड़ दिया।

क्षणमात्र में वह बाण अत्यन्त घोर ध्वनि करता हुआ बड़े वेग के साथ उस बरगद के पेड़ को चीरता हुआ पार कर गया तथा उस वृक्ष में तुरन्त आग लग गई। बाबा बोले कि पूरा फायर-ब्रिगेड भी इस पेड़ की अग्नि को शान्त नहीं कर सकता।

फिर उन्होंने तीसरा सरकण्डा लिया और उसका तीर बनाकर उसे भी अभिमन्त्रित किया। तदुपरान्त उस तीर की नोक पर वरुण देवता का आवाहन एक और मन्त्र द्वारा किया।

इस तीर को धनुष पर चढ़ाकर उन्होंने जब उपर्युक्त प्रचण्ड जलते हुए बरगद के पेड़ पर छोड़ा तो देखते ही देखते पेड़ की आग बुझ गई।

तदुपरान्त बाबा ने फिर एक मन्त्र पढ़ा तो वे धनुष तथा बाण एक बार फिर से तीन सरकण्डे बन गये।

उपर्युक्त कथा राजा उद्धवनारायण सिंह ने श्री बाबा के पौत्र गुई बाबा (स्व० सरोजमोहन चट्टोपाध्याय) को स्वयं सुनाई थी और गुई बाबा ने २४.१०.१९७२ को दुर्गा पूजा के उत्सव पर श्री विशुद्धानन्द कानन आश्रम, काशी में लेखक को सुनाई थी।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुदर्शन

गुरुभाई श्री इन्दुभूषण मुखर्जी, ११२ एफ ब्लॉक, न्यू अलीपुर, कलकत्ता-५३ द्वारा मुझे, ता० २०. ६. ७६ को विशुद्धानन्द कानन आश्रम, मलदहिया, वाराणसी में सुनाई गई दो घटनाएँ :—

गुरुदेव श्री विशुद्धानन्द परमहंसदेव ने अपना पार्थिव शरीर सन् १६३७ में छोड़ दिया था। घटना सितम्बर सन् १६७३ अर्थात् छत्तीस वर्ष बाद की है।

मैं अपने गुरुभाई तथा मित्र स्व० जितेन्द्रनाथ चक्रवर्ती महाशय से मिलने उनके घर ६।१, द्वारिक घोष लेन, चेतला, कलकत्ता-२७ गया था। उनके घर में ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मैंने उनके पूजा के कमरे का द्वार धकेला। अन्दर से बन्द न होने के कारण वह खुल गया। चक्रवर्ती महाशय तो उसमें न मिले पर पूजा घर में से बाबा के शरीर की अति अनुपम पद्मगन्ध आई। उनको न पाकर मैं लौटने की सोच ही रहा था कि उसी समय जितेन्द्र चक्रवर्ती दादा बाहर से लौटकर घर में घुसे। मैंने जब पद्मगन्ध की चर्चा की तो उन्होंने बताया कि गुरुदेव प्रायः सूक्ष्म शरीर से मेरे घर आते हैं और उस समय वह पद्मगन्ध आती है।

कुछ समय उनके साथ बातचीत करके मैं अपने घर लौटते समय राह में यह सोचता आ रहा था कि क्या वास्तव में मृत्यु के छत्तीस वर्ष पश्चात् भी श्री गुरुदेव सूक्ष्म शरीर से हम लोगों के पास आते हैं ? और मन ही मन मैंने बाबा से प्रार्थना की कि यदि यह सच है तो आप कृपा करके आज ही रात को दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करें और मेरा सन्देह मिटा दें।

और मेरी प्रार्थना स्वीकृत हुई। रात्रि को पौने-तीन बजे गुरुदेव धोती पहने तथा चादर ओढ़े, सदा की सी वेश-भूषा में, स्वप्न में मेरे सामने प्रकट हो गये।

तब से मुझे लेशमात्र भी सन्देह नहीं रह गया कि तिरोधान के पश्चात् भी गुरुदेव हम लोगों की बराबर देखभाल रखते हैं।

■

गुरु-कृपा

मैं (इन्दुभूषण मुखर्जी) कलकत्ता पोर्ट कमिश्नर के एक्जीक्यूटिव इंजीनियर के दफ्तर में ५१, सरक्यूलर गार्डनरीच रोड, कलकत्ता-४३ में काम करता था। सन् १६७३ में अचानक बैलस्ट सेक्शन में बदली का आदेश मिला। इस सेक्शन में नेक्सलाइट्स का बड़ा जोर था। अनुशासनहीनता तथा जरा-जरा सी बात पर मृत्यु के घाट उतार देना रोज का काम था। मैं इस स्थानान्तरण के कारण अति दुःखित हुआ। अवकाश-प्राप्ति में केवल अठारह मास का समय शेष रह गया था। अतः मैंने अपने अधिकारी से प्रार्थना की कि मुझे उस सेक्शन को न भेजा जाय, पर मेरी प्रार्थना पर उसने कोई ध्यान न दिया। निराश होकर तथा कोई और चारा न देख मैंने हेड-ऑफिस को न बदले जाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का एक प्रार्थनापत्र लिखा तथा उसे श्री गुरुदेव की फोटो के श्रीचरणों में रखकर अगले दिन उसे अपने एक्जीक्यूटिव इंजीनियर को दे दिया। उसने उसको बड़े दफ्तर भेज दिया। कुछ ही दिन पश्चात् वहाँ से आदेश मिला कि मेरी बदली बैलस्ट सेक्शन में न की जाय बल्कि एक और अफसर की बदली का आदेश आ गया जिसने मेरी बदली कराने का षड्यन्त्र रचा था। ऐसे करुणामय हैं मेरे गुरुदेव!

■

श्री निकुंजबिहारी मित्र, रिटायर्ड फोरमैन, ऑर्डिनेन्स फैक्टरी, देहरादून द्वारा लेखक से ता० २४.१०.७७ को श्री विशुद्धानन्द कानन आश्रम, काशी में कथित, श्री विशुद्धानन्दजी परमहंसदेव के विषय में, कतिपय घटनाएँ।

मेरी पूज्या माताजी को परमपूज्य श्री विशुद्धानन्दजी परमहंसदेव ने सन् १६३० ई० में दीक्षा दी थी। तभी से श्री श्री बाबा ने किस प्रकार से हम लोगों की अनेक कष्टों तथा भयानक परिस्थितियों में रक्षा की है, उसी के कुछ उदाहरण मैं यहाँ दे रहा हूँ।

१. अँगूठा कटने पर भी उसके कुपरिणामों से रक्षा

मैं अपनी माता का सबसे बड़ा पुत्र हूँ। ३१ अगस्त सन् १६३३ ई० को बृहस्पतिवार के दिन कलकत्ते के पास ईशापुर राइफिल फैक्टरी में सेन्टर लेथ मशीन पर काम करते समय अनायास ही मेरा दाहिना हाथ लेथ में फँस गया और फलस्वरूप मेरा दाहिना अँगूठा कटकर बिल्कुल अलग हो गया। तुरन्त ही मुझे ऑर्डिनेन्स फैक्टरी अस्पताल ले जाकर क्लोरोफॉर्म देकर मेरे हाथ में टाँके लगाये गये। उस समय मुझे लगा जैसे बाबा प्रत्यक्ष मेरे पास खड़े हैं और मुझे सान्त्वना दे रहे हैं। मुझे कोई कष्ट-पीड़ा न हुई, और न बुखार ही आया। एक सप्ताह में ही मैं एकदम चंगा हो गया जिससे कि डॉक्टर साहब भी चकित रह गये कि ऐसा गहरा घाव इतने शीघ्र कैसे अच्छा हो गया। फैक्टरी में अँगूठा कट जाने की सूचना पाते ही मेरी माता सीधे ही दयालु गुरुजी की शरण में भवानीपुर (कलकत्ता) आश्रम में पहुँची और सारी दुःखघटना गुरुदेव को सुनाकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से बोलीं—''बाबा, अब निकुंज काम कैसे कर पायेगा, उसकी चाकरी भी छूट जायगी।'

कृपालु गुरु ने मेरी माता को सान्त्वना दी और बताया कि उसका आज मृत्यु-योग था जिसको मैंने केवल एक अँगूठा कटने पर ही सीमित कर दिया। साथ ही बाबा ने यह भी आश्वासन दिया कि—''उसकी अर्थोपार्जन की क्षमता तथा उन्नति के अवसरों में कोई कमी नहीं आयेगी; वह शीघ्र ही अपने दाहिने हाथ से पूर्ववत् लिख सकेगा तथा यथासमय (श्री बाबा के) पौत्र श्री सरोजमोहन चट्टोपाध्याय (गुई बाबा) से दीक्षा भी पाएगा।''

हुआ भी ऐसा ही। मेरे साथियों ने कहा कि अब मैं दायें हाथ से कभी न लिख पाऊँगा। अतएव मैंने बायें हाथ से लिखने का अभ्यास डालने का प्रयत्न भी किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु उसमें असफल रहा और मन में बड़ा दुःखी हुआ। किन्तु अचानक ही १६ अक्टूबर १६३३, अर्थात् अँगूठा कटने के डेढ़ महीने बाद ही, अँगूठे पर पट्टी बँधी होने पर भी दायें हाथ से लिखने की अन्तःप्रेरणा हुई और आश्चर्य कि मैं पूर्ववत् सुन्दरता से लिख पाया। मेरे तथा सब के आश्चर्य की सीमा न रही। कृपालु गुरुदेव को अनेकानेक धन्यवाद दिया। अगले दिन प्रातःकाल अपने जनरल मैनेजर साहब के सामने उपस्थित हुआ।

उनके आदेशानुसार लिखने को कहा गया। सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब तथा वर्क्स मैनेजर दोनों ही मेरी सरल अबाधित लेखन-क्रिया को देख अति आश्चर्यान्वित तथा प्रसन्न हुए और उसी दिन मुझे और भी ऊँचे पद का कार्यभार सौंप दिया गया।

यह था गुरु की असीम कृपा का मेरा पहला अनुभव।

२. १०८ बिल्वपत्रों को २८० कर देना

अगस्त १६४६ में ईशापुर राइफिल फैक्टरी से मेरी बदली आर्डिनेन्स फैक्टरी कानपुर को हो गई। दो वर्ष बाद रामकृष्ण मिशन की एक संन्यासिनी चण्डी माँ को साथ लेकर मेरी माता मेरे ज्येष्ठ पुत्र स्वपन के लिए, जो उस समय पाँच वर्ष का हो गया था, एक 'कवच' की व्यवस्था करने कानपुर आईं। 'कवच' की कार्य-प्रणाली के अनन्तर 'हवन' के लिए मेरी स्त्री ने गिनकर एक-सौ-आठ बिल्वपत्र यथास्थान रख दिये। चण्डी माँ ने फिर से गिनकर देख लिया कि पूरे १०८ ही हैं। किन्तु हवन करते समय देखा गया कि १०८ बिल्वपत्र के स्थान पर २८० बिल्वपत्र हैं। अगले दिन अग्निहोत्री पण्डितजी से पूछने पर पता चला कि २८० बिल्वपत्र ही उस हवन की आहुति के लिए उचित थे, १०८ नहीं। पर १०८ बिल्वपत्र २८० कैसे हो गए, यह समझ में नहीं आया। रात्रि को दो बजे श्री गुरुदेव ने 'चण्डी माँ' को स्वप्न देकर बतलाया कि उन्होंने ही बिल्वपत्र २८० कर दिये थे क्योंकि उतनी मात्रा अपेक्षित थी। आप धन्य हैं मेरे गुरु! आप की जय हो।

३. पुत्र अरुण की डिप्थीरिया द्वारा मरण से रक्षा

शनिवार, २६ जुलाई १६५२ ई० को प्रातः द्वितीय पुत्र अरुण और मैंने साथ-साथ नाश्ता किया और मैं फैक्टरी चला गया। अपराह्न-भोजन के समय एक बजे जब मैं घर आया तो देखा कि अरुण को १०३ डिग्री बुखार है और मेरी स्त्री उसके सिर पर यू० डी० कोलोन की पट्टी बराबर बदल-बदलकर रख रही है।

अन्तःप्रेरणा के फलस्वरूप मैं तुरन्त ही अपनी साइकिल पर अपने बँगले से पाँच किलोमीटर दूर अपने कुटुम्बी चिकित्सक डॉ० ए० बागची के घर गया और उन्हें सारा हाल बताया। डॉ० साहब मेरे घर आए और अरुण की जाँच करने के बाद बोले— 'डिप्थीरिया' मालूम होता है और स्वाब लेकर डॉ० वाजपेयी, पैथोलॉजिस्ट के पास कल्चर (जाँच) के लिए भेजा। उन्होंने जाँच करके कहा—डिप्थीरिया है। पूरी कथा जानकर वे बोले—"अवश्य ही किसी देवपुरुष का वरदहस्त तुम्हारी रक्षा कर रहा है कि तुमने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिना विलम्ब के तुरन्त ही उपचार की व्यवस्था कर ली। प्रायः डॉक्टर लोग तीस से छत्तीस घण्टे बाद 'स्वाब' जाँच को भेजते हैं जब इतनी देर हो चुकी होती है कि रोगी को बचाना असम्भव हो जाता है।'' दो सीरम इन्जेक्शन लगने पर अरुण तो एकदम स्वस्थ हो गया जब कि कानपुर ऑर्डिनेन्स फैक्टरी, आरामपुर एस्टेट के डिप्थीरिया से पीड़ित बाकी सारे के सारे रोगियों में से और कोई भी नहीं बच पाया।

श्री बाबा ने पीछे बताया था कि जब अरुण को डिप्थीरिया का बुखार चढ़ा था उस समय मैं तुम्हारे बँगले में उसको देखने आया था और मैंने ही उसकी प्राण-रक्षा की व्यवस्था की थी, अन्यथा उसका भी बचना सम्भव न था।

इस प्रकार से कृपालु गुरु अपने शिष्यों के कुटुम्बियों की रक्षा सदा करते रहते हैं।

४. डाकुओं से घर की रक्षा

घटना अक्टूबर सन् १६५५ की है। अपनी पुत्री के विवाह के पश्चात् प्रथा के अनुसार मैं उसकी ससुराल में प्रथम दुर्गा पूजा के अवसर पर टट्टे की व्यवस्था करने कानपुर से कलकत्ता गया। कानपुर में मेरा माली रामनाथ, खूब लम्बे-चौड़े डील-डौल का पूरा छह फुट्य विश्वासपात्र पट्ठा जवान था। उसके आश्वासन पर मैं अपने बच्चों तथा कोठी को उसकी निगरानी में छोड़कर निस्संकोच कलकत्ते चला गया।

एक रात को दो बजे रामनाथ को लगा जैसे किसी ने उसको झकझोरा परन्तु गहरी नींद में होने के कारण वह फिर करवट लेकर सो रहा—उठा नहीं। दूसरी बार जब उसके गाल पर बड़े जोर का तमाचा पड़ा तो वह भड़भड़ाकर उठ बैठा और उसने अपने सामने लम्बी सफेद दाढ़ीवाले तथा गेरुआ वस्त्र तथा खड़ाऊँ पहने एक तेजस्वी साधु बाबा को खड़ा देखा। उन्होंने कहा—देखो, अपनी लाठी लेकर तुरन्त कमरे से बाहर जाकर देखो। तुम्हारी कोठी के बाहर मैदान में चोर घुसे हैं।

रामनाथ लाठी सँभालकर तुरन्त कमरे से बाहर निकला और चोरों को ललकारा। चोर तुरन्त भाग निकले। हल्ला सुनकर चारों ओर से और दरबान लोग भी इकट्ठे हो गये। सबेरे ही दरबानों तथा सिक्यूरिटी स्टाफ ने सन्देहात्मक आचरण वाले व्यक्तियों को, जो कुछ समय से धीरे-धीरे करके एस्टेट में घुसपैठ कर गये थे, निकालने की व्यवस्था कर ली जिससे कॉलोनी में फिर सुरक्षा का वातावरण स्थापित हो गया।

ऐसी थी दयालु गुरु की शिष्यों के प्रति कल्याण की भावना तथा सतर्कता।

५. गुरुदेव द्वारा ट्राम-एक्सिडेन्ट से रक्षा

घटना मार्च १६६६ की है। प्रायः डेढ़ बजे दोपहर का समय था। मैं दक्षिण कलकत्ता से एसप्लैनेड की ओर आने वाली ट्राम में बैठकर यात्रा करने की प्रतीक्षा में था। ट्राम को आते देख मैं चट से लाइन पार करके उस ओर जाने को उद्यत हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी समय अचानक ही जैसे किसी ने हाथ सामने करके मुझे रोका तथा जोर से कहा—'ठहरो।' मैं एकदम रुक गया और तत्क्षण एसप्लेनैड की ओर से वेग से आती हुई ट्राम ठीक मेरे सामने रुकी। यदि उस समय मैं न रोका गया होता तो अवश्य ही दोनों ट्रामों के बीच में आकर उस दुर्घटना में मेरी क्या दशा होती, यह सोचकर आज भी मेरा मन दहल उठता है।

मैंने अपने प्राण-रक्षक को धन्यवाद देने को जब तक होश सँभाला, वह अदृश्य हो चुका था।

श्री श्री बाबा गुरुदेव को छोड़ यह कार्य और किसका हो सकता है ? दयालु गुरुदेव तुम्हारी सदा जय हो।

६. एक बार फिर प्राण-रक्षा

एक दिन दक्षिण कलकत्ता से अपने दफ्तर-डाइरेक्टर जनरल ऑर्डिनेन्स फैक्टरीज-हेड-क्वार्टर्स, छह एसप्लेनैड ईस्ट आ रहा था। मैं चलती बस से ही उतर पड़ा और बस की तेज चाल के कारण मेरा शरीर उसी दिशा में झुकाव से सड़क के किनारे के एक बिजली के खम्भे से जोर से टकराने ही जा रहा था जब एक फटे चीथड़े पहने हुए मनुष्य ने मेरी बुशशर्ट का कॉलर पकड़ मुझे पीछे खींचकर खम्भे से टकराने से बालबाल बचा लिया, नहीं तो उस दिन मेरी खोपड़ी के टुकड़े-टुकड़े हो गये होते। हम शिष्यों को बचाने के लिए दयालु गुरु ने किस-किस भेष में आकर, किन-किन उपायों से, हम लोगों का कैसी-कैसी विपदाओं से त्राण नहीं किया।

बाबा गुरुदेव के मेरी माता को पूर्व इंगित अगस्त सन् १९३३ की भविष्यवाणी के अनुसार ही मेरी तथा मेरी पत्नी की दीक्षा बृहस्पतिवार २२ सितम्बर सन् १९६६ को दादा गुरुदेव श्री विशुद्धानन्दजी परमहंसदेव के पौत्र (श्री दुर्गादास चट्टोपाध्याय के सुपुत्र) श्री सरोजमोहन चट्टोपाध्याय (गुई बाबा) द्वारा यथाविधि सम्पन्न हुई।

■

श्री सच्चिदानन्द चौधरी, इन्जीनियर, गाँव तथा पोस्ट—अरुआर, जिला बर्दवान-७१३१२१ द्वारा विशुद्धानन्द कानन आश्रम, मलदहिया, वाराणसी में दुर्गा पूजा के उत्सव पर २२ अक्टूबर १९३७ को सुनाई गई अपने जीवन में घटी दो घटनाएँ।

१. गुरुकृपा का प्रथम अनुभव

सन् १९३१ में दीक्षा से कुछ मास पूर्व मैं तथा मेरे ज्येष्ठ भ्राता दोनों श्रीरामपुर से रेल द्वारा हावड़ा (कलकत्ता) उतरकर २०, रूपनारायण नन्दन लेन, कलकत्ता श्री श्री बाबा के दर्शनार्थ सायंकाल पहुँचे। अभी बाबा को प्रणामकर ठीक से बैठ भी न पाये थे कि बाबा के एक वयोवृद्ध शिष्य श्री योगेश वसु ने हम सब उपस्थित लोगों को वहाँ से यह कहकर विदा किया कि "अब आप सब लोग अपने-अपने स्थान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को प्रस्थान करें क्योंकि बाबा के आह्निक का समय हो गया है।" मुझे योगेश दादा का यह व्यवहार बड़ा ही अभद्र लगा और बड़ा दुःखी मन लेकर मैं और दादा दोनों श्रीरामपुर को, जहाँ हमारे पिताजी पुलिस दरोगा थे, लौट पड़े। चलती गाड़ी में हम दोनों चढ़ गये—टिकट भी न ले पाये और राह में किसी ने पूछा भी नहीं। घर पहुँचते ही मुझे श्रीबाबा की पद्मगन्ध मिली और दादा ने भी उसका अनुभव किया। बस, हमको आभास हुआ कि श्रीबाबा से हमारे मन की व्यथा छिपी न रही और उसी के प्रतिकार हेतु उन्होंने सूक्ष्म शरीर से हमारे पास आने की यह सूचना देकर हमको सन्तुष्ट किया है।

यह था गुरु के प्रेम तथा कृपा का मेरा प्रथम अनुभव—जय गुरुदेव!

२. ठीक समय पर बढ़ई का प्रकट होना

मेरी दीक्षा योगिराजाधिराज श्री विशुद्धानन्द परमहंस द्वारा मार्च सन् १६३१ ई० को २०, रूपनारायण नन्दन लेन, कलकत्ता में हुई। मैं उस समय शिवपुर इंजीनियरिंग कॉलेज, कलकत्ता में बी०ई० (बैलेचर ऑफ इंजीनियरिंग) का छात्र था। दीक्षा के बाद हम लोगों को योगदण्ड तथा यन्त्र को लेकर बन्द कमरे में आह्निक करने का आदेश है ताकि यन्त्र पर किसी और की दृष्टि न पड़े, नहीं तो वह खण्डित हो जाता है। मैं उस समय होस्टल में डौरमेटरी में रहता था जिसमें हम लोग आठ छात्र थे। अतः वहाँ तो प्रातः तथा सायं आह्निक करने की सुविधा थी ही नहीं। बहुत सोच-विचार के बाद छात्रावास की छत के चारों कोनों पर जो बुर्जियाँ बनी थीं उनमें से एक में आह्निक करने का निश्चय किया। मैंने देखा कि बुर्जी में किवाड़ तो हैं पर उनको भीतर से बन्द करने की साँकल नहीं है। तुरन्त मन में विचार उठा कि क्या अच्छा होता यदि इस समय कहीं से एक बढ़ई मिल जाता तो साँकल लगा देता। और मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसी क्षण मैंने छात्रावास के मैदान में एक बढ़ई को आते देखा। मैंने उससे पूछा—"क्यों भाई, तुम क्या एक दरवाजे में साँकल लगा दोगे ?" उसने उत्तर दिया—"क्यों नहीं।" और तुरन्त ही उसने बाहर एक छपका कुण्डा और अन्दर एक साँकल लगा दी और मेरी आह्निक की समस्या हल हो गयी। अब आप ही सोच देखें कि दयालु गुरु को छोड़ मेरी व्यथा किसने दूर की ?

३. मेरे पुत्र की सहायता

घटना सन् १६६८ ई० की है। मेरा पुत्र ज्योतिर्मय चौधरी उस समय आर०डी० एण्ड डी०जे० कॉलेज, मुंगेर (बिहार) में बी०एस०सी प्रथम वर्ष का छात्र था। उसने उसी साल १६६८ में पत्रिस लुलुम्बा मॉस्को यूनीवर्सिटी, यू०एस०एस०आर० की एक छात्रवृत्ति के लिए प्रार्थनापत्र भेजा था। उसके सन्दर्भ में भारत सरकार ने इन्टरव्यू के लिए उसे दिल्ली बुलाया था। मैं भी उसके साथ दिल्ली चला गया।

जब उसे इन्टरव्यू के लिए भीतर बुलाया गया उस समय मैंने श्रीगुरु-चरणों को अपने हृदय-पटल पर स्थिरकर उन पर ध्यान लगा दिया जिससे मुझे अवर्णनीय शान्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अनुभव हुआ। पूरे बीस मिनट तक जितनी देर मेरे पुत्र का इन्टरव्यू रहा, मेरा मन पूर्णतया बाबा के श्रीचरणों के ध्यान में लीन रहा। पुत्र के बाहर आने पर मैंने उससे प्रश्न किया—"कहो, इन्टरव्यू कैसा हुआ ?" उसने उत्तर दिया—"अति सन्तोषजनक। मेरे उत्तरों की इन्टरव्यू कैसा हुआ?" उसने उत्तर दिया—"अति सन्तोषजनक। मेरे उत्तरों की इन्टरव्यू बोर्ड के दो सदस्यों ने स्पष्ट रूप से प्रशंसा की।"

तत्पश्चात् हम लोग जमालपुर (मुंगेर) लौट आए। अगले दिन प्रातः आह्निक करते समय मुझे बाबा की वाणी सुनाई पड़ी—"मैं इन्टरव्यू के समय दिल्ली में तुम्हारे साथ ही तो था।" अब तो मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि मेरा पुत्र इन्टरव्यू में अवश्य सफल हो गया है यद्यपि यह भेद मैंने अपने पुत्र के सामने उस समय प्रकट नहीं किया।

दो सप्ताह तक जब कोई समाचार नहीं मिला तब मेरे पुत्र ने मुझसे परामर्श किया कि मालूम होता है मेरा सेलेक्शन नहीं हुआ, अतः मुझे बी०एस०सी० की परीक्षा की तैयारी में पूरी तरह लग जाना चाहिए। मैंने कहा—"तुम परीक्षा की तैयारी तो अवश्य प्रारम्भ कर दो पर मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारा सेलेक्शन अवश्य हुआ है। वह आश्चर्यचकित होकर बोला—"आपको कैसे मालूम ?" मैंने इतना ही कहा—"बस, तुम मेरी बात पर विश्वास रखो।"

इस वार्ता के ठीक एक सप्ताह बाद एक पत्र तथा उसके साथ 'मेडिकल एक्जामिनेशन फॉर्म' आया। लिखा था कि स्वास्थ्य परीक्षा कराकर फॉर्म पूरा करके भिजवा दो तथा १३ अगस्त १६६६ को यू०एस०एस०आर० (रूस) जाने की तैयारी करो। फॉर्म पाकर उसकी जाँच होने पर यदि स्वास्थ्य की रिपोर्ट ठीक निकली तो आपके जाने का पुष्टि-पत्र भेज दिया जायगा। मैंने स्वास्थ्य की यथाविधि उसी दिन जाँच कराकर अगले दिन ही सामान्य लिफाफे में मेडिकल फॉर्म भेज दिया क्योंकि रजिस्ट्री से भेजने पर देर होने की आशंका थी।

८ अगस्त तक कोई समाचार नहीं मिला। अतः पुत्र को साथ ले मैं सपरिवार उसी दिन दिल्ली के लिए रवाना हो गया। तथा ६ अगस्त को बिरला मन्दिर के पास नयी दिल्ली की कालीबाड़ी में ठहरने की व्यवस्था करके पुत्र ज्योर्तिमय को साथ ले मैं सीधा दस बजे प्रातः 'शास्त्री भवन' पहुँचा। पूछताछ के अनन्तर ज्ञात हुआ कि चिट्ठी आज ही आ रही है। चिट्ठी वहीं ले ली गई।

अब प्रश्न उठा पासपोर्ट बनवाने का। हम लोग क्योंकि बंगाल के निवासी थे अतः नियमानुसार हमारा पासपोर्ट कलकत्ता पासपोर्ट दफ्तर से ही बनना चाहिए था। परन्तु दिल्ली से कलकत्ता जाकर पासपोर्ट का समय पर बनकर मिल जाना असम्भव था। अतः हमने अधिकारी से प्रार्थना की कि हमें दिल्ली पासपोर्ट ऑफिस से ही पासपोर्ट बनवाने की सुविधा दी जाये। किन्तु इसके लिए उस अधिकारी ने हमें वरिष्ठ अधिकारी से भेंट करने को कहा। वरिष्ठ अधिकारी ने हमारी प्रार्थना स्वीकार करके तुरन्त आदेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया और हम लोग दिल्ली पासपोर्ट अधिकारी के कार्यालय पहुँच गये। यहाँ प्रश्न उठा कालरा, चेचक आदि के टीके लगवाकर प्रस्थान से कम से कम एक सप्ताह पहले उसका फॉर्म पूरा होना चाहिए। हम लोगों को तो इस सब का कुछ भी पता न था और हम बड़े धर्म-संकट में पड़ गये। उसी समय एक अज्ञात व्यक्ति ने आकर कहा— हमको पच्चीस रुपये दीजिए, हम आपका सब काम ठीक करा देंगे। अगले दिन उसने टीके आदि का फॉर्म पहले की तारीख में हस्ताक्षर कराके हमारे पास प्रातः कालीबाड़ी में ही पहुँचा दिया।

ये सारी बाधाएँ तथा व्यवधान श्री बाबा की कृपा से बड़ी सुगमता से दूर हो गये और ज्योर्तिमय निर्धारित तिथि को प्रस्थान कर गया जब कि उसके और साथी एक सप्ताह बाद ही जा सके।

मैंने अनुभव किया कि एक अज्ञात शक्ति सब समय मेरी सहायता के लिए तत्पर है।

■

श्री नेपालचन्द्र चटर्जी, पुलिस ऑफिसर, अलीपुर, कलकत्ता के गुरुकृपा के कुछ अनुभव—

मुझे गुरुजी की जन्मभूमि के दर्शनों के लिए छुट्टी कैसे मिली

मैंने गुरुदेव श्री विशुद्धानन्दजी परमहंसदेव के सुपुत्र श्री दुर्गादास चट्टोपाध्याय के विवाहोत्सव तथा शिवरात्रि-उत्सव—जो विवाह के दो-तीन दिन बाद बण्डूल में ही सम्पन्न होने वाले थे—दोनों में सम्मिलित होने का निश्चय किया। तदनुसार मैंने एक सप्ताह की आकस्मिक छुट्टी के लिए आवेदनपत्र प्रस्तुत कर दिया। संयोग से कार्यालय में पत्र आया कि उन्हीं दिनों में डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल ऑफ पुलिस साहब हमारे दफ्तर के निरीक्षण के लिए आ रहे हैं। इस सूचना से मेरी सारी योजना ही गड़बड़ में पड़ गई और बड़े दुःखी मन से मैंने बाबा को सारे वृत्तान्त से अवगत कराया तथा न आ पाने के लिए क्षमा-प्रार्थना की। बाबा ने उत्तर में लिखा—"चिन्ता मत करो, जो होता है होने दो।"

डी०आई०जी० साहब बहादुर निरीक्षण के लिए आये तो अवश्य किन्तु पीछे-पीछे ही उनको कलकत्ता बड़े दफ्तर लौटने का तार आ गया। इस कारण निरीक्षण स्थगित करके वे तुरन्त कलकत्ता लौट गए और मैं प्रसन्नचित्त अपनी पूर्व योजना के अनुरूप बण्डूल पहुँच गया। जय हो मेरे गुरु!

बाबा द्वारा मेरे पुत्र की रोग से मुक्ति

जिन दिनों मैं बर्दवान थाने में दरोगा था, मेरे पुत्र अमर को, जो १२ वर्ष का था, ज्वर आने लगा। पूरे पन्द्रह दिन की अथक चिकित्सा करने पर भी ज्वर नहीं छूटा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सौभाग्य से श्री श्रीगुरुदेव उन दिनों मेरे पास ही एक दिन के लिए ठहरने आये थे। सायंकाल के भोजन में उन्होंने दूध, लूची (मैदा की पूरी) और केला लिया। मेरे ज्वर-पीड़ित पुत्र ने हठ पकड़ ली कि वह भी श्रीबाबा का भोग-प्रसाद अवश्य लेगा। ज्वर के कारण हम लोगों ने अनेक प्रकार से उसको फुसलाने का प्रयत्न किया किन्तु सब निष्फल। अन्त में बात बाबा तक पहुँची। उन्होंने कहा—"थोड़ा-सा प्रसाद दे दो।" अन्ततः ऐसा ही किया गया और आश्चर्य कि अगले दिन सबेरे ज्वर नदारद और अमर सानन्द कूद-फाँद करने लगा।

ऐसी थी गुरुदेव की कृपा तथा करुणा।

बाबा की तन्द्रा-इच्छा होते ही अंगूरों की बौछार

एक बार बाबा मेरे पास रानीगंज आये हुए थे। बैठे-बैठे ही उन्हें नींद का झोंका आ गया। मैं, रजनी बैनर्जी तथा मुन्सिफ नरेन घोष तीनों शिष्य श्रीबाबा के चरणों में बैठे थे। अचानक छत से अंगूर पटापट नीचे गिरने लगे—बौछार हो गई। कुछ सीधे बाबा के खुले मुख में चले गये और कुछ हम लोगों ने उठाकर खाये—बड़े ही स्वादिष्ट थे।

गुरुदेव ने नेत्र खोले और बोले—"सो तुम लोगों ने भी अंगूर खाये। हुआ क्या, कि मुझे तन्द्रा आ गई तथा अंगूर खाने की इच्छा हुई। महाशक्ति ने तुरन्त दया करके मेरी इच्छा पूर्ण की।"

यह है एक उदाहरण कि किस प्रकार से महाशक्ति सच्चे योगी की इच्छा-पूर्ति के लिए तत्पर रहती है।

■

गुरुभाई श्री मन्मथनाथ सेन (निवासी १०, लेक रेंज, कलकत्ता-२६) द्वारा दिनांक १० अक्टूबर १६८० को श्री विशुद्धानन्द कानन आश्रम में स्वयं सुनाई हुई कुछ घटनाएँ—

डॉ० अक्षयदत्त (प्रसिद्ध होमियोपैथ, कलकत्ता) के अविश्वास का विश्वास में परिवर्तन

मेरे पिता कुमार जामिनीवल्लभ सेठ उस समय १०, डफ स्ट्रीट, कलकत्ता में रहते थे जब योगिराज विशुद्धानन्दजी परमहंसदेव ने अक्टूबर १६३६ में दुर्गा पूजा महा-अष्टमी के शुभ दिन, उनको पुरी आश्रम में दीक्षा दी थी।

दीक्षा से पूर्व उन्होंने पहले-पहल श्री गुरुदेव के दर्शन, श्री डब्ल्यू० सी० बैनर्जी के निवास-स्थान 'टावर हाउस', अखिल मिस्त्री लेन, कलकत्ता में सन् १६१७ में किये थे। तदुपरान्त वे समय-समय पर गुरुदेव के दर्शन करते रहते थे। उस समय मेरे पिताजी अर्श (बवासीर) रोग से आक्रान्त थे और प्रसिद्ध होम्योपैथ डॉक्टर अक्षयदत्त से चिकित्सा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करा रहे थे, जो उनके मित्र भी थे। बातचीत के दौरान मेरे पिता ने एक दिन अक्षय बाबू से श्री विशुद्धानन्दजी की अद्‌भुत योगशक्ति के चमत्कारों के विषय में उल्लेख किया। इस पर डॉ० अक्षयदत्त बोले—"मैं चमत्कारों में विश्वास नहीं करता। ये केवल सम्मोहन-विद्या (Hypnotism) अथवा मतिभ्रम (Hallucination) के व्यापार होते हैं।" इस कथन पर मेरे पिताजी कुछ खीझ कर बोले—"मैं दावे से कहता हूँ कि तुम्हारी धारणा मिथ्या है और तुमको स्वयं परीक्षा करके अपने कथन की सत्यता की पुष्टि के लिए आमन्त्रित करता हूँ।"

तदुपरान्त एक दिन वे डॉ० दत्त को बाबा के पास टॅावर हाउस ले गये। उस समय डॉ० दत्त की सन्देह-निवृत्ति के लिए बाबा ने कुछ सुगन्धियाँ निर्मित करके दिखाईं तथा सूर्य-रश्मियों को लेन्स द्वारा केन्द्रित करके एक पुष्प को दूसरे प्रकार के पुष्प में परिवर्तन करके दिखाया। इस कार्य-विधि के समय डॉ० दत्त ने, यह देखने के लिए कि हाथ की कोई चालाकी तो नहीं है, बाबा का हाथ पकड़ लिया। बाबा ने डॉ० दत्त के मुख पर हल्के से एक तमाचा मारा और बोले—"अरे मूर्ख! तुम समझते हो मैं तुम्हारे सामने कुछ चालाकी चल रहा हूँ।" और उसी समय अपने ऊनी आसन में से ऊन की एक धज्जी फाड़ कर, उस पर लेन्स द्वारा सूर्य की अपेक्षित रश्मियों को केन्द्रित करके ऊन की उस धज्जी को एक मूँगे (Coral) में परिवर्तित कर दिया।

यह देखकर डॉ० दत्त स्तम्भित होकर चुप हो गये। 'मूँगा' तुरन्त का बना होने के कारण उस समय तक मुलायम ही था। शिष्यों ने उसे देखना चाहा और एक ने तो उसमें कील भी घुसा दी जो उस मूँगे में आज तक घुसी हुई है। वह मूँगा मैंने (मन्मथनाथ सेन) बाबा से माँग लिया और आज तक मेरे पास मेरे निवास-स्थान १०, लेक-रेंज कलकत्ता—७०००२६ पर सुरक्षित रखा हुआ है।

यह सब देखकर अविश्वासी डॉ० दत्त का सन्देह कुछ-कुछ दूर हुआ किन्तु बाबा ने भाँप लिया और वे डॉ० दत्त से बोले—"क्यों, तुम्हारा संशय अभी भी पूर्णरूपेण निवृत्त नहीं हुआ है ?"—और तुरन्त ही उन्होंने अपनी नाभि फाड़कर एक तकिया उसमें घुसा दिया। इस विकराल दृश्य को देखते ही डॉ० दत्त मूर्छित हो गये। तब गुरुदेव ने डॉ० दत्त के मुख पर गंगाजल छिड़का तथा शिष्यों ने पंखा झला और कुछ समय के उपरान्त उनकी चेतना लौटी। अब तो डॉ० अक्षयदत्त बाबा के श्रीचरणों में लोट गये तथा उनसे दीक्षा की प्रार्थना कीं।

बाबा बोले—"अच्छा, मैं अपने मुख्यालय ज्ञानगंज को अनुमति के लिए लिखूँगा।" बाबा ने लिखा भी किन्तु उत्तर मिला कि डॉ० अक्षयदत्त का जीवनकाल अब प्रायः समाप्ति पर है। अतः दीक्षा से अब विशेष लाभ नहीं। और दो वर्ष उपरान्त सत्य ही डॉक्टर का देहावसान हो गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री मन्मथनाथ सेन की गम्भीर रक्तातिसार से रक्षा

सन् १९१९ में मैं गम्भीर रक्तातिसार (Severe blood dysentry) के कारण अत्यन्त दुर्बल हो गया था। मेरी चिकित्सा अतिप्रसिद्ध कविराज श्री मागुनि मिश्र कर रहे थे तथापि मेरा स्वास्थ्य बजाय सुधरने के बिगड़ता ही चला गया। अतः मेरे पिता वायु-परिवर्तन के लिए मुझे कलकत्ता से पुरी ले आए। गुरुदेव के चमत्कार तो वे सन् १९१७ से देख ही रहे थे। अतः पुरी पहुँचते ही वे श्री गुरुदेव के आश्रम गये तथा सादर प्रणाम, वन्दन आदि के पश्चात् मेरे स्वास्थ्य की दुरवस्था से श्रीबाबा को अवगत कराके उनसे अपने पुरी के घर आकर मुझे देखने की कातर प्रार्थना की।

कृपालु गुरु ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे पधारे तथा मुझे देखकर बोले— "अभी तो इस बालक द्वारा अनेक कार्य होने हैं। अभी इसका मृत्यु-योग नहीं है।" यह बात है सन् १९१९ की। श्री मन्मथनाथ सेन आज २०.११.१९८३ तक भी प्रायः अड़सठ वर्ष की अवस्था में जीवित हैं।

दीक्षोपरान्त आयु-वृद्धि

कलकत्ता के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने मेरे पिता, कुमार जामिनीवल्लभ सेन को बताया था कि आपके सबसे बड़े पुत्र (अर्थात् मेरे भाई) श्री गोपीवल्लभ सेन का देहावसान अठारह वर्ष की आयु पूरी होने से पहले ही हो जायगा। मेरे पिता तथा माता इस भविष्यवाणी से अति व्यथित हो गये। अतः सन् १९१९ में अपनी दीक्षा के उपरान्त मेरे पिता ने गुरुदेव से गोपीवल्लभ की दीक्षा की भी प्रार्थना की जो उस समय १५ वर्ष का था। फलतः १६ वर्ष की आयु में अप्रैल, १९२० को, पिताजी के उद्यान-गृह (Garden House)— रंगपुर राजबागान बाड़ी—"जाह्नवी निलय—", ग्राम तथा डाकघर—अरिया दाहा, जिला—चौबीस परगना (पश्चिम बंगाल) में, मेरे भाई की दीक्षा सम्पन्न हुई। संयोग से गुरुदेव श्री विशुद्धानन्दजी का प्रथम जन्मोत्सव भी हमारे सौभाग्य से इसी स्थान पर मनाया गया था। दीक्षा के प्रभाव तथा गुरुकृपा से भ्राता गोपीवल्लभ सेन, अपने अठारहवें वर्ष को बिना किसी बाधा के पार करके, ४५ वर्ष की आयु तक जीवित रहे।

माताजी को श्री विशुद्धानन्दजी द्वारा दीक्षा

सन् १८१९ में ज्ञानगंज से, मेरे पिता तथा माता दोनों को ही दीक्षा की अनुमति प्राप्त हो गई थी। मेरे पिताजी ने जब मेरी माता को बताया तो मेरी माता ने पिताजी से कहा कि वे तो पहले ही योगी श्री श्यामाचरण लाहिड़ी के शिष्य योगिराज पंचानन भट्टाचार्य द्वारा दीक्षित हैं—अतः वे फिर से बाबा से दूसरी दीक्षा लेने के पक्ष में नहीं हैं। मेरे पिताजी चाहते थे कि मेरी माता भी पुनः दीक्षा ले लें, पर वे कुछ बोले नहीं।

उसी रात्रि को मेरी माता का स्वप्न में एक प्रचण्ड उन्मत्त साँड़ ने पीछा करना शुरू किया। माँ आगे-आगे और साँड़ पीछे-पीछे। माँ भागते-भागते जब विह्वल हो गईं उस समय योगिराज विशुद्धानन्दजी स्वप्न में उनके समक्ष प्रकट होकर बोले—"बस,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब भय मत करो, साँड़ अब तुम्हें और नहीं खदेड़ेगा।" साँड़ अदृश्य हो गया और योगिराज ने अपने कमण्डल से माँ को जल दिया जिसे पीकर मेरी माता पुनः स्वस्थ हो गईं। उसी समय उनकी नींद टूट गई। प्रातः मेरी माता ने पुनः स्वप्न का सारा वृत्तान्त मेरे पिताजी को सुनाया और बोलीं कि मैं भी बाबा से तुम्हारे साथ-साथ दीक्षा लूँगी। माता का यह निश्चय सुनकर मेरे पिताजी के हर्ष का ठिकाना न रहा और इस प्रकार पुरी आश्रम में उचित मुहूर्त्त में दोनों की ही सानन्द दीक्षा सम्पन्न हुई।

■

गुरुभाइ श्री मोहिनीमोहन सान्याल, अवकाशप्राप्त डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट के पुलिस-जीवन की कुछ घटनाओं के संस्मरण

गुरुदेव की कृपा से नौकरी में पदोन्नति

योगिराज श्री विशुद्धानन्दजी ने अक्टूबर १६३५ में लक्ष्मीपूजा के दिन मुझे दीक्षा दी। दीक्षा के उपरान्त मुझे बताया कि शीघ्र ही तुम्हारा मृत्यु-योग था किन्तु अब वह टल गया।

सन् १६३५ में दीक्षा के समय मैं मिदनापुर का पुलिस इन्स्पेक्टर (थानेदार) था। वहाँ की राजनीतिक स्थिति उस समय बड़ी भयंकर थी और क्रान्तिकारियों का उपद्रव चरम सीमा पर था। लगातार चौथे अंग्रेज कलक्टर को जान से मार डालने का षड्यन्त्र रचा जा चुका था। उस समय गुरुदेव की कृपा तथा सहायता का अनुभव मुझे पग-पग पर हुआ जिसके कारण मैं उस षड्यन्त्र का भण्डा फोड़ने में सफल हुआ। इसके पारितोषिक के रूप में मुझे King's police medal मिला तथा पदोन्नति द्वारा मैं डिप्टी-सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस बना दिया गया।

तिरोधान के आठ वर्ष बाद स्थूल रूप में गुरु-दर्शन

सितम्बर सन् १६४५ के पहले सप्ताह में मैं अपने स्नान-गृह में फिसल गया जिससे मेरी जाँघ की तथा उर्विका (thigh and femur bones) हड्डियाँ दोनों ही टूट गईं। गिरते समय मुझे स्पष्ट आभास हुआ कि श्रीबाबा ने अपने कोमल कर-कमलों से जैसे मेरे सिर को थाम लिया हो अन्यथा फर्श पर टकराने से मेरे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो गये होते। इस प्रकार बाबा ने मेरी प्राण-रक्षा की, और मुझे बाबा के दीक्षा के बाद मृत्यु-योग सम्बन्धी कहे वचन याद आए।

चिकित्सा के लिए मुझे बैरकपुर मिलिटरी अस्पताल में भरती कर दिया गया। पहले ही सप्ताह में मेरे तीन एक्सरे (X-ray) हुए। तत्पश्चात् डॉक्टरों ने निश्चित रूप से घोषित कर दिया कि मैं अब जीवनभर चल न सकूँगा। पीड़ा असहनीय होती थी जिसके कारण मैंने कई बार आत्महत्या करने तक की ठान ली। परन्तु एक सप्ताह के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपरान्त जब मैं एक दिन रो-रोकर अपनी व्यथा अपने गुरु को सुनाकर उनसे सहायता माँग रहा था और मूसलाधार वर्षा हो रही थी तथा बिजली चमक रही थी उसी समय श्रीबाबा पंजाबी कुर्ता और धोती पहने हुए मेरे सामने, अस्पताल के कमरे में, स्थूल रूप में प्रकट हो गये तथा सारे अस्पताल का वार्ड रोशनी से जगमगा उठा। बाबा ने मुझसे पूछा—अरे क्यों रो रहे हो ? और साथ ही साथ अपना कोमल वरदहस्त मेरी टूटी हड्डियों पर फेरा। हाथ फेरते ही मेरी सारी पीड़ा तुरन्त दूर हो गई। क्षणभर में ही यह सब हो गया और श्रीबाबा फिर से अदृश्य हो गये। तब मुझे निद्रा आ गई और सबेरे उठने पर मुझे कहीं पीड़ा न थी तथा मैं आप ही बिना किसी सहायता के पलंग पर बैठ गया। पास के रोगियों ने बताया कि उन लोगों ने भी रात को एक मधुर सुगन्ध पाई थी जो बाबा के आगमन को सदा सूचित करती है।

काशी आश्रम में रहने का आदेश

जनवरी सन् १९४५ में चाकरी से अवकाशप्राप्ति के पश्चात् मेरी साधना में कुछ व्यवधान उपस्थित हो गये जिनको दूर करने में मैं असमर्थ रहा। अतः अक्टूबर सन् १९५८ में, मैंने सिद्ध पुरुष श्री सीताराम ओंकारनाथजी से इस विषय में परामर्श लेने के विचार से कलकत्ता से मोगरा, जिला हुगली में उनके आश्रम गया। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मैं श्री विशुद्धानन्दजी महाराज का शिष्य हूँ तो वे बोले ''तुम गुरुदत्त मन्त्र का यथाविधि जाप करते चलो, श्री विशुद्धानन्दजी स्वयं ही तुम्हारा मार्ग-दर्शन करेंगे और तुम्हारे सारे संशय दूर कर देंगे।''

दीक्षा के समय ही गुरुदेव श्री विशुद्धानन्दजी शिष्यों को स्पष्ट आदेश दे देते थे कि 'क्रिया' के विषय में उनको छोड़ और किसी से कभी भी मन्त्रणा नहीं करनी है। इस आज्ञा के उपर्युक्त प्रकार से उल्लंघन करने के कारण ही, श्री सीताराम ओंकारनाथजी के मोगरा आश्रम से लौटने पर दिसम्बर मास में, मैं चौदह दिन के लिए पैरा-टाइफॉइड ज्वर से आक्रान्त रहा। तत्पश्चात् कुछ समय बाद मुझे स्वप्न में गुरुदेव से ताड़ना मिली कि ज्वर तो आज्ञा-उल्लंघन का दण्ड था, तथा आदेश मिला कि मुझे पत्नी सहित काशी आश्रम में जाकर वास करना चाहिए और मेरी स्त्री लाल किनारे की केवल दो साड़ी लेकर जाय अधिक नहीं, तथा आभूषण कोई साथ न ले जाय।

तदनुसार जुलाई १९५९ में हम दोनों कलकत्ता से काशी आ गये किन्तु आश्रम में स्थानाभाव के कारण हम लोगों को गणेश मुहल्ले में ठहरना पड़ा। यथापि आश्रम-स्थित श्री नवमुण्डी सिद्धासन पर जप करते समय मेरे साधना-सम्बन्धी सारे संशयों का स्वतः ही समाधान हो गया। दिसम्बर १९६२ में मुझे आश्रम में रहने को स्थान मिल गया।

सन् १९६२ में हम दोनों अपने सबसे छोटे पुत्र के विवाह में सम्मिलित होने काशी से कलकत्ता आये। विवाह के पश्चात् जनवरी सन् १९६३ में हम दोनों काशी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्रम में लौट आये किन्तु बिना मुझे बताये तथा गुरुदेव के आदेश के विरुद्ध मेरी पत्नी शादी में पहनने को निकाले हुए अपने आभूषण साथ ले आई थी। काशी पहुँचने के तीन दिन के भीतर ही आश्रम में हमारे कमरे से उसके आभूषण चोरी हो गये।

उपर्युक्त घटना पढ़ने के पश्चात् भी, हे प्रिय पाठकों! क्या आपको इस कथन में कुछ भी सन्देह रह जाता है कि सद्गुरु शरीर रहते तो शिष्यों का मार्ग-दर्शन करते ही हैं, तिरोधान के बाद भी (गुरुदेव का तिरोधान हुआ सन् १९३७ के जुलाई मास में और उपर्युक्त घटना है सन् १९५८ से १९६३ के बीच की) वे पूर्ववत् ही उनकी देखभाल तथा मार्ग-निर्देशन में तत्पर रहते हैं।

पार्वती-मन्दिर-पूजा की घटना

दिसम्बर सन् १९५८ में कलकत्ता में पैरा-टाइफॉइड के ज्वर से मैं बड़ा दुर्वल हो गया था। अतः दुर्बलता से त्राण पाने के लिए मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र डॉक्टर गौरीमोहन सान्याल के पास जो कि ऑर्डिनेन्स फैक्टरी अस्पताल, किरकी (पूना) में मेडिकल ऑफिसर थे—वायु-परिवर्तन के लिए १८ मार्च १९५९ को कलकत्ता से चलकर किरकी पहुँचा ।

वहाँ एक दिन जब मैं सबेरे का आह्निक करके पूजाघर से बाहर निकला तो देखता क्या हूँ कि मेरा छह साल का पौत्र, सुरित मोहन, अपने द्वारा ही मृत्तिका से गढ़े हुए 'पार्वती-मन्दिर में श्री दुर्गाजी की मूर्ति' की पूजा कर रहा है । श्लोकों के शुद्धोच्चारण सहित विधिवत् पूजा करते देख मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा । स्वाभाविक ही मैंने सुरित मोहन से पूछा कि—'यह श्लोक तथा पूजाविधि तुमने किससे सीखी है ?'

बालोचित निष्कपट सरलता से बालक ने चकित होकर उत्तर दिया—"अरे दादू! आपको यह भी नहीं मालूम ? दादा नारायण ने (उसने गुरुदेव श्री विशुद्धानन्दजी के दीवार पर टँगे चित्र की ओर अपनी अँगुली से संकेत किया) स्वयं मुझे श्लोक तथा पूजा-विधि सिखाई है।"

ऐसी है दयालु गुरु की कृपा कि वे हमारे पुत्र-पौत्रों तक का सन्मार्ग-निर्देशन करते रहते हैं।

जब मैंने पूछा कि—"यह मन्दिर कौन-सा है ?"

वह बोला—"यह पूना के पास पार्वती-मन्दिर है।" तब मेरे मन में भी पूना के पार्वती-मन्दिर में जाकर देवी की आराधना की प्रबल प्रेरणा हुई। अतः २३ अप्रैल १९५९ को हम लोगों ने अपनी मोटर से पूना के लिए प्रस्थान किया। किन्तु सोलह किलोमीटर चलने के बाद जब पूना केवल तीन किलोमीटर रह गया था हमारी गाड़ी ने जवाब दे दिया। अतः गाड़ी की मरम्मत के बाद हम लोग फिर चले, पर मन्दिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पहाड़ी के नीचे पहुँचते-पहुँचते सन्ध्या हो गई । मन्दिर पहुँचने के लिए अभी १४०० फुट की सीढ़ियाँ चढ़नी बाकी थीं । खैर, हिम्मत करके धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ना आरम्भ किया परन्तु मैं दुर्बलता के कारण बहुत थक गया तथा आधी सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद मुझे वहीं दिल का दौरा (heart-attack) पड़ गया । मैं वहीं रुककर बैठ गया जबकि और सब लोग, जिन्हें मेरी दशा का पता तक न लगा, ऊपर चढ़ते गये । कुछ ही मिनटों में, एक सौम्य मूर्ति, लहराती दाढ़ी तथा द्युतिमान् चक्षु और तेजस्वी आकृति के साधु अचानक पथ के किनारे प्रकट हुए और बोले—"अच्छा, तुम श्रीमद् विशुद्धानन्दजी के शिष्य हो । वे मेरे गुरुभाई हैं । तुम अत्यन्त क्लान्त दीख पड़ते हो । आओ, कुछ क्षण मेरे पास बैठकर सुस्ता लो, अभी ठीक हो जाओगे।" यह कहते-कहते वे अपने कोमल हाथों से मेरे सिर, हृदय तथा शरीर को धीरे-धीरे सहलाने लगे । उनका स्पर्श मुझे अत्यन्त ही शीतल, सुखद और स्फूर्तिदायक लगा और तनिक देर बाद ही मैंने अपने को फिर से स्वस्थ अनुभव किया तथा आँखें मूँदकर चैन की साँस ली ।

अँधेरा बराबर बढ़ता जा रहा था अतः मैंने साधु बाबा को चमत्कारिक ढंग से अति अल्प समय में मेरी सारी व्यथा दूर करके मुझे-पूर्णरूपेण स्वस्थ कर देने के लिए अनेकानेक धन्यवाद देकर उनसे सादर विदा ली और सीढ़ियों पर चढ़ना आरम्भ कर दिया ।

जब तक हम पार्वती पहुँचे, सायं आरती होने के उपरान्त नियमानुसार मन्दिर के क़पाट बन्द हो चुके थे । मेरी दुःखद कहानी सुनकर अनेक अनुनय-विनय के पश्चात् पुजारीजी ने तरस खाकर मन्दिर के कपाट फिर से खोलकर पार्वतीजी के दर्शनों का सौभाग्य हम सबको देकर धन्य किया, जो कुछ और अनुभव मुझे हुए उन्हें यहाँ प्रकट करना उचित न होगा । यह मन्दिर वैसा ही था जैसा मेरे पौत्र सुरित मोहन ने मृत्तिका से किरकी में बनाकर उसमें पार्वतीजी की पूजा की थी । लौटते हुए हम लोग रास्तेभर साधु बाबा को खोजते हुए आये पर वे दिखाई नहीं पड़े ।

गुरुदेव द्वारा प्रत्यक्ष रूप से खीर-भोग ग्रहण करना

१० जून १९५९ को मेरे पौत्र सुरित मोहन ने आग्रह किया कि आज वह श्री गुरुदेव तथा शिव ठाकुर को खीर-भोग अर्पण करेगा । अतः ११ बजे प्रातः पूजाघर के कपाट बन्द करके उसने भोग अर्पण किया । कुछ समय के उपरान्त उसने कपाट खोल दिये और हम सबको बुलाकर दिखाया कि गुरुदेव तथा शिवजी सारी खीर का भोग लगा गये । हमने देखा कि खीर के कुछ कण कटोरों के बाहर छिटके पड़े हैं पर कटोरे खाली हैं । उस समय के हमारे मनोभाव का आप ही अनुमान लगाइए । क्या इससे स्पष्ट रूप से यह सिद्ध नहीं होता कि शुद्ध हृदय से अर्पित वस्तु गुरु और देवगण अवश्य ग्रहण करते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिष्यों के बच्चों के प्रति असीम अनुकम्पा

पहली नवम्बर १६५६ को मेरी द्वितीय पुत्र, रेवतीमोहन सान्याल विशाखापट्टनम् में एक फौजदारी के अभियोग (जुर्म) में पुलिस की हिरासत में थाने में बन्द कर दिया गया ।

मेरी स्त्री को उसी दिन महानिशा (आधी रात) में, काशी आश्रम में, जप करते समय पुत्र रेवतीमोहन को विशाखापट्टनम् के कारागार में रोने-बिलखने की आवाज सुनाई पड़ी । वह अत्यन्त अशान्त तथा उद्विग्न हो उठी । तब थोड़े समय के पश्चात् ही उसे गुरुदेव की वाणी सुनाई पड़ी—"मेरे शिष्यों तथा उनके बाल-बच्चों का प्रत्येक घर ही मेरा आश्रम है और वे मेरे ही बच्चों की तरह हैं—शेष सुनाई नहीं पड़ी"—तत्पश्चात् उसे आदेश हुआ कि "एक मास तक प्रतिदिन एक कुमारी को भोजन कराओ और तदुपरान्त तीसवें दिन पूर्णाभिषेक के रूप में २१ कुमारियों को भोजन कराकर, एक-एक साड़ी, एक पान तथा चाँदी की एक-एक चवन्नी दक्षिणा में दो। ऐसा करने पर तुम्हारा पुत्र रेवतीमोहन निर्दोष ठहराकर जेल से छोड़ दिया जायगा।"

फिर चार दिन के पश्चात् महानिशा में जप करते समय उसे सुनाई पड़ा कि तुम्हारा पुत्र रेवतीमोहन जेल से छोड़ दिया गया है, और हुआ भी ऐसा ही।

गुरुदेव की कृपा से वह दुर्गापुर स्टील फैक्टरी में स्टोर-कीपर के पद पर नियुक्त हो गया। यहाँ वह सकुशल चल रहा है और २५ जून १६६८ को 'एसिस्टेन्ट कलक्टर स्टोर्स (फाइनेन्स)' के पद पर पदोन्नति हो गई।

पुत्री का तपेदिक से उद्धार

अप्रैल १६६२ में मेरी सबसे छोटी पुत्री गायत्री देहरादून सिविल अस्पताल में तपेदिक का इलाज करा रही थी। उसे औरों से अलग एक कमरे में रखा गया था, अतः २२ अप्रैल को अकेलेपन के कारण तथा पीड़ा के कारण वह जोर-जोर से रोने लगी।

अकस्मात् श्री गुरुदेव तथा साथ में एक और महात्मा, स्वप्न में उसके सामने उपस्थित हुए और गुरुदेव ने उससे पूछा—'बेटी! रोती क्यों है ?' मेरी पुत्री ने कहा—'देखो बाबा! मुझे तपेदिक (T.B.) हो गई है और इन लोगों ने मुझे सब से अलग एक कमरे में रखा है जिससे मैं बहुत दुःखी हूँ।'

बाबा बोले—"तुमको टी०बी०-वी०बी० कुछ नहीं है। लो यह दो गोली रख लो और तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगी।"

उसने बाबा की दी हुई दोनों गोलियाँ खा लीं। बाबा और उनके साथी साधु दोनों तुरन्त अन्तर्धान हो गए। कुछ एक दिनों में ही मेरी पुत्री गायत्री एकदम स्वस्थ हो गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन् १९६४ में बाबा का न्यूयॉर्क में प्रगट होना

अगस्त सन् १९६३ में मेरी पौत्री चिन्मयी की सगाई श्री चन्द्रकुमार बागची से हो गई। चिन्मयी, मेरे पुत्र राधिकामोहन सान्याल की पुत्री है। राधिकामोहन आज (जुलाई १९६८ में) एण्डरसन् हाउस, कलकत्ता में डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस (ला-सेक्सन) हैं। चन्द्रकुमार बागची अगस्त १९६३ में, मॉण्ट्रियल विश्वविद्यालय, कनाडा में, एसिस्टेन्ट प्रोफेसर ऑफ मेकैनिकल इंजीनियरिंग के पद पर सेवारत थे। वह अगस्त १९६३ में एक महीने की छुट्टी लेकर कनाडा से अपने घर कलकत्ता आये हुए थे।

छुट्टी समाप्त होने पर श्री बागची कनाडा लौट गये। वहाँ एटैमिक एनर्जी कमीशन, न्यूयॉर्क में, इंजीनियर के पद पर उनकी नियुक्ति हो गई। उनके बड़े भाई ने कलकत्ता से उसको न्यूयॉर्क कई पत्र इस आशय के डाले कि वह भारत आकर अपना विवाह कराकर चाहे तो फिर अमेरिका चला जाय। परन्तु उसने एक पत्र का भी उत्तर नहीं दिया और एकदम चुप्पी साध गया, यद्यपि मँगनी उसकी अनुमति से ही हुई थी।

इससे मेरी पौत्री चिन्मयी के हृदय को बड़ी चोट पहुँची। ७ जून १९६४ को वह काशी गुरुदेव के विशुद्धानन्द कानन आश्रम में आई और तीन दिन वहाँ ठहरी। इसी निवासकाल में उसने नवमुण्डी माँ से मानता मानी कि यदि उसका बागची से विवाह हो जाए तो वह 'कुमारी सेवा' करेगी। तथा गुरुदेव के मन्दिर में भी गुरुमूर्ति के समक्ष अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसने गुरुजी से समस्या का समाधान कर देने की आर्त भाव से प्रार्थना की।

और आश्चर्य कि १४ नवम्बर को ही एक अत्यन्त तेजस्वी फहराती दाढ़ी वाले साधु पुरुष प्रातः साढ़े तीन बजे, न्यूयॉर्क में, बागची के सामने स्वप्न में प्रकट हुए और बड़े ही धीरे से अत्यन्त स्नेहमयी वाणी में बागची को आदेश दिया कि तुम तुरन्त भारत के लिए प्रस्थान करो और वहाँ जाकर चिन्मयी से विवाह कर लो।

बागची ने कहा—"पर मुझे छुट्टी नहीं मिलेगी।" साधु ने कहा—"अब छुट्टी माँगो-मिल जायगी," और यह कहकर साधु बाबा अन्तर्धान हो गये।

सबेरे जागने पर बागची का ध्यान फिर से स्वप्न पर ही केन्द्रित हो गया। कार्यालय पहुँचते ही उसने छुट्टी का प्रार्थनापत्र दिया, जो आश्चर्यजनक ढंग से तुरन्त ही स्वीकृत हो गया। अब तो उसे रात के स्वप्न पर पूरा विश्वास हो गया और वह न्यूयॉर्क से कलकत्ता, हवाई जहाज से आ गया। यहाँ उसने अपने स्वप्न की कथा जब सुनाई तो गुरुदेव श्री विशुद्धानन्दजी की फोटो उसे दिखाई गई। देखते ही वह तो आनन्द के मारे कूद पड़ा और बोला—इन्हीं साधु बाबा ने तो मुझे न्यूयॉर्क में स्वप्न में दर्शन तथा आदेश दिये थे।

३० अप्रैल १९६४ को यथाविधि बागची और चिन्मयी का विवाह सम्पन्न हुआ तथा ७ सितम्बर १९६४ को यथाविधि कुमारी-सेवा आदि का आयोजन हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सच्ची प्रार्थना का समाधान कैसे होता है, तथा न्यूयॉर्क में बागची के घर का पता बाबा ने कैसे लगाया, तथा भारत से न्यूयॉर्क बाबा किस प्रकार उड़कर गये— ये सारे प्रश्न और घटनाएँ विचारयोग्य हैं। आज के मानव की वृत्ति इतनी संशयात्मक है कि उसकी बुद्धि इन बातों को मानने के लिए तैयार ही नहीं होती जब कि एक श्रद्धावान् को इनकी सत्यता पर विश्वास करने में कोई भी आपत्ति नहीं होती।

■

श्रीमद् विशुद्धानन्द परमहंसजी के विशिष्ट शिष्य श्री जीवनधन गांगुलि तथा उनकी धर्मपत्नी सुरमा देवी आदि के जीवन में घटे कतिपय संस्मरण जो उनके सुपुत्र तथा बाबा के शिष्य श्री ज्योतिर्मय गांगुलि, ८६, महेश मुखर्जी रोड, बेलघरिया, कलकत्ता-७०००५६ ने लेखक को शिवरात्रि के उत्सव के समय दिनांक १६. ४. ७८ को विशुद्धानन्द कानन आश्रम, काशी में सुनाये थे।

मुजफ्फरपुर (बिहार) के रहने वाले हमारे गुरुभाई श्री विनोदचन्द्र राय का कलकत्ता में मोतिया का ऑपरेशन अस्पताल में हुआ। ऑपरेशन के सात दिन उपरान्त शाम को साढ़े-सात बजे हम लोग उन्हें अपने घर बेलघरिया ले आए। मेरी माता उन्हें चाय, नाश्ता पानी दे ही रही थीं कि अकस्मात् उनके पेट का ग्रहणी फोड़ा (Duodenal ulcer) फट गया और माँ को रक्त की दो बाल्टीभर उलटी हुई। हम लोग मोटर में माँ को लेकर तुरन्त आर०जी०कार० मेडिकल कॉलेज गए और डॉक्टर रवीन्द्रनाथ चटर्जी को दिखाकर, सेवा-सुश्रूषा की सुविधा घर में अधिक देख, माँ को घर ले आये। यहाँ उसको ५३ बोतल ग्लूकोज, सैलाइन तथा १६ बोतल रक्त चढ़ाया गया। रात के साढ़े-ग्यारह बजे डॉक्टरों ने माँ को मृतक घोषित कर दिया और गीता का पाठ आरम्भ हो गया। मेरे पिताजी आये—उन्होंने कुछ देर तक इष्ट मन्त्र का जाप करके गुरुदेव के श्रीचरणों का ध्यान करके माँ के मुख में गंगाजल डाला और तदुपरान्त सारे आत्मीयों ने भी वैसा ही किया। खबर फैलते ही घर में कोहराम मच गया। माँ को सूर्योदय से पहले ही श्मशान ले जाने की तैयारी होने लगी। रात के दो बजे थे जब अचानक मेरे (ज्योतिर्मय दादा के) दामाद डॉ० भूधर बनर्जी ने माँ के शरीर में कुछ हलचल देखी। थोड़ी देर बाद नब्ज लौट आई, यद्यपि वह अब तक होश में नहीं आयी थी। मैंने पूजाघर में जाकर श्री बाबा से आर्त्तभाव से प्रार्थना की कि वे मेरी माता को प्राय: दो वर्ष का जीवनदान और दें जिससे वे अपनी मातृहीन पौत्री माला की, जिसको मेरी माता ने ही पाल-पोस कर बड़ा किया था, विवाह देख सकें।

मेरे कान में शब्द सुनाई पड़े—"अच्छा! ऐसा ही होगा—कुमारी माँ नीचे खड़ी हैं, उनकी सेवा करो।"

मैं तुरन्त पूजा के आसन से उठ नीचे भागा और जाकर पूछा कि क्या कोई कुमारी आई थी? पता लगा कि दिखी तो थीं पर वह अभी-अभी लौट गईं। मैं तुरन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाग कर अगले आँगन में गया और उन्हें पा उनसे कातर प्रार्थना की कि मेरी माता को बचा लीजिए। वे बोलीं–'इसीलिए तो मैं आयी हूँ।' तब उनको आसन पर बैठाकर हम लोगों ने यथाविधि राजभोग (मिठाई) से उनकी सेवाकर, दक्षिणा दी तथा सादर प्रणाम किया। उसी समय मेरी माता ने आँखें खोलीं और कहा—"मुझे थोड़ा 'कुमारी-प्रसाद' दो।" किन्तु राजभोग तो कुमारी माँ एक दम पूरा खा गई थीं, अतः हमने पत्तल पर से उसका रसा अँगुली से उठा माँ को चटा भर दिया और कुमारी माँ को माँ की बगल में खड़ा करके उनकी चरण-धूलि माँ के माथे पर लगा दी। उसी समय से माँ स्वस्थ होने लगीं। वह आज नवम्बर १९८२ तक जीवित हैं और इस बीच उन्होंने अपनी दो पौत्रियों तथा एक पौत्र का विवाह सम्पन्न कर दिया है।

■

सन् १९६२ के दुर्गापूजा-उत्सव के समय श्री विशुद्धानन्द कानन आश्रम, मलदहिया, वाराणसी-२ में घटी कुछ घटनाएँ।

[१]

श्री नवमुण्डी माँ की पूजा करने वाले वयोवृद्ध पुजारी नरेन पण्डित का दुर्गापूजा, नवरात्र से पहले ही देहावसान हो गया। अतः पुरोहित-कर्म से भली-भाँति अवगत, अपने पिताजी के बहनोई पण्डित सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को दुर्गापूजा-उत्सव के समय पूजा सम्पन्न करने के लिए मैं (ज्योतिर्मय गांगुलि) कलकत्ता से साथ ले आया था।

एक दिन प्रांतः तीन बजे जब स्नान से पूर्व पण्डित महाशय शरीर पर तैल-मर्दन कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि "श्रीबाबा विज्ञान मन्दिर से निकलकर पण्डित महाशय के कमरे की ओर आ रहे हैं। उनका मुख-मण्डल दीप्तिमान् है। उन्होंने बनर्जी महाशय की ओर अनुमति अनुरूप सिर डुलाया और तत्पश्चात् खिड़की के सीखचों में से होकर अपने विग्रह-मन्दिर (गुरु-मन्दिर) में स्थित संगमर्मर मूर्ति के भीतर प्रवेश कर गए। बनर्जी महाशय तो यह देख अवाक् रह गये, यद्यपि अनेक शिष्यों ने इस प्रकार की घटना कई बार पहले भी देखी थी।

[२]

षष्ठी के दिन मैंने (ज्योतिर्मय ने), 'बड़ी माँ' के भतीजे 'बिनी' को महानवमी के दिन कुमारी-भोजन के हेतु पुलाव पकाने के लिए घी खरीदकर लाने के लिए अस्सी रुपये दिये थे। रात को जब मैं हिसाब मिलाने बैठा तो मुझे इन रुपयों के देने की याद ही नहीं रही। अतः हिसाब मिले तो कैसे मिले। इसी उधेड़-बुन में मुझे सबेरे के दो बज गए। अन्त में तंग आकर तथा थककर मैंने हिसाब का खाता विज्ञान-मन्दिर में बाबा के बड़े चित्र के चरणों पर पटक दिया और अत्यन्त दुःखी होकर उनसे बोला—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"मैंने तो रुपया चुराया नहीं—फिर वह गया कहाँ और हिसाब क्यों नहीं मिलता ? सब लोग तो पड़े-पड़े नींद के खर्राटे ले रहे हैं और मैं यहाँ बैठा-बैठा हिसाब मिला रहा हूँ। मैं जी-जान से तो लगा हूँ फिर आप मुझे क्यों इतना सता रहे हैं ? इससे अधिक अब मेरे बस का नहीं है। कल से मैं अब कुछ नहीं करूँगा—यह पड़े तुम्हारे खाते।"

ऐसा कहकर मैं विज्ञान-मन्दिर से बाहर निकला और दरवाजे में ताला लगाकर जैसे ही तीनों सीढ़ियों से नीचे उतरा तो मेरे कानों में स्पष्ट शब्द सुनाई पड़े—"तुमने घी के लिए अस्सी रुपये दिये थे।"

ओह! मैंने तुरन्त दरवाजा खोला और बाबा के चित्र के आगे साष्टांग प्रणाम करके बाबा से अपने बालोचित दुर्व्यवहार के लिए क्षमा-याचना की तथा हिसाब मिलाकर निश्चिन्त होकर सुख तथा सन्तोष की नींद सोया।

[३]

इस साल १९९२ में दुर्गापूजा के उत्सव पर मैं अपनी पत्नी तथा पुत्री बेला के साथ अपने रसोइये राम ठाकुर रामचन्द्रदास को भी साथ में ले आया था। एक दिन विज्ञान-मन्दिर में बैठकर काम करते-करते मुझे रात को दस बज गये तो मेरी स्त्री ने रसोइये को मुझे खाने के लिए बुलाने भेजा। विज्ञान-मन्दिर के पास स्नान-गृह तक पहुँचने पर राम ठाकुर ने श्री बाबा को विज्ञान-मन्दिर से निकलकर धर्मशाला की ओर आते देखा और साथ ही तीव्र सुगन्ध भी अनुभव की। अतः वह भागकर धर्मशाला से बाबा के दर्शन के लिए मेरी स्त्री तथा पुत्री बेला को बुलाने दौड़ी। उन दोनों ने भी स्पष्ट रूप से श्री बाबा की सुगन्ध का अनुभव किया यद्यपि वे लोग बाबा के दर्शन तो नहीं कर पायीं। यद्यपि बाबा ने जुलाई सन् १९३७ में ही यह पार्थिव शरीर त्याग दिया था तथापि उनके दर्शन, शिष्यों तथा उनके परिवार और भक्तों को, यदा-कदा अब भी होते रहते हैं।

■

एक और विशेष घटना

यह घटना है सन् १९७२-७३ की। मेरे पिता श्री जीवनधन गांगुलि हृदय-रोग से आक्रान्त हो गए थे जिसके कारण उस दिन उनकी बेचैनी विशेष रूप से बढ़ गई थी। अतः सारे घरभर के आत्मीय (पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्री, स्त्री आदि) उनकी आराम-कुर्सी के पास इकट्ठे हो गए थे। प्रायः साढ़े-बारह बजे दोपहर को बड़े जोर का प्रमस्तिष्कीय दौरा (Cerebral Stroke) पड़ा और वे मेरी पुत्री अर्थात् अपनी सबसे छोटी पौत्री बेला की बाहों पर लुढ़क गए। मैं, मेरा पुत्र सदानन्द तथा मेरी सबसे बड़ी पुत्री इला (अब इला बनर्जी) उस समय भोजन कर रहे थे। मेरा भतीजा सत्यानन्द उसी समय स्नान करके पिताजी के कमरे के सामने से जब निकला तो बेला ने संकेत करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यानन्द को बुलाकर मुझे तुरन्त भेजने को कहा क्योंकि ठाकुर दा (बाबाजी) की जीवन-शक्ति जवाब दे रही है। हम लोग बिना हाथ-मुँह धोये ही दौड़ पड़े और पिताजी की बेहाली देखकर तुरन्त हाथ धो उनके मुख में गंगाजल तथा कालीमाई का चरणामृत डाला एवं गुरुजी का तथा इष्ट देवता का नाम-जप शुरू कर दिया तथा डॉक्टर को बुला भेजा। चार डॉक्टर तुरन्त आ पहुँचे परन्तु सब अपने को निरुपाय पा रहे थे। उनकी समझ काम नहीं दे रही थी कि क्या करें अतः उन्होंने तुरन्त अपने सीनियर डॉ० रवीन्द्रनाथ चैटर्जी, हृदय-रोग विशेषज्ञ को आर० जी० कार अस्पताल में रोगी की संकटकालीन अवस्था से टेलीफोन पर अवगत कराया। उन्होंने टेलीफोन पर ही उपचार बताकर कहा कि मैं तुरन्त आ रहा हूँ।

१७ मिनट की बेहोशी के बाद अकस्मात् पिताजी के मुख से झाग सहित श्वास निकला और वे तनिक हिले। डॉक्टरों ने तुरन्त ही उन्हें आराम-कुर्सी से हटा चारपाई पर लिटाकर कृत्रिम-श्वसन (Artificial respiration) तथा कोरामिन का इन्जेक्शन दिया। तब पिताजी में श्वास-प्रश्वास की क्रिया सामान्य रूप से प्रारम्भ हो गयी और वे बोले—"हे प्रभु! मैं कहा हूँ ? प्रिय सदानन्द, तुम कहाँ हो ? तुम्हें मालूम है कि मैं इतनी देर कहाँ गया था ?"

अश्रुपात करके-करते वे बोले—"गुरुदेव तो मुझे ज्ञानगंज ले गये थे परन्तु अन्य वयोवृद्ध गुरुजनों से परामर्श के पश्चात् सब इस निश्चय पर पहुँचे कि मेरा कर्मभोग अभी कुछ और भोगना शेष है, अतः मुझे कुछ और काल तक पृथ्वी पर रहना होगा। इसी कारण मैं इस शरीर में पुनः जीवित हो गया हूँ।"

तत्पश्चात् वह फिर एक घण्टे के लिए अचेतन रहने के पश्चात्, पूरी तरह चैतन्य हुए। आज अप्रैल १९८१ को भी (आठ वर्ष बाद तक) वे जीवित हैं। उनका देहावसान बाद में हुआ।

■

श्रीगिरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय (जंगमबाड़ी, काशी) की गम्भीर टाइफॉइड ज्वर से रक्षा

सन् १९२१ के आश्विन मास में शारदीय पूजा के अवसर पर मैं श्री विशुद्धानन्द परमहंस से दीक्षा लेने के उद्देश्य से पुरी से चल काशी आ गया था। किन्तु दुर्भाग्यवश अपने इकलौते पुत्र के टाइफॉइड ज्वर से आक्रान्त हो जाने के कारण दीक्षा लेने के लिए निश्चित दिन आश्रम में उपस्थित नहीं हो सका। दीक्षा के निर्दिष्ट दिवस के दो दिन बाद मैं गुरुदेव के दर्शन हेतु आश्रम में उपस्थित हुआ।

गुरुदेव बोले—"हे गो! यह दो-तीन दिन तुम कहाँ रहे ?"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने कहा—"बाबा, पुत्र के ज्वर से आक्रान्त हो जाने के कारण मैं आ नहीं सका।"

बाबा बोले—"कोई भय नहीं, वह अच्छा हो जायगा।"

परन्तु मेरे पुत्र की दशा धीरे-धीरे और बिगड़ती चली गई और हम लोग उसके जीवन से निराश होने लगे किन्तु मुझे योगी गुरु के शब्दों पर पूरा विश्वास था और मेरा मन यह मानने को प्रस्तुत न था कि मेरा बेटा अच्छा नहीं होगा! तत्पश्चात् अचानक एक दिन दशाश्वमेध घाट पर बाबा से मेरा साक्षात्कार हो गया और बाबा ने स्वयं ही प्रश्न किया कि तुम्हारे पुत्र की अवस्था अब कैसी है ? हाल जानने पर उन्होंने सुझाव दिया कि तुम अपने पुत्र की चिकित्सा प्रसिद्ध वैद्य श्री वसन्त भट्टाचार्य से कराओ। मैंने ऐसा ही किया और मेरे पुत्र का ज्वर टूट गया तथा पाँच दिन के बाद उसने अन्न भी ग्रहण किया। बीमारी के कारण मेरा पुत्र अति दुर्बल हो गया था और बिना सहारे के अपने आप उठकर बैठ जाने में भी असमर्थ था। अतः मेरी स्त्री ने इच्छा प्रकट की कि पुत्र को लेकर हम लोग हनुमान (अवधगर्बी) आश्रम में जाकर श्री गुरुदेव के दर्शन करें। उसकी इच्छा मैंने बाबा के निकट प्रकट की तो उन्होंने तुरन्त ही मुझे उसको पुत्र सहित लाने की आज्ञा दी। उनके आश्रम में लाने पर बाबा ने आदेश दिया कि पुत्र को मेरे पूजा-गृह में मेरे आह्निक स्थान पर लिटा दो। पन्द्रह मिनट बाद गुरुदेव ने भी पूजा-गृह में प्रवेश करके मेरे पुत्र से स्वयं पूछा—"अब कैसे हो ?"

उसने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"मेरा ज्वर तो उतर गया है पर मुझे कमजोरी बेहद है।"

इस पर बाबा ने स्वयं अपने हाथ के सहारे उसको उठाया और अँगुली पकड़ाकर पूजा-कमरे में टहलाया। तदुपरान्त उसको पूजाघर से बाहर लाकर हम लोगों के सुपुर्द कर दिया और कहा कि यह अपने आप निःसंकोच फाल्गुन की सप्तमी अथवा अष्टमी से बिना मदद के चलने-फिरने लगेगा। हुआ भी ऐसा ही। पुत्र के स्वस्थ होते ही मेरी दीक्षा हुई।

इस प्रकार दयालु गुरु ने कृपा करके मेरे पुत्र की जीवन-रक्षा की।

कन्या के लिए वर

सन् १९२५ में, मैं सपरिवार अपनी कन्या के लिए वर ढूँढने कलकत्ता गया था। गुरुदेव उस समय कलकत्ता में ही अवस्थित थे। अतः मैं ७, कुण्डू रोड, भवानीपुर, विशुद्धाश्रम में सपरिवार उनके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। मुझे देखते ही, मेरे कुछ कहने के पूर्व ही बाबा बोले—"क्यों जी! तुम अपनी कन्या के लिए वर देखने आये हो ? ठीक है, देखो, तुम्हारी कन्या को अच्छा वर प्राप्त होगा पर अच्छे संस्कार वाले कुटुम्ब का पढ़ा-लिखा वर ढूँढ़ना जो दहेज न चाहते हों।" ऐसा वर बारानगर में मिला। बाबा को अवगत कराया तो वे बोले—"वर ठीक है और उसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विवाह हो गया। तत्पश्चात् वर ने अंग्रेजी भाषा में एम०ए० किया और इम्पीरियल बैंक में अच्छे पद पर नौकरी लग गई। तदनन्तर वह लण्डन कॉमर्शियल इन्स्टीच्यूट का सदस्य हो गया तथा बैंकिंग की अनेक परीक्षाएँ पास करने पर बैंक में बड़े ऊँचे पद पर पहुँच गया।

डॉ० नृपेन्द्रमोहन मुखर्जी (पुरुलिया, बिहार) की बेरी-बेरी रोग से मुक्ति

सन् १९३६ में मैं बेरी-बेरी रोग से आक्रान्त हो गया। अनेक चिकित्सा करने पर भी रोग ने पीछा नहीं छोड़ा। अन्तंत: दशा इतनी बिगड़ गई कि मुझे लगने लगा जैसे हर श्वास ही अन्तिम हो और श्वास लेने में मुझे अतिशय कठिनाई होने लगी।

गुरुदेव श्री विशुद्धानन्दजी उस समय काशी में थे। मेरी माता ने, मेरी बेहाली देखकर अपना हाथ मेरे माथे पर रखकर गुरु नाम—विशुद्धानन्द! विशुद्धानन्द! का नाम-जप आरम्भ कर दिया। तुरन्त ही मुझे शान्ति का अनुभव हुआ तथा मेरे श्वास की गति भी सामान्य हो गई। तदुपरान्त मैं धीरे-धीरे बेरी-बेरी रोग से मुक्त हो गया। तत्पश्चात् मेरी माता मुझे, मेरे भाई तथा मेरी स्त्री को साथ ले गुरुदेव के दर्शनार्थ काशी पधारीं। उस समय श्रीबाबा अनेक शिष्यों के बीच बैठे आश्रम के विज्ञान-मन्दिर के एक तल्ले पर प्रवचन कर रहे थे। हम लोगों के रोग के विषय में कुछ कहने से पहले ही श्रीबाबा ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा—"जगदम्बा ने नृपेन्द्र को मृत्यु के पंजे से बचा लिया।" और एक प्रकार से हमारी धारणा की पुष्टि की कि मेरी माँ की आर्त्त पुकार उन तक पहुँचते ही उन्होंने मेरी रोग से रक्षा की।

श्री प्रियानाथ दे, एम०ए०, बी०एल०, इन्स्पेक्टर ऑफ पुलिस, बर्दवान सदर सरकिल।

काले नाग द्वारा काटे जाने से कैसे रक्षा हुई

बर्दवान सदर थाने का कार्यभार सँभालने के उपरान्त मैं अपने पहले दौरे पर गालशी थाने का निरीक्षण करने चला। उस दिन जोर से वर्षा होने लगी और आधे रास्ते पहुँचते-पहुँचते अँधेरा-सा छा गया। मेरे साथ पाँच सिपाही थे। उनमें से दो के पास लालटेनें थीं। हम लोग दामोदर नदी के बाँध के ऊपर-ऊपर चल रहे थे।

एक स्थान पर हमें एक छोटा-सा नाला पार करना पड़ा और जैसे ही मैंने एक पैर नाले में रखा तो एकदम जोर से 'हिस्स' का शब्द सुनाई पड़ा और लगा कि मेरा पैर एक साँप पर पड़ गया जिसका फण जोर से मेरे पैर पर लगा, पर विषदन्त घुसने से मैं बाल-बाल बच गया। साँप उछलकर नाले में कूद गया और मेरे लालटेन लिये हुए सिपाही ने देखा कि वह ५-६ फुट लम्बा नाग था।

खैर, हम लोग गालशी थाने पहुँचे गये और निरीक्षण करके तीसरे दिन लौटकर बर्दवान सदर थाने में आ पहुँचे। सायंकाल जब मैं बाबा के दर्शनार्थ बर्दवान विशुद्धाश्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहुँचा तो मेरे कुछ कहने के पूर्व ही बाबा बोले—"हे! सो तुम नाग द्वारा काटे जाने से बच गए। यदि नाग कहीं तुम्हें काट लेता तो मुझे बड़ी यन्त्रणा भोगनी पड़ती।"

गम्भीर चोट से रक्षा

जब मैं बशीरहाट (बंगाल) में डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस था, उस समय मैं तथा मेरा सरकिल इन्स्पेक्टर हम दोनों साइकिलों पर सरूपसागर थाने से खेतों-खेत, निरीक्षण के लिए जा रहे थे कि अकस्मात् एक गाय ने जाने किधर से आकर मेरी साइकिल में टक्कर मारी। पास की एक गहरी खाई में गिरते समय मेरे मुख से गुरु का नाम संयोगवश निकला और साथ-ही-साथ लगा जैसे एक अदृश्य हाथ ने मुझे थामकर उस खाई की तह में आराम से बिठा दिया। इन्स्पेक्टर ने आकर तुरन्त मुझे खाई से बाहर निकाला और घबराकर पूछा—'साहब! कहीं चोट तो नहीं आई ?" मैंने कहा—"नहीं। मुझे तो पता भी नहीं चला।"

जहाँ सब हड्डी-पसली टूट जाने का संयोग था वहाँ गुरु की कृपा से मेरा बाल भी बाँका नहीं हुआ।

प्रियानाथ दे की मोटर-दुर्घटना से रक्षा

मैं उस समय अलीपुर, चौबीस परगना, बंगाल में कोर्ट इन्स्पेक्टर था। एक दिन सदर के सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट साहब सदर सब-डिवीजनल ऑफिसर के साथ फौजदारी के एक मुकदमे की जाँच के लिए मुफस्सिल जा रहे थे। मैं भी उनकी मोटर में साथ ही था।

शाम को लौटते समय बदरहाट के पास हमारी मोटर एक पुलिया से टकरा गई। गाड़ी की गति तेज थी अतः उसका टायर टक्कर लगने से फट गया और मोटर गाड़ी सीधे ही पास के तालाब की दिशा में डूबने चली। संकट देख मैं आर्त हो गुरु के शरणापन्न हुआ और अप्रत्याशित भाव से जाने किस शक्ति ने गाड़ी को तालाब में गिरने से रोक लिया, अन्यथा भारी चोट ही नहीं, मृत्यु तक की सम्भावना थी। ठीक उसी समय, दूसरी ओर से एक मोटर आई। हमारी विपन्नावस्था देख उसके ड्राइवर ने हमारी गाड़ी की स्टेपनी बदल दी और हम लोग सकुशल अलीपुर पहुँच गये।

लगा कि जैसे सबकुछ ही पूर्व-व्यवस्थित हो। गुरुदेव उन दिनों भवानीपुर (कलकत्ता) आश्रम में ही अवस्थित थे। घर पहुँचने के साथ ही मैं सीधा गुरुदेव को प्रणाम तथा कृतज्ञता अर्पित करने भवानीपुर गया। मेरे कुछ कहने के पूर्व ही बाबा बोले— "हे! तुम्हारी मोटर ने तुम्हें आज बहुत दुःखी किया न ?"

मैंने कहा—"हाँ बाबा! आप की कृपा से ही आज हम लोगों की जीवन-रक्षा हुई ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाबा बोले—"मेरे रहते, गाड़ी के उलट जाने की कोई सम्भावना नहीं थी।"

इस पर सारे गुरुभाइयों ने जिज्ञासा की और मैंने उन्हें घटना का पूरा विवरण सुनाया।

बनारस का मायावी

डॉ०पाल ब्रन्टन विदेशी पत्रकार थे जिन्होंने तिब्बत, भारत, मिस्र आदि देशों की यात्राकर वहाँ के अलौकिक रहस्यों का अध्ययन किया और अनेक ग्रन्थों की रचना की। लेखक की पुस्तक 'ए सर्च इन सिक्रेट इंडिया' से संगृहीत संस्मरण।

दूसरे दिन मैं काशी की सैर करने पैदल ही निकला। उसकी टेढ़ी-मेढ़ी तंग गलियों की खाक छानने में मेरा एक प्रयोजन अवश्य था। मेरी जेब में एक योगी का पता-ठिकाना था जो उनके एक शिष्य ने बम्बई में मुलाकात होने पर मुझे दिया था।

आखिर को मैं एक राजपथ पर एक बड़े मकान के फाटक पर पहुँच गया जिसके एक स्तम्भ में एक छोटे पत्थर पर लिखा था 'विशुद्धानन्द-कानन-आश्रम'। मैंने भीतर प्रवेश किया। एक बड़े कमरे में अच्छी पोशाक पहने हुए कुछ भारतीय व्यक्ति अर्ध-गोलाकार में नीचे फर्श पर बैठे हुए थे तथा सामने एक सोफे पर भूरी दाढ़ी वाले एक महात्मा बैठे थे। उनका आदरणीय तेजोमय चेहरा और उच्च आसन को देखते ही मैंने जान लिया कि जिनकी मैं खोज कर रहा था वे ये ही हैं। मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

मैंने उनको बताया कि मैं एक अंग्रेज पत्रकार भारत का भ्रमण करने आया हूँ क्योंकि मुझे भारतीय दर्शनशास्त्र और योग-मार्गों के अध्ययन करने की बड़ी लालसा है। मैंने उनको सूचित किया कि मेरी उनके एक शिष्य के साथ भेंट हुई थी और उस शिष्य ने ही मुझे उनका पता दिया है।

कुछ देर बाद उन्होंने अपने चेले से बंगला भाषा में कह उसके द्वारा अंग्रेजी में मुझको कहलाया कि—"बिना गवर्नमेन्ट कॉलेज के प्रिंसिपल गोपीनाथ कविराजजी को लाये बातचीत सम्भव नहीं। कविराजजी अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता हैं, साथ ही वे विशुद्धानन्दजी के पुराने शिष्य भी हैं, अतः वे ही द्विभाषी बनने की भूमिका ठीक से निभा सकेंगे। कल उनको साथ ले आइये। चार बजे मैं आप लोगों की राह देखूँगा।"

मैं कॉलेज पहुँचा। लेकिन वहाँ पर कविराजजी नहीं थे। उनके घर का पता लगाने में आध घण्टा और लगा। आखिर को एक पुराने दो मंजिले मकान में वे मुझको मिल गये। पण्डितजी दूसरी मंजिल पर एक कमरे में फर्श पर बैठे थे। चारों ओर ढेर-ढेर किताबें पड़ी हुई थीं तथा कागज, स्याही आदि लेखन-सामग्री भी पास ही रखी थी। चेहरे से उनकी संस्कृति और सभ्यता टपकी पड़ती थी। मैंने अपने आगमन का उद्देश्य उन पर प्रकट कर दिया। पहले तो वे कुछ हिचकिचाये पर फिर कुछ सोचकर वे दूसरे दिन मेरे साथ चलने के लिए राजी हो गये और बात पक्की करके मैं उनसे बिदा हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरे दिन चार बजते-बजते मैं कविराजजी को साथ लेकर स्वामी विशुद्धानन्दजी के यहाँ पहुँचा। उस बड़े कमरे में पाँव रखते ही हमने आचार्य की अभ्यर्थना की। वहाँ पर उस समय और छह शिष्य मौजूद थे। स्वामीजी ने मुझे अपने पास बुलाया और मैं उनकी गद्दी के बहुत निकट बैठ गया।

उनका सबसे पहला प्रश्न यह था—

"मेरी कोई करामात देखना चाहते हो ?"

"जी हाँ, आपकी बड़ी कृपा होगी।"

तब कविराजजी ने अंग्रेजी में कहा—"अपना रूमाल दीजिये, रेशमी हो तो अच्छा हो।"

सौभाग्य से मेरी जेब में रेशमी रूमाल था। उन्होंने एक छोटा आतशी-शीशा (Magnifying Glass) निकाला और कहा—"मैं रूमाल पर सूर्य की किरणों को केन्द्रीभूत करना चाहता हूँ पर सूर्य की इस समय की स्थिति और कमरे की छाया के कारण यह काम अच्छी तरह नहीं किया जा सकेगा। कोई आँगन में जाकर शीशे के द्वारा सूर्य की किरणों को भीतर पहुँचा सके तो सारी कठिनाई दूर होगी। आप जो चाहें वही सुगन्धि पैदा की जा सकती है। कहिये, कौन-सी सुगन्धि चाहिए ?"

"क्या आप बेले की सुगन्धि पैदा कर सकते हैं ?"

आचार्य ने अपने बायें हाथ में रूमाल लिया और उसके ऊपर शीशा रखा। दो क्षण तक सूर्य की किरणें रेशम के रूमाल पर थिरक उठीं। उन्होंने शीशा नीचे रख रूमाल मुझे लौटा दिया, वह बेले की भीनी महक से भरा था।

मैंने रूमाल को बड़े गौर से परखा। कहीं नमी का नाम तक न था। कोई इत्र छिड़का गया हो सो भी बात नहीं थी। मैं हैरान था और स्वामीजी की ओर अधखुली दृष्टि से सन्देह के साथ ताकने लगा। वे फिर से यह करामात दिखाने को तैयार थे।

अब की बार मैंने गुलाब की खुशबू चाही। विशुद्धानन्दजी प्रयोग करने लगे तो मैं उनकी ओर गौर से ताकने लगा। उनके हाथों और पाँवों का हिलना-डुलना, उनके चारों ओर जो कोई चीज धरी थी, एक भी बात मेरी नजरों से नहीं बची। उनके बलिष्ठ बाहु और बेदाग पहनावे की बड़े गौर से मैंने परीक्षा ली लेकिन शंका के लिए कहीं जगह न थी। पहले के समान ही उन्होंने प्रयोग करके गुलाब के मधुर सौरभ से रूमाल का दूसरा किनारा परिमलित कर दिया।

तीसरी बार मैंने बनफशे के फूल की सुगन्धि चाही। अब की बार भी वे अपने प्रयोग में सफल हुए।

विशुद्धानन्दजी अपनी सफलता पर फूले नहीं। वे इन सारी विभूतियों को बिलकुल मामूली ही समझते हैं। उनका गम्भीर मुखमण्डल भावनाओं के उतार-चढ़ाव से कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी प्रभावित नहीं होता।

वे एकबारगी बोल उठे—"अब मैं एक नये फूल की सुगन्ध बनाता हूँ जो फूल तिब्बत में ही मिलता है।"

उन्होंने रूमाल के कोने पर, जो अब तक छुआ नहीं गया था, सूर्य-रश्मि को केन्द्रीभूत किया। एक अजीब परिमल आने लगा जो मेरे लिए एकदम नया था।

कुछ चकित हो मैंने रूमाल जेब में रख लिया। यह सारी घटना करामात मालूम होने लगी। सारे फूलों के इत्र इन्होंने अपने लबादे में तो छिपा नहीं रखे थे ? लेकिन प्रश्न यह था कि कितने प्रकार के इत्र वे छिपाये रख सकते हैं। मेरे पूछने तक वे क्या जानते थे कि मैं कौन-सी सुगन्धि पसन्द करूँगा। इसके अतिरिक्त जादू दिखाते हुए उन्होंने एक बार भी अपने लबादे के अन्दर हाथ नहीं जाने दिया था।

मैंने उनके शीशे की परीक्षा करने की अनुमति माँगी। वह एक मामूली शीशा था। तार के ढाँचे में बँधा था और उसमें तार का दस्ता भी लगा था। सन्देह का कोई स्थान नहीं था।

और भी एक बात थी कि प्रेक्षकों में अकेला मैं ही तो न था। छह-सात लोग उनकी ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। पण्डित कविराजजी ने मुझको इस बात का विश्वास दिलाया कि योगिराज सच्चे, और अत्यन्त उच्च आदर्श और विचार के व्यक्ति हैं।

क्या यह सब सम्मोहन विद्या का एक उदाहरण तो नहीं ? यदि ऐसा हो तो इसकी बड़ी सुलभता से परीक्षा ली जा सकती है। घर लौटने पर अपने साथियों को रूमाल दिखला दूँगा। वे सब भी परख लेंगे।

मैंने घर पहुँचकर तीन सज्जनों को रूमाल दिखाया। हर एक को फूलों की खुशबू आयी इसलिए इन सारी बातों को सम्मोहन विद्या कहकर एक चुटकी में नहीं उड़ा सकता था तथा न इसको छल-कलट ही कहकर मैं तुष्ट हो सकता था।

दुबारा मैं योगिराज के आश्रम पहुँचा। उन्होंने मुझको शुरू में ही बता दिया कि वे आज मरी हुई चिड़िया को जीवित करके मुझे दिखायेंगे।

एक छोटी गौरैया की गरदन मरोड़ डाली गयी। एक घण्टे तक वह हमारी आँख के सामने रखी गयी ताकि हमें विश्वास हो जाय कि वह सचमुच मरी है। उसकी आँखें अचल थीं, बदन न हिलता था न डुलता था। सारी देह तनकर हमको अपनी दारुण कहानी सुना रही थी। एक भी ऐसा चिह्न न था कि हमें उस गौरैया के जीवित होने का भ्रम पैदा हो।

योगिराज ने शीशा निकाला और सूर्य की किरणों को चिड़िया की आँखों पर केन्द्रित कर दिया। साथ ही उनके ओठ खुले और वे एक मन्त्र का पुरश्चरण करने लगे। थोड़ी देर बाद चिड़िया की लाश कुछ हिलने लगी। मैंने एक मरणासन्न कुत्ते को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार झटके खाते देखा था। बाद में धीरे-धीरे उसके पंख फड़फड़ाने लगे। कुछ मिनट बाद ही गौरैया अपने पाँवों पर खड़ी हो गयी। इस विचित्र पुनर्जीवन के बाद चिड़िया में इतनी काफी शक्ति आ गयी, कि वह कमरे में चारों ओर उड़ने लगी।

इसी प्रकार गम्भीरता से आध घण्टा बीत गया। मैं उस पुनरुज्जीवित बेचारी चिड़िया के फड़फड़ाने की चेष्टा को देखते हुए अपने को भूला हुआ था कि फिर से वह बेचारी गौरैया मरकर हमारे पैरों के सामने गिर पड़ी। वहीं वह पड़ी हुई थी, न हिलती थी न डुलती थी। मैंने उसको गौर से देखा। उसकी साँसें नहीं चलती थीं। वह सचमुच ही मर गयी थी।

मैंने योगीजी से प्रश्न किया—"उसको और कुछ समय तक जीवित रख सकते हैं ?"

उन्होंने कहा—"अभी तो इससे अधिक मैं नहीं दिखा सकता। कविराजजी ने मेरे कान में कहा कि विशुद्धानन्दजी अपने भावी प्रयोगों से और अधिक आशा रखते हैं। वे और भी कई विचित्र बातें करके दिखा सकते थे लेकिन उनके अनुग्रह का अनुचित लाभ उठाकर उनको राह की गर्द फाँकने वाले किसी जादूगर की कोटि में रखना मुझे सोहाता नहीं था। जो मैं देख चुका था उसी से मैं सन्तुष्ट था। विशुद्धानन्दजी की अन्यान्य विभूतियों की कथाएँ मेरी इस धारणा को और भी बढ़ाने लगीं।

मुझे मालूम हुआ कि वे शून्य से ताजे अंगूर पैदा कर सकते हैं, हवा से मिठाइयाँ मँगा सकते हैं और मुरझाये हुए फूल को फिर से हरा-भरा कर सकते हैं।

मैंने उनसे सीधे प्रश्न किया—"आपने ये सारी करामतें कैसे दिखाईं ?" विशुद्धानन्दजी ने अपने हाथों को समेटकर कहा—"जो कुछ आपने देखा वह योग का फल नहीं है, वह हैं सूर्य-विज्ञान का खेल। योग का सार यही है कि योगी अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध कर ले और ध्यान, धारणा तथा समाधि का अभ्यास करते आगे बढ़े। लेकिन सूर्य-विज्ञान में इन बातों के अभ्यास की कोई जरूरत नहीं है। सूर्य-विज्ञान कुछ निगूढ़ रहस्यों का संग्रह है। जैसे किसी पश्चिमीय भौतिक-विज्ञान का अध्ययन किया जाता है ठीक उसी प्रकार इस विद्या का भी अध्ययन किया जा सकता है।"

कविराजजी ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा—"इस विचित्र सूर्य-विज्ञान का सम्बन्ध अन्य विज्ञानों की अपेक्षा विद्युत् शक्ति और आकर्षण-शक्ति से अधिक है।"

मैं समझ नहीं पाया। अतः विशुद्धानन्दजी और भी बताने लगे :—

"तिब्बत का यह सूर्य-विज्ञान कोई नयी बात नहीं है। अति प्राचीन समय के भारतीय योगियों को इसकी अच्छी जानकारी थी। लेकिन अब तो, बहुत ही कम लोगों को छोड़, भारत में भी इस विद्या के जानने वाले लोग नहीं हैं। भारत में भी एक ढंग से इस विद्या का लोप-सा हो गया है। सूर्य-रश्मि में कुछ प्राणद शक्तियाँ मिली हुई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। यदि तुम जान लो कि इनको सूर्य-रश्मि में रहने वाली अन्य चीजों से अलगकर कैसे इकट्ठा कर सकते हैं तो तुम भी अद्‌भुत चमत्कार दिखा सकोगे।''

''क्या आप अपने चेलों को सूर्य-विज्ञान के मर्म समझा रहे हैं ?''

''अभी नहीं, किन्तु सिखाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। कुछ इने-गिने शिष्यों को ही ये रहस्य बताये जायेंगे। अभी हम एक बड़ी प्रयोगशाला, जहाँ प्रत्यक्ष निदर्शनों के साथ पढ़ाई हो सके, बनवाने में लगे हैं।''

''तो आपके शिष्य इस समय क्या सीख रहे हैं ?''

''उनको योग की दीक्षा दी जा रही है।''

पण्डित कविराजजी प्रयोगशाला दिखाने मुझे ले चले। वह रूप-रंग में किसी यूरोपियन मकान से मिलती थी। उसकी कई मंजिलें थीं और वह नये ढंग से बनी थी। दीवारें पक्की लाल ईंटें की थीं जिनमें खिड़कियों के स्थान पर बड़े-बड़े छिद्र दिखाई दे रहे थे। उनमें बड़े-बड़े शीशों के तख्ते लगने को थे, पर वे अभी तैयार नहीं हुए थे। शीशों की जरूरत इसीलिए पड़ी कि गवेषणा करने में सूर्य-रश्मि का लाल, नीले, हरे, पीले और स्फटिक काँचों में से प्रतिबिम्बित करने की आवश्यकता थी।

कविराजजी ने मुझे बताया कि जिस ढंग से शीशों की उन विराट् खिड़कियों के लिए जरूरत थी वैसे बड़े शीशे हिन्दुस्तानभर में किसी कारखाने में तैयार नहीं हो पाते थे। अतएव काम अधूरा ही रह गया था। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम इंग्लैण्ड में इस बारे में कुछ पूछताछ करो, पर यह जरूर ध्यान में रहे कि विशुद्धानन्दजी चाहते हैं कि उनके आदेशों में और काम के ब्यौरे में रत्तीभर भी अन्तर न आने पावे। ये आदेश इस किस्म के थे कि काँचों के निर्माताओं को विश्वास दिलाना पड़ेगा कि काँच हवा के बुलबुलों से एकदम खाली हो, रँगा हुआ शीशा एकदम पारदर्शी हो, और तख्ते १२ फुट लम्बे, ८ फुट चौड़े और १।४ अंगुल की मोटाई के हों। प्रयोगशाला को विशाल बाग-बगीचे घेरे हुए थे। पर वे ताड़ जाति के कुछ घनी शाखा वाले पेड़ों की शृंखला की ओट में बाहर के प्रेक्षकों की निगाहों से प्रच्छन्न थे।

लौटकर मैं विशुद्धानन्दजी के सामने आ बैठा। बहुत से चेले एक-एक करके चले गये थे, सिर्फ दो-चार ही रह गये थे।

पलभर के लिए विशुद्धानन्दजी ने मेरी ओर ताका और फिर फर्श की ओर ध्यान से देखने लगे।

अचानक उन्होंने कहा—

''जब तक मुझे अपने तिब्बत के गुरु से अनुमति प्राप्त न हो तब तक मैं यदि चाहूँ तो भी तुमको दीक्षा नहीं दे सकता। इसी शर्त पर मुझे काम करना पड़ता है।'' क्या वे मेरे मन की बातें ताड़ गये ? मैंने पूछा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"आपके गुरु यदि सुदूर तिब्बत में हैं तो आप उनसे अनुमति कैसे ले सकते हैं ?"

उन्होंने जवाब दिया—"हम दोनों के बीच आत्मिक जगत् में व्यवहार अच्छी तरह चलता है।"

मैं सुन तो रहा था पर कुछ भी समझ में नहीं आता था। तब भी उनकी उस आकस्मिक बात से मेरा मन थोड़ी देर तक भटक गया। मैं गहरे सोच में पड़ गया। बेसमझे-बूझे मैं यह प्रश्न कर बैठा—

"महाशय, 'सम्बोध' किस तरह प्राप्त हो सकता है ?"

विशुद्धानन्दजी ने उत्तर न देकर उलटे मुझसे ही एक प्रश्न किया—"जब तक योग का अभ्यास न करो, सम्बोध प्राप्त कैसे होवे ?"

कुछ मिनट तक मैं इन बातों के अर्थ पर मनन करता रहा और तब बोला—"लेकिन मुझे बताया गया है कि बिना गुरु के योग के सफल अभ्यास की बात तो दूर रही, उसका श्रीगणेश भी किया नहीं जा सकता। सच्चे गुरुओं का पाना दुर्लभ है।"

उनके चेहरे का रंग नहीं बदला। वे उसी भाँति उदासीन और अविचल बने रहे। बोले—

"जिज्ञासु तैयार हो तो गुरु अपने आप मिल जायेंगे।"

मैंने अपनी शंकाओं की पोथी खोली तो वे अपने हाथ को सामने बढ़ाकर बोले—

"पहले मानव को चाहिए कि वह अपने आपको तैयार कर ले, फिर चाहे वह कहीं भी रहे, गुरु प्राप्त हो ही जायेंगे। यदि हाड़-मांस में गुरु प्रत्यक्ष न भी हो तो भी वे जिज्ञासु की अन्तर्दृष्टि के रूप में प्रकट होंगे।"

"इस साधना का प्रारम्भ कैसे हो ?"

"प्रतिदिन एक निश्चित समय पर, निश्चित अवधि तक यह सहज आसन मारकर बैठने का अभ्यास करो। यह तुम्हारी तैयारी में खूब मदद पहुँचावेगा। सावधानी के साथ क्रोध और काम को अपने वश में रखने की कोशिश करना।"

विशुद्धानन्दजी यह कहकर पद्मासन की पद्धति मुझे दिखाने लगे। मुझको तो वह पहले ही से आता था। मेरी समझ में नहीं आया कि इस आसन को, जिसमें पैरों को टेढ़ा-मेढ़ा करना पड़ता है, वे सहज आसन क्यों बताते हैं ? मैं बोल उठा—

"कौन यूरोपियन युवा यह जटिल आसन जमा सकेगा ?"

"प्रारम्भ में कुछ कठिनाई अवश्य होगी। हर दिन सुबह-शाम अभ्यास करने से यह बहुत ही आसानी से सीखा जा सकेगा। सबसे मुख्य बात यही है कि योग के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभ्यास के लिए एक निश्चित समय ठीक कर लें और उससे किसी हालत में विचलित न होवें। शुरू-शुरू में पाँच ही मिनट काफी है। एक महीने के बाद इस समय को दस मिनट तक बढ़ा सकते हो, और तीन महीने बाद बीस मिनट तक। यों ही धीरे-धीरे अभ्यास की अवधि को बढ़ाते जाना होगा। ध्यान रहे कि मेरुदण्ड को सीधा रखें। इससे साधु को एक शारीरिक समता और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।''

''तो आप हठयोग का उपदेश कर रहे हैं ?''

''हाँ, यह न समझना कि राजयोग हठयोग से किसी तरह बेहतर है। जैसे हर मनुष्य सोचता और विचारता है और साथ ही कार्य भी करता है उसी तरह हमें जीवन के दोनों पहलुओं को शिक्षित करना होगा। शरीर का मन पर और मन का शरीर पर असर होता रहता है। किसी क्रियात्मिका उन्नति में हम इन दोनों को एक दूसरे से कदापि अलग नहीं कर सकते।''

■

श्री बाबा के जीवन-काल की घटनाएँ

राय साहब श्री अक्षयकुमार दत्त गुप्त, कविरत्न

बंगाल किसी समय शाक्य योगियों का देश था। तब बड़े-बड़े शक्तिशाली योगी इस देश में पैदा हुए थे। बहुत से बौद्ध योगी भी थे। भक्ति-मार्ग में जिस प्रकार नाना सम्प्रदाय और शाखाएँ हैं उसी प्रकार योगमार्ग में भी बहुतेरे प्रस्थान अर्थात सम्प्रदाय या पथ हैं। सबकी साधन-प्रणाली अलग-अलग है। किन्तु शक्ति-विकास का सुयोग सब में है। बहुत दिनों तक अन्य प्रदेशों के साधु बंगाली साधुओं की अलौकिक शक्तिमत्ता पर विश्वास करते थे। अभी भी वह प्रसिद्धि पूर्णतया लुप्त नहीं हुई है। स्वर्गीय ज्ञानवादी साधक सन्त शान्तिनाथ ने अपनी जीवन-कथा में लिखा है कि अमरकण्टक के निर्जन बाघ आदि हिंसक जन्तुओं से भरे जंगल में साधना करते समय उस अंचल के रहने वाले लोक-सामान्य के मन में यह धारणा बद्धमूल हो गयी थी कि यह बंगाली साधु बाघ बनकर वन में घूमता रहता है। इसीलिए वे सब उन्हें 'बघवा बाबा' कहा करते थे। अमरकण्टक के कतिपय साधु भी इस धारणा से मुक्त नहीं थे, इसका विवरण शान्तिनाथ ने अपनी जीवनकथा में दिया है।

जो हो, चैतन्य महाप्रभु के आदर्श पर, बंगाल में योग-साधना का स्थान कीर्तन ने ले लिया। योगसिद्धि की जगह अश्रु, स्वेद, रोमांच इत्यादि सात्त्विक विचार ही आध्यात्मिक उन्नति के परिचायक हो गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु देखा गया है कि भक्ति-मार्ग में प्रवृत्त किसी-किसी महापुरुष में कदाचित् किसी शक्ति का परिचय भी मिलने पर योग-विभूति के निन्दक बार-बार उसे बढ़ा-बढ़ाकर उसका प्रचार करने में कुण्ठित नहीं हुए। आधुनिक काल में बंगाल में योगी कम ही हुए, फिर भी अनेक योगी हैं पर अपने स्वभाव के अनुसार वे प्रच्छन्न ही रहते हैं। सम्प्रति दिवंगत वरदाचरण मजूमदार उनमें एक थे। मरने के बाद उनका वृत्तान्त एक सामयिक पत्र में प्रकाशित होने के पहले वे सबके लिए प्रायः अज्ञात ही रहे।

किसी-किसी का नाम उनके तिरोभाव के बाद जाना जाता है।

तीन बंगाली महायोगियों के नाम बिलकुल ही प्रच्छन्न रहने योग्य नहीं थे। इनमें से कोई आत्म-प्रचार का इच्छुक नहीं था। ये तीनों व्यक्ति हैं—(१) काशी के श्यामाचरण लाहिड़ी, (२) बारदी के लोकनाथ ब्रह्मचारी, और (३) बर्दवान के तथा बाद में काशी के विशुद्धानन्द परमहंस। इनमें मैंने केवल श्री विशुद्धानन्दजी परमहंस को ही देखा है। दो अन्यजनों के दर्शन का सौभाग्य मुझे नहीं मिला। दोनों की बातें बहुत कम ही प्रकाश में आ पाई हैं। फिर भी बाबा विशुद्धानन्द के मुख से मैंने सुना है कि वे अति उन्नत योगी थे। अबंगालियों में वे गोरखपुर के गम्भीरनाथ और काशी के तैलंग स्वामी को योगी मानते थे।

बाबा विशुद्धानन्द की शक्ति की कोई सीमा नहीं थी। उसका कारण यह था कि उन्होंने चौदह वर्ष की उम्र से ही बाईस साल का समय तिब्बत-स्थित ज्ञानगंज नामक एक अत्यन्त प्राचीन योगाश्रम में सैकड़ों वर्ष के योगियों की शिक्षा और अनुशासन में रहकर अपने सम्प्रदाय में प्रचलित (दूसरे सम्प्रदायों में अज्ञात) सभी प्रकार की योग-क्रियाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। इसके अतिरिक्त सूर्य-विज्ञान नामक एक अत्यन्त प्राचीन और रहस्यमय (तथा दूसरे सम्प्रदायों में पूर्णतया अज्ञात) विज्ञान की शिक्षा ही नहीं पाई, उस विषय की जीवनव्यापी गवेषणा भी कर गये हैं। उसके अमृत फल को वे सर्वसाधारण में बाँटना चाहते थे किन्तु विधाता की इच्छा से वह कार्यरूप में परिणत नहीं हो सका।

सूर्य-विज्ञान से सभी शक्तियों में सुदुर्लभ सृष्टि-शक्ति प्राप्त की जा सकती है। एक मात्र लेन्स (Lens) की सहायता से सूर्य-विज्ञान द्वारा बाबा विशुद्धानन्द निमेषमात्र में अनेक प्रकार की विचित्र वस्तुएँ रच दिया करते थे, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। सोचकर मूक हो जाना पड़ता है। उनके सभी शिष्य तथा शिष्येतर जन भी, यहाँ तक कि जर्मन, अमेरिकन और अंग्रेज यात्रियों या पत्रों के संवाददाताओं ने भी उसे कुछ-कुछ देखा है और पत्रों में प्रकाशित भी किया है।

यह सृष्टि-क्षमता ईश्वरीय क्षमता है—प्रकृत ऐश्वर्य। वाक्-शक्ति द्वारा मनोरंजक भाव से धर्मकथा कहना, विद्या-बल से गम्भीर आध्यात्मिक तत्वों का विश्लेषण, और भाव की प्रचुरता से कीर्तन, नर्तन और गान गाकर लोगों को उन्मत्त बना देना—इसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुलना में कुछ भी नहीं है। यद्यपि इनमें से कोई महापुरुष साधुता के निदर्शक माने जाते हैं और दीक्षार्थियों को आकर्षित भी करते हैं किन्तु तत्त्व-व्याख्या करते समय प्रत्यक्ष वैज्ञानिक प्रदर्शन (डिमान्स्ट्रेशन) करके दिखाने वाले बिरले ही होंगे। योगशास्त्र का 'सर्व सर्वात्मकम्' को सबने सुना है, बहुतों ने युक्ति द्वारा इसकी व्याख्या भी की है और करते हैं, किन्तु हाथ में ही गुलाब के फूल को जवा पुष्प में, जवा को मूँगे में और एक बेला के फूल को स्फटिक की गुलिका में परिणत करके कितनों ने दिखाया है ? और बाबा विशुद्धानन्द हरदम यह सब करते ही रहते थे। एक दिन उन्होंने बात के सिलसिले में कहा था, "बच्चा! एक घास का तिनका भी बना देने वाले को दिखाओ न ?"

उन्होंने अपनी इच्छा-शक्ति से जामुन और एरण्ड (रेंड़ी) के पेड़ में अंगूर के फल लगा दिये थे। एक जवा के पेड़ को पुराने गुलाब के पौधे में बदल दिया था। एक अमेरिकन संवाददाता को चकित करते हुए उन्होंने लेंस की सहायता से एक सूखे काठ के आधे हिस्से को आधे मुहूर्त्त में पत्थर बना दिया था। एक दूसरे यूरोपीय दर्शक पाल ब्रन्टन के सामने मरी हुई गौरैया को फिर से जिला दिया था। महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज ने लिखा है, "अणिमा और महिमा के बारे में चर्चा होने पर एक दिन अपनी अँगुली को मोटी करके उन्होंने दिखाया था।" हीरा, सोना, मोती, मूँगा आदि सैकड़ों वस्तुओं को बनाते हुए मैंने अपनी आँखों से देखा है। जीवों में मक्खी आदि जीव-जन्तुओं को बनाते भी मैंने देखा है।

यही कहा जा सकता है कि उनकी विभूतियों की कोई सीमा-परिसीमा नहीं थी। श्रीकृष्ण ने अपने मुख के भीतर यशोदा माता को सम्पूर्ण विश्व का दर्शन कराया था, यह तो पुराण में वर्णित है। कथा-प्रसंग में जब पुरी के महामहोपाध्याय पं० सदाशिव मिश्र ने कृष्ण भगवान् के मुख जैसे छोटे स्थान में विश्व-दर्शन के प्रति सन्देह व्यक्त किया तो स्वामी विशुद्धानन्द ने उन्हें अपने मुख में विश्व-दर्शन कराकर उनके सन्देह को दूर कर दिया था। विष्णु का पुराणप्रसिद्ध नाम पद्मनाभि है। उनकी नाभि से निकले सनाल कमल पर पुराणानुसार ब्रह्मा का चित्र बाजार में बिकता है। सभी जनों की नाभि में कमल होता है, इसे बाबा विशुद्धानन्द ने कई दिन अपनी नाभि से सनाल कमल उत्पन्न करके अपने शिष्यों को दिखाया था। वैज्ञानिक परीक्षा-भवन की तरह इसी प्रकार वे शास्त्र की व्याख्या करते थे। इसमें अधिक वाक्चातुरी की आवश्यकता नहीं होती, भाव-विभोर होकर श्रोताओं को भी भाव-विभोर कर देने की जरूरत नहीं, पर सदा के लिए दर्शकों और जिज्ञासुओं का सन्देह दूर हो जाता है।

आश्चर्य की बात यह है कि इतनी अपरिमेय शक्ति रखते हुए भी बाबाजी को प्रच्छन्न ही रहना प्रिय था और बहुत-कुछ प्रच्छन्न भाव से रहे भी वे। वे आश्रम में तमाशबीनों की भीड़ पसन्द नहीं करते थे। अनधिकारियों को धर्म-कथा सुनाने में अपनी वाणी का अपव्यय नहीं करते थे। आश्रम में कीर्तनियों की भीड़ को या दरिद्र-भोजन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का आयोजन करके लोगों को अपने पास आकर्षित नहीं करते थे। हाँ! अपने शिष्यों के कल्याण के लिए वे पर्वों के अवसर पर कुमारी-भोजन की व्यवस्था करते थे और उस अवसर पर सैकड़ों आमन्त्रित और बिना बुलाए आई हुई कुमारियाँ सेवा प्राप्त करती थीं। वे प्रत्यक्ष देखते थे और शास्त्र में भी इसका समर्थन है कि कुमारी कन्याएँ संसार की असंग आदि जननी की प्रतिनिधि हैं।

बहुतों की धारणा है कि ज्ञानी लोग नीरस प्रकृति के और योगीजन कठोर प्रकृति के होते हैं। केवल भक्तजन ही रसिक होते हैं। विशेषत: वैष्णव भक्तभगवान् की माधुर्य लीला में ही लीन रहते हैं, इसीलिए उनकी प्रकृति भी मधुर हो जाती है। वैष्णवों की इस प्रसिद्धि के प्रति बिना कोई शंका प्रकट किए, निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि—ज्ञानी को नीरस और योगी को कठोर होना ही चाहिए—ऐसा कोई नियम नहीं है। ज्ञानमार्ग के साधक को हर्ष और अमर्ष दोनों के त्याग का उपदेश अवश्य दिया जाता है,—किन्तु 'सुन्दर वस्तु को देखकर मुग्ध नहीं होना होगा अथवा दया और परोपकार आदि हृदय की कोमल प्रवृत्तियों को समूल नष्ट कर देना होगा',—ऐसा कोई विधान नहीं है। 'सब कुछ ज्ञान के आलोक में करना होगा, केवल चित्त को चंचल बनाने वाले भाव के आवेग में नहीं,' यह उनकी शिक्षा और आचरण का आदर्श है। योगी के विषय में भी यही कहा जाता है। परमतत्व, रूपहीन साथ ही विश्वरूप, निराकार तथा सर्वाकार होता है। उसमें सभी रसों का समन्वय होता है। 'रसो वै स:।' जिन्होंने उन्हें घनिष्ठ रूप में प्राप्त कर लिया है वे भी सभी रसों में निष्णात होंगे। योगी के ऐश्वर्य अर्थात् ईश्वरत्व या उसकी समानता में क्या ईश्वर के माधुर्य का अभाव होता है? योगी जो ईश्वर के समान ही पूर्ण होता है उसमें किसी प्रकार की अपूर्णता कैसे होगी? तो भी माधुर्य का जो एक अर्थ वैष्णव समाज में प्रचलित है उसकी असंयत चर्चा होने पर ग्राम्य-धर्म की ओर झुकाव हो सकता है और अनेक स्थलों पर ऐसा देखा भी गया है। इस विषय का अधिक विश्लेषण अनावश्यक है। योगी या ज्ञानी ईश्वर-सम्बन्धी होते हुए भी ऐसे माधुर्य की चर्चा का समर्थन नहीं करते, क्योंकि वह मार्ग फिसलन से भरा है। सच्चे भक्त ईश्वर-सम्बन्धी ऐसे माधुर्य की चर्चा को रोके रहते हैं। अन्य क्षेत्रों में इसकी निन्दा वैष्णव-शास्त्र में भी विदित है। पथ के फिसलाऊ होने के सम्बन्ध में भावुक साधक का सदा सावधान रहना कठिन है। समझता हूँ कि इस विषय में सभी सम्यक्रूप में सतर्क नहीं होते।

जो हो, हम लोग यहाँ श्री श्री बाबा विशुद्धानन्द-सम्बन्धी विचार-विमर्श के लिए बैठे हैं। हमने देखा है कि ये महायोगी यद्यपि प्राय: शिष्यों से घिरे हुए भी घण्टों चुपचाप बैठे रहते थे और शिष्यों को सद्विचार करने का अवसर देते थे तथापि प्रसंग आने पर प्रचुर हास्य रस तथा अन्य रसों की अवतारणा करके उनका वितरण करते रहते थे। वे षड्रसों के रसिक थे। जिस प्रकार उनका हास्यरस शिष्यों के मनोरंजन के लिए होता था, उसी प्रकार उनका क्रोध भी शिष्यों के मंगल के लिए होता था। वे जरा-सी बात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में लोगों को हँसा सकते थे वैसे थोड़ी-सी बात में क्रोध प्रकट करके अपना उद्देश्य सिद्ध करते थे। और उसका फल कड़वापन से रहित होने के कारण रस का ही अंग था। वे प्रचलित भाषा में ही बात करते थे। उनमें न बनावटीपन होता था और न ग्राम्यता होती थी। उनके किसी आचरण में न तो कृत्रिमता होती थी और न प्रदर्शन का भाव।

कठोरता योग का अपरिहार्य दोष नहीं है। किसी योगी में यदि कठोरता देखी जाय तो समझना चाहिए कि उसमें उसकी व्यक्तिगत प्रकृति की छाप है और जिसका सच होना और भी सम्भव है वह है प्रयोजन के अनुसार बनावटी—अस्वाभाविक। योगी कभी दया और ममता का त्याग नहीं करते, बाहर के कठोर आवरण के भीतर प्रचुर करुणा और सहानुभूति उनमें होती है क्योंकि चित्त के शोधन या मलापनयन के साधन-रूप में उन्हें दूसरे का सुख देखकर ईर्ष्या की जगह मैत्री, दुःख देखकर करुणा, पुण्य देखकर मुदिता (प्रसन्नता) और पाप देखकर घृणा या विद्वेष के स्थान पर उपेक्षा का अभ्यास करना पड़ता है। बाबा विशुद्धानन्द में ये सब गुण प्रचुरता से देखे गये हैं। उनका हृदय बड़ा ही कोमल था। उनके मुख पर ऐसी उदासीनता रहती थी कि विरक्ति प्रकट करने पर भी उन्होंने शिष्य के दुःख, रोग और कष्ट में शिष्य के अनजाने में अनेक बार उसकी यथोचित व्यवस्था कर दी थी। कभी-कभी तो बिना माँगे उन्होंने सहायता की है। उन्होंने अनेक बार रोगी के रोग को अपने ऊपर लेकर उसे निरोग कर दिया था, अथवा उसके रोग को बहुत कम कर दिया था। इस प्रकार वस्तुतः उन्होंने अपना जीवन-दान कर दिया था। चरित्र की उदारता और मधुरता की इससे अधिक क्या कल्पना की जा सकती है ? शिष्य तो उनके प्राण थे। "मैं समस्त प्राणियों का उपकार कर रहा हूँ", इस प्रकार की हल्की बात वे कभी नहीं करते थे। किन्तु उनका जीवन जगत् का शिक्षा-स्थल था। उनकी यह इच्छा कभी नहीं थी कि बहुत से लोग उनके शिष्य बनें, तथापि उनकी कृपा के आकर्षण से उच्च-नीच, धनी-निर्धन, सैकड़ों लोगों ने उनसे मन्त्रदीक्षा पाई। उन्होंने राजाओं-रानियों को दीक्षा देना अस्वीकार कर दिया तथा महामहोपाध्याय पण्डितों की प्रार्थना के प्रति भी कोई उत्साह नहीं दिखाया। उनके शिष्यों में धनी-मानी और उच्च शिक्षा-प्राप्त लोग भी थे, किन्तु मध्यवित्त और अल्पवित्त तथा मध्यशिक्षित और अल्पशिक्षित ही अधिक थे।

उनके चरित्र का एक मधुर धर्म यह था कि वे बड़े ही गुणग्राही थे। शिष्य हो या शिष्येतर, गुणी का आदर करने में वे कभी नहीं चूकते थे। बालिकाएँ और बालक उन्हें बहुत प्रिय थे। उनके बीच में वे हँसी के कितने ही खेल करते थे। इसके द्वारा भी समय-समय पर उनका ऐश्वर्य प्रकट होता था। एक दिन आठ-नौ वर्ष की एक कुमारी ने उनसे कहा, "बाबा, कल रात मैंने सपना देखा कि आपको गोदी में लिये हूँ।"

यह सुनकर बाबा हँसते हुए उसे कमरे के भीतर ले गये, बच्चे की तरह हलके हो गये और उसकी गोदी में चढ़ गये। कुछ देर बाद बाबा ने अपना हलकापन जब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हट्य दिया तब लड़की को उन्हें गोद से उतारना पड़ा और बाहर आकर उसने यह बात सबको बताई। वस्तुतः माधुर्य ऐश्वर्य का ही अंग है। माधुर्य, सामर्थ्य, ज्ञान, प्रेम सबका समाहार ही ऐश्वर्य है, जो योगी का विशिष्ट लक्षण माना जाता है।

दिव्य-पुरुष

सुबोधचन्द्र रक्षित

''भौतिक भावों के आकर्षण में न फँसकर सदैव माँ का स्पर्श करने में समर्थ होओ—ऐसा होने पर सब कुछ हो जाएगा।'' —श्री श्रीविशुद्धानन्द।

सुख, दुःख और अभाव का सम्मिश्रण ही मानव-जीवन है। सच तो यह है कि मनुष्य-जीवन दुःखों का संग्रह है । "Life is a sentence of sorrow, with punctuations of happiness." परन्तु मानव-जीवन में इतना दुःख क्यों है ? इस दुःख को कैसे दूर किया जा सकता है ? इस चिरन्तन समस्या का समाधान आज भी नहीं हो सका है। हाँ, विभिन्न दार्शनिकों के विभिन्न मत अवश्य ही इस विषय में देखने को मिलते हैं। इस बात में सभी एकमत हैं कि जब तक शरीर है तब तक दुःख अवश्य ही रहेगा। शरीर ही दुःख का कारण है। इसलिए दुःख का सचमुच अन्त कर देने के लिए उसके कारणभूत शरीर-धारण या पुनर्जन्म से आत्यन्तिक मुक्ति पाने का उपाय करने की आवश्यकता है। प्रवृत्ति (आसक्ति) ही जन्म का कारण है, अतः यदि प्रवृत्ति का नाश कर दिया जाय तो जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति अवश्य ही मिल सकती है। जीव की भोग-वासना ही बन्धन और दुःख का कारण है, और इसका विनाश-साधन ही मोक्ष-प्राप्ति का उपाय-स्वरूप है। शरीर तो एक दिन नष्ट हो ही जायगा, तो यह बन्धन और मोक्ष शरीर का है या मन का ? सूक्ष्म शरीर ही मन का आधार है, किन्तु मन का कार्य प्रकट होता है स्थूल देह में। देह के साथ उसकी छाया जैसे सदा ही रहती है, मन के साथ अभाव का अनुभव और विषयों के प्रति आसक्ति उसी रूप में निश्चय मौजूद रहती है। इसी से मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है, मन ही हमारा परमशत्रु या परममित्र होता है।

मनः करोति कर्माणि मनो लिप्येत पातकैः ।
मनश्च तन्मनो भूत्वा न पुण्यैर्न च पातकैः ॥

जल की तरह मन की नीचे की ओर गति के कारण के सम्बन्ध में श्रीश्रीबाबा ने कहा था—''जीव का सब नीच भाव मध्याकर्षण से उत्पन्न होता है। जहाँ तक स्थूल वायु-मण्डल है, अर्थात् जहाँ तक मध्याकर्षण की क्रिया होती है, पार्थिव वासनाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और कामनाओं की छाया घिरी रहती है। मृत्यु के बाद भी जीव इन वासनाओं में आबद्ध रहता है, इसी से मध्याकर्षण के आकर्षण में बँधकर नीचे की ओर खिंचकर वासना के अनुसार योनि में जन्म लेता है। स्थूल वायुमण्डल की सीमा को लाँघकर निर्मल नभोराज्य में विचरण करने की सामर्थ्य न होने पर मृत्यु पर विजय प्राप्त करके जन्म से परे की शुद्ध दशा प्राप्त होने की आशा नहीं है।''

विषय-भोग के लिए बार-बार सुख की प्रार्थना मानव-जीवन के दुःख का एकमात्र कारण है। इसी कारण सुख की कामना करने वाला सदा दुःखी रहता है। मन के निग्रह या दमन के द्वारा ही बन्धन से मुक्ति सम्भव है। योग-साधना ही इसका एकमात्र उपाय है। श्रीश्रीबाबा के अनुसार, ''आत्मशोधन या उपादान शुद्धि।'' इस आत्मशोधन का 'योग' ही एकमात्र उपाय है। योग के अलावा अन्य किसी उपाय से चित्त या देह की शुद्धि नहीं होती। लिंग (वासना-युक्त-मन) के साथ शुद्ध आत्मा या सूक्ष्मतत्त्व का (चैतन्य, आत्मा या परमात्मा का) संघर्ष ही योग है। स्थूल के साथ लिंग के तीव्र संघर्ष के अभाव में उसकी अन्तर्निहित चैतन्यरूप अग्नि प्रज्वलित नहीं होती और जब तक वह प्रज्वलित नहीं होती, स्थूल से छुटकारा नहीं मिलता। जब तक आसक्ति का नाश नहीं होता, वन में रहने पर भी दोष उत्पन्न हो ही जाता है। बाबा की योग-प्रक्रिया में और सामान्य प्रचलित मार्ग में विशेष भिन्नता है। मानव-जीवन के सभी उपायों में योगमार्ग को ही बाबा ने उच्च आसन दिया है। संसार में जो जितना चाहता है वह उससे अधिक नहीं पाता, किन्तु जो किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं रखते (जो आसक्तिहीन हैं) वे जो चाहते हैं पा लेते हैं, और अन्त में सत्य और परमानन्दस्वरूप परमवस्तु पर भी अधिकार कर लेते हैं। यही योगी के जीवन का एक रहस्यमय कर्म है।

दिव्य पुरुष श्रीविशुद्धानन्द का जन्म हमारे दिव्य जीवन और मुक्ति की सही राह दिखाने के लिए हुआ था। बड़े ही स्पष्ट रूप में उन्होंने इस मार्ग का निर्देश कर दिया है। परम पूज्यपाद श्रीभृगुराम परमहंसदेव ने अपने एक पत्र में बाबा को लिखा था— ''.......संसार में सब आश्चर्य ही है। शान्ति को कोई नहीं चाहता। हमारा अभिप्राय महापापों से उद्धार करना है, इसी से पापियों को स्वर्ग का सुख देने के लिए तुम्हें शिष्य बनाया। हम जो करते हैं, वहीं सब करते हैं।'' उन्होंने हम में जो धारा प्रवाहित की है वह उपयुक्त आधार न मिलने पर भी रुक नहीं सकती। बिना साधना के सिद्धि नहीं मिलती। बाबा कहते थे—''कठिन साधना के द्वारा पूर्व के किये गये कर्मों को नष्ट किया जा सकता है। ब्रह्मा के विधान को भी उलट दिया जा सकता है। हाँ, 'पुरुषार्थ' और 'कृपा' दोनों अन्योन्याश्रित होते हैं। केवल कृपा से इष्ट-सिद्धि नहीं होती यदि उसके साथ पुरुषार्थ का मेल न रहे। यदि पुरुषार्थ तीव्र होगा तो कृपा अपने आप जाग जायगी—आश्रय अपने आप मिल जाता है। ....जीव की सोई हुई शक्ति को जगाने के लिए 'क्रिया' तथा पुरुषार्थ दोनों की जरूरत होती है। जड़ के भीतर चित्-शक्ति रहती है। शक्ति की आराधना के बिना शक्ति मिलती नहीं। उसी महाशक्ति की आराधना करो, अपने को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्तिमय बनाओ, तेजस्वी बनाओ। परमात्मा कृपा करने के लिए गुरु-शक्ति के रूप में उतरकर जीव की पकड़ में जाते हैं, उसे अपनी ओर खींचते हैं और उठाकर ले जाते हैं। वे यदि न उतरते तो जीव अपने उद्धार की राह कभी न पहचान पाता……… किन्तु निर्भर होने की शिक्षा दो, उससे भिन्न जीव की गति नहीं है। 'क्रिया करो, क्रिया करो—उसी से निर्भरता आएगी।' श्री भृगुराम परमहंस ने भी यही बात कही है, "गुरुदेव का नाम ही एकमात्र सहारा है और गुरुदेव पर पूरी निर्भरता यही कर्म है।" यह निर्भरशीलता या आत्मसमर्पण ही साधना का अन्तिम अध्याय है।

महाशक्ति की साधना को बाबा श्रेष्ठ तपस्या मानते थे। इसी से वे प्रकृत कर्मी के पास सदा जागरूक या प्रकाशित रहते थे। "प्रकृत योगी का स्थूल शरीर, लिंग शरीर और कारण शरीर चिन्मय सिद्ध शरीर में परिणत हो जाते हैं। वे सर्वव्यापी परमात्मा के साथ सदैव योगयुक्त रहते हैं इसी से इच्छामात्र से क्षण भर में वे प्रकट हो सकते हैं।" इसी कारण उस दिव्य पुरुष की नित्यलीला का दर्शन हम आज भी करते हैं।

उन्होंने हम लोगों को आश्रय दिया था, अर्थात् जीवन की सारी जिम्मेदारी अपने हाथ में ले ली थी। एक बार उन्होंने हमसे कहा था—

"जिसको जिस दशा में पहुँचाकर तैयारी करनी होती है, उसे ठीक उसी दशा में पहुँचा देता हूँ। याद रखना, तुम लोगों के कल्याण के लिए जितना देने की जरूरत है उतना मैं ही देता और करता हूँ।"

इसी प्रसंग में उन्हें यह कहते हमने सुना था कि उनके सामने एक योगी ने किसी कोढ़ के रोगी को देखकर कहा था, "मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा यह भयंकर रोग कुछ दिन और तुम्हें रहे।"

अभाव का अभाव और दुःख से छुटकारा मानव-जीवन की श्रेष्ठ चहेती वस्तुएँ हैं। किन्तु यदि दुःख का एहसास न हो तो दुःख से छुटकारा पाने का कोई प्रयास ही न करे, बन्धन की व्यथा का अनुभव न करने पर कोई बन्धन से छूटने की इच्छा ही नहीं करता। कठिन दुःख और अभाव की यातना से ही मनुष्य के मन में मुक्ति की कामना सहज रूप में जाग जाती है और उसका चित्त परमात्मा की ओर उन्मुख हो जाता है और मोक्ष प्राप्त करने की व्याकुलता मन में पैदा हो जाती है। बाबा ने कहा था—"इस अशान्ति के मूल में एक गम्भीर अभाव ही होता है, इसमें सन्देह नहीं। दीन को ऐश्वर्य की कामना, बद्ध को मुक्ति की कामना, रूप के प्रेमी की रूप-तृष्णा, कामी की कामपिपासा, जिज्ञासु की ज्ञानलिप्सा—जिसमें जिस चीज की लालसा हो, सभी आकांक्षा के ही भिन्न-भिन्न नाम हैं। मानव-जीवन का प्रमुख उद्देश्य है स्वभाव की प्राप्ति। जीव स्वभाव से च्युत होकर ही दुःख के कूप में जा पड़ा है। पुनः साधना आदि के द्वारा स्वभाव में प्रतिष्ठित हो सकने पर उसके सारे अभाव मिट जायँगे।—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थूल भाव की केंचुल का त्याग ही 'मुक्ति' है। स्थूल के साथ प्रिय और अप्रिय का भाव जगता है अथवा सुख-दुःख-रूप द्वन्द्व का जन्म होता है।"

तुम्हें देखता हूँ जिस क्षण
तब मन में आता है यही,
जिसे देखता वह तुम नहीं,
मात्र तुम्हारा है आवरण।

इस शरीर के बुझे दीप पर
फिर क्या होगी अचल शिखा
क्या लिख देगा काजल-
पट पर रक्त ढाल कर ?

चिन्मय रूप ही दिव्य पुरुष का यथार्थ स्वरूप है। वे इस समय प्रकृत स्वरूप में ही रहते हैं। उनके इस चैतन्य-स्वरूप की पूजा बिना हम अपने भीतर की चित्शक्ति को कभी भी जगा नहीं सकते—उनके पकड़ने के सारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होंगे। एक जलती हुई आग की लपट को छूटकर जैसे सैकड़ों दीपक जल सकते हैं, उसी प्रकार हम लोगों की सोई हुई आग उनकी दिव्य शिखा को छूकर प्रज्वलित हो उठेगी। मनुष्य अपनी सहज अवस्था में जड़ प्रकृति-भावापन्न रहता है। स्थूल के बीच उसका चित्त प्रतिक्षण लिप्त रहता है, इसी से सूक्ष्म सत्ता या शुद्ध चैतन्य का आभास तक प्राप्त करने में वह समर्थ नहीं होता। बाबा ने तो कहा है—"संघर्ष को छोड़कर स्थूल के नाश का दूसरा कोई उपाय नहीं है।—जड़ को पकड़कर उससे अपने को अलग करके चैतन्य में पहुँचना होगा।"

तिरोधान के अनन्तर घटित कुछ लीलाएँ

श्री गोपीनाथ कविराज

[१]

महापुरुषों का अन्तर्धान क्या मृत्यु है ? योगी तो मृत्युंजय है। श्रीश्रीबाबा विशुद्धानन्द अन्तर्धान के बाद अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार की कृपा-लीला कर रहे हैं। इसके दो-चार विवरण क्रमशः प्रकाशित किये जा रहे हैं। अनेक घटनाएँ तो अप्रकाशित ही रह जा रही हैं, इसमें सन्देह नहीं।

एक अत्यन्त असाधारण ढंग की लीला श्री अक्षयकुमार दत्त गुप्त द्वारा लिखित "योगिराजाधिराज श्रीश्री विशुद्धानन्द परमहंस" ग्रन्थ में (पृ० ७३५-३६) वर्णित हुई है। कृपापात्र सज्जन का नाम है वैद्य बाबू हरिलाल भोगीलाल त्रिवेदी, निवास बालसिनोर, गुजरात। इन्होंने बाबा को चर्म-चक्षुओं से देखा नहीं। सम्प्रति इन्हीं के मुख से बाबा का माहात्म्य सुनकर एक दूसरे गुजराती सज्जन ने जिस प्रकार उन्हें पाया, नीचे उसी का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

सज्जन का नाम है रघुनाथजी नागरजी नायक। रहते हैं बम्बई में। इन्होंने गत २४ जनवरी (१९५४) को कलकत्ते में अक्षय (दत्त गुप्त) दादा से मिलकर कहा कि मैं पूर्वोक्त वैद्य बाबू हरिलाल त्रिवेदीजी के मुख से बाबा की बात सुनकर उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्म-भूमि बण्डूल का दर्शन करने को उत्सुक हो गया हूँ यदि आप इस विषय में सहायता कर दें तो मैं बहुत आभारी हूँगा। अक्षय दादा ने उन्हें बाबा के भतीजे शिबू दादा और पौत्र सरोज मोहन बाबू के नामों से एक पत्र देकर कहा कि इन दोनों में से जो कोई भी बर्दवान आश्रम में होगा वह आपकी यथोचित सहायता करेगा। पत्र में पता दिया गया था—विशुद्धाश्रम, बर्दवान। गाँव का नाम मालूम न होने से उसका उल्लेख नहीं था।

रघुनाथजी वैद्यनाथ धाम होते हुए वर्दवान गए। ट्रेन से रात तीन बजे बर्दवान पहुँचने की बात थी। बिलकुल अजानी जगह, बड़ा ही बेवक्त। किन्तु जैसे बाबा के इच्छानुसार ही ट्रेन राह में देर करके सबेरे छह बजे पहुँची। स्टेशन पर बहुतेरे रिक्शे वाले थे, किन्तु उनमें से कोई विशुद्धाश्रम को जानता नहीं था—सरोज चट्टोपाध्याय का नाम भी नहीं सुना था। वे सज्जन दुःखी होकर स्टेशन पर ही "ब्रह्मानन्दं परमसुखदं" इत्यादि श्लोकों को मन ही मन दुहराने लगे। इसी समय उन्हें चकित करता हुआ धोती, कौपीन, चादर और लोटा लिये एक व्यक्ति सहसा उनके पास आ खड़ा हुआ। संभ्रम में उनके मुख से निकल गया, "जय गुरु!" समागत व्यक्ति ने कहा, "तुम विशुद्धाश्रम जाओगे। मेरे साथ आओ।" यह कहकर उन्हें स्टेशन के बाहर लाकर एक राह दिखाते हुए उसने कहा, "इस राह से कुछ दूर जाने पर एक दूसरे आदमी से भेंट होगी, वह तुम्हें आश्रम दिखा देगा।"

यह कहकर वह उल्टी दिशा में चला गया। रघुनाथजी ने अक्षय दादा को लिखा था, "मैंने विस्मित होकर उस आदमी की ओर देखते हुए सोचा, क्या वे बाबा ही होंगे ? अन्यथा ये दयामय कौन हैं ? इस प्रकार सोचते हुए मैंने देखा, वह व्यक्ति अब नहीं है। जो हो, उनकी बताई हुई राह से कुछ दूर जाने पर सचमुच ही मेरी भेंट एक व्यक्ति से हो गयी और उससे पूछते ही वह मुझे एक घर दिखाकर चला गया।"

इसके बाद आश्रम में जाते ही उनकी भेंट शिबू दादा और बाबा के तीनों पौत्रों से हो गयी। परिचय-पत्र द्वारा उनका उद्देश्य समझकर उन्होंने इनके प्रति विशेष आदर दिखलाया और इन्हें चाय पिलाकर एक टैक्सी ठीक कर दी और बाबा का एक पौत्र भी इनके साथ ही बण्डूल गया। वहाँ रघुनाथजी नायक बाबा के जन्म-स्थान, सिद्धेश्वरी मन्दिर और बण्डूलेश्वर का रंग-परिवर्तन देखकर अत्यन्त चकित हुए। उन्होंने लिखा, "It is the most wonderful शिवलिंग of all ages. How can I describe the joy I felt !"

बम्बई लौट जाने पर उन्होंने बहुत बार बाबा की देह-सुगन्ध पाई है। वे लिखते हैं—Several times have I felt his presence by his all-pervading wonderful smell."

(यहाँ बाबा के तिरोधान के अनन्तर घटित तीन लीलाएँ दी जा रही हैं। प्रथम वृत्तान्त श्री अक्षयकुमार दत्तगुप्त को पत्र द्वारा मिला था। द्वितीय वृत्तान्त उन्हीं का लिखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है जिनके जीवन में यह घटित हुआ था। तीसरा वृत्तान्त, कृपापात्र स्त्री जिसके साथ यह घटना हुई थी, उस स्त्री के पति डॉ० नृपेन्द्रमोहन मुखोपाध्याय द्वारा लिखा गया है।)

[२]

श्रीयुत अनाथनाथ चक्रवर्ती, बाबाजी के एक पुराने शिष्य हैं। वे किसी समय कुमारडुबी में काम करते थे और इस समय ३४, कस्बा रोड, कलकत्ता के (३१) मकान में रहते हैं।

तिरोधान से पहले बाबाजी ने बण्डूल गाँव से अनाथ चक्रवर्ती महोदय के चौबीस परगना जिले के एक ग्रामीण घर में अपनी लीला का विस्तार करके अत्यन्त आश्चर्यजनक ढंग से उनकी एक कन्या की जीवन-रक्षा की थी।

जिस लीला का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है वह घटित हुई थी सन् १९४७ के सावन मास के अन्त में। अनाथ दादा की उम्र उस समय उनसठ वर्ष की थी। बहुत दिनों का श्वास-रोग उन्हें था जो जाड़े के दिनों में बढ़ जाता था। इस बार श्वास-रोग के साथ-साथ जोरों का ज्वर भी हो गया था। धीरे-धीरे सारे शरीर में सूजन आ गयी। पेशाब नहीं उतरती थी और छाती पर कफ जम गया था। एक डॉक्टर ने बीस लाख के पेंसिलीन का इंजेक्शन दिया। नतीजा कुछ नहीं। दस-बारह दिनों में ही वे बेहोशी में डूब गए। गुर्दा (Kidney) आक्रान्त हो गया। एक एम०डी० डॉक्टर आए जिनकी फीस थी बत्तीस रुपये। उन्होंने मूत्र-विकार के आधार पर दवा शुरू की। ज्वर घटा किन्तु बेहोशी दूर नहीं हुई। हिचकी आने लगी। एक दिन उनकी हालत बिगड़ती देखकर उन्होंने कहा, ऑक्सीजन देने की जरूरत है। अस्पताल में भर्ती कराने पर उनकी पत्नी राजी नहीं हुई। डॉक्टर ने रोगी के बड़े लड़के सत्येन्द्रनाथ को जो उस समय एम०कॉम० के छात्र थे, डिस्पेंसरी में बुलाकर कहा, घर पर ऑक्सीजन देने के लिए अभी मुझे लाकर एक सौ रुपये देने होंगे। सत्येन्द्र ने कहा, "इस रात में तो सौ रुपये का इन्तजाम नहीं कर सकूँगा। आप ऑक्सीजन दें, कल सवेरे ही रुपये आपको दे दूँगा।"

इस पर डॉक्टर राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा, "इस रोगी को मैं अपने हाथ में नहीं रखूँगा, मैंने छोड़ दिया।"

बड़ी आफत। घर पर दूसरा कोई अभिभावक नहीं। ऐसे गम्भीर अवसर पर राय देने के योग्य कोई पड़ोसी भी नहीं। खोजते-खोजते एक नवयुवक डॉक्टर मिल गया। उसने उस रात के लिए कुछ दवा का इन्तजाम कर दिया और दूसरे दिन अपने शिक्षक प्रसिद्ध डॉक्टर और डॉक्टरी के ग्रन्थ-लेखक अखिल मजूमदार को ले आया।

पहला डॉक्टर जब छोड़कर चला गया तब रोगी की पत्नी ने बाबा की एक छोटी तस्वीर लाकर रोगी के सिर पर रखते हुए कहा, "अब लेना हो तो ले लो और बचाना हो तो बचाओ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी निरुपाय स्थिति में व्याकुल प्रार्थना को यथास्थान पहुँचने में देर नहीं लगी। श्रीमान् सत्येन्द्र अक्षय दादा को लिखते हैं—

"दूसरे दिन दरवाजे पर एक सौम्य मूर्ति संन्यासी प्रकट हुए, छाती तक लटकती दाढ़ी और लम्बी मूँछ। उस विराट् पुरुष ने कुछ माँगा। मेरी छोटी बहन कटोरियों में थोड़ा चावल लेकर भीख देने गयी। इस पर उन्होंने कहा, इतने से क्या होगा ? बहन ने कहा, घर पर बड़ी विपत्ति आइं है, बोलो बाबा, मैं क्या करूँ। संन्यासी ने पूछा, किस बात की विपत्ति? बहन ने जवाब दिया, पिताजी बहुत बीमार हैं। संन्यासी ने कहा, मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा कहा क्या झूठ होगा ? मैं कहता हूँ, तुम्हारे पिता निरोग हो जाएँगे। मैं क्या यों ही आ गया हूँ ? मैं जिम्मेदारी लेकर आया हूँ। इसके बाद थोड़ा और चावल देने पर वे हँसते हुए चले गए।

अनाथ बाबा की अवस्था अन्तिम लगती थी, फिर भी भोग—उससे भी भयंकर भोग—शेष था। दूसरी ओर उनका परिवार निस्सहाय, किंकर्त्तव्यविमूढ़ और शरणागत था। इसी से दयामय गुरुदेव रुक नहीं सके। अपने को प्रकट करके उन्हें स्वीकार करना पड़ा, "मैं बाध्य होकर आया हूँ।" अद्‌भुत बात है। जिम्मेदारी और बाध्यता थी ही। ऐसा न होने पर गुरु क्या ? किन्तु रोगी को तुरत खींचकर खड़ा नहीं किया जा सकता। इसी से उन्हें कहना पड़ा, 'मेरी बात क्या व्यर्थ होगी ?' मतलब—जो भी हालत हो जाय, तुम लोग निराश न होना।

डॉ० मजूमदार ने कहा था, रोग-निर्णय ही नहीं हो पा रहा है। इसके अलावा बाद में देखा गया उनकी पीठ में घाव (बेडसोर) हो गया था। इसके ठीक होने पर देखा गया कि उनकी रीढ़ की बगल में घाव हो गया है और उसमें से धीरे-धीरे सड़ा मांस और दुर्गन्धित मवाद अधिक मात्रा में निकलने लगा। यन्त्र द्वारा निकाले गये पेशाब में भी असह्य दुर्गन्ध थी। डॉक्टर ने कहा, अपने डॉक्टरी जीवन में यह एक नई जानकारी है, यह एक भीषण गैंग्रीन (gangrene) है। इस बीभत्स दृश्य को और अधिक उद्‌घाटित करने की जरूरत नहीं। घाव आठ-नौ महीने रहा, तब रोगी की बेहोशी दूर हो जाने पर भी पूर्व स्मृति खो गयी थी। इस प्रकार प्रायः डेढ़ साल भोगने पर वे निरोग हो गये—कहा जा सकता है कि उन्होंने नया जीवन पा लिया। समझते हैं कि इस देह में ही कर्म समाप्त करने के लिए उनका कर्म-काल बढ़ा देना पड़ा था।

[३]

डॉ० नृपेन्द्रमोहन मुखोपाध्याय

मेरी स्त्री पहली सन्तान के पैदा होने के बाद से ही (बाईस साल पहले) वात-ज्वर से ग्रस्त हो गयीं। थोड़े-थोड़े ज्वर के साथ-साथ सारे शरीर और शरीर की गाँठों में दर्द होता। प्रातः नौ-साल तक अनेक तरह की दवाएँ करने पर भी रोग दूर नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ। उसके बाद एक और सन्तान होने के बाद से शारीरिक दशा और भी बिगड़ गयी। पेट में दर्द और ज्वर बराबर बना रहता। भूख और नींद धीरे-धीरे कम हो गयी। दवाओं से कोई लाभ नहीं, जलवायु के परिवर्तन कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। इसके बाद प्रतिदिन तीसरे पहर चार बजे रीढ़ की भीतर असह्य पीड़ा होने लगी। यह लगभग एक घण्टा तक बनी रहती, तीव्र पीड़ा के समय रोगिनी काटे गये बकरे की तरह बिछौने पर छटपटाती रहती। पीड़ा के समय ज्वर बढ़कर थर्मामीटर की अन्तिम सीमा तक पहुँच जाता। पीड़ा इतनी प्रबल होती कि उसे देखकर डॉक्टर भी स्थिर नहीं रह पाते थे। फिर दवा से कुछ दिनों के लिए पीड़ा शान्त हो गयी। स्थानीय विशिष्ट डॉक्टरों और दो सिविल सर्जनों की दवा से रोग का प्रतिकार न देख कलकत्ता के एक प्रसिद्ध कविराज के हाथ चिकित्सा का भार सौंपा गया। कविराज के डेढ़ महीने तक यत्नपूर्वक दवा करने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन तो अतिशय पीड़ा के कारण रोगिनी बेहोश हो गयी थी। उस समय उसकी नाक से खून बह रहा था। इसके दूसरे दिन बाँया हाथ और पैर सुन्न हो गये और अन्न-नलिका में भी कुछ-कुछ जड़ता देखी गयी। लेटे हुए कुछ भी निगलने की शक्ति न रही। प्यास इतनी तेज लगती कि दिन-रात भर में प्राय: एक घड़ा जल समाप्त हो जाता। दो कमला नींबू का रस और एक डाभ का पानी यही उसका आहार था। फिर कोई ग्लूकोज देने पर देखने में आया कि तरल वस्तु निगलने की शक्ति उसमें आ गयी है। किन्तु यदि उसे ठीक से बिठा दिया जाता तभी वह निगल पाती। इस तरह धीरे-धीरे दुबला होता हुआ उसका शरीर अस्थि-चर्म-शेष हो गया। चींटियाँ शरीर के एक-एक अंश के चमड़े में 'बेड-सोर' की भाँति घाव करने लगीं। किसी समय अकेला पाकर कौआ एक पैर पर बैठ कर दूसरे पैर की उँगली नोच लेने का प्रयास करने लगा। दिन और रात में अनगिनत बार उठा-बिठाकर पानी पिलाना पड़ता। अपने घर के सब लोगों की सेवा से थक जाने पर मेरी ससुराल के कई जनों को सेवा में लगाना पड़ा। सबने हालत को देखकर उसके जीने की आशा छोड़ दी। निराशा का एक और विशेष कारण यह बन गया कि शिवरात्रि-व्रत पालन के लिए हमारे घर के कई लोग उसी समय प्राय: दस मील दूर हम लोगों के खेती वाले घर पर जाते थे, जहाँ हमारे पिता-माता के पास श्रीश्रीबाबा का दिया हुआ एक बाणेश्वर लिंग था, जिसे बाबा ने अपने तालु-मूल से निकालकर मेरी जननी को पूजा के लिए दिया था। शिवरात्रि-व्रत के समय पहले पहर में मेरी जननी को एक दिव्य दर्शन मिला—'गुरु का राज्य।' वहाँ कोई भी सांसारिक वस्तु न थी, केवल ज्योतिर्मय श्री गुरु वहाँ बैठे थे और उनके श्री चरणों के नीचे कंकालशेष मेरी स्त्री की मूर्ति बैठी थी। उसे वहाँ देखकर जननी चौंककर बोल पड़ी,—'बड़ी बहू। तुम यहाँ हो ?'' उसने उत्तर दिया,—''श्रीगुरु के चरणों में स्थान मिल गया है।'' इस दर्शन का अर्थ हमने समझ लिया—मृत्यु अनिवार्य है, अब रक्षा नहीं।

इस तरह छह महीने बीत गये। रोगिनी स्वयं जीने की आशा छोड़ गुरु के चरणों में देह-त्याग की प्रार्थना करने लगी। परम कारुणिक श्री बाबा ने कृपा की। स्थूल देह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में रहते समय एक बार उन्होंने इस अधम को मृत्युरोग से बचाया था, स्थूल शरीर त्याग देने पर भी कृपालु गुरु ने इस बार स्त्री को बचा लिया। आधीरात को जागते समय उन्होंने दर्शन दिया—स्त्री के सिरहाने आकर बैठ गये। उस समय रोते हुए मेरी स्त्री ने श्री चरणों में गिरकर प्रार्थना की—"बाबा, कृपा करके मुझे अपना लें, देखें, मेरे शरीर की क्या दशा है।' बाबा ने उसके सिर पर अपना दाहिना हाथ रख दिया। उस समय वह अपने शरीर के भीतरी यन्त्रों को स्पष्ट रूप से देख सकी। बाबा ने कहा, "आज से तुम्हारा वात रोग दूर हो गया, मूल बीमारी पेट की है। चिकित्सा कराओ।"

यह कहकर वे अन्तर्हित हो गये। बाबा की दिव्य देहगन्ध तब भी गई नहीं थी। बहुत दिनों तक कष्ट झेलने के कारण मन का सन्देह मानो मिटना ही नहीं चाहता था तथापि मेरी पत्नी ने अपने सुन्न हाथ से पानी का गिलास उठाकर सोते हुए ही पानी पीकर देखा। आश्चर्य कि जो पहले बिना किसी दूसरे की सहायता के बिछौने से उठ नहीं सकती थी, अब अपने आप उठ बैठी और अपने सुन्न पड़े हाथ, पैर को घुमा-फिरा सकी। तब कहीं विश्वास हुआ कि कृपामय गुरुदेव सचमुच आये और उन्होंने कृपा की है। तब खुशी से आत्म-विस्तृत होकर उसने अपनी बहन को बुलाकर कहा, "देखो दीदी, गुरुदेव ने मुझे अच्छा कर दिया।"

घटना सुनकर मुझे कोई खास खुशी नहीं हुई क्योंकि वह ज़ानते हुए भी कि कोई भी रोग उनकी कृपा से दूर हो सकता है, बाबा ने यह क्यों कहा कि "मूल बीमारी पेट की है, उसकी दवा कराओ।" गुरु की कृपा से वातरोग अवश्य दूर हो गया, किन्तु हमें पापी समझकर उन्होंने मूल बीमारी दूर नहीं की। सम्भव है, कुछ दिन पश्चात् पेट की बीमारी से ही यह मर जाय। वातरोग तो ऐसा दूर हुआ कि पैर से थोड़ा ऊपर चमड़े के नीचे एक कड़ा गठियाग्रस्त गाँठ (Rheumatic node) का गुल्म (Tumour) जो विगत १०-१२ साल से धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था, वह एकदम गायब हो गया।

वातरोग से पूरी तरह छुटकारा पा जाने पर अब आँत की गाँठें (Intestinal Tuberculosis) बढ़ने लगी। पीड़ा और ज्वर साथ लग गये। रोगिणी के इच्छानुसार उसे कलकत्ते ले जाकर विशिष्ट डॉक्टर डेन्हम व्हाइट को दिखाया गया। डॉ० डेन्हम व्हाइट बाबा के कृपापात्र रह चुके थे। उन्होंने जब यह जाना कि हम लोग श्री विशुद्धानन्दजी परमहंस के शिष्य हैं और उन्हीं की कृपा से मेरी स्त्री का वातरोग दूर हुआ है, तब तो वे विशेष प्रयास करने लगे, किन्तु अन्त में उन्हें कहना ही पड़ा कि इसकी दशा चिकित्सा से परे है।

घर लौट आने के कुछ दिन बाद मेरे छोटे भाई खगेन ने एक दिन सुना—जाने किसने ऊपर से कहा,—"होमियो आयोडीन तुम्हारी भाभी की दवा है।" खगेन एम० बी० डॉक्टर है और कुछ दिनों से होमियोपैथी चिकित्सा करता है। इसके पहले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह अनेक बार अपनी भाभी को होमियो दवा दे चुका था और उसको निष्फल होते देखकर भी वह आज तक देता जा रहा था, किन्तु आयोडीन उसे कभी ठीक नहीं जँचा था। देव-वाणी पर विश्वास करके उसके दवा देते ही रोगिणी धीरे-धीरे अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगी। पकी हुई पेट की गाँठें अपने आप फूट गयीं और मल के साथ खून और पीब बाहर निकलने लगे। पेट का भार धीरे-धीरे घटकर सहज स्थिति में आ गया। अब जाकर हमने समझा कि शिवरात्रि के दिव्य दर्शन का फल—गुरु-चरणों में स्थान पाने का अर्थ मृत्यु नहीं, उनकी कृपा का लाभ था—मृत्यु-रोग से छुटकारा था।

■

बेले की माला को चम्पे की माला में बदल देना

एक दिन श्री विशुद्धानन्द परमहंसदेव की योग-शक्ति की चर्चा सुनकर, इस शक्ति के परीक्षार्थ इंग्लैण्ड से एक विशिष्ट दम्पति, विशुद्धाश्रम, ६, कुण्डू रोड, भवानीपुर, कलकत्ता पधारे। साथ में बंगाली, अंग्रेजी दोनों भाषाओं के ज्ञाता एक दुभाषिये को भी साथ लेते आये।

वे अपने साथ स्वामीजी को अर्पण करने के लिए बाजार से खरीदकर बेले के फूलों की एक सुन्दर माला भी, पूरी तरह से केले के पत्ते में ढकी हुई, लाये थे।

बाबा ने उनसे पूछा—"क्या तुम केले के पत्ते में 'चम्पा' की माला लाए हो ?"

दुभाषिये के बताने पर कि बाबा क्या पूछ रहे हैं, वे दम्पति आपस में कहने लगे कि हमने योगिराज की अलौकिक योग-शक्ति के विषय में बड़ी-बड़ी बातें सुनी थीं और उन्हीं को देखने हम विलायत से भारत आये हैं पर हमें तो बड़ी निराशा हुई। हम तो बेले की माला लाये हैं और महात्मा कहते हैं वह चम्पे की माला है।

गुरुदेव ने दुभाषिये से कहा—"इनसे पूछो वे यह माला किसलिए लाये हैं ?"

दुभाषिये ने पूछकर उत्तर दिया—'आपको देने के लिए।' योगिराज बोले 'फिर यह देते क्यों नहीं ?'

इस पर दम्पति केले के पत्तों में बँधी माला को खोलने लगे और यह देखकर आश्चर्यचकित हो गये कि उनके देखते-देखते बेले के फूलों का रंग तथा आकार बदलकर वे फूल चम्पा के होते जा रहे हैं और पूरी माला बदलकर चम्पा हो गयी।

गुरुदेव की योग-शक्ति का यह प्रदर्शन देखकर वे नतमस्तक हो गये और उनको पूर्ण विश्वास हो गया।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झाल्दा के राजा उद्धवचन्द्र सिंह की दुर्घटना से रक्षा

फाल्गुन मास बं०सं० १३१७ में बर्दवान आश्रम में एक दिन श्री विशुद्धानन्दजी ने अपने पुत्र दुर्गादास से तत्काल एक नया चाकू लाने को कहा। वे तुरन्त एक नया रेजर-ब्लेड ले आये। बाबा ने तुरन्त उससे अपनी बाँयीं हाथ के बाहरी भाग को काट डाला जिससे रक्त की धार बह निकली।

उपस्थित शिष्यगण अवाक् होकर यह दृश्य देखते ही रह गये। तब बाबा ने बताया—"आज उद्धव की मृत्यु का दिन था। यदि मैं अपनी बाँह काटकर रक्त न निकालता तो मोटर-साइकिल दुर्घटना के फलस्वरूप उसका भेजा फट जाता और अधिक मात्रा में रक्त-हानि के कारण उसकी मत्यु हो जाती।"

एक सप्ताह बाद गुरुदेव के पास उद्धवचन्द्र सिंह का पत्र झाल्दा से बर्दवान आया जिसमें लिखा था—"बाबा! मैं पुरुलिया से झाल्दा मोटर-साइकिल पर लौट रहा था। एक कैंची-मोड़ कर तीव्र गति में मोड़ लेते समय मैं मोटर-साइकिल पर से फेंक दिया गया। मेरा सिर एक चट्टान से टकराया तथा मैं बुरी तरह घायल हो गया। मैं बेहोश होकर गिरने ही वाला था कि उसी समय मुझे लगा जैसे आपने मुझे अपनी गोदी में ले लिया हो।"

तारीख तथा समय का मिलान करने पर देखा गया कि यह ठीक वही दिन तथा समय था जब बाबा ने बर्दवान में अपनी बाँह को चीरकर रक्त निकाल फेंका था।

■

गुरुभगिनी के पुत्र की कटी उँगली को जोड़ना

मैं, बेलादत्त, सन् १९२६ में प्रथम बार ८ वर्ष की अवस्था में अपने माता-पिता के साथ, जो बाबा के शिष्य थे, श्री गुरुदेव के विशुद्धानन्द कानन आश्रम, काशी आयी थी। मेरे पिता श्री शचीन्द्रनाथ वसु, कलकत्ता हाईकोर्ट में एडवोकेट थे। उन्होंने गुरुदेव को बताया कि वे मेरा विवाह वाराणसी के वकील श्री सतीशचन्द्र दे के सुपुत्र श्री सुरेश दे से करने जा रहे हैं। इस पर बाबा ने कहा—"तुम्हारी पुत्री का विवाह कहीं और होगा। और सत्य ही १५ वर्ष की होने पर मेरा विवाह श्री शचीन्द्रकुमार दत्त, कलकत्ता पुलिस कोर्ट के वकील के साथ हुआ। दो वर्ष में ही मेरे दो पुत्र हुए—समीर और सुशान्त। सुशान्त के जन्म-पत्र के अनुसार वह मेरे पति के लिए घातक सिद्ध हो सकता था।

यह जानकर हम लोग बड़े ही चिन्तित हो उठे। इस पर हमारे परिवार के एक मित्र श्री जानकीनाथ बन्द्योपाध्याय ने, जो गुरुदेव के शिष्य थे, सुझाव दिया कि हम लोग श्री विशुद्धानन्दजी से दीक्षा ले लें तो हो सकता है वे हमें इस संकट से मुक्ति दिलवा सकें। वे हमें भवानीपुर आश्रम में लिवा ले गये तथा गुरुदेव से हमारा परिचय भी करा दिया। सन् १९३६ में जब सुशान्त दो वर्ष का था, हम दोनों की दीक्षा हो गई तथा उस वर्ष कुछ समयोपरान्त बाबा ने हम लोगों को काशी जाने को कहा। काशी में हम लोग मामा के घर पिशाचमोचन (वाराणसी) में ठहरे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दिन मेरे पति अकेले ही विशुद्धानन्द कानन आश्रम में गुरुदेव के दर्शनों को गये थे। गुरुदेव ने चाकू मँगवाकर अपनी उँगली काट ली। शिष्यों ने जब इसका कारण जानना चाहा तो वे बोले—"तुम शीघ्र ही जान पाओगे कि मैंने ऐसा क्यों किया है" और मेरे पति से बोले—"बापू! बहू माँ से कहना कि वह अधिक सावधानी बरता करे। तुम तुरन्त घर चले जाओ।"

मेरे पति की समझ में कुछ नहीं आया पर वे तुरन्त घर आ गये। यहाँ पहुँचते ही मेरी माता ने उन्हें बताया कि सुपारी काटते-काटते मेरी असावधानी से सरौते से मेरे पुत्र सुशान्त की उँगली उसमें आकर कट गयी। मैं सुपारी काटते समय अपने भाई से बातचीत भी करती जा रही थी। उसी समय जाने कब खेल ही खेल में सुशान्त ने अपनी उँगली सरौते के बीच में दे दी और बिना देखे मैंने सरौता दबा दिया। इससे सुशान्त के दाहिने हाथ की कन्नी उँगली का पोरुआ कटकर अलग हो गया। मेरी माता ने कहा कि—"मैंने पोरुए के कटे टुकड़े को उँगली के ऊपर यथास्थान रखकर गुरुदेव का नाम लेकर बाँध तो दिया पर न जाने अब क्या होगा।" तुरन्त ही मैंने पट्टी खोलकर उँगली देखी तो यह देखकर सब ही लोगों को परम आश्चर्य हुआ कि उँगली साबूत थी और ठीक भाव से संचलन कर पाती थी। मिलान करने पर देखा गया तो उँगली कटने तथा गुरुदेव का चाकू से अपनी उँगली काटने का समय एक ही था। घरभर के लोगों के आनन्द का ठिकाना न रहा।

श्री श्यामागति रॉय चौधरी, मेडिकल ऑफिसर, लोदना कोलियरी, डाकघर-झरिया, जिला—मानभूम (प० बं०)—एक अद्भुत घटना

सन् १९२९ के जाड़ों की बात है। मैं लोदना कोलियरी, झरिया, जिला—मानभूम (प० बंगाल) का डॉक्टर था। और दिनों की भाँति मैं अपनी मोटर में बैठ बँगले से रेल की लाइन पार करके कोलियरी अस्पताल ड्यूटी पर गया। लौटते समय जैसे ही मैं रेल का फाटक पार करने लगा (जिस पर फाटक-चौकीदार नहीं था) उसी समय एक रेलगाड़ी भी द्रुत गति से ठीक फाटक पार कर रही थी। मैं तो भय के मारे हक्का-बक्का होकर अपनी सूझ-बूझ एकदम खो बैठा किन्तु न जाने कैसे मेरी मोटर से केवल एक फुट की दूरी पर रेल अचानक रुक गयी यद्यपि रेल का इंजन-बराबर चल रहा था। हमलोग (मैं और मेरा चपरासी) घबराकर बाहर निकले। इंजन-ड्राइवर ने कहा—"साहब, आप बड़े ही भाग्यवान् हैं। अचम्भा है कि मैं तो घबराकर ब्रेक भी नहीं लगा पाया और इंजन बन्द भी नहीं है। परन्तु रेलगाड़ी आप से आप ही रुक गयी है, आगे नहीं बढ़ पायी! चमत्कार है!

हम लोग मोटर में बैठे और जैसे ही रेल की पटरी पार की कि रेलगाड़ी फक-फक करती अपने आप आगे बढ़ गयी। उसी समय हमें बाबा की पद्मगन्ध नाक में आयी और हम समझ गये कि गुरुदेव ने स्वयं आकर ही हमारी रक्षा की है। अगले दिन ही मैं बाबा के दर्शनों को गया तो मुझे देखते ही बाबा बोले—"रेल के खुले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फाटकों पर पार करते समय बहुत सावधानी बर्तनी चाहिए, आगे कभी जोखिम उठाने की चेष्टा मत करना। मुझे तुम लोगों की दुर्घटनाओं से रक्षा करने के लिए निरर्थक भागदौड़ करनी पड़ती है।''

■

श्री जगदानन्द गोस्वामी की चीते से जीवन-रक्षा

एक रात्रि को गुरुभाई श्री जगदानन्द गोस्वामी शौच के लिए अपने घर से (जो सरपी ग्राम, जिला बर्दवान में था) बाहर जंगल में गये थे। शौच के लिए अभी बैठे ही थे कि अचानक उनकी दृष्टि एक चीते पर पड़ी जो उन पर आक्रमण करने के पैंतरे में तैयार था। कोई और चारा न देख, जगदानन्द गोस्वामी ने अपनी दृष्टि तो चीते की ओर जमा दी तथा शरणापन्न होकर गुरुदेव श्रीविशुद्धानन्दजी का आर्त्त भाव से ध्यान किया। आश्चर्य कि कुछ ही मिनटों के भीतर चीता उठा और जंगल के भीतर भाग गया।

कुछ दिनों पश्चात् जगदानन्द गोस्वामी गुरुभाई श्री दक्षिणा रॉय चौधरी के साथ गुरुदेव को प्रणाम-दर्शन करने आये। उन लोगों के कुछ कहने से पूर्व ही गुरुदेव जगदानन्द से बोले—''हे! तुम उस रात को चीते से भयभीत हो गये थे।''

जगदानन्द ने उत्तर में कहा—''बाबा! आपकी कृपा से ही उस रात मेरी जीवन-रक्षा हुई।''

बेला के फूलों का स्फटिक में परिवर्तन

६ बैशाख बं० सं० १३३० को बाबा श्री विशुद्धानन्द परमहंस गुरुभाई जोगेशचन्द्र बसु के घर ७, कुण्डू रोड, भवानीपुर, कलकत्ता में ठहरे हुए थे। उस समय उन्होंने बेला के दो फूलों को स्फटिक में परिवर्तित करके एक को तो जोगेश बसु के शरीर में प्रवेश करा दिया तथा दूसरे को गुरुभाई केदार भौमिक के शरीर में—और कहा कि इससे तुम्हारे शरीर निरोग रहेंगे तथा परमाणु उत्तम होंगे। आश्चर्य तो यह था कि ६।५ इंच व्यास के गोलाकार स्फटिक शरीर के रोम-छिद्र में से होकर प्रवेश कराने पर रक्त की एक बूँद भी बाहर न निकली।

गुरुदेव की आकाश-गमन की शक्ति

मैं (लीखू घोषाल) उन दिनों विशुद्धानन्द कानन आश्रम, क़ाशी में गुरुदेव की सेवा में रह रहा था और प्रतिदिन आश्रम की बाजार-हाट से चीजें लाने की सेवा कर दिया करता था।

गुरुदेव रात्रि को प्रायः दस बजे अपने पूजा-गृह में प्रविष्ट होकर प्रायः नौ बजे प्रातः उसमें से बाहर निकलते थे। एक दिन मैं चीजें खरीदकर बाजार से दस बजे लौट रहा था। बाबा के पूजा-गृह से बाहर निकलने पर उनके स्नान-जल (चरणामृत)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को शिष्यों में वितरण का काम भी मेरे जिम्मे था इसलिए देर से लौटने के कारण मैं तनिक चिन्तित था और जब आश्रम से कोई २५ गज की दूरी पर था तो मैंने बाबा के दुतल्ले के पूजागृह की ओर दृष्टि डाली, यह देखने के लिए कि कपाट खुले हैं या नहीं।

परन्तु देखता क्या हूँ कि बाबा आकाश-मार्ग से हवा में उड़ते हुए दक्षिण कक्ष से आ रहे हैं और पूजागृह की पूर्व की खिड़की में से, जिसमें तीन-तीन इंच की दूरी पर छड़ें लगीं थीं, पूजागृह में घुसे गये। उनका शरीर तो उस समय बड़ा पतला-दुबला लगा पर चेहरा त्यों का त्यों सामान्य आकार का ही था—छोटा न था।

अपने नेत्रों से, पूरी चेतना मं, यह देखकर अवाक् रह गया। पीछे गुरुदेव से पूछने पर उन्होंने बताया कि मैं आकाश-मार्ग से ज्ञानगंज गया था और दस बजे वहीं से लौट रहा था और खिड़की के सीखचे या दीवारें आदि मेरे आवागमन में (योग-सिद्धियों के कारण) कोई बाधा उपस्थित नहीं करतीं।

■

मन के भाव जान लेने की घटना

श्रीमती लीला गुप्ता डाकर-मगूला-मध्यप्रदेश लिखती हैं कि स्वयं गुरुदेव ने उन्हें निम्नलिखित दो घटनाएँ सुनाई थीं—

[१]

बाबा के एक शिष्य एक बार अपने एक मित्र से बाबा की इच्छा-शक्ति के ज्ञान के विषय में वार्ता करते-करते उनसे कह रहे थे कि बाबा दूसरे के मन के भीतर के भावों को जान लेते हैं।

मित्र को इस कथन पर विश्वास नहीं हुआ और अनेक वाद-विवाद के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि वे दोनों बर्दवान से चलकर बीस मील की दूरी पर गुष्करा ग्राम जायँगे जहाँ बाबा उस समय निवास कर रहे थे। और मित्र तभी बाबा की इस शक्ति में विश्वास करेंगे यदि श्री बाबा उन लोगों के पहुँचते ही उन्हें रसगुल्ले खाने के लिए अर्पण करेंगे।

तदनुसार दोनों मित्र निश्चित दिन गुष्करा के लिए चल पड़े। इसी बीच गुरुदेव ने गुष्करा में अपने सेवक से कहा कि "हलवाई की दुकान से एक हाँड़ी भरकर रसगुल्ले ले आकर रख लो, कुछ लोग आने वाले हैं।" ऐसा ही किया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बस, जैसे ही दोनों मित्रों ने जाकर श्रीचरणों में प्रणाम किया कि गुरुदेव ने अपने सेवक से कहा कि रसगुल्ले की हाँड़ी लाकर इन लोगों के हाथ-मुख धुलवाकर इनको प्रसाद भोग कराओ।

शिष्य का मित्र तो अवाक् होकर देखता ही रह गया। बाबा के श्रीचरणों में पड़कर उसने अ[illegible] की धृष्टता की क्षमा-याचना की तथा गुरुदेव से दीक्षा की प्रार्थना की।

[२]

सन् १९१९ में गुष्करा के निवास-काल में बाबा को अर्धरात्रि में एक दिन प्यास लगी। उन्होंने पीने को पानी माँगा। सुराही में से गिलास में ढालकर उनको जल दिया गया। पानी पीते ही बाबा बोले—"इसमें क्या था ? साहनी! जल्दी उठो और एक बाल्टी जल लाओ। देखूँ तो मैं जल के साथ क्या निगल गया ?"

उनका सेवक 'साहनी' तुरन्त एक बाल्टी में जल लाया। गुरुदेव तुरन्त उस बाल्टी भर जल को पी गये और तुरन्त ही कुंजल करके उसकी उल्टी कर दी। उल्टी के जल के साथ ही एक सर्प का बच्चा निकला जिसे गुरुदेव पानी के साथ निगल गये थे और जो अब मर चुका था।

श्री महादेव तो विष निगल गये जिसको उन्होंने कण्ठ में धारण कर लिया और श्री गुरुदेव सर्प निगल गये जिसको उन्होंने बाहर उलटकर निकाल फेंका।

शास्त्रों के कथन अक्षरशः सत्य हैं—दो प्रत्यक्ष प्रमाण

[१]

सन् १९१९-२० की बात होगी। बाबा उस समय पुरी गये हुए थे। वहाँ के आश्रम में पुरी महाराज के पुरोहित राज-पण्डित श्री सदाशिव मिश्र प्रायः बाबा से शास्त्रों के विषय में तर्क-वितर्क करने आ जाते थे। एक दिन बाबा के इस कथन पर कि—"शास्त्रों में जो कुछ भी लिखा है, अक्षरशः सत्य है"—पं० सदाशिव मिश्र ने कतिपय शंकाएँ प्रकट करते हुए कहा—"बाबा, अधिकतर तो सत्य ही हैं परन्तु दो-एक कथनों पर मुझे संशय अवश्य है, जैसे एक तो लिखा है कि—'श्रीकृष्ण भगवान् ने बालपन में यशोदा माता को विश्व-रूप दर्शन कराया'—तथा दूसरा कि—'विष्णु भगवान् की नाभि से कमल निकला और उस पर ब्रह्माजी प्रकट हो गये। ये दोनों बातें मुझे तो असम्भव और केवल गल्प लगती हैं और इन पर मैं तभी विश्वास कर सकता हूँ जब अपनी आँखों से इन्हें प्रत्यक्ष देख लूँ।" गुरुदेव सुनकर मुस्कराये पर उस समय कुछ उत्तर नहीं दिया।

संयोगवश चार-पाँच दिन पश्चात् पं० सदाशिव मिश्र एक दिन उसी समय आ पहुँचे जब गुरुदेव आह्निक करके पूजा-गृह से बाहर निकले ही थे। बाबा ने एक शिष्य से गंगाजल लाने को कहा और तख्त पर मसनद के सहारे लेटकर अपनी नाभि का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंगा-जल से प्रक्षालन किया तथा नाभि के चारों ओर हाथों से टीप देने लगे। राजपण्डित सदाशिव मिश्र तथा और शिष्यगण भी इस घटना को ध्यान से देखने लगे। थोड़ी ही देर में गुरुदेव की नाभि में से एक कमल की नाल फूल सहित निकली तथा धीरे-धीरे बढ़ने लगी और कुछ ही समय में वह कई फुट ऊँची हो गई और उस पर कमल का फूल भी बड़ा हो गया। सब लोग आश्चर्यचकित होकर देखते रहे।

थोड़ी देर बाद गुरुदेव ने उसको फिर से अपनी नाभि में समेट लिया और बोले, "आप लोग अभी ब्रह्माजी के दर्शनों के अधिकारी नहीं हैं नहीं तो मैं कमल के पुष्प पर ब्रह्माजी को भी ला बिठाता।

[२]

इसी प्रकार एक और दिन भी ऐसा ही संयोग घटा। गुरुदेव ने गंगाजल का आचमन किया, और राज-पण्डित सदाशिव मिश्र से अपने खुले मुख के भीतर देखने को कहा। पण्डितजी बोले—बाबा! मुझे तो कोई विशेष बात नहीं दिखाई देती। बाबा बोले—"इन नेत्रों से नहीं दिखेगी। लो! अब मैं तुम्हें दिव्य-चक्षु प्रदान करता हूँ जिससे तुम भगवान् के विराट् रूप के दर्शन कर सकोगे।" और यह कहकर उन्होंने पण्डितजी के नेत्रों पर हाथ फेरा और कहा, अब देखो।

अब तो पण्डितजी बाबा के खुले मुख में दृश्य देखते जाते और आश्चर्य, प्रसन्नता तथा भय अनेक भाव उनकी मुंद्रा पर झलकते जाते। थोड़ी देर में गुरुदेव ने मुख बन्द कर लिया। राज-पण्डितजी फिर भी अचेतन से ही रहे। तब गुरुदेव ने उनके नेत्रों पर फिर से हाथ फेरा और उनकी चेतना लौटी। पूछने पर उन्होंने बताया कि विराट् रूप-दर्शन में उन्होंने क्या-क्या विचित्र दृश्य देखे।

तत्पश्चात् शास्त्रों की सत्यता पर पूर्णरूपेण विश्वास करते हुए गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक हुए।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट ४

श्री नन्दलाल गुप्त के निजी अनुभव

१. श्री गुरुचरणों के प्रथम दर्शन

सन् १९३० में मैंने टीमसन् सिविल इंजीनियरिंग कॉलेज, रुढ़की (जो आजकल रुढ़की यूनीवर्सिटी है) के सिविल इंजीनियरिंग कक्षा में प्रवेश लिया तथा सन् १९३३ में पास करके निकला। एक वर्ष बाद सन् १९३१ में श्री उमाशंकर ने भी प्रवेश लिया। अल्प समय में ही हम दोनों एक दूसरे के सम्पर्क में आ गये क्योंकि हमारे कमरे एक ही छात्रावास में पास-पास ही थे। इसे पूर्व संस्कारों का प्रभाव ही कहिये। यह सम्पर्क धीरे-धीरे घनिष्ठ मित्रता में परिणत हो गया। तब समय-समय पर उमाशंकर मुझे अपने गुरुदेव श्री विशुद्धानन्द परमहंसदेव के विषय में कुछ-कुछ सुनाते। धीरे-धीरे मेरी भी रुचि तथा श्रद्धा श्री विशुद्धानन्द देव के प्रति जाग्रत् होने लगी।

जुलाई १९३३ में सिविल इंजीनियरिंग पास करके मैंने रुढ़की कॉलेज छोड़ा तथा नवम्बर मास १९३३ में ही सर्वे-आफ-इण्डिया में राजपत्रित अधिकारी के रूप में मेरी नियुक्ति हुई। देहरादून में एक साल के प्रशिक्षण के बाद नवम्बर सन् १९३४ में मेरा स्थानान्तरण शिलांग (मेघालय) हो गया। उसी समय प्रयाग में कुम्भ था और पूज्य पिताजी का वहाँ जाने का संकल्प था और मेरी इच्छा श्री विशुद्धानन्दजी के दर्शनों की थी। अतः यह निश्चय हुआ कि हम दोनों देहरादून से सीधे काशी चलेंगे। वहाँ स्वामीजी के दर्शन करके पिताजी इलाहाबाद कुम्भ-स्नान के हेतु प्रस्थान करेंगे तथा मैं शिलांग चला जाऊँगा। तदनुसार हम काशी विशुद्धानन्द कानन आश्रम पहुँचे तो आनन्द का वारापार न रहा जब यह देखा कि उमाशंकर तथा उनके पिता भी सपरिवार दुर्गापूजा उत्सव के उपलक्ष्य में काशी आश्रम में पधारे हुए हैं। तुरन्त हम लोगों को योगिराज के दर्शनार्थ आश्रम के विज्ञान मन्दिर के एक तल्ले पर ले जाया गया, जहाँ गुरुदेव अन्य शिष्यों तथा श्रद्धावान् भक्तों के साथ भगवत्-चर्चा में संलग्न थे। क्या तेजोमय सौम्य मूर्ति थी। देखते ही सिर श्रद्धा से स्वतः झुक गया। नतमस्तक होकर हम दोनों ने प्रणाम किया। तदनन्तर औपचारिक वार्ता के पश्चात् उमाशंकर के पिता मनमोहन लालजी के द्वारा हम दोनों ने ही गुरुदेव के समक्ष दीक्षा की प्रार्थना रखी। योगिराज ने उत्तर दिया—अच्छा पश्चिम (अर्थात् तिब्बत में स्थित ज्ञानगंज नामक गुप्त योगाश्रम जहाँ स्वामीजी के गुरु श्री १००८ महातपा महाराज निवास करते हैं) को लिखेंगे। आज्ञा प्राप्त होने पर ही दीक्षा मिलेगी। तुम चिट्ठी द्वारा पता करते रहना, आज्ञा आने पर सूचना दी जायगी।

फिर आश्रम में ही प्रसाद पाया। सन्ध्या को पिताजी इलाहाबाद के लिए और मैं शिलांग के लिए रेल द्वारा चल पड़ा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पीछे पता चला कि गुरुदेव को प्रणाम करके जब मैं तथा पिताजी दोनों ने आश्रम से बिदा ली तो बाबा ने उमाशंकर के पिता मनमोहनलालजी (जो उस समय फैजाबाद में सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट, पोस्ट ऑफिसेज़ थे) को उसी समय बता दिया था कि नन्दलाल के पिता तो कुम्भ-स्नान के पश्चात् वृन्दावन होते हुए देहरादून लौटेंगे और वृन्दावन में ही गुरु धारण कर लेंगे और हुआ भी बिल्कुल ऐसा ही। पिताजी ने स्वामी भास्करानन्दजी से वृन्दावन में दीक्षा ले ली। ऐसी थी योगीजी की अन्तर्दृष्टि।

दीक्षा

एक-दो मास के अन्तर पर मैं गुरुदेव से बराबर दीक्षा के सम्बन्ध में पत्र द्वारा पूछता रहा। प्रायः दस मास बाद सूचना मिली कि पश्चिम से अनुमति आ गई है और मेरी दीक्षा १ नवम्बर १६३५ को होगी। तदनुसार मैं शिलांग से चलकर उचित दिन सवेरे आसाम मेल से वाराणसी कैण्ट रेलवे स्टेशन पर उतरकर अपने प्रिय मित्र श्री वृजभूषणसरन वर्मा (आई०पी०), जो बनारस में एसिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस थे, के यहाँ जाकर स्नानादि करके आश्रम में ग्यारह बजे आकर उपस्थित हुआ। गुरु-शिष्यों ने जिज्ञासापूर्वक प्रश्न किया कि आज तो आपकी दीक्षा थी आप इतनी देर में क्यों आये? मैंने कहा कि पत्र में दीक्षा का समय तो नहीं लिखा अतः मैंने समझा कि १ नवम्बर को किसी समय भी दीक्षा हो सकेगी और मैंने अनजाने में हुए अपराध की बाबा से क्षमा-याचना की।

बावा ने तुरन्त पंजिका देखकर कहा कि दीक्षा कल भी हो सकती है। तब और शिष्यों ने परामर्श दिया कि ऐसे मुहूर्त्त में आपकी स्त्री की भी दीक्षा आपके साथ-साथ ही हो सकेगी अन्यथा उनकी दीक्षा के लिए फिर पश्चिम से स्वीकृति लेनी पड़ेगी जिसमें बहुत समय लग सकता है और कभी-कभी स्वीकृति नहीं भी मिलती।

अतः मैंने तुरन्त अपने श्वशुर डॉ० सोहनलाल मित्तल, मेडिकल ऑफिसर, सदर अस्पताल, फैजाबाद को तार दिया कि मेरी पत्नी को तुरन्त दीक्षा के हेतु काशी भेज दें। इस बीच दिन भर में मैंने हम दोनों की दीक्षा के हेतु सारी वस्तुएँ बाजार से मोल लेकर रख लीं। शाम को मेरी स्त्री भी आ गई। रात को हम दोनों शिक्षा-मन्दिर में सोये। प्रातः चार बजे दीक्षा का समय था। तीन बजे ही हम लोगों को मानो किसी ने धीमी आवाज दी—उठो समय हो गया तथा साथ ही बड़ी भीनी सुगन्ध आई। कपाट खोले तो कोई नहीं। पीछे ज्ञात हुआ कि गुरुदेव जब सूक्ष्म शरीर से किसी के पास जाते हैं तो सुगन्ध द्वारा अपने आने का परिचय दे देते हैं। शौचालय पहुँचने तक उस दिव्य सुगन्ध का मुझे अनुभव होता रहा। चार बजे। पहले मेरी बाबा के पूजा-गृह में दीक्षा हुई। तदुपरान्त मेरी स्त्री की दीक्षा सम्पन्न हुई। मैं पूजा-गृह के बाहर बैठा रहा। तीन दिन तक हम लोग आश्रम में ठहरे। दोनों के मन में अपूर्व उल्लास था जो कई दिन तक रहा। फिर स्थिति पूर्ववत् सामान्य हो गई। प्रायः, सायं हम दोनों यथाविधि पूजा करने लगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम घटना

२५ नवम्बर १९३५ को मैं प्रायः पाँच महीने के सर्वे के दौरे पर बिहार प्रान्त में रहा। किन्तु शरीर भी रोग-ग्रस्त रहा तथा मन भी बड़ा दुःखी तथा चंचल। आह्निक के समय विशेष चंचलता का अनुभव करता। कुछ समझ में न आया।

दौरा खतम होते ही सीधा गुरुदेव के पास काशी आया। पता चला दो दिन पूर्व ही गुरुदेव कलकत्ता चले गये हैं। शाम की गाड़ी से लौटा और अगले दिन सबेरे कलकत्ता पहुँचकर सीधे भवानीपुर छह नम्बर, कुण्डू रोड 'विशुद्धाश्रम' में पहुँचा। गुरुदेव उस समय शिष्यों से घिरे हाल घर में प्रवचन कर रहे थे। एक तल्ले पर हाल के द्वार पर पहुँचते ही गुरुदेव मेरी ओर देखकर मुस्कराये। मैंने प्रणाम किया। मुझे बैठने का संकेत किया। फिर चालू प्रसंग पूरा करके उठे और मुझे अपने साथ आने का संकेत करके अपने शयन-कक्ष में पहुँचे। मैं भी पीछे-पीछे। गुरुदेव अपने तख्त पर बैठे, मैं नीचे बैठ गया।

गुरुदेव—(बंगला में)—कैसे हो ? क्या चिन्ता है, क्या जिज्ञासा है ?

मैं—बाबा! दीक्षा के बाद से ही, मेरा शरीर तथा मन दोनों ही अस्वस्थ रहे हैं।

बाबा—मन्त्र बोलो।

मैंने मन्त्र-उच्चारण किया।

बाबा—अरे! तुम तो मन्त्र ही अशुद्ध जप रहे हो। और तुरन्त बाबा ने मन्त्र का शुद्ध उच्चारण करके मुझे बताया तथा कई बार मुझसे बुलवाया। तब बोले जाओ, अब ठीक जप करने से मंगल होगा।

मैं उसी दिन शाम की ट्रेन से फैजाबाद के लिए चल पड़ा और फिर शरीर और मन धीरे-धीरे स्वस्थ हो गये।

दूसरी घटना

जनवरी १९३७ में जब मैं आकान हिल ट्रैक्ट्स, बर्मा में सर्वे कर रहा था, मेरा मन बहुत दुःखी हो गया। और कार्य करने की अपनी क्षमता में मुझे पूर्ण अविश्वास हो गया। यहाँ तक कि मैंने नौकरी छोड़ने का विचार कर लिया। ऐसा करने से पूर्व अपने पिताजी को, श्वशुर को तथा गुरुदेव को इसी आशय का एक-एक पत्र डाला और उनकी अनुमति माँगी। इसी बीच काम करना एकदम बन्द कर दिया—होता ही न था और जंगलात के रेस्ट हाउस में रहकर पत्रोत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। पन्द्रहवें दिन उपर्युक्त तीनों के उत्तर मिले।

पिताजी ने लिखा था "बेटा, हर गुलाब के फूल में काँटे होते हैं। यदि नौकरी आसानी से मिलती तो इंजीनियर होकर तुमको सर्वेक्षण विभाग के कॉम्पिटीशन में उत्तीर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होकर सर्वे में जाने की क्या आवश्यकता थी ? देख लो यदि और चला सको तो नौकरी मत छोड़ो, पर यदि मन फिर भी न माने और जैसा तुमने लिखा है—"पागल हो जाने का डर हो—तो तुरन्त नौकरी छोड़कर चले जाओ।"

पत्र से सन्तोष न होकर दुःख हुआ कि पिताजी मेरी मनःस्थिति का अनुमान न लगा पाये। पत्र फाड़कर फेंक दिया।

श्वशुरजी ने लिखा था—

"बेटा, तुम क्वालिफाइड इंजीनियर हो। तुरन्त इस्तीफा देकर चले आओ।" पत्र पढ़कर सन्तोष हुआ।

गुरुदेव ने लिखा था—

"नौकरी मत छोड़ो। क्रिया ठीक प्रकार से करते जाओ। महाशक्ति से तुम्हारे मंगल की प्रार्थना करता हूँ।"

गुरुदेव में अटूट श्रद्धा थी अतः उसी समय टण्डैल को बुलाकर कहा कि कल से काम कर चलेंगे।

अगले दिन प्रातः ही काम पर गया और जो काम पहले अति कठिन प्रतीत होता था वही अब सरलतापूर्वक होने लगा, और गुरु-प्रेरित शक्ति से सानन्द सुगमतापूर्वक सम्पन्न भी हो गया। मैं स्वयं भी आश्चर्यान्वित हो गया। गुरुकृपा तथा गुरुशक्ति के बिना ऐसा होना सम्भव न था। यह था मेरा गुरु-कृपा और उनकी योग-शक्ति से प्रथम परिचय।

अप्रैल १९३७ में सर्वे का दौरा समाप्त होने पर, मैं सीधा गुरुदेव के दर्शनार्थ काशी आया। मन में अनेकों प्रश्न थे जिनका समाधान श्री बाबा से करने का संकल्प लेकर चला था। मलदहिया (काशी) पहुँचकर सड़क से आश्रम के फाटक के भीतर घुसते ही अपूर्व शान्ति का अनुभव हुआ। मन की सारी व्यथा जैसे दूर हो गई तथा सारे प्रश्न आप से आप ही जैसे हल हो गये। मैंने विज्ञान मन्दिर के एक तल्ले पर बाबा के दर्शनों के लिए सीढ़ियों पर चढ़कर दरवाजे पर पहुँचकर प्रणाम किया। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए श्री बाबा ने कहा—"क्या पूछना चाहते हो ? प्रश्न करो।"

मैंने कहा—"बाबा! पूछना तो बहुत-कुछ चाहता था पर आश्रम में घुसते ही सब प्रश्न स्वतः ही हल हो गये। अब कुछ पूछने को नहीं है। मन परम शान्ति का अनुभव कर रहा है।"

बाबा बोले—"ऐसे ही होता है—वत्स! क्रिया (पूजा) ठीक भाव से करते जाओ सब कुछ ठीक होगा।"

बिना बताए ही बाबा ने मन की बात जान ली और सब प्रश्नों का अप्रत्यक्ष भाव से समाधान भी कर दिया। ऐसी थी इन महायोगी की कृपा तथा शक्ति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१४ जुलाई सन् १९३७ को सन्ध्या समय श्रीश्री गुरुदेव ने अपनी जीवन-लीला कलकत्ता में समाप्त की।

तिरोधान के बाद की दो घटनाएँ

[१]

बाबा के तिरोधान के बाद दोनों (मेरी तथा मेरी पत्नी) की क्रिया में अत्यधिक शिथिलता आ गई और १९३८ के अन्त तक वह प्रायः बन्द हो गई।

अक्टूबर १९५१ में मुझे कुछ मित्रों के साथ देहरादून से (अम्बाला के पास) जगाधरी में एक पंजाबी सन्त श्री मंगतरामजी के वार्षिक सत्संग सम्मेलन में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन सन्त की दिनचर्या तथा सादगी से प्रभावित होकर मैंने, यह सोचकर कि नये पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता है, उनसे दीक्षा की प्रार्थना की। दो-तीन दिन बाद निश्चय हुआ कि अगले दिन प्रातः चार बजे वे मुझे मन्त्र देंगे, और नियमानुसार सन्तजी तो आश्रम से बाहर जंगल में रात्रि-तप हेतु चले गये और हम कुछ मित्र आश्रम के बगीचे में टहलने लगे।

आश्चर्य! एकाएक मेरे प्रत्येक श्वास के साथ अपने मन्त्र की आवृत्ति प्रारम्भ हो गई जो वर्षों से शिथिल थी। मानो यह मेरे लिए चेतावनी थी। मैने अपने एक अंतरंग मित्र से यह भेद खोला और परामर्श किया कि ऐसी अवस्था में मेरा नया मन्त्र लेना क्या उचित होगा ? परन्तु सन्त मंगलरामजी से अब सम्पर्क न था, और प्रातः भी कहने की हिम्मत न बटोर पाने के कारण मैने यथाविधि उनसे नया मन्त्र ग्रहण किया।

मन में उलझन बराबर बनी रही और उद्विग्नता इतनी बढ़ गई कि चौथे दिन मैंने श्री मंगतरामजी से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने सहर्ष मुझको अपना प्रदत्त मन्त्र न जपकर श्री बाबा द्वारा प्रदत्त मन्त्र को जपने की ही अनुमति दी। तब तक मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था कि सद्गुरु मरणोपरान्त भी अपने शिष्य की देख-रेख सदा करते हैं। इसका प्रमाण मुझे सन् १९५८ में प्रत्यक्ष मिला। वह कथा इस प्रकार है।

[२]

२ अगस्त १९५७ को मेरे पूज्य पिताजी की मृत्यु देहरादून में हो गई। इस घटना के आघात को सहन न कर सकने के कारण मैं गम्भीर रूप से बीमार पड़ गया और दो महीने की चिकित्सा से लाभ न होता देख सिविल सर्जन ने मुझे देहरादून अस्पताल के प्राइवेट वार्ड में भरती कर लिया। वहाँ भी प्रायः ढाई महीने के बाद मैं कुछ ठीक होकर निकला। १५ मार्च १९५८ को मेरा स्थानान्तरण कलकत्ता को हो गया। यहाँ पहले मास अर्थात् १७ अप्रैल तक मैं अपने परम मित्र तथा गुरुभाई उमाशंकर के पास ही टेलीफोन भवन, कलकत्ता में ठहरा। उन दिनों उमाशंकरजी जनरल मैनेजर, टेलीफोन्स, कलकत्ता थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब मेरी आह्निक क्रिया एक प्रकार से क्रमानुसार ठीक ढंग से फिर से प्रारम्भ हुई।

१७ अप्रैल १९५८ को मुझे बेलवेडियर (Central Government Officer's Flats) में पिछत्तर नं० फ्लैट आवंटित किया गया और मैं उमाशंकर परिवार से विदा लेकर वहाँ चला गया। उसी महीने मेरे बाल-बच्चे तथा स्त्री भी कलकत्ता आ गये। वहीं ७३ नम्बर के फ्लैट में श्री नागपाल, क्यूरेटर, सेन्ट्रल म्यूजियम, कलकत्ता रहते थे। वे हठयोग के आसनों के बड़े ज्ञाता थे, और प्रतिदिन प्रातः नेशनल लाइब्रेरी के मैदान में हम कतिपय अधिकारी उनकी देख-रेख में उनसे योगासन सीखा करते थे।

एक दिन की बात है कि आसन करते समय अकस्मात् मेरी दाहिनी टाँग की नस कुछ अधिक खिंच गई और उस शाम को आह्निक के समय मैं पद्मासन न लगा सका। नियमानुसार मैं सपरिवार अपनी मोटर में बैठ शनिवार को उमाशंकर परिवार से मिलने टेलीफोन भवन गया।

और दिनों के अनुसार उस दिन भी उमाशंकर तथा मैं गुरुदेव के विषय में चर्चा करने लगे। उसी सन्दर्भ में उमाशंकर ने मुझे एक गुरुभाई के सम्बन्ध में गाथा सुनाई जिनको वाक्सिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। दो बार गुरुदेव द्वारा ताड़ना पाने पर भी जब उन्होंने तीसरी बार वाक्सिद्धि का दुरुपयोग किया तो उनकी सिद्धि निष्फल हो गई, साथ में साधना भी गई और उनका पद्मासन लगना बन्द हो गया।

यह सुनते ही मुझको तो मानो काठ मार गया। एक तो पहले ही कुछ नहीं किया था और अब जब जरा दुबारा प्रारम्भ किया ही था कि पद्मासन लगना बन्द। बड़े ही दुःखित मन से मैं घर लौटा। सुखासन पर बैठकर मन्त्र-जाप करते समय आँखों से अविरल अश्रुधारा बह निकली। अगले दिन फिर वही स्थिति रही और तीसरे दिन २ अगस्त सन् १९५८ को मन आर्त्तनाद करके गुरु-चरणों में पूर्णरूपेण अर्पित हो गया। उसी समय गुरुदेव की अत्यन्त सुमधुर गन्ध आई और कान में जैसे किसी ने कहा, आसन लगाओ। डरते-डरते कि नस और न खिंच जाए, आसन लगाया और आश्चर्य यह कि आसन ही नहीं लग गया वरन् श्वास अति दीर्घ हो गये। प्रायः पाँच गुना लम्बे श्वास आने लगे और श्वास-प्रश्वास के साथ ही मन्त्र के विविध अंगों की आवृत्ति होने लगी, मानो गुरुदेव ने सूक्ष्म शरीर से आकर दुबारा दीक्षा दी हो। तदुपरान्त गुरु-कृपा से आह्निक का क्रम बराबर प्रायः ठीक ही चल रहा है यद्यपि खेद का विषय है कि अब भी जब-तब मन ढील दे देता है और क्रिया-सम्पादन में यदा-कदा भूल हो जाती है।

यह घटना गुरुदेव के तिरोधान के इक्कीस वर्ष पश्चात् की है जिससे पूर्णरूपेण प्रमाणित हो जाता है कि गुरु सदा सर्वदा जन्म-जन्मान्तर में शिष्य का मार्ग-निर्देशन करने में तत्पर रहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब तो परम पूज्य दयालु गुरुदेव से करबद्ध यही प्रार्थना है कि वे हमारी त्रुटियों और दोषों को क्षमा करके अपनी अहैतुकी कृपा हम सब पर सदा बनाये रखें। हे परम गुरु! तुम्हारी सदा जय हो।

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट ५

म० म० पं० गोपीनाथ कविराज के प्रति गुरुदेव द्वारा वर्णित

सूर्य-विज्ञान-तत्त्व

सूर्य-विज्ञान का अर्थ तथा क्रम-विकास

सूर्य-विज्ञान के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा करने के पूर्व 'सूर्यविज्ञान' शब्द का अर्थ क्या है और इस विज्ञान के क्रम-विकास का इतिहास क्या है, इस सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक है। श्रीविशुद्धानन्द परमहंस ने आधुनिक जगत् को इस विज्ञान का प्रथम परिचय प्रदान किया। सूर्य-विज्ञान क्या है ? सूर्य ही जगत् का प्रसविता है। जो पुरुष सूर्य की रश्मि ही अथवा वर्णमाला को भलीभाँति पहचान गया है और वर्णों को शोधित करके परस्पर मिश्रित करना सीखा गया है, वह सहज ही सभी पदार्थों का संघटन या विघटन कर सकता है। वह देखता है कि सभी पदार्थों का मूल-बीज इस रश्मिमाला के विभिन्न प्रकार के संयोग से ही उत्पन्न होता है। जैसे वर्णभेद से, और विभिन्न वर्णों के संयोग-भेद से विभिन्न पद उत्पन्न होते हैं, वैसे ही रश्मि-भेद और विभिन्न रश्मियों के मिश्रण-भेद से जगत् के नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अवश्य ही यह स्थूल दृष्टि में बीज-सृष्टि का एक रहस्य है। सूक्ष्म दृष्टि से अव्यक्त गर्भ में बीज ही रहता है। बीज न होता, तो इस प्रकार संस्थान-विशेष के जनक रश्मि-विशेष के संयोग-वियोग से, और इच्छाशक्ति या सत्य-संकल्प के प्रभाव से भी, सृष्टि होने की सम्भावना नहीं रहती। इसीलिए योग और विज्ञान के एक होने पर भी, एक प्रकार से दोनों का किंचित् पृथक् रूप में व्यवहार होता है। रश्मियों को शुद्ध-रूप में पहचानकर उनकी योजना करना ही सूर्य-विज्ञान का प्रतिपाद्य—विषय है। जो ऐसा कर सकते है, वे सभी स्थूल और सूक्ष्य कार्य करने में समर्थ होते हैं। सुख, दुःख, पाप, पुण्य, काम, क्रोध, लोभ, प्रीति, भक्ति आदि सभी चैतसिक वृत्तियाँ और संस्कार भी, रश्मियों के संयोग से ही उत्पन्न होते हैं। स्थूल वस्तु के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। अतएव, जो इस योजना को और वियोजन की प्रणाली को जानते हैं, वे सभी कुछ कर सकते हैं, निर्माण भी कर सकते हैं और संहार भी, परिवर्तन की तो कोई बात ही नहीं। यही सूर्य-विज्ञान है।

मैंने पूछा—''आपको यह कहाँ से मिला ? मैंने तो कहीं भी इस विज्ञान का नाम नहीं सुना।'' उन्होंने हँसकर कहा—''तुम लोग बच्चे हो; तुम लोगों का ज्ञान ही कितना है ? यह विज्ञान भारत की ही वस्तु है, उच्च कोटि के ऋषिगण इसको जानते थे, और उपयुक्त क्षेत्र में इसका प्रयोग किया करते थे। अब भी इस विज्ञान के पारदर्शी आचार्य अवश्य ही वर्त्तमान हैं। वे हिमालय और तिब्बत में गुप्त रूप से रहते हैं। मैंने स्वयं तिब्बत के उपान्तभाग में ज्ञानगंज नामक बड़े भारी योगाश्रम में रहकर एक योगी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और विज्ञानविद् महापुरुष से दीर्घकाल तक कठोर साधना करके इस विद्या को और ऐसी ही और भी अनेक लुप्त विद्याओं को सीखा है। यह अत्यन्त ही जटिल और दुर्गम विषय है, इसका दायित्व भी अत्यन्त अधिक है। इसीलिए आचार्यगण सहसा किसी को यह विषय नहीं सिखाते।''

योग और विज्ञान दोनों ही अलौकिक हैं, इसमें सन्देह नहीं है और सृष्टि आदि सब प्रकार के ऐश्वरिक कार्य दोनों ही प्रणालियों से सम्पन्न हो सकते हैं। इसलिए बाह्य दृष्टि से दोनों में पार्थक्य का आविष्कार करना सहज नहीं है। जो लोग विज्ञान का तत्त्व नहीं जानते, वे विज्ञान के सभी कार्यों को योगशक्ति के कार्य समझेंगे, किन्तु वास्तव में दोनों प्रणालियों में मौलिक भेद है। उच्च अधिकार-सम्पन्न हुए बिना यह भेद समझा नहीं जा सकता।

अन्य विज्ञान—मैंने पूछा—''क्या इस प्रकार की और भी विद्याएँ हैं?'' उन्होंने कहा ''है नहीं तो क्या ? चन्द्रविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, वायुविज्ञान, क्षणविज्ञान, शब्दविज्ञान, मनोविज्ञान इत्यादि बहुत विद्याएँ हैं। केवल नाम सुनकर ही तुम क्या समझोगे? तुम लोगों ने शास्त्रों में जिन विद्याओं के नाममात्र सुने हैं, वे और उनके अतिरिक्त और भी न मालूम कितनी हैं ?''

एक बार मेरी जप की माला टूट गई। मैं उसको ठीक शास्त्रीय ढंग से गूँथ देने के लिए बिखरे हुए रुद्राक्ष के दाने और थोड़े-से रेशम को लेकर बाबा के पास पहुँचा और उनसे मैंने प्रार्थना की। उन्होंने रुद्राक्ष के दोनों ओर रेशम की गोमुखी में रखकर उसे अपनी मुट्ठी में खींच लिया। फिर दो-तीन बार उस पर हाथ फिराकर गोमुखी मुझे दे दी। ऐसा करने में तीन-चार सेकेण्ड से अधिक समय नहीं लगा था। मैं गोमुखी से निकालकर देखता हूँ तो माला बड़ी सुन्दरता के साथ गुँथी हुई है। यहाँ तक कि सुमेरु तक विधिपूर्वक लगा है। गाँठें भी शास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार ही लगी हैं। पूछने पर उन्होंने कहा कि ''यह वायु-विज्ञान का कार्य है। जिसको तुमलोग अल्प समय कहते हो, वह वास्तव में अल्प नहीं है। सूक्ष्म स्तर में चले जाने पर उसी में दीर्घकाल का भी कार्य हो सकता है।''

किन्तु सूर्य-विज्ञान की चर्चा ही वे अधिकांश समय करते और साधारणत: इस विज्ञान का खेल ही सबको दिखलाते थे। सूर्य-विज्ञान द्वारा जो कुछ किया जाता है, अन्य विज्ञानों द्वारा भी वह हो सकता है, किन्तु विभिन्न विज्ञानों की सृष्टियों में परस्पर जो भेद है, उसको वे स्पष्ट रूप से बताते थे। उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि प्राकृतिक सृष्टि की कोई वस्तु और सूर्य-विज्ञान की सृटि की वस्तु आपात दृष्टि से एक-सी दिखलाई देने पर भी वास्तव में विलक्षण है। उसी प्रकार एक ही वस्तु यदि सूर्य-विज्ञान से उद्भूत हो एवं अन्य विज्ञान की प्रक्रिया से उद्भूत हो तो दोनों में परस्पर वैशिष्ट्य रहेगा ही। जैसे कपूर एक जागतिक वस्तु है। यह कपूर ही सूर्य-विज्ञान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के नियमानुसार साक्षात् सूर्यरश्मि से उत्पन्न हो सकता है तथा चन्द्ररश्मि से अथवा वायुविज्ञान के नियमानुसार भी रचित हो सकता है। जागतिक दृष्टि से अथवा बाहरी विज्ञान की दृष्टि से अर्थात् रासायनिक विश्लेषण से इनमें कोई अन्तर नहीं पाया जायगा; किन्तु सूक्ष्म दर्शन से इनके अन्दर निहित पार्थक्य देखा जा सकेगा। बाह्य अथवा प्राकृतिक सृष्टि की वस्तु मलिन होती है, किन्तु विज्ञान की सृष्टि की वस्तु निर्मल होती है, यह वह कहते थे और प्रत्यक्ष समझा देते थे। योगबल से भी वस्तुसृष्टि हो सकती है। केवल वस्तु ही नहीं, सजीव प्राणी भी आविर्भूत हो सकते हैं। विज्ञान की विभिन्न सृष्टियों से तथा प्राकृतिक सृष्टि से योग की सृष्टि में भी वैशिष्ट्य है।

कुछ देर तक जिज्ञासु-रूप से मेरे पूछताछ करने पर उन्होंने मुझसे कहा—"तुम्हें यह करके दिखाता हूँ।" इतना कहकर उन्होंने आसन पर से एक गुलाब का फूल हाथ में लेकर मुझसे पूछा—"बोलो, इसको किस रूप में बदल दिया जाय ?" वहाँ जवाफूल नहीं था, इसी से मैंने उसको जवाफूल बना देने के लिए उनसे कहा। उन्होंने मेरी बात स्वीकार करके बाँयें हाथ में गुलाब का फूल लेकर दाहिने हाथ से उस स्फटिक यन्त्र के द्वारा उस पर विकीर्ण सूर्यरश्मि को संहत करने लगे। मैंने देखा, उनमें क्रमशः एक स्थूल परिवर्तन हो रहा है। पहले एक लाल आभा प्रस्फुटित हुई, धीरे-धीरे तमाम गुलाब का फूल विलीन होकर अव्यक्त हो गया और उसकी जगह एक ताजा हाल ही में खिला हुआ झूमका जवा प्रकट हो गया। कौतूहलवश इस जवापुष्प को मैंने अपने घर ले आया था।

स्वामीजी ने कहा—"इसी प्रकार समस्त जगत् में प्रकृति का खेल हो रहा है; जो इस खेल के तत्त्व को कुछ समझते हें, वे ही ज्ञानी हैं। अज्ञानी इस खेल से मोहित होकर आत्म-विस्मृत हो जाता है। योग के बिना इस ज्ञान या विज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार विज्ञान के बिना वास्तविक योग-पद पर आरोहण नहीं किया जा सकता।"

मैंने पूछा—"तब तो योगी के लिए सभी कुछ सम्भव है ?" उन्होंने कहा—"निश्चय ही है। जो यथार्थ योगी हैं, उनकी सामर्थ्य की कोई इयत्ता नहीं है; क्या हो सकता है, और क्या नहीं, इसकी कोई निर्दिष्ट सीमारेखा नहीं है। परमेश्वर ही तो आदर्श योगी हैं, उनके सिवा महाशक्ति का पूरा पता और किसी को प्राप्त नहीं है, न प्राप्त हो ही सकता है जो निर्मल होकर परमेश्वर की शक्ति के साथ जितना युक्त हो सकते हैं, उनमें उतनी ही ऐसी शक्ति की स्फूर्ति होती है। यह युक्त होना एक दिन में नहीं होता, क्रमशः होता है। इसीलिए शुद्धि के तारतम्य के अनुसार शक्ति का स्फुरण भी न्यूनाधिक होता है। शुद्धि या पवित्रता जब सम्यक् प्रकार से सिद्ध हो जाती है, तब ईश्वर सायुज्य की प्राप्ति होती है। तब योगी की शक्ति की कोई सीमा नहीं रहती। उसके लिए असम्भव भी सम्भव हो जाता है। उसकी इच्छा के उत्पन्न होते ही अघटन-घटना-पटीयसी माया उसे पूर्ण कर दिया करती है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने पूछा—"इस फूल का परिवर्तन आपने योगबल से किया या और किसी उपाय से ?" स्वामीजी बोले—"उपायमात्र ही तो योग है। दो वस्तुओं को एकत्र करने को ही तो योग कहा जाता है। अवश्य ही यथार्थ योग इससे पृथक् है। अभी मैंने यह पुष्प सूर्य-विज्ञान द्वारा बनाया है। योगबल या शुद्ध इच्छाशक्ति से भी सृष्टि आदि सब कार्य हो सकते हैं, परन्तु इच्छाशक्ति का प्रयोग न करके विज्ञान-कौशल से भी सृष्ट्यादि कार्य किये जा सकते हैं।"

विज्ञान और योग की प्रणालियों से सृष्टिक्रिया में भेद :—सूर्य-विज्ञान सूर्यरश्मिज्ञान के ऊपर निर्भर है। इस रश्मि को वर्ण अथवा प्रचलित भाषा में रंग कहा जाता है। इसके विभिन्न प्रकार के संयोग और वियोग से विभिन्न प्रकार के पदार्थों की अभिव्यक्ति होती है। रश्मि वस्तुओं की सत्ता की अभिव्यंजक है, इसलिए सूर्यरश्मि के साथ परिचय स्थापितकर विभिन्न रश्मियों का परस्पर संघटन ही सूर्यविज्ञान का रहस्य है। इसके द्वारा सृष्टि भी हो सकती है, संहार भी हो सकता है एवं तिरोभाव भी हो सकता है और यदि प्रयोजन हो तो स्थिति अथवा रक्षा भी हो सकती है। सृष्टि और संहार की युगपत् क्रिया से रूपान्तर भी हो सकता है। विज्ञान की सृष्टि के मूल प्राकृतिक उपादानों पर क्रियाशक्तिमूलक नियन्त्रण रहता है, यह जानना चाहिए किन्तु योगबल से जो सृष्टि होती है वह इस प्रकार की नहीं है। योगसृष्टि, इच्छाशक्ति से होती है। इस सृष्टि में पृथक् उपादान की आवश्यकता नहीं रहती, उपादान वस्तुतः स्रष्टा की अपनी आत्मा को ही जानना चाहिए। अर्थात् इच्छाशक्तिमूलक सृष्टि में निमित्त और उपादान दोनों अभिन्न रहते हैं—आत्मा अर्थात् योगी स्वयं अपने स्वरूप से ही बाहरी किसी उपादान की अपेक्षा न रखकर इच्छाशक्ति के प्रभाव से अन्दर स्थित अभिलषित पदार्थ को बाहर करते हैं। यह जो आत्मा के अन्तर स्थित अर्थ को इच्छा द्वारा बाहर प्रकाशित करना है, इसी का नाम योगसृष्टि है। तान्त्रिक परिभाषा में यही बिन्दु की विसर्गलीला है। अद्वैतभूमि में स्थित योगी इच्छाशक्ति के द्वारा सृष्टि किया करते हैं। शक्तिसूत्र में कहा है—"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।" इसलिए उत्पलाचार्य ने कहा है—

"चिदात्मा हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छवशाद्बहिः ।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत् ॥"

श्रीशंकराचार्य ने कहा है कि समग्र विश्व आत्मा के निज स्वरूप के अन्तर्गत है। दर्पण में प्रतिबिम्ब-रूप से दिखाई दे रही नगरी जैसे दर्पण के ही अन्तर्गत है, दर्पण से पृथक् नहीं है वैसे ही प्रकाशमय आत्मा में प्रतिभासमान दृश्य आत्मा के ही अन्तर्गत है, आत्मा से पृथक् नहीं है। ज्ञानी इसी रूप से विश्व को देखा करते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि में आत्मा से पृथक् कोई वस्तु नहीं है। किन्तु जो अज्ञानी है, उसने प्रकाशमय आत्मा के स्वरूप का दर्शन नहीं किया। वह जागतिक पदार्थों को आत्मा से अभिन्न रूप से नहीं समझ सकता अथवा अपनी आत्मा के अन्तर्गत रूप से धारणा नहीं कर सकता। इसका एकमात्र कारण माया का प्रभाव है। मायाशक्ति देश और काल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का उद्‌भावनकर आत्मनिहित विश्व को देश और काल के द्वारा परिच्छिन्न एवं पृथक् रूप में मित प्रमाता अथवा जीव के निकट प्रदर्शित करती है। ईश्वर मायाशक्ति के अधिष्ठाता हैं—ऐश्वर्य-सम्पन्न योगी भी आंशिक रूप में वही है। इसलिए योगी अघटितघटनापटीयसी मायाशक्ति का आश्रय लेकर किसी भी पदार्थ को बाहर प्रदर्शित कर सकते हैं, इसी का नाम योगी की इच्छाशक्ति का काम है। इच्छाशक्ति अथवा स्वातन्त्र्य-शक्ति ही मायाशक्ति का स्वरूप है। यह जो बाहरी प्रकाशन है, यह अज्ञानान्ध जगत् की दृष्टि में वस्तु की उत्पत्ति अथवा आविर्भाव के रूप में प्रतीत होने पर भी वास्तव में आत्मा के साथ अभिन्न रूप से स्थित वस्तु का, अर्थात् आत्मा की ही शक्ति का, बाहरी प्रकाशन-मात्र है। स्मरण रखना होगा कि यह बाहरी भाव वस्तुतः ज्ञानी और योगी की स्वरूप-दृष्टि में नहीं है, अज्ञानी अथवा संसारी की परिच्छिन्न दृष्टि में भी नहीं है, यह दोनों के सम्बन्धमूलक दृष्टिकोण से ही कहा जाता है।

विज्ञान सृष्टि

विज्ञान की सृष्टि में इच्छाशक्तिरूप मौलिक इच्छा की कोई क्रिया नहीं रहती। साधारण इच्छा अवश्य ही रहती है; क्योंकि वह यदि न रहे तो क्रियाशक्ति कार्य नहीं कर सकती। विज्ञानसृष्टि के दो प्रकार हैं—एक है 'परम-विज्ञान', जो योगी और ज्ञानी का विज्ञान एवं दूसरा है 'साधारण-विज्ञान' जो है अयोगी और अज्ञानी का विज्ञान। योगी और ज्ञानी जगत् के मूल उपादानों को अपने स्वरूप से पृथक् नहीं देखते, किन्तु वे इच्छा करने पर कल्पित रूप से पृथक् भी देख सकते हैं। किन्तु जो पूर्ण योगी और ज्ञानी नहीं हैं, पर जिन्होंने अपने स्वरूप से पृथक् रूप में प्रकृति का अथवा उपादान का साक्षात्कारलाभ किया है, वे इस भेद-दृष्टि का अवलम्बनकर यदि सृष्टि-कार्य में प्रवृत्त होते हैं तो विज्ञान की सृष्टि-प्रक्रिया का अवलम्बन करते हैं। अर्थात् वे प्रकृति को अपनी आत्मा से अभिन्न रूप में देखने पर सृष्टिकाल में इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हैं एवं पक्षान्तर में वे प्रकृति को अपने से पृथक् देखने पर वैज्ञानिक प्रक्रिया का अवलम्वन करते हैं।

(१) परम-विज्ञान

परम-विज्ञान की क्रिया में ज्ञान है और क्रिया भी है। ज्ञान यदि न रहे तो क्रिया नहीं हो सकती। ज्ञान शब्द से यहाँ उपादान का अपरोक्ष ज्ञान समझना चाहिए। क्योंकि जिस उपादान से कार्य का निर्माण होगा, वह उपादान यदि प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय न हो तो उस पर क्रियाशक्ति का प्रयोग किस प्रकार होगा ? स्मरण रखना चाहिए कि वह प्रत्यक्ष ज्ञान अभेद-रूप नहीं है; क्योंकि वह यदि अभेदात्मक होता तो पृथक् रूप से क्रिया का प्रयोजन न होता, एकमात्र इच्छा के द्वारा ही क्रिया का प्रयोजन सिद्ध हो जाता। भेदज्ञान के अपने-आप निवृत्त हुए बिना अथवा प्रयत्नपूर्वक उसे हटाये बिना इच्छाशक्ति का प्रयोग नहीं हो सकता। इस जगत् विज्ञान के अन्तर्गत ज्ञान और क्रिया दोनों की अंशों का अनुशीलन आवश्यक जानना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विज्ञान का ऊपर का प्रकार 'परम-विज्ञान' अत्यन्त गम्भीर है। वहाँ इच्छाशक्ति भी प्रवेश का मार्ग नहीं पाती। क्योंकि इच्छाशक्ति का आविर्भाव ईश्वर-अवस्था में होता है जबकि परम विज्ञान का व्यापार महाशक्ति के अन्तःपुर का खेल है। इच्छाशक्ति, यहाँ तक कि ईश्वर, समग्र विश्व की सृष्टि के मूल कारण हैं, किन्तु ईश्वर अथवा इच्छाशक्ति के स्फुरण में जो अत्यन्त गुह्य शक्ति कार्य कर रही है, तब वह परम विज्ञान के आश्रयस्वरूप महाशक्ति के ही अन्तर्गत हैं।

(२) साधारण विज्ञान

अब हम परम विज्ञान की चर्चा का त्यागकर साधारण विज्ञान के क्षेत्र में अवतरण करेंगे। विज्ञान शब्द से यहाँ सूर्य-विज्ञान ही समझना चाहिए। जागतिक सृष्टि तथा संहार के कार्य शक्ति के संकोच और विकास से होते हैं। प्रकारान्तर से इस प्रक्रिया को योग-वियोग की प्रक्रिया भी कहा जा सकता है।

पदार्थ का स्वरूप—अवयव और अवयवी

इस तत्त्व को पूर्णरूप से हृदयंगम करने के पूर्व पदार्थ के स्वरूप के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोणों का विचार आवश्यक है। एक दृष्टिकोण से स्पष्ट देखा जाता है कि अवयवों के विधिपूर्वक सन्निवेश से ही अवयवी उत्पन्न होता है। सब अवयवों को भलीभाँति पहचान सकने एवं उनकी संयोजन-प्रणाली को स्वायत्त कर सकने पर अवयवों के मिलन के द्वारा इच्छानुरूप अवयवी अभिव्यक्त किया जाता है। जैसे वर्णों द्वारा पदरचना होती है वैसे ही अवयवों द्वारा अवयवी की रचना होती है। इस रचना-प्रणाली में केवल अवयव-समूह का ही गौरव है, सो बात नहीं है, किन्तु अवयवों का परस्पर सम्बन्ध अथवा आनुपूर्वी की भी आवश्यकता होती है। शिक्षार्थी के लिए अवयव का परिचय जैसा आवश्यक है वैसा ही आनुपूर्वी का ज्ञान भी आवश्यक है। इस प्रणाली में स्वभाव की सृष्टि निम्न स्तर से दिखाई देती है। इस प्रणाली की विशिष्टता यह है कि अन्तिम अवयव का आविर्भाव और योजना न होने तक समग्र रूप में अवयवी को प्राप्त नहीं किया जा सकता। मध्य में, यहाँ तक कि अन्त में भी एक अवयव की कमी होने पर अथवा एक अधिक होने पर पूर्वनिर्दिष्ट कार्य उद्भूत नहीं हो सकता। कार्य की उत्पत्ति शीघ्र अथवा विलम्ब से होने का सुसंगत कारण रह सकता है, किन्तु यथोचित रूप से अवयव के सन्निवेश के बिना अवयवी की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

अवयव को यहाँ पर मैं अवयवी मानकर एवं अवयव से उसकी पृथक्ता स्वीकार-कर एक प्रकार कह रहा हूँ। किन्तु जिस दृष्टिकोण के अनुसार अवयव से पृथक् अवयवी स्वीकार नहीं किया जाता उस दृष्टिकोण में भी मूलतः आविर्भाव का नियम एक ही प्रकार का है। संघात अथवा समष्टि युतसिद्ध और अयुतसिद्ध दोनों प्रकार की ही हो सकती है। इसलिए अवयवी को स्वीकार न करने पर भी अथवा गुणक्रिया से द्रव्य को पृथक् स्वीकार न करने पर भी पूर्वोक्त नियम में कोई व्यतिक्रम नहीं होता। अथवा द्रव्यस्थल में अयुतसिद्ध अवयव-सम्पन्न संघात मानकर आलोचना करना सम्भव है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitiz'agtion by eGangotri

यह हुई एक ओर की बात। किन्तु जागतिक पदार्थों को निरवयव मानने की भी एक दिशा है। उस ओर से देखने पर अवयव-संस्थान को छोड़कर भी तथाकथित अवयवी अर्थात् वस्तुविशेष की सत्ता प्राप्त की जा सकती है। सूर्य-विज्ञान के विचार के प्रसंग में इस दिशा का भी स्मरण रखना चाहिए। कार्यबिन्दु और कारणबिन्दु के रहस्य की आलोचना के सिलसिले में वस्तुमात्र के ही पूर्वोक्त प्रकार के सावयव और निरवयव दो भेद स्वीकार किये बिना काम नहीं चल सकता। अर्थात् अखण्ड और खण्ड दोनों ओर से ही सृष्टिक्रम का विश्लेषण आवश्यक है। इसका प्रयोजन भी है। जिस स्थल में समग्र वस्तु ज्ञानगोचर है और उसकी अभिव्यंजक कारण-सामग्री ज्ञान की अगोचर है उस स्थल में भी वैज्ञानिक सृष्टि की क्रिया के निरुद्ध रहने का कारण नहीं है। जिसको Formula कहा जाता है, उसका ज्ञान न रहने पर भी उसका आविष्कार कठिन नहीं है। कारण-बिन्दु को मूल उपादन-सत्ता में डालने पर उसके प्रभाव से उपादन में जो क्षोभ उत्पन्न होता है, उसका सम्यक् प्रकार से विश्लेषण कर सकने पर ही आपेक्षिक-रूप से सृष्टि का Formula आविष्कृत हो पड़ता है। कारण-बिन्दु क्षुब्ध होकर कार्य-बिन्दु के रूप में अभिव्यक्त होता है। क्षोभ का विश्लेषण कर सकने पर अवयवों की समष्टि और उनके परस्पर सम्पर्क का सहज में ही प्रत्यक्ष किया जाता है। अर्वाचीन शिक्षार्थी कारण-बिन्दु का प्रत्यक्ष न कर, योनितत्त्व का प्रत्यक्ष न कर एवं बिन्दु के प्रक्षेप का सामर्थ्य स्वायत्त न कर केवल क्षोभजन्य अवयवों और उनकी परस्पर सापेक्षता का प्रत्यक्ष कर सकने पर ही सृष्टि का Formula आविष्कृत हो पड़ेगा, यह निश्चित है। इसी स्थान से विज्ञान-सृष्टि की नियमावली का संकलन होता है। तदनन्तर केवल इस नियम का अनुसरण कर अवयवों का प्रत्यक्ष दर्शनकारी तथा आपेक्षिक क्रियाशक्ति का अधिकारी विज्ञान-सृष्टि में प्रवृत्त हो सकता है।

उपादान की सार्वभौमिकता

योगिगण और वैज्ञानिक कहते हैं कि जगत् की सभी वस्तुएँ सर्वात्मक हैं, अर्थात् जगत् की जिस किसी वस्तु में अन्य किसी वस्तु की सत्ता आंशिक रूप में रहती ही है। सृष्टि में निरपेक्ष कोई वस्तु रह नहीं सकती। हम लोग किसी विशेष वस्तु को उसके विशेष रूप अथवा नाम के द्वारा अथवा गुण और क्रिया के द्वारा पहचानते हैं। इससे अन्य वस्तु के उपादान इसमें नहीं हैं, यह सोचना उचित नहीं है। यदि प्रकृति को मूल उपादान के रूप में माना जाय तो कहना पड़ेगा कि वही उसका मूल उपादान है। उसी से परिणाम का क्रम पकड़कर उस वस्तु का आविर्भाव हुआ है। किन्तु प्रकृति एक और अभिन्न है। प्रत्येक वस्तु मूलतः प्रकृतिरूप उपादान का कार्यविशेष है। इसलिए किसी भी वस्तु में जगत् की सकल वस्तुओं के उपादानों के रहने के कारण प्रयोजन के अनुसार उसे जिस किसी वस्तु के रूप में परिणत करना सम्भव है। जिसको हम गुलाब कहते हैं, वह बाहरी रूप से सचमुच गुलाब है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपादान में विश्व-सृष्टि का मूल उपादान विद्यमान रहता है। इसलिए आवश्यकता होने पर उसमें से कमल के उपादान का आकर्षणकर एक कमल-पुष्प का निर्माण किया जा सकता है। उसी प्रकार आवश्यकता होने पर उससे जवा अथवा चम्पक भी बाहर किया जा सकता है। केवल पुष्प ही क्यों, अन्य जिस किसी वस्तु के रूप से उस गुलाब के रूप को परिवर्तित किया जा सकता है। यह इसलिए सम्भव है कि गुलाब में उन सब वस्तुओं के उपादान रहते हैं। गुलाब के फूल की सृष्टि में गुलाब का उपादान ही विशेष रूप से कार्य करता है, अन्यान्य उपादान अव्यक्त रूप से विद्यमान रहते हैं। किन्तु यदि गुलाब के फूल को कमल का फूल बनाना हो तो गुलाब में ही जो कमल का उपादान है, उसे क्रियाशील बनाना होगा। उसे क्रियाशील बनाने की प्रक्रिया की आगे आलोचना की जायगी। कमल के उपादान के क्रियाशील होने पर वह क्षुब्ध उपादान बाह्य सृष्टि से स्वजातीय उपादान का आकर्षणकर क्रमंशः पुष्ट होता रहता है एवं पुष्टि के परिणाम-स्वरूप कमल के रूप में आविर्भूत होता है। किन्तु जिस अनुपात से कमल का उपादान प्रबल होकर अर्थात् पुष्ट होकर अभिव्यक्त होता जायगा, ठीक उसी अनुपात से गुलाब का उपादान क्षीण होकर अव्यक्त हो जायगा, किन्तु अव्यक्त होने पर भी शून्य नहीं होगा। क्योंकि मूल प्रकृति में अव्यक्त रूप से सभी उपादान विद्यमान रहते हैं। बाहरी दृष्टि से दिखाई देगा कि गुलाब कमल में परिणत हुआ। तब गुलाब से नाम, रूप, गुण और क्रिया कुछ भी रहेंगे नहीं, पक्षान्तर में कमल के नाम, रूप, गुण और क्रिया व्यक्त हो उठेंगे। किन्तु वास्तव में गुलाब कमल में परिणत हुआ नहीं। क्योंकि गुलाब सूक्ष्म रूप में रह गया एवं कमल स्थूल रूप में फूट उठा। पहले कमल सूक्ष्म रूप में था एवं गुलाब था स्थूल रूप में, अब उसका व्यतिक्रम हुआ।

इस प्रकार विचारपूर्वक देखने पर समझ में आ जायगा कि **प्रत्येक वस्तु की पृष्ठभूमि में अव्यक्त और स्थूल दोनों रूप से मूल प्रकृति ही रहती है।** आपूरण के तारतम्य के अनुसार विभिन्न प्रकार के कार्यों की उत्पत्ति होती रहती है। योगी इस सत्य का आश्रय करके ही अभ्यासयोग में प्रवृत्त होता है; क्योंकि मानव की निज सत्ता में भी सूक्ष्मरूप से पूर्ण भगवत्सत्ता अथवा दिव्यसत्ता विद्यमान रहती है। उसको अभिव्यक्त कर प्रकाश में लाना ही अभ्यासयोग का उद्देश्य है। अच्छी, बुरी सब सत्ताएँ सभी में रहती हैं, जो जिसे अभिव्यक्त कर सके उसके निकट वही अभिव्यक्त होती है।

प्रकृति के परिणाम में प्रकार भेदों का कारण है निमित्त जैसे काल और धर्म

योगसूत्रकार पतंजलि ने कहा है—"जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्" अर्थात् प्रकृति अथवा उपादान का आपूरण होने पर एक जाति की वस्तु अन्य जाति की वस्तु में परिणत हो सकती है। प्रकृति का परिणाम स्वाभाविक होने पर भी उस परिणाम के विभिन्न प्रकार-भेदों के सम्बन्ध में निमित्त कारण की आवश्यकता है। क्योंकि प्रकृति से सब कुछ आविर्भूत हो सकता है सही, किन्तु कार्यतः वह होता नहीं, उसका कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निमित्त का अभाव है। प्रकृति का प्रवाह जिस ओर खुलता है उसी प्रकार का कार्य होता है—जीव की कर्मशक्ति, योगी की इच्छाशक्ति अथवा भगवान् की कृपाशक्ति—ये सब निमित्त के अन्तर्गत हैं। ये निमित्त प्रकृति के प्रयोजक नहीं होते, अर्थात् ये प्रकृति को किसी निर्दिष्ट दिशा से प्रेरित नहीं करते, किन्तु ये प्रकृति के आवरण को विनष्ट करते हैं। आवरण-भंग हो जाने पर, जिस ओर का आवरण विनष्ट हो गया है उसी ओर प्रकृति का परिणाम होता है। जिस ओर का आवरण निवृत्त नहीं होता उस ओर का परिणाम संगठित नहीं होता। आवरण को हटाने का लौकिक उपाय जीव की कर्मशक्ति है। धर्म और अधर्म के भेद से कर्म दो प्रकार का है। जहाँ धर्म, प्रतिबन्धक अथवा आवरण के रूप में, विद्यमान रहता है वहाँ प्रकृति का अशुभ परिणाम कार्योन्मुख नहीं होता। किन्तु इस आवरण के हट जाने पर प्रकृति से दुःख-सृष्टि का उदय अवश्यम्भावी है। उसी प्रकार यदि प्रकृति में अधर्म रूप आवरण विद्यमान रहे तो वही प्रकृति के सुखरूप में परिणत होने के मार्ग में बाधा उपस्थित करता है। धर्मचिन्तन द्वारा अधर्म नामक आवरण को यदि हटाया जा सके तो यह सम्भव नहीं कि प्रकृति से दिव्य सुख का आविर्भाव न हो।

अतएव प्रकृति में सब कुछ रहने पर भी सदा सब बाहर प्रकट नहीं होता। निमित्त प्रकृति के आवरण का विनाशक तो अवश्य है, किन्तु वह प्रकृति को अपने कार्य की ओर प्रवृत्त करने में समर्थ नहीं है। जल स्वभावतः ही नीचे की ओर बहता है, किन्तु यदि कोई प्रतिबन्धक रहे तो उसकी अधोगति रुकी रहती है। किन्तु किसी विशेष प्रक्रिया के द्वारा यदि उस प्रतिबन्धक को हटाया जा सके तो उसकी स्वाभाविक अधोगति अपने-आप ही होने लगती है। प्रकृति के विश्वपरिणाम के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझना चाहिए।

जगत् में सर्वत्र ही सत्ता-रूप में सूक्ष्मभाव से सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। परन्तु, जिसकी मात्रा अधिक प्रस्फुटित हो जाती है, वही अभिव्यक्त एवं इन्द्रिय-गोचर होता है; जिसका ऐसा नहीं होता, वह अभिव्यक्त नहीं होता, और नहीं हो सकता। अतएव इनकी व्यंजना का कौशल जान लेने पर जिस किसी स्थान से किसी भी वस्तु का आविर्भाव किया जा सकता है। अभ्यास योग और साधना का यही मूल रहस्य है। हम व्यवहार-जगत् में जिस पदार्थ को जिस रूप में पहचानते हैं, वह उसकी आपेक्षिक सत्ता है। हम जिस रूप में जिसे पहचानते हैं, उतना ही वह है, यह बात किसी को नहीं समझनी चाहिए, लोहे का टुकड़ा केवल लोहा ही है, सो बात नहीं है; उसमें सारी प्रकृति अव्यक्तरूप में निहित है; परन्तु लौह-भाव की प्रधानता से अन्यान्य समस्त भाव उसमें विलीन होकर अदृश्य हो रहे हैं। किसी भी विलीन भाव को (जैसे सोना) प्रबुद्ध करके उसकी मात्रा बढ़ा दी जाय तो उसका पूर्वरूप स्वभावतः ही अव्यक्त हो जायगा, और सुवर्णादि के प्रबुद्ध-भाव के प्रबल हो जाने से वह वस्तु फिर उसी नाम और रूप में परिचित होगी। सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिए। वस्तुतः लोहा सोना नहीं हुआ, वह तो अव्यक्त हो गया और अव्यक्तता को हटाकर सुवर्णभाव प्रकाशित हो गया। आपाततः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यही समझ में आवेगा कि लोहा ही सोना हो गया है; परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हैं। कहना नहीं होगा कि यही योगशास्त्र का 'जात्यन्तर-परिणाम' है। पतंजलि कहते हैं कि प्रकृति के आपूरण से 'जात्यन्तर-परिणाम' होता है, एकजातीय वस्तु अन्य-जातीय वस्तु में परिणत होती है ('जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्') यह कैसे होता है, सो भी योगशास्त्र में बतलाया गया है।[1]

इस प्राकृतिक सृष्टि के रहस्य को हृदयंगम न करने तक सूर्य-विज्ञान का तत्त्व समझना कठिन होगा। जिस वर्णमाला द्वारा पद, वाक्य आदि के क्रम से मानव-भाषा बनी है, उस वर्णमाला के मूल में भी यही रहस्य विद्यमान है, क्योंकि प्रत्येक वर्ण ही स्वरूपतः सर्ववर्णात्मक है। बाहरी दृष्टि से स्थूल रूप में सब वर्ण, अलग-अलग हैं, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु वर्णों का जो मूल उपादान है वह प्रत्येक वर्ण में रहता है एवं उससे सभी वर्णों की अभिव्यक्ति की सम्भावना है। इसीलिए योगीजन कहते हैं कि प्रत्येक वर्ण में ही सर्वाभिधान की सामर्थ्य रहती है। हमलोग जो एक वर्ण के साथ दूसरे वर्ण का संगठन करते हैं वह स्थूल रूप में कार्य की अभिव्यक्ति के लिए है, किन्तु योगी अन्तर्मुखी दृष्टि द्वारा जब किसी वर्ण की ओर लक्ष्य करते हैं तब उन्हें सब वर्णों की जो मूल प्रकृति है, वह दिखाई देती है।

---

१. पतंजलि का सिद्धान्त है–'निमित्तमप्रयोजकम्' आदि। निमित्तकारण उपादानस्वरूपा प्रकृति को प्रेरणा नहीं कर सकता। वह प्रकृतिनिष्ठ आवरण को दूर करता है। आवरण दूर होने पर आच्छन्न प्रकृति उन्मुक्त होकर अपने-आप ही अपने विकारों के रूप में परिणत होने लगती है। लोहे में जो सुवर्ण-प्रकृति है, वह आवरण से ढँकी है। और लौह-प्रकृति आवरण से मुक्त है, इसी से लौह-परिणाम चल रहा है; किन्तु यदि सुवर्ण-प्रकृति का यह आवरण किसी उपाय से (योग या आर्षविज्ञान से यह उपाय जानने में आता है उससे) हटा दिया जाय तो लौह-प्रकृति ढँक जायगी और सुवर्ण-प्रकृति परिणाम की धारा में विकार उत्पन्न करेगी। यह स्वाभाविक है, यह कौशल ही प्रकृत विद्या है। परन्तु इसके द्वारा असत् को सत् नहीं किया जा सकता, केवल अव्यक्त को व्यक्त किया जा सकता है। वस्तुतः सत्कार्यवाद में सृष्टिमात्र की अभिव्यक्ति है। जो कभी नहीं था, वह कभी होता भी नहीं (नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः)। इसी से ऋषि कहते हैं कि निमित्त प्रकृति को प्रेरित नहीं कर सकता, प्रवृत्ति नहीं दे सकता। प्रकृति में विकारोन्मुखता की ओर स्वाभाविक प्रेरणा विद्यमान है। प्रतिबन्धक रहने के कारण वह कार्य कर नहीं पाती। पूर्वोक्त कौशल या निमित्त (धर्माधर्म और इसी प्रकार का निमित्त) इन प्रतिबन्धकों को केवल हटा-भर देता है। क्रान्तदर्शी कवि ने कहा है–

शमप्रधानेषु तपोवनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।
स्पर्शानुकूला अपि सूर्यकान्तास्ते ह्यन्यतेजोऽभिभवाद्दहन्ति ॥

इससे माना जाता है, जो शीतल (शमप्रधान) है, उसमें भी 'दाहात्मक तेज' या ताप है; परन्तु वह 'गूढ़' है। सभी जगह सभी वस्तुएँ हैं, परन्तु जो गूढ है (छिपी है) वह देखने में नहीं आती, उसकी क्रिया भी नहीं होती। जो व्यक्त है, उसी की क्रिया होती है; वही दृश्य है। 'गूढ़' धर्म की क्रिया न हो सकने का कारण 'व्यक्त' धर्म की प्रधानता है। यदि व्यक्त धर्म बाह्य तेज (अन्य तेज) के द्वारा अभिभूत कर दिया जाय तो विद्यमान धर्म जो अभी तक गुप्त था, वह अनभिभूत होने के कारण प्रकट हो जाता है और क्रिया करने लगता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काल और धर्म

प्रकृति का परिणाम स्वाभाविक है। जो लोग काल के प्रभाव से गुण का परिणाम मानते हैं, वे काल को ही प्रकृति के परिणाम का निमित्त मानते हैं। कोई-कोई ईश्वर की इच्छा को भी निमित्त कहते हैं। हम यहाँ स्वभाववाद का अवलम्बन करके ही आलोचना करेंगे। परिणाम प्रकृति का स्वभाव होने पर भी यदि कोई निमित्त न रहे तो यह सदृश्य परिणाम के रूप में ही प्रकाशित होता है। किन्तु प्रकृति में विसदृश परिणाम की क्रिया हुए बिना उससे कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता, किसी धर्म का आविर्भाव नहीं हो सकता। **प्रकृति का परिणाम दो प्रकार का है—एक तत्त्वान्तर परिणाम और दूसरा धर्मादि-परिणाम।**

तत्त्वान्तर परिणाम का अन्त होता है, उसके बाद ही प्रकृति धर्मी के रूप में अपने को प्रकट करती है। तब इस धर्मीरूप प्रकृति से धर्मरूप परिणाम प्रकट होता है। यही सृष्टि का प्रारम्भ है। यह देश और काल के द्वारा आवद्ध नहीं है—वस्तुत: यह काल के अन्तर्गत भी नहीं है। धर्मरूप परिणाम जिस भूमि में होता है, उस भूमि में यह निरन्तर और नियत होता है, इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार से यदि देखा जाय तो विश्व के सभी धर्म इस भूमि में विद्यमान रहते हैं, लेकिन किसी निर्दिष्ट धर्म के रूप में वे इन्द्रियगोचर नहीं होते। इसी भूमि से परिणाम का स्रोत काल के राज्य में प्रवेश करता है। तब वह धर्म देहावच्छिन्न प्रमाता के इन्द्रिय-गोचर होता है—हम लोगों को 'वर्तमान काल' कहने से जिसकी प्रतीति होती है, उसमें तब वह धर्म प्रवेश करता है। यह प्रश्न उठ सकता है कि वर्तमान काल में प्रवेश करने के पहले यह धर्म था या नहीं; एवं यदि रहा तो कहाँ था ? इसका समाधान यह है—वह अनागत काल में था। जिसको हमने धर्म की भूमि कहा है, उसका कुछ अंश इस अनागत काल की भूमि से अभिन्न है; क्योंकि अनागत काल में स्थित वह अव्यक्त धर्म ही वर्तमान काल में प्रवेशकर द्रष्टा के दृष्टिगोचर होता है। दृष्टिगोचर होने के पूर्व भी वह धर्म विद्यमान था, इसमें सन्देह नहीं है; क्योंकि धर्मरूप परिणाम पहले से ही सिद्ध है—उसी से वर्तमान काल में धर्म-विशेष का अवतरण होता है। अवश्य सकल धर्मों का अवतरण नहीं होता; क्योंकि कारण-सामग्री के प्रभाव से अव्यक्त धर्म अभिव्यक्त होता है। लौकिक भाषा में यही उसकी उत्पत्ति है। अतएव उत्पन्न होने के पूर्व भी वह धर्म अव्यक्त अनागत काल के गर्भ में निहित था। इस अव्यक्त कालगर्भ को आविर्भूत धर्मभूमि का ही एक लघु अंश जानना चाहिये। उस मूल भूमि से, धाराभेद से, विभिन्न अण्डों में धर्म प्रकट हो रहा है। धर्म अर्थात् कार्यवस्तु, आविर्भूत होने के क्षण से तिरोभूत होने के क्षण तक, निरन्तर परिणामयुक्त अवस्था में रहकर फिर अव्यक्त हो जाती है। अनागत भूमि और अतीत भूमि दोनों ही अव्यक्त हैं, किन्तु दोनों में भेद है; क्योंकि सृष्टि की धारा अनागत से वर्त्तमान की ओर तथा वर्त्तमान से अतीत की ओर बह रही है। इसीलिए अतीत के अनागत के तुल्य अव्यक्त होने पर भी उस स्थान से वर्त्तमान की ओर धारा नहीं चली, अनागत से ही चलती है। इसलिए अतीत से कार्य की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस तत्त्व को विशेषरूप से ध्यान में रखना आवश्यक है। क्योंकि योग-बल से अथवा विज्ञान के द्वारा, अतीत अथवा विनष्ट वस्तु का भी पुनरुत्थान हो सकता है। इस स्थल में वह पुनरुत्थान पूर्वोक्त कार्यवस्तु का क्षणभेदयुक्त प्रतिरूपकमात्र है। यह किस प्रकार से सम्भव हो सकता है, विज्ञान की दृष्टि से उसकी आलोचना करना संगत प्रतीत होता है।

अनागत और अतीत

कार्यवस्तु जितने क्षण उदित अथवा व्यक्त अवस्था में रहती है उतने क्षण तक निरन्तर ही उसका परिणाम होता रहता है। वस्तुतः प्रत्येक क्षण में ही यह परिणाम होता रहता है। क्षणिक परिणाम साधारण लोगों की दृष्टि में न आने पर भी अनुमान के द्वारा स्पष्ट रूप से उसका निश्चय होता है। यह परिणाम वर्त्तमान धर्म का ही होता है। वस्तुतः अनागत धर्म का भी परिणाम स्वीकार करना ही पड़ता है। क्योंकि उस परिणाम के ऊपर ही अनागत काल से वर्त्तमान काल में वस्तु की गति हो सकती है। अव्यक्त अवस्था में परिणाम अतीन्द्रिय होने पर भी उसके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पर यह स्मरण रखना होगा कि अनागत के वर्त्तमान में आने में कारण-व्यापार की आवश्यकता होती है। कारण-व्यापार के बिना अनागत सद्वस्तु वर्त्तमान काल में प्रतिभासित नहीं हो सकती। किन्तु जब वर्त्तमान प्रतिभास हट जाता है तब वह वस्तु अतीतरूपी अव्यक्त गर्भ में पुनः प्रवेश करती है। अतीत, अतीत होकर भी सत् है, अलीक नहीं है, वह सभी को स्वीकार्य है। किन्तु अनागत सत्ता तथा अतीत सत्ता वर्त्तमान सत्ता से पृथक् हैं, तथापि यह सत्य है कि अतीत वर्तमान सत्ता में प्रतिष्ठा प्राप्त होने पर फिर अतीत नहीं रहता, अनागत भी अनागत नहीं रहता। चक्राकार से मण्डल-रचना होने पर एक अखण्ड मण्डल के रूप में ही वह प्रकाशित होता है। अतीत और अनागत में पार्थक्य न रहने पर भी गुरुपदेशों से एक कृत्रिम पार्थक्य की सृष्टि कर लेनी पड़ती है। धर्मों में यहाँ तक कि मूल धर्मस्वरूप में भी यह पार्थक्य अभिव्यक्त हो उठता है। विवेकज्ञान के प्रभाव से सब धर्मों से निस्तार प्राप्त किया जाता है, किन्तु फिर भी धर्मों का अपने स्वरूप का वैशिष्ट्य रह जाता है।

क्षण का वैशिष्ट्य

'क' एक कार्य वस्तु है, वह अनागत अवस्था में जिस प्रकार अव्यक्त थी, अतीत अवस्था में भी वैसी ही अव्यक्त है। किन्तु ये दो अव्यक्त भाव ठीक एक प्रकार के नहीं हैं; क्योंकि कारण-व्यापार के द्वारा अनागत अव्यक्त 'क' कार्यरूप में अभिव्यक्त किया जाता है, किन्तु लौकिक-व्यापार अतीत 'क' को दूसरी बार वर्त्तमान में नहीं ला सकता। यह सहज में जाना जा सकता है; क्योंकि सृष्टि की धारा अनागत से ही वर्तमान की ओर अभिमुख है। अतीत से वर्त्तमान की ओर अभिमुख नहीं है। साथ-ही-साथ यह भी सत्य है कि योगी नष्ट का पुनरुद्धार करने में समर्थ है। यदि सत्य है तो जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतीत है उसे वर्त्तमान कैसे करते हैं, यह प्रश्न रह जाता है। इस प्रश्न के समाधान-प्रसंग में यही वक्तव्य है कि अनागत 'क' चिह्नहीन है, किन्तु जब वह वर्त्तमान होता है तभी वर्त्तमान कारण से चिह्नित होता है। समग्र वर्त्तमान लक्षणों में जो क्षणिक परिणाम की परम्परा चलती है, उसके द्वारा वह कार्य-वस्तु उपलक्षित होकर अतीत के गर्भ में प्रवेश करती है और फिर अव्यक्त भाव धारण करती है। इस स्थल में योगी अथवा विज्ञानवेत्ता के अतीत सत्ता का प्रत्यक्षकर उसकी अभिव्यंजक सामग्री को क्रियाशक्ति के द्वारा आयत्त करने पर अथवा उस ज्ञानगोचर सत्ता का अवलम्बनकर इच्छाशक्ति का प्रयोग करने पर ऐसा नहीं हो सकता कि वह लुप्त सत्ता फिर उद्‌बुद्ध न हो। इस जगह विचारणीय विषय यह है कि अनागत अव्यक्त से जो 'क' अभिव्यक्त हुआ था एवं आपातत: अतीत अव्यक्त से जो 'क' अभिव्यक्त हुआ—इन दोनों 'क' की सत्ता ठीक एक है या नहीं। योगी के सिवा दूसरा कोई इस रहस्य का भेद नहीं पा सकता। वस्तुत: एक प्रकार से देखा जाय तो ये दोनों सत्ताएँ वस्तुत: एक ही सत्ता हैं, पर ठीक एक सत्ता भी नहीं है; क्योंकि पहली सत्ता स्वभाव की अनुलोम धारा से आई है, जब कि दूसरी सत्ता योगी की संकल्पशक्ति के प्रभाव से, स्वभाव की विलोम धारा का अवलम्बनकर आविर्भूत हुई है। स्थूल दृष्टि से दोनों में कोई पार्थक्य नहीं है क्योंकि गुण, क्रिया, अवयवगठन, प्रभाव और वीर्य दोनों में ही ठीक एक ही तरह के हैं, किन्तु फिर भी दोनों सत्ताएँ वस्तुत: पृथक् हैं। योगज दृष्टि के द्वारा यह पार्थक्य देखा जा सकता है। वास्तव में इस पार्थक्य का कारण है—क्षण सम्बन्ध के पहले 'क' में जिस क्षण-सम्बन्ध का साक्षात्कार किया जाता है, द्वितीय 'क' का क्षण-सम्बन्ध उससे पृथक् है। जो क्षण का साक्षात्कार नहीं कर सकते, उसके लिए यह क्षण का भेद बुद्धि के परे है। इसीलिए किसी एक वस्तु के नष्ट हो जाने पर योगबल से ठीक उसी वस्तु को दूसरी बार अभिव्यक्त किये जाने पर भी इन दो वस्तुओं में अति सूक्ष्म भेद रहता ही है। इस भेद का मूल 'क्षण का वैशिष्ट्य' ही है।

सूर्य-रश्मियाँ अनन्त हैं, जाति में और संख्या में अनन्त हैं। मूल प्रभा एक ही है, यह शुक्ल वर्ण है। यही मूल शुक्लवर्ण लाल-नील प्रभृति विभिन्न-वर्णों के रूप में, एवं लाल, नील इत्यादि के परस्पर मिलने के कारण और भी विभिन्न उपवर्णों के रूप में प्रकाशित होता है। शुक्ल से सर्वप्रथम लाल, नील प्रभृति प्रथम स्तर का आविर्भाव होता है। शुक्ल से अतीत जो वर्णातीत तत्त्व है, उसके साथ शुक्ल का संघर्ष होने से इस प्रथम भूमि का विकास होता है। यह अन्त:संघर्ष का फल है। यह वर्णातीत तत्त्व ही चिद्‌रूपा शक्ति है। इस प्रथम स्तर से परस्पर संयोग या बहि:संसर्ग होने के कारण द्वितीय स्तर का आविर्भाव होता है। आपेक्षिक दृष्टि से पहली शुद्ध सृष्टि है और दूसरी मलिन सृष्टि है।

दूसरे प्रकार से भी यही बात मालूम होती है। ब्रह्म एक और अखण्ड है। ये अविभक्त रहते हुए भी पुरुष और प्रकृति-रूप में द्विधा विभक्त होते हैं, यही आत्म-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभाग (Self-division) या अन्तःसंघर्ष से उत्पन्न स्वाभाविक सृष्टि है। निम्नवर्त्ती सृष्टि पुरुष और प्रकृति के परस्पर-सम्बन्ध या बहिःसंघर्ष से आविर्भूत हुई है, यही मलिन मैथुनी सृष्टि है।

सूर्य-विज्ञान का मूल सिद्धान्त समझने के लिए इस अवर्ण, शुक्लवर्ण, मौलिक विचित्र वर्ण और यौगिक विचित्र उपवर्ण—सबको समझना आवश्यक है, विशेषतः अन्त के तीनों को।

ऊपर जो शुक्लवर्ण की बात कही गई है, यही विशुद्ध-सत्त्व है, इस सादे प्रकाश के ऊपर जो अनन्त वैचित्र्यमय निरन्तर रंग का खेल हो रहा है, वही विश्वलीला है, वही संसार है। जैसा बाहर है, वैसा ही भीतर भी; एक ही व्यापार है। पहले गुरुपदिष्ट क्रम से इस सारे प्रकाश के स्फुरण को प्राप्त करके, उसके ऊपर यौगिक विचित्र उपवर्ण विश्लेषण से प्राप्त मौलिक विचित्र वर्णों को एक-एक करके अलग-अलग पहचानना होता है। मूल वर्ण को जानने के लिए सादे की सहायता अत्यावश्यक है। क्योंकि जिस प्रकाश में रंग पहचानना है, वह प्रकाश यदि स्वयं रंगीन हो तो उसके द्वारा ठीक-ठीक वर्ण का परिचय पाना सम्भव नहीं। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि रंगीन चश्मे के द्वारा जो कुछ दिखाई देता है, वह दृश्य का रूप नहीं होता। योगशास्त्र में जिस तरह चित्त-शुद्धि हुए बिना तत्त्वदर्शन नहीं होता, सूर्य-विज्ञान में भी उसी तरह बिना वर्ण-शुद्धि हुए वर्ण-भेद का तत्त्व हृदयंगम नहीं हो सकता। हम जगत् में जो कुछ देखते हैं, सब मिश्रण है, उसका विश्लेषण करने पर संघटक शुद्ध वर्ण का साक्षात्कार होता है। उन सब वर्णों को अलग-अलग सादे वर्ण के ऊपर डालकर पहचानना होता है। सृष्टि के अन्दर शुक्लवर्ण कहीं भी नहीं है। जो है, वह आपेक्षिक है। पहले कौशल से विशुद्ध शुक्लवर्ण को प्रस्फुटित कर लेना होगा। यह प्रस्फुटित करना और कुछ नहीं है। पहले ही कहा है कि समस्त जगत् सादे के ऊपर खेल रहा है, इस रंगों का खेल को स्थान-विशेष में अवरुद्ध कर देने से ही वहाँ पर तुरन्त शुक्ल-तेज का विकास हो जाता है। इस शुक्ल को कुछ काल तक स्तम्भित करके उससे पूर्वोक्त विचित्र वर्णों का स्वरूप पहचान लेना होता है। इस प्रकार वर्ण-परिचय हो जाने पर सब वर्णों के संयोजन और वियोजन को अपने अधीन करना होता है। कुछ वर्णों के निर्दिष्ट क्रम से मिलने पर निर्दिष्ट वस्तु की सृष्टि होती है, क्रम-भंग करने से नहीं होती। किस वस्तु में कौन-कौन-से वर्ण किस क्रम से रहते हैं, यह सीखना होता है। उन सब-वर्णों को ठीक उसी क्रम से सजाने पर ठीक उस वस्तु की उत्पत्ति होगी, अन्यथा नहीं। जगत् के यावत् पदार्थ ही जब मूलतः वर्ण-संघर्ष से जन्य हैं, तब जो पुरुष वर्ण-परिचय तथा वर्ण-संयोजन और वियोजन की प्रणाली जानते हैं, उनके लिए उन पदार्थों की सृष्टि और संहार करना सम्भव न होने का कोई कारण नहीं।

साधारण लोग जिसे वर्ण कहते हैं, वह सूर्यविज्ञानविद् की दृष्टि में ठीक वर्ण नहीं, वर्ण की छद्यमात्र है। शुद्ध सत्त्व का आश्रय लिये बिना वास्तविक वर्ण का पता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाने का कोई उपाय नहीं। काकतालीयन्याय से भी पाना कठिन है; क्योंकि एक ही वर्ण से सृष्टि नहीं होती, एकाधिक वर्ण के संयोग से होती है; इसी से एकाधिक शुद्ध वर्णों के संयोग की आशा काकतालीयन्याय से भी नहीं की जा सकती। भारतवर्ष में प्राचीन काल में वैदिक लोगों की तरह तान्त्रिक लोग भी इस विज्ञान का तत्त्व अच्छी तरह जानते थे। इसे जानकर ही तो वे मन्त्र, मन्त्रेश्वर, मन्त्रमहेश्वर के पद पर आरोहण करने में समर्थ होते थे; क्योंकि षडध्वशुद्धि का रहस्य जो जानते हैं, वे समझ सकते हैं कि वर्ण और कला नित्यसंयुक्त हैं। वर्ण से मन्त्र एवं मन्त्र से पद का विकास जिस तरह वाचक भूमि पर होता है, उसी तरह वाच्यभूमि पर कला से तत्त्व और तत्त्व से भुवन तथा कार्य-पदार्थ की उत्पत्ति होती है। वाक् और अर्थ के नित्यसंयुक्त होने के कारण जिन्होंने वर्ण को अधिकृत किया है, उन्होंने कला को भी अधिकृत कर लिया है। अतएव स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत् में उनकी गति अबाधित होती है।[1] ऊपर शुक्ल वर्ण या शुद्ध सत्त्व की जो बात कही गई है, वही आगमशास्त्र का बिन्दु-तत्त्व है। यह चन्द्रबिन्दु है। यही कुण्डलिनी और चिदाकाश है, यही शब्दमातृका है। इसके विक्षोभ से ही नाद और वर्ण उत्पन्न होते हैं। अकारादि वर्णमाला इस शुद्ध सत्त्वरूप चन्द्रविन्दु से ही—शुक्लवर्ण से क्षरित होती है।[2] जो इन सब वर्णों के उद्‌भव और विस्तार-क्रम नहीं जानते, जो सब वर्णों के अन्योन्य सम्बन्ध को नहीं समझते, जो सम्बन्ध स्थापित करने और तोड़ने में समर्थ नहीं हैं, वे किस प्रकार से मन्त्रोद्धार कर सकते हैं ?

सूर्य-विज्ञान के मत से, सृष्टि का आरम्भ किस प्रकार होता है, यह हमने बतला दिया। वैज्ञानिक सृष्टि मूल-सृष्टि नहीं है, यह स्मरण रखना चाहिए। इसके बाद सृष्टि का विस्तार किस प्रकार होता है, यह बतलाना है।

परन्तु विषय को और भी स्पष्टरूप में समझने की चेष्टा करें। दृष्टान्तरूप से ले लें कि हमें कर्पूर की सृष्टि करनी है। मान लीजिये कि सौरविद्या के अनुसार क, म,

---

१. दैवीधीनं जगत् सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः ।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदेवताः ॥

समस्त जगत् देवताओं द्वारा संचालित है। जो कुछ जहाँ होता है, उसके मूल में देवशक्ति है। देवता मन्त्र का ही अभिव्यक्त रूप है। वाचक मन्त्र ही साधक के प्रयत्न-विशेष से अभिव्यक्त होकर देवता-रूप में आविर्भूत होता है। बीज के बिना जिस तरह वृक्ष नहीं, उसी तरह मन्त्र के बिना देवता नहीं। जो वर्णतत्त्वविद् पुरुष वर्ण-संयोजन के द्वारा मन्त्र का गठन कर सकते हैं, सुतरां जो मन्त्रेश्वर हैं, वे देवता के भी नियामक हैं, इसके कोई सन्देह नहीं। समग्र जगत् इस प्रकार मन्त्रज्ञ, मन्त्रेश्वर ब्राह्मण के अधीन हो जायगा; इसमें संशय करने का कोई कारण नहीं।

२. अ, आ प्रभृति वास्तव में अक्षर नहीं; क्योंकि ये सब वर्ण या रश्मियाँ सहस्रारस्थ सादे चन्द्रबिम्ब के पिघलने से क्षरित होती हैं। मूलाधार की प्रसुप्त अग्नि क्रिया-कौशल से उद्‌बुद्ध होकर ऊपर की ओर प्रवाहित होती है और अन्त में चन्द्र-बिन्दु को स्पर्शकर गला देती है। इसी से रश्मियाँ विकीर्ण होती हैं। परन्तु मूल के साथ योग अक्षुण्ण रहता है, इसी से उनको अक्षर कहते हैं। सब वर्णों के मूल में जो 'अ' कार रहता है, वही उस मूल वर्ण का प्रतीक है।

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त, र इन चार रश्मियों का इस प्रकार क्रमबद्ध संयोग होने से कपूर उत्पन्न होता है। अब उद्‌बुद्ध श्वेत वर्ण के ऊपर क्रमशः क, म, त और र—इन चार रश्मियों को डालने से कपूर-गन्ध मिलेगी। परन्तु एक ही साथ चारों रश्मियाँ नहीं डाली जा सकतीं, डालने से भी कोई लाभ नहीं। सृष्टि काल में ही उत्पन्न होती है। क्रम काल का धर्म है, सुतरां क्रम-लंघन असम्भव है। इसलिए सत्त्वशोधन करके उसके ऊपर पहले 'क' वर्ण डालने से ही स्वच्छ सत्त्व 'क' के आकार में आकारित और वर्ण में रंजित हो जायगा। शुद्ध सत्त्व ही वास्तविक आकर्षण-शक्ति का मूल है। इसी से वह 'क' को आकर्षित करके रखता है और स्वयं भी उसी भाव में भावित हो जाता है। इसके बाद 'म' डालने पर वह भी उनमें मिलकर उसके अन्तर्गत आ जायगा। इसी प्रकार 'त' और 'र' के विषय में भी समझना चाहिए। 'र' अन्तिम वर्ण है, इसी से इसके डालते ही कर्पूर अभिव्यक्त हो जाता है। अव्यक्त कर्पूर-सत्ता की अभिव्यक्ति का यही आदि क्षण है। यदि क, म, त और र, इन रश्मियों के उस संघात को अक्षुण्ण रखा जाय तो वह अभिव्यक्ति अक्षुण्ण रहेगी, अव्यक्त अवस्था नहीं आवेगी। परन्तु दीर्घकाल तक उसे रखना कठिन है। इसके लिए विशिष्ट चेष्टा चाहिए; क्योंकि जगत् गमनशील है। यहाँ पर एक गम्भीर रहस्यमय बात है। अव्यक्त कर्पूर ज्यों ही व्यक्त हुआ त्यों ही उसको पुष्ट करने के लिए, धारण करने के लिए, यन्त्र चाहिए। इसी का दूसरा नाम योनि है। वह व्यक्त सत्ता लिंगमात्र है। योनिरूपा शक्ति प्रकृति की अन्तर्निहित लालिमा है। उसका आविर्भाव भी शिक्षासापेक्ष है। यद्यपि सारे वर्ण की तरह यह लालिमा भी विश्वव्यापी है तथापि इसकी भी अभिव्यक्ति है। अन्तिम वर्ण के संघर्ष से जिस समय कर्पूर-सत्ता केवल लिंगरूप में अलिंग, अव्यक्त सत्ता से आविर्भूत होती है, उस समय यह लालिमा ही अभिव्यक्त होकर उसको धारण करती है और उसको स्थूल कर्पूर-रूप में प्रसव करती है। विश्वसृष्टि में यवनिका की आड़ में यह गर्भाधान और प्रसव-क्रिया निरन्तर चल रही है। सूर्यविज्ञानवेत्ता प्रकृति के इस कार्य को देखकर उस पर अधिकार करने की चेष्टा करता है। संयोग की तीव्रता के अनुसार सृष्टि-विस्तार का तारतम्य होता है। कर्पूर का सत्तारूप से आविर्भाव qualitative (विलक्षण, अभिनव) सृष्टि है, उसका परिमाण या मात्रा की वृद्धि quantitative (पूर्वसृष्ट पदार्थ की मात्राविषयक) सृष्टि है। मात्रावृद्धि अपेक्षाकृत सहज कार्य है। जो एक बूँद कर्पूर का निर्माण कर सकते हैं, वे सहज ही उसे क्षण-भर में लाख मन में परिणत कर सकते हैं; क्योंकि प्रकृति का भाण्डार अनन्त और अपार है, उसके साथ संयोजन करके दोहन कर सकने पर चाहे जिस वस्तु को, चाहे जिस परिमाण में आकृष्ट किया जा सकता है।[1] परन्तु वस्तु की विशिष्ट सत्ता का आविर्भाव कठिन

१. शून्य का किसी भी बड़ी-से-बड़ी संख्या के द्वारा गुणन करने पर भी एक बिन्दु-मात्र भी सत्ता का उद्भव नहीं होता। परन्तु अति क्षुद्र सत्ता का भी संख्या द्वारा गुणन करने पर मात्रा-वृद्धि होती है। किसी के भी हृदय में सरसों बराबर भी पवित्रता होने पर कृपाबल से महापुरुषगण उसका उद्धार कर सकते हैं; क्योंकि कुछ रहने पर उसे बढ़ाया जा सकता है। परन्तु जहाँ पर कुछ नहीं है अर्थात् अभिव्यक्ति रूप में नहीं है, वहाँ बाहर की सहायता बेकार है। उस समय साधक को अपनी चेष्टा के द्वारा उसे भीतर से जाग्रत् करना पड़ता है। यही पौरुष का क्षेत्र है। फिर बिन्दुमात्र भी उद्‌बुद्ध होते ही बाह्यशक्ति कृपारूप से उसको बढ़ा देती है। इस पौरुष के बिना केवल कृपा द्वारा कोई फल नहीं होता। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के पात्र से बिन्दुबराबर अन्न लेकर उसके द्वारा हजारों ऋषियों को तृप्त कर दिया था। देश और विदेश में महापुरुषों के चरित्रों से ऐसे अनेक दृष्टान्त मिल जायँगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्य है। वही स्थूल जगत् की बीज-सृष्टि है।

यह बीज-सृष्टि भी प्रकृत (मूल) बीज की सृष्टि नहीं है। ऊपर जो अव्यक्त कर्पूर-सत्ता की बात कही गई है, वही मूल बीज है, और जो लिंग-रूप से बीज की बात कही गई है, वही गौण या स्थूल-बीज है। स्थूल बीज विभिन्न रश्मियों के क्रमानुकूल संयोग-विशेष से अभिव्यक्त होता है। परन्तु मूल बीज अलिंग, अव्यक्त, प्रकृति का आत्मभूत और नित्य है। इस प्रकार के अनन्त बीज हैं। प्रत्येक बीज में एक आवरण है, उससे वह विकासोन्मुख नहीं हो सकता, मूल बीज और स्थूल बीज के रूप में परिणत नहीं हो सकता। सूर्य-विज्ञान रश्मिविन्यास के द्वारा उस मूल बीज को व्यक्त करके सृष्टि का आरम्भ दिखा देता है।

परन्तु उस बीज को व्यक्त करने के और भी कौशल हैं। वायु-विज्ञान, शब्द-विज्ञान इत्यादि विज्ञान-बल से, चेष्टापूर्वक रश्मि-विन्यास किये बिना भी अन्य उपायों से वह अभिव्यक्ति का कार्य संघटित किया जाता है। पूज्यपाद परमहंसदेव ने उन सब विज्ञानों के द्वारा भी सृष्टि-प्रभृति प्रक्रिया किस प्रकार साधित हो सकती है, यह योग्य अधिकारियों को प्रत्यक्ष दिखा दिया है। इन पंक्तियों के लेखक ने भी सौभाग्यवश उसे कई बार देखा है।

सृष्टि की आलोचना करते हुए साधारणतः तीन प्रकार की सृष्टि की बात कही जाती है। उनमें पहली परा सृष्टि, दूसरी ऐश्वरिक सृष्टि और तीसरी ब्राह्मी सृष्टि या वैज्ञानिक-सृष्टि है। सूर्य-विज्ञान के बल से जिस सृष्टि की बात कही गयी है, उसे तीसरे प्रकार की सृष्टि समझना चाहिए।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव
खण्ड दो

दिव्यकथा

संकलनकर्ता
स्व० सुबोध रक्षित

सम्पादक
स्व० म० म० पं० गोपीनाथ कविराज

प्रस्तुतकर्ता
नन्दलाल गुप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिव्यकथा

अतृप्ति—जीव स्वभाव से विच्युत हो गया है, इसी कारण वह इतना दुःखी है। किन्तु उसके स्वभाव का संस्कार अब भी उसमें बाकी है और वही जीव को अपने मायातीत राज्य की ओर खींच रहा है। इसी कारण जीव अपने भीतर एक प्रकार का अभाव तथा अतृप्ति का सदा अनुभव करता है।

वह धन चाहता है, पर धन पा जाने पर भी उसकी तृप्ति नहीं होती। स्त्री, पुत्रादि चाहता है, परन्तु वे मिल जाने पर भी उसे शान्ति नहीं होती। यश चाहता है, पर उसको पा लेने पर भी उसकी कामना शेष नहीं होती। शत्रु-विनाश चाहता है, पर शत्रुनाश होने पर भी सन्तोष नहीं होता।

वह हर समय माँ जगदम्बा से "रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि"—की प्रार्थना करता है, पर कामना सफल होने पर भी उसकी याचना का अन्त नहीं। जब उसका चित्त प्रार्थना करते-करते तनिक शुद्ध हो जाता है, तब वह 'रूप' के अर्थ समझ पाता है 'परमात्मवस्तु', 'जय' का अर्थ लेता है 'शास्त्रज्ञान', 'यश' का अर्थ लेता है 'व्यापक दृष्टि' तथा 'द्विषो जहि' का अर्थ समझता है 'काम, क्रोधादि रिपुओं पर विजय।'

इस प्रकार उसकी ज्ञान-शक्ति की संकीर्णता, आनन्द का अभाव तथा एक प्रकार की अस्थिरता उसे सतत दुःखी रखती है।

अभाव—जिसको जिस अवस्था में डालकर तैयार करने की आवश्यकता होती है; प्रभु उसको वैसी ही परिस्थिति में डाल देते हैं। ध्यान रखो कि तुम्हारें कल्याण के लिए जितने और जैसे की आवश्यकता है उतना ही प्रभु देते हैं तथा वैसे ही करते हैं। साधना करते-करते ज़ब निज़ स्वभाव में प्रतिष्ठित हो जाओगे तब तुम्हारा सारा यावतीय अभाव अपने आप मिट जायगा। सब जीवों के साथ ऐसा ही होता है।

आश्रय—गुरुदेव का नाम ही एकमात्र आश्रय है। माँ को जगाकर उसकी गोद पा लेने पर सब अभाव तुरन्त स्वतः मिट जायँगे।

आसन—मन को एकाग्र करके आसन में बैठना चाहिये। 'मैं अब आह्निक (जप) करने बैठ रहा हूँ'—ऐसी धारणा करने से ही मन को स्थिरता प्राप्त होगी। केवल पूजा या ध्यान का बहाना-मात्र करके बैठने से अनेक प्रकार के निरर्थक विचार मन को व्यथित करते हैं। मन को विशेष रूप से स्थिर करके पूजा के लिए बैठना चाहिए। दृढ़ संकल्प करके बैठने पर भी यदि मन इधन-उधर दौड़ता रहे, तब भी मन्त्र का जाप करते ही जाओ, छोड़ो मत। थोड़े ही समय पश्चात् मन एकाग्र हो जायगा। तुम थोड़े समय आँख बन्द करके जप आरम्भ करने के बाद ही ढूँढ़ने लगते हो कि कुछ विभूति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि आई कि नहीं। 'भगवान् तुम्हारे सामने ही खड़े हैं'—यह तुमको नहीं दीखता। वे तो द्वार में से भीतर प्रवेश करने के लिए व्यस्त हैं किन्तु एक तुम हो जो न तो उसको ध्यान द्वारा देखते हो और न प्रेम से बुलाते हो।

अहं ब्रह्मास्मि— इस प्रकार का बोध भ्रान्ति-मूलक भी हो सकता है और नहीं भी। व्यावहारिक रूप से उस बोध का प्रकाश नहीं किया जा सकता। जैसे कि अग्नि में तपा हुआ लोहा यदि बोध करे कि 'मैं अग्नि हूँ'—तो यह बात पूर्णतः सत्य न होते हुए भी, आंशिक रूप में एकदम असत्य भी नहीं कही जा सकती। क्योंकि तप्त लोहे में दाह करने की शक्ति तो अग्नि के समान है ही। परन्तु अन्य प्रकार से यह कथन मिथ्या भी है, क्योंकि अग्नि से अलग कर दिये जाने पर जब वही लोहा ठण्ढा हो जाता है तब उसमें वह दाह करने की शक्ति नहीं रहती और वह लोहे का लोहा ही रह जाता है। इसमें सन्देह या भ्रान्ति की कोई सम्भावना नहीं।

इसलिए सत्य तो यह है कि अग्नि के सम्पर्क में आकर तपने पर भी लोहा अग्नि नहीं हो जाता। हाँ, लोहे का अग्नि के साथ सम्पर्क यदि अटूट और अविच्छिन्न हो जाय तब तप्त लोहे का यह बोध कि 'मैं अग्नि हूँ'—एक प्रकार से ठीक और सम्भव माना जा सकता है।

इसी प्रकार, जिस योगी का ब्रह्म के साथ ऐसा अविच्छिन्न योग हो गया हो कि वह सतत ब्रह्म से योग-युक्त रहता हो तब ब्रह्म न होते हुए भी, ब्रह्म के साथ अटूट सम्बन्ध बना रहने के कारण उसमें ब्रह्म के सारे लक्षण, अर्थात्, ब्रह्म-धर्म प्रत्यक्ष देखने को मिलते हैं। किन्तु वास्तव में तो ऐसा योग-युक्त योगी भी मनुष्य ही है, ब्रह्म नहीं। "अहं ब्रह्मास्मि" में 'अहं' शब्द इस भाव का द्योतक है कि मैं, ब्रह्म से अलग जीव हूँ और ब्रह्म से अलग होते ही मुझमें ब्रह्मत्व का कोई भी लक्षण दिखाई नहीं पड़ेगा क्योंकि मैं वास्तव में 'जीव' ही हूँ, 'ब्रह्म' नहीं।

शुद्ध ब्रह्म में 'अहं या मैं' करके कुछ भी नहीं है। 'आत्म-भाव' का आश्रय न लेने तक 'अमित्व-भाव' जागता नहीं। स्थूल देह में 'अहं' का भाव ही बन्धन का हेतु है। वही अहं-भाव जब स्थूल देह के आधार को छोड़कर आत्मा में ब्रह्मत्व-भाव को ग्रहण कर लेता है और 'आत्म-भाव' या 'ब्रह्मत्व-भाव' में स्थिर हो जाता है तो वही मुक्ति का हेतु बन जाता है।

मुक्तावस्था में भी विशुद्ध आत्मबोध रहता है और यह ब्रह्माश्रय ही प्रकाशमान होता है। इस प्रकार से यह 'अहं ब्रह्मास्मि'—का अनुभव एक बार बिल्कुल मिथ्या भी नहीं है। ऐसी अवस्था में जीव को 'आत्म-स्वरूप' या 'परमानन्द-स्वरूप' भी कह सकते हैं। इसी अवस्था में अहं-बोध या आत्म-बोध लुप्त न होकर, व्यापक लाभ करता है। ब्रह्म जिस प्रकार व्यापक है, उसी प्रकार ब्रह्म के साथ योग-युक्त हो जाने पर 'अहं या मैं' भी व्यापक हो जाता है और सब जीवों तथा पदार्थों में ब्रह्म के ही दर्शन करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्द—आनन्द चार प्रकार का होता है। सभी आनन्द ब्रह्मानन्द नहीं हैं। हम लोग जिस आनन्द से परिचित हैं वह तो चित्त-वृत्तिमात्र है। ब्रह्मानन्द इससे बिल्कुल पृथक् है। चित्त-वृत्ति निरोध करने पर ही ब्रह्मानन्द का आस्वादन मिलता है।

आत्मा—आत्मा एक नहीं है—आत्मा, परमात्मा और महा-आत्मा—इस प्रकार तीन हैं। महा-आत्मा ही महाशक्ति है जिससे परमात्मा का विकास होता है। महात्मा या महाशक्ति के ऊपर मन की क्रिया नहीं चलती।

इष्ट देवता—मन्त्र के प्रभाव से, इष्ट देवता के परमाणु साधक की देह में आकृष्ट होकर आ ज़ाते हैं। इष्ट देवता के दर्शन अष्ट-भुजा, पंच-भुजा आदि अनेक रूपों में प्रकट होते हैं पर इससे भय नहीं लगता।

'भय' का तात्पर्य—विभिन्न प्रकार के परमाणुओं के संघर्ष से एक प्रकार की अस्वस्थता (बेचैनी) का बोध होता है, जिसके प्रबल होने पर भय की उत्पत्ति होती है। जैसे किसी नयी जगह जाने पर मनुष्य को अजीब लगता है, रात में उसको नींद नहीं आती है। परमाणुओं की गड़बड़ ही इसका कारण है।

साधन करने से, इष्ट के मन्त्र का जाप करने से इष्ट देवता के परमाणु साधक के शरीर में खिंचकर आ जाते हैं परन्तु साम्य न होने तक इष्ट देवता के दर्शन आदि नहीं होते। मैं जब किसी को देवमूर्ति के दर्शन कराता हूँ उस समय मैं देवता के परमाणुओं का आकर्षणकर दर्शक के भीतर उनका समावेश कर देता हूँ, तब वह देव-दर्शन कर पाता है। परन्तु क्योंकि वे परमाणु दर्शक की अपनी साधना द्वारा आयत्त नहीं हुए होते, इस कारण वे अधिक देर तक उसके शरीर में नहीं टिक पाते और दर्शक के निजी परमाणु इनको बाहर धकेल फेंकते हैं और दर्शन बन्द हो जाते हैं।

ऐश्वर्य—ज्ञान के उदय होने पर ऐश्वर्य का उदय अवश्यम्भावी है। ईश्वर-भाव ही ऐश्वर्य है। वह आत्म-स्वरूप से पृथक् नहीं है। ज्ञान के उदय होने पर जब आत्मा से आवरण हट जाता है तब आत्म-स्वभाव स्वतः ही जाग उठता है। ज्ञान के उदय होने पर ऐश्वर्य का प्रकाश अपने आप होगा जैसे कि फूल के खिलने पर उसमें मकरन्द का विकास स्वतः होगा। यही 'अर्जन' है। इसके उपरान्त ऐश्वर्य का विसर्जन अर्थात् निवेदन होता है। यही क्रम है। इसका फल है—परमात्म-भाव में प्रतिष्ठित होना। आत्म-भाव न जागने तक परमात्म-भाव में प्रवेश-लाभ नहीं होता। आत्म-भाव को जगाने के बाद उसको निरुद्ध (स्थिर) करना पड़ता है। इस निरोध की पूर्णता होने पर ही अमृत-लाभ होता है। आत्म-भाव को जगाना या कुण्डलिनी को जगाना एक ही बात है। हाँ! कुण्डलिनी को जगाने पर इसको अनन्त-ब्रह्म में लीन करना होगा और परम-शिव के चरणों में विलीन या मुक्त करना होगा। यह है जीव के अमृत-लाभ का उपाय। परम-शिव और मुक्त-कुण्डलिनी अथवा पराशक्ति के मिलन से जो नित्य अमृत-वर्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होती है उससे आनन्द छिटकता है। मुक्त जीव उसी अमृत-वर्षा का ध्यान करता है, उसी को पान करता है तथा उसी के स्वाद में मग्न रहता है।

उपादान संग्रह तथा उपादान शुद्धि—यदि आत्म-शोधन करना है तो हमको उपादान-शुद्धि पर विशेष ध्यान देना होगा। यह न करके यदि हम चलने-फिरने या व्यवहार पर ही दृष्टि रखेंगे, यदि वह भी आवश्यक है, लोक-दृष्टि से संयम-लाभ होने पर भी मूल-शुद्धि नहीं होगी। कभी न कभी अचानक विकारों की बाढ़ आ जाने पर उक्त प्रकार के संयम का निर्बल बाँध टूट जावेगा। उपादान की मूल-शुद्धि का एकमात्र उपाय है—'योग।'

जिसको आप स्थूल देह कहते हैं, वह तो वासनाओं की एक पोटली (गठरी) है। इसलिए जिस उपाय से स्थूल-भाव कट जाय, वही वासनाओं के कटने का उपाय है। वासनाओं से छुटकारा पाने का 'योग' के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। स्थूल के साथ सूक्ष्म का तीव्र संघर्ष न होने तक, स्थूल के भीतर छिपी चैतन्य-रूप अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, और उस अग्नि के प्रज्वलित न होने तक स्थूल की निवृत्ति नहीं होती। यह संघर्ष योग का ही एक आंशिक अंग है। 'स्थूल का दाह' और 'वासना का नाश' एक ही बात है। ज्ञान-उदय और आत्म-साक्षात्कार समकालीन हैं अर्थात् दोनों ठीक एक ही समय में उदय होते हैं।

उपादान संग्रह न कर लेने तक, केवल भावना द्वारा कोई फल-लाभ नहीं हो सकता। सत्त-शुद्धिपूर्वक आत्म-ज्ञान का विकास न होने तक, संकल्प कभी भी सिद्ध नहीं होते। भावना तो कल्पना ही है। जीव-भाव की, कल्पना द्वारा, व्यावहारिक सत्ता की अभिव्यक्ति नहीं होती। वह तो ऐश्वरिक-कल्पना द्वारा ही हो सकती है। ईश्वर की कल्पना ही सत्यमूलक है-इसीलिए ईश्वर सृष्टि आदि की रचना कर पाते हैं।

जीव जब तक ऐश्वर्य-लाभ न कर ले तब तक ईश्वर के से कार्य नहीं कर सकता। प्राण-प्रतिष्ठा, भूत-शुद्धि, चित्त-शुद्धि तथा न्यास, जिनके न हुए हों, उनके लिए यह सम्भव नहीं है।

अज्ञानी और ज्ञानी की भावनाओं में बड़ा अन्तर होता है। सामान्यतः उपासना के विषय में जो आलोचना प्रायः होती है वह 'अज्ञानी-उपासना' की आलोचना है। वस्तुतः अज्ञानी की भावना तो कल्पनामात्र ही है। ज्ञानी की भावना ही वस्तुतः उपासना का वास्तविक स्वरूप है जिससे व्यावहारिक सत्ता भी अभिव्यक्त होती है।

उपलब्धि—कर्म के साथ ज्ञान (विद्या) का संयोग होने पर ही वास्तविक तत्त्व का साक्षात्कार होता है। उपलब्धि करनी चाहिए, नहीं तो भगवान् के पास रहने से भी कुछ लाभ नहीं होगा। श्रीकृष्ण भगवान् ने विशेष कृपावश ही अर्जुन को अपने सान्निध्य में रखा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्तव्य (सांसारिक)—तुम लोग बाबू! अपने बेटे के लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? जब तुम लोग अपने बच्चों के विषय में बातचीत करते हो तो मुझे घृणा होती हैं। ये जो तुमने रोजगार में रुपये कमाये हैं यह क्या तुम्हारे अपने भाग्य से नहीं हुआ ? इसी प्रकार, तुम्हारे पुत्र-पुत्री भी अपना-अपना भाग्य लेकर आये हैं। उनके भाग्य को तुम कैसे बदल सकते हो ? तुम अपना कर्तव्य किये जाओ, बस इतना ही पर्याप्त है। उसके पश्चात् उनके भाग्य में जो लिखा-बदा है वही होगा। तुम्हारा कर्तव्य है कि बच्चों को सुशिक्षा दो जिससे वे बुरे रास्ते न जायें। उसके पश्चात् रोजगार आदि तो वे अपने-अपने भाग्य के अनुसार ही करेंगे।

कार्य किस प्रकार से होता है ?

हम लोग साधारणतः जिसको ज्ञान, इच्छा आदि नामों से सम्बोधित करते हैं वह सब अवस्थाओं में न तो रहता है और न रह ही सकता है, क्योंकि लिंग की क्रिया के बिना किसी वृत्ति का उदय नहीं होता। लिंग जिस समय तक वासनाहीन, संस्कार-रहित, स्थूल-सम्बन्ध-हीन रहता है तब तक उसमें क्रिया की सम्भावना नहीं रहती। शुद्ध-परमात्मभूमि में लिंग देह अभिभूत होकर तनिक हिल-डुल भी नहीं सकता। इसीलिए कैवल्य अवस्था में ज्ञान या इच्छा के उद्‌भव की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परन्तु शुद्ध वासना अथवा शुद्ध सत्ता का अवलम्बन करके जीव में ज्ञानादि का उदय हो सकता है; चित्त वृत्ति लिंग-क्रिया का हेतु बन सकती है। इसलिए लिंग जिस समय निष्क्रिय है उस समय वह चित्त-वृत्ति-हीन है—यह बात अकाट्य है।

स्थूल जड़ उसी प्रकार चलता है जिस प्रकार लिंग उसको चलाता है। किन्तु वास्तव में संचालन-शक्ति लिंग में भी नहीं है, वह तो आत्मा में है। आत्मा की संचालन-शक्ति ही लिंग को चलाती है। इसीलिए लिंग के आत्मा में विलीन हो जाने पर स्थूल देह निश्चल हो जाता है।

कर्म, ज्ञान और भक्ति—पूर्व जन्मों के कर्म द्वारा ही इस जन्म के कर्म कुछ सीमा तक नियन्त्रित होते हैं। पूर्व जन्म के कर्म भी तो अपने ही किये हुए हैं। कर्म बिना फल नहीं। जो जैसा कर्म करेगा वैसा ही फल पायेगा। इसीलिए कहते हैं—
"कर्मभ्यो नमः।"

कर्म (गुरुदत्त साधना) करते-करते जब चित्त का मल कट जाता है तब 'ज्ञान' की परिपक्वता होने पर 'भक्ति' का प्रादुर्भाव होता है।

भक्ति की प्रारम्भिक अवस्था में एक प्रकार का उत्साह तथा मादकता होती है। यह शनैः शनैः स्थिर और निर्मल होती जाती है। पूर्णतया स्थिर और निर्मल होने पर 'भक्ति' 'प्रेम' में बदल जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कर्म' संघर्ष का ही एक स्वरूप है। किस के साथ किसका संघर्ष ? मन के साथ मन्त्र का संघर्ष। मन नीचे की अरणी है तथा मन्त्र ऊपर की अरणी है। जैसे अरणी के साथ अरणी का संघर्ष होने पर अग्नि प्रकट होकर दोनों अरणियों को जला देती है, उसी प्रकार मन्त्र के मन के साथ संघर्ष से जो तेज उत्पन्न होता है वह मन की अशुद्धि, तथा मन के आवरण दोनों का ही नाश कर देता है। उस समय मन शुद्ध सत्त्व में परिणत हो जाता है। इस समय 'ज्ञान' का विकास होता है। उसके पश्चात् भी यदि संघर्ष चलता रहता है तो इस संघर्ष के फलस्वरूप 'ज्ञान' शुद्ध होकर 'भक्ति' में परिणत हो जाता है—अर्थात् विशुद्ध-ज्ञान ही भक्ति है।

'भक्ति' निर्मल होने पर उसकी संज्ञा 'प्रेम' हो जाती है अर्थात् निर्मल भक्ति को ही प्रेम कहते हैं। ज्ञान के बिना वास्तविक भक्ति नहीं होती। हाँ, अवश्य 'ज्ञान' में आस्वादन नहीं है पर 'भक्ति' में आस्वादन है। यही ज्ञान तथा भक्ति में भेद है—ज्ञान शुष्क है—भक्ति रसमयी है।

शास्त्रों के अध्ययन से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह शुष्क या सूखा (कोरा) ज्ञान है। उससे पाण्डित्य की ख्याति छोड़, वास्तविक लाभ कुछ भी नहीं होता। और साधना करते-करते अनुभव के द्वारा अर्जित वास्तविक ज्ञान की ज्योति के बिना भक्ति अन्धी तथा उन्मादिनी होती है। इस प्रकार योगी के कर्म का अन्त नहीं है।

कीर्तन— कीर्तन में विरह या वियोग के पद सुनने और बोलने पर यदि आँखों से जल की धारा बहने लगे तो यह अवस्था आध्यात्मिक उन्नति की कोई विशेष सूचक नहीं है। यह तो अपने भीतर में जो विरह आदि की अभिज्ञता है, उसी को राधा इत्यादि पर आरोप करके उसी भाव का उपभोगमात्र है। तत्त्व दृष्टि से राधा के वियोग का मतलब ही क्या ? श्रीकृष्ण की शक्ति होने के नाते राधा तो कृष्ण के साथ नित्य-युक्त है—वहाँ विरह तथा वियोग का तो प्रश्न ही नहीं उठता। कीर्तन के समय जिस भाव को लेकर लोग रोते हैं वह तो कीर्तन के पद-कर्त्ता के मन की सृष्टि है। भाव-प्रबलता से प्राकृतिक लाभ तनिक भी नहीं होता वरन् मन दुर्बल होता है।

क्रिया—यथासमय क्रिया करने से अल्प समय में ही जो फल होता है, अन्य समय क्रिया करने से, उतना ही फल लाभ पाने के लिए, बहुत अधिक समय लगता है। आह्निक करने के समय, जप बराबर चलते रहने पर भी, मन सब समय मन्त्र के साथ संयुक्त नहीं रहता। एकाग्रता की मात्रा के अनुपात में ही जप का फल भी होता है। परन्तु आसन पर बैठकर जप करने से, अति अल्प संयोग होने पर भी, फल होगा कुछ अवश्य। इसी को लेकर जगदम्बा साधक को उठाती है।

क्रिया करो, क्रिया करो, निरन्तर क्रिया करो। उसी से निर्भरता आएगी। सबकुछ तुम अपने आप समझ जाओगे और फिर विचलित नहीं होगे—स्थिर हो जाओगे। क्रिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने से ईश्वर की कृपा की उपलब्धि होती है। ईश-कृपा तो अनवरत ही मस्तक पर झर रही है, किन्तु क्या तुम्हें कभी इसका भान होता है ?

स्त्री के लिए, धन के लिए, सुमधुर भोग्य पदार्थों के लिए तुम कितना प्रयत्न करते हो। उस समय तो तुम अपने को कर्ता मानकर खूब पुरुषार्थ करते हो। पर साधन-भजन के समय तुम हाथ ढीले कर देते हो। "बाबा! कृपा करो, आप ही सब करने वाले हो, मुझमें शक्ति कहाँ जो कुछ कर सकूँ।"—यह कहकर सोचकर मेरा अवलम्बन और मेरी कृपा की याचना करते हो तथा मुझे कर्ता मानते हो। अरे! गुरु बनकर मैंने तुम्हारा बोझा उठाना स्वीकार तो कर ही लिया है पर मैं तुम लोगों से इतना भर चाहता हूँ कि तुम सद्वृत्ति का पोषण करो और सुमति से रहो।

सब कार्यों का समय होता है। असमय में किया हुआ कोई भी कार्य सुसम्पन्न नहीं होता। चार सन्धियाँ होती हैं—सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त और महानिशा। सूर्योदय और सूर्यास्त में जो वस्तु है वह अति सूक्ष्मतर है।

कृपा—कृपा चेष्टा के अनुरूप ही होती है। प्रभु की कृपा होने से, एक क्षण में ही विशुद्ध चैतन्यमय-भाव प्राप्त हो जाता है, परन्तु उनकी कृपा न होने से दो घण्टे में भी वह भाव प्राप्त न हो। मनुष्य करता है—कर्म में उसका पूर्ण अधिकार है परन्तु उस कर्म का फल देना ईश्वर के अधीन है। प्रभु का कर्म में कोई हाथ नहीं, कोई जोर नहीं और कोई जिम्मेदारी (दायित्व) भी नहीं। तब भी वे प्रभु कृपामय हैं।

अपनी चेष्टा, अपना पुरुषार्थ चाहिए, ईश्वर की कृपा तो सबके ऊपर हर समय है ही। स्वयं चेष्टा करके, प्रभु-कृपा की उपलब्धि करनी पड़ती है। चेष्टा बिना किये, कृपा का अनुभव नहीं होता। दुःख की चोट पड़ने पर ही भगवान् का ध्यान आता है। कृपा के लिए चिन्ता करके हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे रहने से कुछ लाभ नहीं। कर्म का, चेष्टा का, पुरुषार्थ का आश्रय लेने पर यथासमय कृपा का विकास अवश्य होगा। अग्नि वैसे तो सर्वत्र व्यापक है परन्तु लकड़ी या तेल या गैस में छिपी अग्नि निष्क्रिय है—उसके द्वारा दाह और प्रकाश का कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता। उसको जगाना अर्थात् प्रज्वलित करना पड़ता है तभी वह दाह या प्रकाश आदि के कार्य साधन कर पाती है। इसी प्रकार कृपा के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए।

जीव की ऊर्ध्व गति प्रभु की कृपा बिना नहीं होती। भगवान् जो जीव को निरन्तर अपनी ओर आकर्षित करते हैं यही उनकी कृपा है। इस आकर्षण-शक्ति की सहायता न पाने से बद्ध जीव की क्या क्षमता कि वह भगवान् के चरणों में उपस्थित हो सके। प्रभु की कृपा ही प्रभु को उपलब्ध करने का एकमात्र उपाय है। मन्त्र और मन के संघर्षण को छोड़, स्थूल-नाश का दूसरा कोई उपाय नहीं है। संघर्षण होने से ही भगवत्कृपा की उपलब्धि होती है। स्थूल भाव की निवृत्ति होने के साथ-साथ ही देहात्मबोध अर्थात् जड़ता तथा कर्त्तव्य-अभिमान विलीन हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योग-रूप कर्म आध्यात्मिक जीवन-लाभ का प्रथम और श्रेष्ठ उपाय है। मन्त्र जप द्वारा जड़ता को हटा देने पर चैतन्य को उपस्थित होना ही पड़ेगा।

आश्रय-ग्रहण, शरणागति तथा प्रपत्ति का बिना कृपा के विकास नहीं होता। कृपा के बिना निरभिमान होकर शरणापन्न नहीं हुआ जाता। यदि किसी के मन में मुक्ति की इच्छा, ऊँचा उठने की इच्छा अथवा अन्य कोई शुभेच्छा जागे, तो इसको ईश्वर की कृपा का ही निदर्शन समझना चाहिए।

जब यह दिखाई पड़े कि किसी के ऊपर कृपा हुई है, तब निश्चय ही समझ लो कि यह उसके द्वारा किये हुए कठिन परिश्रम और साधना का ही परिणाम है। कितने जन्मों का परिश्रम, कितना हाहाकार, कितनी व्याकुलता, कितनी आर्त्तवेदना और कितनी चुपचाप आँसुओं की धाराएँ बही होंगी—तब कहीं जाकर प्रभु-कृपा का संचार हुआ है। हठात् कुछ नहीं हो जाता। यदि एक थोड़े समय के भीतर ही भगवान् की कृपा पा लेता है और उसके विपरीत दूसरा पूरे जीवन भर सतत प्रयत्न करते रहने पर भी प्रभु की कृपा का लाभ न पा सके, तो इससे यह न समझो कि ऐसा अकारण ही हो गया। जिसने सारे जीवन प्रयत्न करने पर भी कृपा नहीं पायी—समझ लो कि उसको अभी और भी परिश्रम करना शेष है। और जिसने इस जन्म में थोड़े ही परिश्रम से शीघ्र कृपा पा ली है उसने पूर्व जन्मों में घोर परिश्रम कर रखा है, थोड़ी-सी कसर थी जो उसने इस जन्म में पूरी कर दी और प्रभु-कृपा पाने का अधिकारी बन जाने पर कृपा की उपलब्धि की।

सतत सत्-प्रयास की आवश्यकता है। धोखा देने से काम नहीं बनेगा। कर्मभ्यो नमः॥

काम, क्रोधादि रिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोहादि के कारण मन बड़ा चंचल और विक्षिप्त रहता है। इस चंचलता के शमन का केवल एक ही उपाय है और वह है 'योग'। योग-साधना के द्वारा इन रिपुओं का दमन होता है किन्तु इनके शान्त न होने तक योग भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाता।

परन्तु यह काम, क्रोधादि निरर्थक हों—ऐसा भी नहीं है। इनका भी प्रयोजन है। धान का छिलका उतारकर चावल बोने से क्या धान पैदा हो सकता है ? नहीं। छिलका देखने में बेकार लगता है परन्तु उसकी भी कार्यकारिता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि भी इसी प्रकार के हैं। हाँ, और अच्छी वृत्तियों के अनुपात में वे हेय हैं और साधारणतः उन्नति में बाधक हैं—ऐसा बोध जागने पर समझना चाहिए कि जीव आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है।

'क्रिया' करते-करते, चित्त का विक्षेप धीरे-धीरे कम होने लगता है। दम्भ तथा अहंकार भी बड़ी खराब वृत्तियाँ हैं। इनमें लिप्त रहने पर आत्मिक उन्नति कभी भी नहीं हो सकती। जहाँ अर्थ (धन) है वहीं दम्भ है। लोभ-संवरण की नितान्त आवश्यकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। क्रोध तथा काम का दमन भी आवश्यक है। काम से भी क्रोध अधिक अनिष्ट करता है। पत्नी-वियोग होने पर यदि चरित्र खोने की सम्भावना हो, और कामेन्द्रियों को वश में न रख पाने का डर हो, तो दूसरा विवाह कर लेना ही भला है। स्त्री मनुष्य की भारी विपत्ति से—काम के वशीभूत होकर चरित्र खो बैठने की स्थिति से—रक्षा करती है, इसी कारण स्त्री को कहा है 'भार्या'। कामुकता महा-विपत्ति का कारण है—परन्तु विवाहिता पत्नी के साथ रति काल में संयम के अन्दर रहते हुए सहवास करने से स्वास्थ्य तथा धर्म की हानि नहीं होती।

काम, क्रोध, लोभादि रिपु जीव का बड़ा अपकार करते हैं सही, परन्तु उनका समुचित प्रयोग करने पर उनसे उपकार भी होता है। केवल उनका व्यभिचार या अनुचित व्यवहार करने पर ही वे जीव के ध्वंस का कारण बनते हैं। प्रयोजन के अनुसार, सद्भाव से इनका प्रयोग करने से इनके द्वारा जीव का विशेष हित-साधन होता है। जैसे कि यही काम, क्रोध, लोभादि यदि भगवान् की पूजा, अर्चा आदि विषयों के प्रयोग में लाये जावें तो इनसे परम मंगल ही होगा। जैसे—"यदि कामुक की भाँति भगवान् से प्रेम करो, उन्हें आलिंगन करो, उनके ऊपर मुग्ध हो, उनके प्रेम में मतवाले हो जाओ। अथवा वे तुम्हारे अपने हैं, तुम उनके प्रिय हो, वे तुम्हारे ऊपर कृपावान् हैं—इस घमण्ड में चूर रहो—तो इससे तुम्हारा अहित नहीं अपितु परम मंगल होगा।"

इसके अतिरिक्त भी, दया, दान, प्रेम आदि सद्वृत्तियाँ जैसे आवश्यक हैं वैसे ही काम, क्रोधादि वृत्तियाँ भी आवश्यक हैं। दोनों प्रकार की वृत्तियों का संयोग न होने तक मनुष्य-जीवन की सार्थकता नहीं होती। बाबू! धान का छिलका उतारकर केवल चावल बोने से अंकुर नहीं निकलेगा—दोनों की ही आवश्यकता है, चावल और उसके ऊपर के छिलके समेत बोने से ही अर्थात् छिलके समेत धान को बोने पर ही अंकुर निकलेगा।

कर्म-योग—मनुष्य जब तक स्थूल देह में वर्तमान है तब तक उसको अहंकार तथा कर्तव्याभिमान रहता है। इस अवस्था में ही उसका कर्म में अधिकार है। देह, इन्द्रिय, मन आदि की क्रियाओं को ही 'कर्म' जानो। स्थूल देह में आबद्ध जीव के लिए कर्म करना अनिवार्य है, उसके किये विना उसका निस्तार नहीं। "कर्म नहीं करूँगा"—ऐसा सोचकर और कहकर कर्म न करने पर भी जीव के लिए कर्म-त्याग सम्भव नहीं। अतः कर्म जब करना ही है तब ऐसे कर्म को क्यों न करो जिसके द्वारा कर्म-बन्धन ही, सदा के लिए, छिन्न हो जावे ? इसी कौशल-युक्त-कर्म को 'योग' कहते हैं।

इसलिए आध्यात्मिक उन्नति-लाभ के लिए, प्रथमतः योगाभ्यास करना ही पड़ेगा। योगाभ्यास न कर, यदि ज्ञान तथा भक्ति और प्रेम को आयत्त करना चाहोगे तो वास्तविक ज्ञान तथा भक्ति का सन्धान भी नहीं मिलेगा—जो मिलेगा वह आभासमात्र ही होगा वास्तविक आध्यात्मिक उन्नति योगाभ्यास बिना असम्भव है। योगाभ्यास को छोड़ अन्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मार्ग तथा प्रयोग तो केवल दिखावटी बाह्य चिह्नमात्र ही है। सर्वत्र कर्म (योगाभ्यास) ही प्रधान है।

ज्ञानमार्ग एवं भक्तिपथ में श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि विभिन्न साधन कर्म (योगाभ्यास) के ही अन्तर्गत हैं। मूल बात तो यह है कि स्थूल से सम्बन्ध होने के कारण, मनुष्य केवल कर्म का ही अधिकारी है। इसलिए सतत कर्म करते रहो— कर्मभ्यो नमः।

सद्गुरु के निर्देश के अनुसार साधन-कर्म करने से आगे की उच्च अवस्थाएँ अपने आप ही खुल जाती हैं। चिरकाल कर्म करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि 'क्रिया' करते-करते क्रिया की एक परावस्था है, जिसका स्फुरण स्वतः होता है, उसके पश्चात् क्रिया और करने की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु जब तक उस अवस्था का विकास न हो तब तक 'कर्म' करना अवश्यम्भावी है।

कर्म-त्याग इच्छा करने से नहीं होता, यह तो यथाकाल स्वतः ही हो जाता है। नये शुभ कर्मों के द्वारा प्राक्तन कर्म-भोग कटता है, यहाँ तक कि विधि का विधान तथा प्रारब्ध भी उलटाया जा सकता है। मनुष्य के क्रम-विकास का इतिहास केवल इस एक ही जन्म का नहीं है। तुम आज जिस अवस्था में हो वह जिस कल तक के ज्ञान व कर्म के फलस्वरूप है, उसी प्रकार तुम्हारी वर्तमान देह, जन्म और प्रवृत्तियाँ भी पूर्व जन्मों के संस्कारों के ही फलस्वरूप हैं।

देह विश्लेषण करके उसके संस्कार स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। एक वृक्ष जैसे सूक्ष्म भाव से बीज में निहित रहता है और उस बीज का विश्लेषण करके उस बीज से, भविष्य में जो वृक्ष उपजेगा उसके संस्कार और उस वृक्ष का स्वभाव जाना जा सकता है। उसी प्रकार से गर्भाधान के समय, पिता के वीर्य तथा माता की रज मिलकर जो बीज उत्पन्न होता है, जिससे भविष्य देह का विकास होता है, उस देह का पूरा इतिहास इस बीज का विश्लेषण करने पर जाना जा सकता है!

तन्त्रशास्त्र में जो नाद, बिन्दु तथा बीज के रहस्य का वर्णन है वह वास्तविक रूप में 'पितृ-भाव', 'मातृ-भाव' और इन दोनों भावों के मिलन-स्वरूप 'सन्तान-भाव' की ही तरह है।

कर्म-फल कभी भी नष्ट नहीं होता। पूर्वजन्म के संचित साधन-संस्कारों के अनुरूप ही वर्तमान जन्म में प्रवृत्ति तथा कर्म होते हैं। विनष्ट न होने तक यह संस्कार निष्क्रिय भाव से चित्त-क्षेत्र में पड़े रहते हैं। कर्म की यात्रा पूरी न होने तक अर्थात् कर्म-भोग पूरा न होने तक कोई भी सिद्धि-लाभ या ज्ञान-लाभ नहीं होता।

सब स्त्रियों को मातृ-रूप में देखना चाहिए। स्त्री को देखते ही भावना होनी चाहिए कि यह मेरी माता है, बहिन है या पुत्री है। दुर्जय काम-रिपु के साथ सर्वदा ही युद्ध करना पड़ेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्म-जीवन तथा साधन-जीवन—साधारण कर्म-जीवन तथा साधन-जीवन का सामंजस्य धीरे-धीरे स्वतः ही हो जायगा यदि 'क्रिया' के समय ठीक प्रकार से क्रिया करते चलोगे। अच्छे विषय में आसक्ति उत्पन्न करने के लिए उस विषय की अच्छी प्रकार तीव्र भाव से आलोचना तथा चिन्ता करने की आवश्यकता होती है। निम्न स्तर के खराब परमाणु इस समय तुम्हारे भीतर बहुत मात्रा में अति प्रबल हैं। इस कारण अच्छे विषयों के परमाणु भीतर प्रवेश नहीं कर पा रहे हैं। अधिक मात्रा में अच्छे परमाणुओं के संघर्ष द्वारा ही खराब परमाणु पराजित होकर तुम्हारे शरीर में से बाहर निकलेंगे। पूर्वजन्मों के संस्कार अभी तुम्हारे भीतर इकट्ठे हैं।

''मन को कभी भी विचलित मत होने दो। तुम प्रतिदिन किस प्रकार से क्रिया कर रहे हो तथा और भी जो काम तुम करते हो वह सभी मैं, अपरोक्ष भाव से देखता रहता हूँ।'' 'मैं आज बहुत क्लान्त हूँ'—ऐसा सोचकर जब तुम पूजा करने के लिए आसन तक पर नहीं बैठते तथा केवल नियम-रक्षा के हेतु जल्दी-जल्दी जप-क्रिया को पूरा करते हो—इसकी भी मैं खबर रखता हूँ। मैं तो केवल यह देखना चाहता हूँ कि तुम्हारी अपनी दौड़ कहाँ तक है ? इसीलिए मैंने तुमको पूरी छूट दे रखी है। जब तुम हद से ज्यादा लापरवाही करने लगते हो तब एक तीव्र चोट देकर तुमको सावधान कर देता हूँ और तुममें चैतन्य का संचार कर देता हूँ। इस बात को तुम धीरे-धीरे अनुभव से अपने आप समझ पाओगे।

रेत-पात कम से कम हो, इस विषय में विशेष रूप से सतर्क रहना चाहिए। कपट का त्याग करने का भी विशेष प्रयोजन है। सर्वदा सब विषयों में सरल सत्य का अवलम्बन करना चाहिए। आहार के विषय में पवित्रता की रक्षा करना तथा रात्रि को थोड़ा ही खाना उचित है। परचर्चा का तो एकदम पूर्ण रूप से त्याग करना उचित है। सर्वदा भगवान् का स्मरण करना चाहिए। चरित्र के प्रति विशेष सावधान रहना चाहिये।

गुरु की आवश्यकता—'गुरु किये बिना धार्मिक-जीवन का लाभ नहीं होता'—यह बात सत्य है। विशुद्ध आधार में, प्रकाशमान-चित्तशक्ति की सहायता न पाने से, जगत् के आवरण से आच्छन्न जीव किस प्रकार से, आवरण को काटकर, निज के चैतन्यमय स्वरूप की उपलब्धि करेगा ?

'जो शक्ति ईश्वर में है वही जीव में भी है'—यह सत्य होते हुए भी ईश्वर की शक्ति प्रकट है, अभिव्यक्त है, और वही कार्य करने में समर्थ है। जीव में वही ईश्वर-शक्ति अव्यक्त, निष्क्रिय, अप्रकट तथा जड़ता के भाव के कारण निम्न कोटि की है। जीव-शक्ति सत्‌चित् ब्रह्म की ही शक्ति है—इसमें सन्देह नहीं किन्तु जीव-शक्ति अविद्या-ग्रस्त है। उसको सशक्त करने के लिए बाहर से उसी तरह की शक्ति के परमाणु लाकर जीव की शक्ति को बढ़ाना पड़ेगा। इस छिपी शक्ति को 'कुण्डलिनी शक्ति' कहते हैं।

कुण्डलिनी-शक्ति बद्ध जीव में प्रसुप्त अर्थात् निद्रित अवस्था में वर्तमान है। उसको क्रिया-कौशल से तथा गुरु-कृपा से, किसी भी प्रकार से जगाना होगा। कुण्डलिनी के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निद्रित रहने तक, जीव बँधा हुआ है—कर्म-बन्धन से जकड़ा हुआ है। कुण्डलिनी की निद्रा टूटने पर ही जीव मुक्त होता है। काठ में अग्नि जैसे निद्रित रहती है, उसी प्रकार जीव की देह में कुण्डलिनी भी निद्रित रहती है।

जो चैतन्य हैं उनके स्पर्शमात्र से अचेतन भी चैतन्य हो उठते हैं। अचेतन में ही चैतन्य छुपा हुआ है, चैतन्य के संग से वह प्रकट होता है। चैतन्य के अभिव्यक्त रूप को ही गुरु कहते हैं। विशाल अव्यक्त चैतन्य, जो जीव में छुपा हुआ है, उसको अभिव्यक्त-चैतन्य अर्थात् गुरु द्वारा ही प्रकट किया जाता है। एकमात्र गुरु ही उसे चैतन्य कर सकते हैं।

गुरु-शक्ति का संचार केवल मनुष्य-देह में ही सम्भव है, इसी कारण मनुष्य-देह की इतनी प्रशंसा है। मनुष्य को छोड़ अन्य जीवों में सत्य-भाव की मात्रा बहुत ही कम है। उनमें विचार-शक्ति तथा विवेक-शक्ति का विकास नहीं हुआ है।

सद्गुरु तथा गुरु-तत्त्व

सद्गुरु अपने सिद्धि-बल से दीक्षा-प्रार्थी के अनेक पूर्वजन्मों के इतिहास का उद्घाटन करके उसके लिए इस जन्म में जो उपयोगी मन्त्र है उसकी दीक्षा उसको देते हैं। इष्ट-देवता के ध्यान में कुछ विशेष कठिनता नहीं है। उपयुक्त भाव से साधन करने पर, इष्टदेव अपने आप ही दर्शन देते हैं। मन्त्र तो एक बाह्य आवरणमात्र है। उसके अन्दर ही शक्ति रहती है। सद्गुरु उस शक्ति को, चैतन्य-सम्पादनपूर्वक, उपयुक्त आवरणमुक्त (अनावृत) करके, शिष्य को प्रदान करते हैं। यह 'शक्ति-समन्वित-मन्त्र' ही साधक को आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर करता है।

गुरु रास्ता दिखा देते हैं, आगे बढ़ने में सहायता भी करते हैं किन्तु शिष्य की उन्नति उसके अपने पुरुषार्थ तथा चेष्टा के अनुरूप ही होती है। 'गुरु' का अर्थ है—'जो भारी भार ग्रहण कर पावे।' शास्त्र के अनुसार—गु = अन्धकार, रु = आलोक, उजाला अर्थात् गुरु वह है जो शिष्य को अन्धकार में से उजाले में ले आवे या जो शिष्य के हृदय के अन्धकार में उजाले को ले आवे या उसके हृदय के अन्धकार में उजाला कर दे।

जो ज्ञान के उजाले से तत्त्व वस्तु दे दर्शन करा दे; जो आत्मा, अनात्मा तथा परमात्मा के स्वरूप को स्पष्ट रूप से दिखा सके; जो अन्धे को आँखें देकर, अनन्त महाशक्ति की विराट् विश्व-लीला दिखा शिष्य को आत्म-स्वरूप-दर्शन की स्थिति-लाभ करने की योग्यता प्रदान कर दे—वह है गुरु।

जो अपने आप जाग्रत् हैं वे ही सोये हुए को जगा सकते हैं। निद्रित, निद्रित को नहीं जगा सकता। जो ज्ञानी हैं, सदा जाग्रत् हैं, दयामय हैं, वे ही ज्ञान-रूपी-अंजन की सलाई द्वारा अन्धकार में पड़े जीव के अज्ञान-रूपी अँधेरे को दूर करके उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रज्ञा का उन्मीलन कर सकते हैं। अज्ञानी ऐसा नहीं कर सकता। इसलिए परमेश्वर ही एकमात्र वास्तविक गुरु है। उसकी कृपा से ही जीव उसको पहचान सकता है। ''ईश्वर ही गुरु''—इसका अर्थ है कि ईश्वर के अनुग्रह के बिना कोई उन्हें जान नहीं पाता, पहचान नहीं पाता तथा पा भी नहीं सकता। उनके अपने आप गुरु-रूप से आत्म-प्रकाश न करने तक, जीव अनन्त काल तक खोजने पर भी उनको नहीं पहचान सकता।

उनकी इच्छा होने पर ही उनकी स्वरूप-भूत कृपाशक्ति भूतल पर आकर किसी-किसी उच्च सुसंस्कारी जीव को धीरे-धीरे स्वभाव में भावित कर लेती है। तत्पश्चात् उस जीव को शोधित करके निज-स्वरूप में पहुँचा देती है। जिस स्वच्छ आधार में यह कृपा-शक्ति प्रकाशित होती है उसी को गुरु कहते हैं। इस प्रकार से एकमात्र ईश्वर ही गुरु है।

निर्मल चैतन्य ही है गुरु का स्वरूप। पारमार्थिक दृष्टि से मनुष्यादिक गुरु नहीं हो सकते। बद्ध जीव को निर्मल वस्तु का आश्रय ग्रहण कराने के लिए ही ईश्वर-गुरु नीचे उतर आते हैं और कृपावश जीव को अपने आप को पकड़ा देते हैं अथवा जीव को आकर्षण करके उसको अपने पास ऊपर उठा लेते हैं। यदि वे नीचे न आते तो जीव उनको कदापि न पा सकता और अपने आत्मोद्धार का पथ भी न जान पाता। उनकी कृपा ही उनको पहचनवा देती है। यह कृपा ही गुरु-शक्ति कहलाती है। गुरु का मुख्य कार्य है जीव को ऊर्ध्व गति प्रदान करना, उसको उठाना।

गुरु का नित्य स्वरूप साधारणतः लोग देख नहीं पाते। साधक को जो दीख पड़ता है वह उनका स्थूल रूप है—उनका परम रूप नहीं है। संस्कार-रंजित नेत्रों से सभी अपनी-अपनी वासना के अनुरूप गुरु के दर्शन करते हैं।

साधारणतः औपदेशिक ज्ञान देने के लिए देह की आवश्यकता होती है यद्यपि योगीजन कभी-कभी बिना देह के भी, शुद्ध उपादान ग्रहण करके अथवा संकल्प-मात्र से देह का निर्माण करके, अधिष्ठानपूर्वक, प्रयोजनानुसार ज्ञान का उपदेश देते हैं। ऐसी देह को 'निर्माण-काय देह' कहते हैं; कोई-कोई इसे 'निर्माणचित्त देह' भी कहते हैं।

गर्मी और रोशनी चाहने वाले को प्रज्वलित अग्नि का आश्रय ग्रहण करना ही पड़ेगा। जिस स्थान पर भी, जिस उपाय से भी, जिस कारण से भी अग्नि प्रज्वलित हो या प्राप्त हो वहीं से ऐसी अग्नि का संग्रह करना पड़ेगा। प्रज्वलित प्रदीप के संस्पर्श से उनको अपनी बत्ती जलानी पड़ेगी। जो प्रदीप जगत् में प्रसुप्त अवस्था में (आत्मा के रूप में) सर्वत्र, सर्वभाव से वर्तमान है, उससे अन्धकार दूर नहीं होता क्योंकि वह तो अन्धकार में भी वर्तमान है और अन्धकार के साथ उसका तनिक भी विरोध नहीं है। अन्धकार को दूर करने के लिए तो प्रज्वलित दीप की आवश्यकता है।

इसी प्रकार सर्व-व्यापक विशुद्ध चैतन्य द्वारा, जीवों के अज्ञान की निवृत्ति नहीं होती, चाहे वह अन्तरात्मा या परमात्मा रूप से जीवों में वर्तमान है क्योंकि वह अभिव्यक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न होने के कारण, अज्ञान-निवृत्तक नहीं है। यह विशुद्ध चैतन्य जिस आधार में ज्ञान या विद्या-रूप में अभिव्यक्त है, प्रज्वलित है उस आधार से ही ज्ञान का संग्रह करके अज्ञान का नाश करना पड़ेगा। जिस आधार में ज्ञान उज्ज्वल भाव से जल रहा हो उस आधार को गुरु कहते हैं।

एक जलते हुए प्रदीप से जैसे दूसरा प्रदीप जल उठता है, उसी प्रकार गुरुरूपी उज्ज्वल आधार के संस्पर्श से जब बद्ध जीव की अपनी सुप्त अग्नि प्रज्वलित हो जाती है तब उसकी अन्तरात्मा जाग उठती है। तब अन्तर में गुरु के दर्शन होते हैं। अग्नि आधार-भेद से, पृथक्-पृथक् भाव से प्रकाशमान होने पर भी, अग्निरूपी सत्ता जैसे एक को छोड़कर दूसरी नहीं है (सदा एक ही है) उसी प्रकार एक ईश्वर ही अनेक रूपों में गुरु हैं। ब्रह्मतेज रूपी प्रज्वलित अग्नि ही गुरु है। जीव को अन्तर्मुख होकर पहले अपने भीतर सोई हुई अग्नि को प्रकाशित करना पड़ेगा, फिर इस अग्नि की सहायता से सहस्रार के ज्योतिर्मय धाम को गमन करना पड़ेगा। गुरु का श्रेष्ठ रूप अव्यक्त ईश्वर है।

चेष्टा—सब विषयों में अपनी चेष्टा करने की आवश्यकता है। ईश्वर की कृपा तो सभी के ऊपर है, पर स्वयं चेष्टा करके उसको उपलब्ध करना होगा। चेष्टा किये बिना ईश्वर-कृपा का अनुभव नहीं होता। निजी चेष्टा बिना कोई और कुछ भी सहायता नहीं पहुँचा सकता। निर्मली फल को भीतर डाल देने से जल का मैल दूर होता है पर जल के पास बैठकर खाली निर्मली! निर्मली! कहने से जल साफ नहीं होगा, हजार बार प्रार्थना करने पर भी नहीं। उस फल को काम में लाने की चेष्टा करनी होगी। ईश्वर-कृपा चेष्टा के अनुरूप ही होती है।

चित्त, चित्त-चांचल्य तथा मन

मन का आधार तो है सूक्ष्म देह परन्तु मन के कार्य होते हैं स्थूल देह में। मन चंचल नहीं है, चंचल तो है चित्त। जल के ऊपर जैसे बेड़ा आधारित रहता है, उसी प्रकार चित्त के ऊपर आधारित है मन, चित्त की चंचलता के कारण ही मन चंचल होता है अतः मन को स्थिर करने के लिए चित्त को स्थिर करना होगा। इसका सब से श्रेष्ठ उपाय है जपयोग। चित्त ही सब संस्कारों का आश्रय और आधार है। मन, चित्त से विशुद्धतम सत्व है। चित्त की सकल प्रकार की चंचलता तथा दुर्बलता को दूर करके मन को स्थिर व सबल करना ही योग का लक्ष्य है। चित्त के ऊपर जमा हुआ मैल जपयोग द्वारा दूर होता है और वह चेष्टा की तीव्रता तथा प्रबलता के अनुरूप ही होगा। आम का ऊपर का छिलका दूर करने तक, आम का स्वाद नहीं मिलेगा। योग द्वारा जब मन का आवरण-रूप छिलका धीरे-धीरे दूर हो जाता है तब ही मन प्रकृत वस्तु—'ईश्वर प्रेम'—का रसास्वादन कर पाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्-शक्ति—जड़ शक्ति के मूल में चित्-शक्ति है। वस्तुतः चित्-शक्ति की विक्षिप्त तथा आच्छन्न अवस्था ही है जड़-शक्ति। इन्द्रियादिकों का प्रत्याहार तथा अन्तःकरण की निवृत्ति होने पर, एकाग्रता की परम अवस्था में चित्-शक्ति जाग उठती है।

जड़ प्रकृति—मनुष्य की प्रकृति जड़ है इसलिए वह जड़ की भाँति रहता है। साधारणतः वह एक जड़ कर्म को छोड़कर दूसरे जड़ कर्म को पकड़ता है। परन्तु 'क्रिया' इत्यादि करने पर जब उसे वास्तविक आनन्द का आभास मिल जाता है तब वह जड़ कर्मों की ओर उतना नहीं खींचता। अवश्य यह सत्य है कि जड़ कर्म कुछ भी नहीं है, केवल चैतन्य ही सत्य है। जगदम्बा ही सबकुछ हैं; उनकी इच्छा से ही सबकुछ होता है। मैं और मेरा यह सबकुछ भी नहीं है। जगदम्बा को पाने के लिए एक प्रकार की तीव्र व्यग्रता, आकुलता तथा विकलता चाहिए। देखोगे जभी आकुल तथा व्याकुल होकर जगदम्बा को पुकारोगे तभी मन में एक प्रकार की शान्ति का अनुभव करोगे। जगत् की सारी चीजें ही एक न एक प्रकार के आवरण से ढँकी हैं जैसे केला छिलके से ढँका है। केले का छिलका उतारने पर ही असली केले का स्वाद मिलता है।

'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां'—इसका अर्थ भी वही है। कर्म द्वारा विद्या का विकास होने पर ही असली तत्त्व का साक्षात्कार पाया जाता है।

ज्ञान—'कर्म' करते-करते ज्ञान का उदय होता है; विचार-बुद्धि खुल जाती है, सत्य का दर्शन होता है। पुस्तकों को पढ़ने से ही जो ज्ञान प्राप्त होता है वह शुष्क ज्ञान है। यदि शास्त्र पढ़ने से ही असली ज्ञान हो जाता तब तो बड़े-बड़े पण्डित लोग सभी सिद्ध पुरुष हो जाते। नाना शास्त्र पढ़ने से उल्टा माथा बिगड़ जाता है—"नाना मुनि नाना मत।" अपने आप योग-क्रिया करने पर असली तत्त्व समझ में आता है कि क्या सत्य है और क्या मिथ्या ?

जप—जप, जप की तरह होना चाहिए तभी तो उचित फल देगा। गुरुदत्त विधि के अनुसार, ठीक प्रकार से, अपनी शक्ति के अनुरूप (साध्यमत) एकाग्र मन से जप करने पर ही यथेष्ट फल मिलेगा। प्रणव (बीज) का जप सदा ही करते रहना चाहिए। बीज जपते-जपते भीतर-भीतर ही निर्माण-कार्य होता रहेगा तथा दुःख व कष्ट भी नहीं रहेंगे। सुख निश्चय ही होगा! होगा!! होगा!!!

जीव और स्वभाव—मनुष्य जीवन का असली उद्देश्य है 'स्वभाव' की उपलब्धि। जीव स्वभाव से च्युत हो जाने के कारण ही दुःख के कुएँ में पड़ा है। पुनः साधना इत्यादि द्वारा स्वभाव में प्रतिष्ठित हो जाने पर उसके सारे अभाव मिट जायँगे। रजोगुण व तमोगुण से ही सारे बन्धन होते हैं। जीव की स्वरूप-गत-उपाधि विशुद्ध-सत्य का अंश है। इसीलिए जीव को ईश्वर का अंश कहा है। स्वरूप में स्थित हो जाने पर, जीव-भाव में रहने पर भी, जीव की मुक्ति हो जाती है।

जीव नित्य वस्तु है, ईश्वर भी नित्य वस्तु है। अंश भी नित्य वस्तु है और अंशी भी नित्य। अंश से टुकड़े का भाव न समझकर 'आभास' समझो—इसलिए जीवमात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में ही ईश्वर का आभास है। जीव जब आत्म-ज्ञान लाभ करके अपने स्वरूप के साथ मिलता है तब उसके अन्दर ऐश्वर्य का विकास होता है। जीव 'ईश्वरत्व' या 'शिव-भाव' लाभ करता है।

ऐश्वर्य-लाभ करनेमात्र से ही स्थिति-लाभ नहीं होता। ऐश्वर्य आने पर, उसका फिर निरोध करने पर अमरत्व प्राप्त होता है। यह उपर्युक्त अवस्था से भी ऊपर की अवस्था है, जो सबका लक्ष्य है।

मुक्त-जीव तथा ईश्वर में कार्य-कारिता के विचार से कोई भेद न होने पर भी भेदाभेद सम्बन्ध है। मुक्तिकाल में अभेद तथा भेद दोनों ही प्रकाशमान होते हैं किन्तु बद्ध जीव मलिन द्वैतभाव में ही आबद्ध रहता है। ईश्वर और जीव की आत्म अभिन्न है। ईश्वर के संकल्प में शुद्ध सत्त्व जल की सृष्टि का स्फुरण होता है—जिसको मुक्त-जीव आत्मा से पृथक् नहीं देखता। परन्तु बद्ध जीव के नेत्रों में यह संकल्पात्मक भाव से स्फुरित नहीं होता और वह इसका प्रतिभासम्पन्न नहीं मानता—उसे यह व्यावहारिक सत्त्व-सा ही दीख पड़ता है। बद्ध जीव उस शुद्ध संकल्पमय सृष्टि को अपने से भिन्न समझकर अचेतन, पृथक् तथा मूलतः परस्पर-भिन्न समझता है। इसका कारण है अज्ञान अर्थात् क्योंकि उसको आत्म-ज्ञान नहीं है इस कारण वह ठीक नहीं समझ पाता।

असल में जो कुछ भी होता है वह आत्म-शक्ति का ही विकास है बाकी कुछ भी नहीं। वह भिन्नता को ही सच मान लेता है। उसकी धारणा होती है कि उसकी निजी सत्ता परमात्मा की सत्ता से भिन्न है। 'यह सृष्टि दृष्टिवादी है'—दीखती है पर असल में है नहीं। आत्म-ज्ञान के प्रथम विकासमात्र से ही दृष्टि-समकालीनता की सृष्टि हो जाती है और सिद्ध संकल्पावस्था का उदय होता है। तब उसकी 'दृष्टि' दृष्टिवादी न रहकर 'सृष्टिवादी' हो जाती है। इस अवस्था के बाद फिर सृष्टि नहीं होती। यही विशुद्ध आत्म-ज्ञान है। आत्म-ज्ञान का उदय होते ही, अन्धकार का नाश हो जाता है। इस कारण रजोगुण भी स्थिर होकर सत्त्व में विलीन हो जाता है। जब विशुद्ध सत्त्व प्रगटित हो जाता है, तब जीव नाना प्रकार के दृश्यों से भी विचलित नहीं होता।

पर हाँ! जीव का जीवत्व कभी नहीं जाता। मुक्त होने पर भी जीव, जीव ही रहता है। तथापि उसमें ईश्वरत्व तथा ब्रह्म भाव का विकास होता है—यही इसकी विलक्षणता है। ईश्वर में जैसे जीव-भाव है, जीव में भी वैसे ही ईश्वर-भाव है। जब जिस भाव की प्रधानता होती है तब वही भाव क्रियाशील होता है तथा आपात दृष्टि से प्रकाशित होता है। ईश्वर में जीव-शक्ति है इसीलिए प्रयोजन होने पर वे जीव रूप में प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार, जीव में भी अव्यक्त भाव से ईश्वरी शक्ति है, जिसका विकास साधना द्वारा होता है। यदि यह ईश्वर-भाव भीतर छिपा न होता तो ईश्वरी शक्ति कभी भी विकसित न हो पाती, क्योंकि जिसमें जो चीज बिल्कुल ही न हो, उसमें से उस चीज या भाव का स्फुरण कभी नहीं हो सकता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीव तथा ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा गया है, वही जड़ शक्ति के सम्बन्ध में भी लागू है। जिसको तुम जड़ कहते हो, उसमें भी जीव-भाव तथा ईश्वर-भाव अर्थात् चैतन्य तथा ब्रह्मानन्द दोनों ही हैं। अपने भीतर ज्ञान का विकास होने पर जड़ वस्तु सर्वत्र ही चैतन्य तथा देदीप्यमान दीखती है। 'अचेतन तथा शुष्क जड़ पदार्थ नाम की जगत् में कोई वस्तु है हीं नहीं'—यह बात ज्ञान का विकास होने पर ही समझ में आती है। इसी को 'प्राण-प्रतिष्ठा' भी कहते हैं। ज्ञान की मात्रा और भी बढ़ने पर, जड़ वस्तु की सत्ता ही अव्यक्त हो जाती है, केवल एक अखण्ड चैतन्य ही चैतन्य रह जाता है। जीव-बल, शिव-बल—यह सभी उस एक महाशक्ति के ही विभिन्न रूप हैं—

"एकैव सा महाशक्तिस्तया सर्वमिदं ततं"—

सभी सत्य है, अथच मूल में कुछ भी नहीं है—साम्य काल में सब एक ही सत्ता में परिणत हो जाते हैं।

जीव, जगत् और ईश्वर—ईश्वर, जीव और जगत्—ये महाशक्ति की क्रिया के स्थल हैं। महाशक्ति, जिस प्रकार से चलती है सब वैसे हो चलते हैं—कोई भी स्वतन्त्र नहीं है। तब जीव का दायित्व क्या रह गया ? शुभ और अशुभ कर्म करने की जीव की सामर्थ्य ही कहाँ है ? उ०—स्वभाव ही सारे जगत् को चलाता है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। तब भी एक बात समझने की है। वह है कि जीव जब कर्म करता है तब वह अभिमानवश या अहंकार से अपने को कर्ता मान बैठता है। यद्यपि कर्ता स्वभाव या महाशक्ति है और इस कारण से फलाफल का भोग भी उसको ही करना पड़ता है।

देहात्म-बोध होने के कारण, यह अभिमान अवश्यम्भावी है। जब देहात्म-बोध मिट जायगा, चैतन्य और जड़ के बीच पड़ी हुई गाँठ खुल जायगी, कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् हो जायगी, तब यह अभिमान नहीं रहेगा। जब तक यह नहीं होता, तब तक अभिमान-वृत्ति पूरी तरह नष्ट नहीं हो पाती। एक भेद और भी है, वह है लौकिक अभिमान छूटने पर भी सर्वज्ञता और आत्मज्ञता का अभिमान तो फिर भी बना रहता है। अहंकार-मूलक क्रिया का आश्रय-स्थल तो स्थूल देह ही है। सुख-दुःख का अनुभव तथा भोग स्थूल देह में ही होता है। जीव जब अपने को सब प्रकार से महामाया द्वारा चालित तथा ईश्वर के आश्रित अनुभव करे और निज स्वभाव में स्थित हो तब उसमें कर्तापन का अहंकार नहीं रहता और इसीलिए उसे सब फलाफल का भोग भी नहीं करना पड़ता। परन्तु जब तक अहंकार नष्ट न हो तब तक जीव के पुण्य-पाप न भोगने की बात नहीं बैठती।

त्याग—त्याग के बिना वास्तव में भोग का अधिकार भी नहीं जन्मता। इसी प्रकार भोग का अधिकार न होने से त्याग की बात भी नहीं बैठती। जो अमृत के प्यासे हैं उन्हें पहले त्याग करना ही पड़ेगा।

"त्यागे नोइ केन देवा अमृतत्त्व मानसु"—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् त्याग ही अमृत-लाभ का एकमात्र उपाय (पथ) है। त्यागरूपी यज्ञ के बिना अमृत या सुधा की प्राप्ति असम्भव है। त्यागात्मक सीढ़ी पर चढ़ने से ही दिव्य भूमि पर पहुँचा जा सकता है। उस दिव्यावस्था में त्याग तथा भोग का समन्वय हो जाता है।

अतः त्याग करने से पहले अर्जन करना अनिवार्य है। अर्जन करके वस्तु पर अपनत्व करना होगा। विश्व जगत् को स्व—आत्मारूप में परिणत करना होगा। कुछ भी दूसरा या दूसरे का नहीं रहेगा। पहली अवस्था में तो यह भाव आएगा कि जो कुछ भी भासता है, सबकुछ ही तुम्हारी अपनी विभूति है अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारी निजी शक्ति का ही विकास है—तुम्हारी ही आत्म-विभूति है।

उसके बाद दूसरी अवस्था में भाव आएगा कि तुम ही तुम हो, सब चीजों में तथा दृश्यों में एकमात्र तुम ही तुम हो।

इसके बाद की तीसरी चरमावस्था में अर्जुन की तरह, सर्वत्र अपने आप को ही देखोगे—सब अपने ही रूप हैं, यह बोध होगा, अपना रूप छोड़कर दूसरा कुछ भी नहीं दीखेगा—सबमें मैं ही मैं हूँ। इस अवस्था को प्राप्त करने पर अति-अतीव अनन्त वस्तु का आभास जाग उठता है। यही आपेक्षिक दृष्टि से 'अद्वैत अवस्था' है।

इसके बाद उस असीम वस्तु में सर्वमय मैं-पन (अहं) का विसर्जन करना पड़ता है। इसी को कहते हैं 'आत्म-निवेदन' या 'त्याग'। इसके फलस्वरूप ही 'परमानन्दलाभ' या 'अमरत्व' प्राप्त होता है—जिसको 'दिव्यभाव' भी कहते हैं। वह असीम वस्तु ही अपने भीतर अन्तर्यामी रूप से अन्तरात्मा में प्रकट होती है। यही परमानन्द का आस्वादन अर्थात् अमृत-पान है। यही वास्तव में महाशक्तिमयी जगदम्बा के स्तन के रस (दुग्ध) का पान या परमैश्वर्य-लाभ है। माँ की गोद में बालक बनकर आत्म-निवेदनपूर्वक सबकुछ विसर्जन करना पड़ेगा।

निवेदन करने से पहले, नैवेद्य को जुटाना पड़ेगा। जिसको तुम योग-विभूति कहते हो वह वास्तव में यही नैवेद्य-संग्रह है। किन्तु नाश किसी वस्तु का भी नहीं होता। अतः जीव के शिवत्व अथवा ईश्वरत्व प्राप्त कर लेने पर भी उसका (जीव का) जीवत्त्व नष्ट नहीं होता।

दीक्षा तत्त्व—दीक्षा बिना जीव के पशुत्व का नाश नहीं होता, विशुद्ध अवस्था की उपलब्धि होने की सम्भावना नहीं होती। दीक्षा न होने तक देह अशुद्ध रहती है और अशुद्ध देह से देव-पूजन आदि का अधिकार नहीं होता। अदीक्षित अवस्था में मृत्यु हो जाने पर जीव के सद्गति-लाभ की सम्भावना अति अल्प है। शास्त्र में दीक्षा के अनेकों प्रकार के वर्णन होते हुए भी दीक्षा सर्वत्र एक तथा अभिन्न है। एकमात्र परमेश्वर ही जगत् के आदि गुरु हैं। उनसे ही अनेक दिशाओं में, अनेक रूपों में ज्ञान-स्रोत प्रवाहित हो रहा है। जिस दिशा में उनकी कोई विशेष शक्ति प्रकट होती है उसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिशा में निरविच्छिन्न रूप से चैतन्य दीखता है। गुरु की शक्ति शिष्य में प्रवाहित होती है और शिष्य की शक्ति उसके शिष्य में। इस प्रकार एक-एक करके प्रति दीक्षित आधार में क्रमशः शक्ति प्रकाशित होती है। इसी गुरु-शिष्य-परम्परा को शास्त्र में 'सम्प्रदाय' कहा गया है। गुरु दीक्षा द्वारा, शिष्य को इस सम्प्रदाय से जुटा देते हैं। दीक्षा के फल से जीव केवल अकेला ही परमेश्वर की शक्ति का विशिष्ट लाभ करता हो, ऐसा नहीं है वरन् उस शक्ति का प्रकाश जिस-जिस और आधार में भी हो, उसके संग भी योगयुक्त हो जाता है। प्रकृत (मूल या असल) दीक्षा जीवन में केवल एक ही बार होती है, बार-बार नहीं; किन्तु यह होने पर भी, जैसे-जैसे स्तर बदलता जाता है वैसे-वैसे ही शक्ति का नये-नये रूपों में उन्मेष होता रहता है। इन विविध उन्मेषों को बहु-बार दीक्षा हुई—ऐसा कहने में भी कोई दोष नहीं। इसी को "क्रम-दीक्षा" भी कहा जाता है। किन्तु दीक्षा का जो मूल लक्षण है वह अन्तिम स्तर में ही प्रकाशित होता है। 'ज्ञान-शक्ति' एक बार छोड़कर दूसरी बार अभिव्यक्त नहीं होती। शिष्य, गुरु-उपदिष्ट कर्म का अनुष्ठान तथा अभ्यास करते-करते ज्ञान की पूर्णता का लाभ करता है। यह ज्ञान की पूर्णता साक्षात् परमेश्वर की कृपा के अनुरूप ही होती है। यह होते ही पूर्ण अभिषेक सम्पन्न होता है—जीव, पाश से मुक्त होकर शिवत्व-लाभ करता है। यही प्रकृत दीक्षा है। इसके तुरन्त बाद ही मुक्ति होती है।

दीक्षा के चार प्रकार हैं—

१. मन्त्र-विचार-पूर्वक दीक्षा
२. कर्तव्य-उपदेश-मूलक दीक्षा
३. बीज-उद्धार-पूर्वक दीक्षा
४. देवता-प्रदर्शन-द्वारा दीक्षा

हम लोगों की बाबा द्वारा जो दीक्षा हुई है वह प्रथम प्रकार की है। इस प्रकार की दीक्षा-पद्धति में कई विशेषताएँ हैं। तीन, या प्रयोजन होने से उससे भी अधिक, जन्मों के साधन के इतिहास की पर्यालोचना करके निश्चय किया जाता है कि किस इष्ट का कौन-सा मन्त्र दिया जाय।

दान—दान देने वाला, धन के अभाव से कभी भी कष्ट नहीं पाता है। अल्प-दान अर्थात् भोजनार्थ-दान निर्धन (गरीब) व्यक्ति को दिया जाता है। अधिक दान-सत्पात्रों को देना उचित है। भिक्षुक को कुछ भिक्षा (जैसे दो-चार पैसे) अवश्य देनी चाहिए। भिखारी को एकदम बिल्कुल मना नहीं करना चाहिए। कुछ न कुछ अवश्य दे देना चाहिए; नहीं तो वह तुम्हारे सारे पुण्य को हरण कर ले जायगा, जब कि भिक्षा देने से तुम उसके पुण्य का आकर्षण कर लोगे।

बीच-बीच में (समय-समय पर) दान करने रहना चाहिए जैसे पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी आदि पर्व तिथियों पर कुछ-कुछ दान करना अच्छा है। कुमारी-भोजन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी कराना चाहिए। कुमारी साक्षात् जगदम्बा का स्वरूप है। बारह वर्ष से कम की ब्राह्मण की शुद्ध-सुन्दर कन्या को प्रति सोमवार को और पर्व तिथियों पर श्रद्धापूर्वक स्वच्छता से कुश या धुली चटाई या शीतलपाटी के आसन पर धुली जगह पर बैठाकर पूरी, हलुआ, या खीर तथा रसगुल्ले, व सब्जी व फल (केले, मेवा, सन्तरे कुछ भी) खिलाकर सन्तुष्ट करे। भोजन के बाद पान व एक चवन्नी देकर प्रणाम करके उसको विदा करे। ऐसा नियमपूर्वक प्रति सप्ताह करने से घर के बहुत से अमंगल दूर होते हैं तथा सौभाग्य, आरोग्य और सुख घर में आता है। कलियुग में कुमारी-भोजन से बढ़कर दूसरा यज्ञ नहीं—पर कराना चाहिए श्रद्धा से। अपने वित्त के अनुसार—उससे बाहर कभी नहीं। खाली पूरी-हलुआ या केवल फल-मिठाई (अल्प) से भी होगा—यदि श्रद्धा पूरी हो और सामर्थ्य अधिक की न हो—पर पान और चवन्नी दक्षिणा अवश्य देनी चाहिए । अन्त में प्रणाम। फिर कुमारी की पत्तल या थाली से उसकी जूठन का थोड़ा-सा प्रसाद अवश्य लें—इसमें पूरी श्रद्धा हो तो इसी से बेड़ा पार हो जायगा और अनेक अमंगल कट जाएँगे।

दैव (प्रारब्ध) तथा पुरुषकार (पुरुषार्थ, चेष्टा)

चेष्टा करो-उपयुक्त चेष्टा करो-पुरुषकार (पुरुषार्थ) चाहिए। नौकरी के लिए कैसी चेष्टा करते हो। केवल दैव (प्रारब्ध) के ऊपर निर्भर रहने से काम नहीं चलेगा। प्रारब्ध (दैव) तथा चेष्टा (पुरुषकार = पुरुषार्थ) पक्षी के दोनों पक्षों की तरह हैं। जैसे एक पंख से पक्षी उड़ नहीं पाता उसी प्रकार किसी भी कार्य की सफलता के लिए भाग्य तथा चेष्टा दोनों की ही आवश्यकता है। पुरुषार्थ का अवलम्बन करने से दैव भी सहायता करते हैं। उसी प्रकार निर्भरतापूर्वक दैव पर ईश्वर कृपा पर-भरोसा करने से और उस पर विश्वास करके निर्भर रहने से-पुरुषकार (पुरुषार्थ) की प्रवृत्ति आती है।

जानते-बूझते, लम्बे रास्ते द्वारा कहीं पहुँचने का परिश्रम कोई भी स्वीकार नहीं करना चाहता। किन्तु परिश्रम करने से फल अवश्यम्भावी है; चेष्टा करने से मनुष्य के लिए कुछ भी असाध्य नहीं हैं। यह चेष्टा ही साधना, पुरुषार्थ या पुरुषकार है। इसका अवलम्बन न करके, केवल दैव की दुहाई देकर, हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहना तो आलसी तथा कापुरुष का लक्षण है।

दुष्प्रवृत्ति (जीव का नीच भाव)—मध्याकर्षण के कारण दुष्प्रवृत्ति, जीव का नीच भाव, स्थूल भाव फूट उठता है। जितनी दूर तक मध्याकर्षण की क्रिया वर्त्तमान है वहाँ तक पार्थिव वासना तथा कामना की छाया जीव को घेरे रहती है तथा मृत्यु के बाद भी इन वासनाओं में फँसे रहने के कारण, मध्याकर्षण द्वारा जीव नीचे की ओर खिंचकर वासनायुक्त योनि में जन्म ग्रहण करने को बाध्य होता है। स्थूल वायु की सीमा लंघन करके, निर्मल नवराज्य में विचरण करने की सामर्थ्य न होने के कारण, मृत्यु को जय करके जन्म लेने के बाद शुद्धदशा प्राप्त करने की आशा नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुदेव ने कहा—"मुझसे जिन्होंने भी शिष्य बनकर मन्त्र लिया है, वे यदि आगे दुष्प्रवृत्ति से प्रेरित कर्म न करें, तो उनमें से किसी के भी दुःख या दुर्गति पाने का कोई कारण नहीं है। अनवरत कलह, ईर्ष्या तथा अन्य सकल दुष्कर्म त्याग दो एवं प्रतिदिन प्रातः आधा घण्टा तथा सायं आधा घण्टा आह्निक पर बैठो। फलाफल मेरे ऊपर छोड़ दो, देखूँ कैसे दुर्गति होती है ?

बापू! सभी अपने कर्मों का फल है, वह कर्म और मत बढ़ाओ। बापू! केवल दुःख ही देखते हो, किन्तु तुम यह नहीं देखते या जानते कि कितने अनगिनत दुष्कृति के भोग उस दुःख झेलने से ही कट रहे हैं। दुष्कर्म छोड़ दो तो और नये भोग्य कर्मों की सृष्टि नहीं होगी। हाँ, मन के धर्म से समय-समय दुष्प्रवृत्ति का उद्वेग फिर भी हो सकता है। उसका मनोबल से तत्क्षण दमन करना ही उचित है। दुष्प्रवृत्ति को आश्रय देने से वह पीछे अवश्य विपत्ति उत्पन्न करेगी।

दुष्ट भाव को अनवरत नाम-जप के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। नाम-जप करते-करते भी यदि दुष्ट भाव मन में उदय हो जाय तो वह क्षति (नुकसान) नहीं करता। जैसे एक छोटी सी चिनगारी भी एक बड़े कूड़े के ढेर को जलाकर भस्म कर डालती है, उसी प्रकार मन्त्र सारे पापों के समूह को भस्म कर देता है।"

दुःख—दुःख, कष्ट, यातना, सभी मनुष्य का उपकार करते हैं—अपकार नहीं। मनुष्य का साधारणतः जैसा स्वभाव है, उसको देखते, दुःख और कष्ट न पाने पर, वह और भी अधिक दुष्ट हो जाता है। जिसको कहते हैं—"अपने हाथ से अपना सिर काटना"—वही करता है। एक योगी ने हमारे सामने एक कोढ़ी को यह आशीर्वाद दिया था कि—"तुम्हारा रोग और भी कुछ दिन तुमको न छोड़े"—(क्योंकि कष्ट के कारण उसको भगवान् के नाम की याद तथा शरणागति आ रही थी)।

जीव जब वास्तव में संसार के दुःखों से अति दुःखी होकर चंचल हो जाय, जब दुःखाग्नि में जलते-जलते उसके भीतर का मल दूर हो जाय, जब उसका सरल एवं स्वच्छ प्राण अत्यन्त व्याकुल होकर प्रभु से आश्रय की प्रार्थना करे, तब निश्चय जानो कि आद्याशक्ति, महापुरुष के रूप में, उसको अभय प्रदान करने के लिए, प्रकट हो जाती है। तुम अपने अन्तःकरण से कुटिलता, प्रवंचना, कुविचार, असद्भाव—यह सब निकाल फेंको, तब देखोगे कि इस जगत् में कोई भी तुम्हें धोखा नहीं देगा, क्योंकि क्रिया के अनुसार ही प्रति-क्रिया होती है।

ॐ दुर्गा बोधन—साधारण बोधन में तथा अकाल बोधन में अन्तर यह है कि अकाल (असमय) में बोधन करने के लिए तीव्र शक्ति की आवश्यकता होती है।

प्रश्न—माँ तो सदा ही जाग्रत् है फिर बोधन क्या ?

उत्तर—उसके द्वारा बृहत् कार्य कराने के लिए, बृहत् चेष्टा की आवश्यकता है। रामचन्द्रजी ने फल जल्दी चाहा था, इसीलिए उनको असाधारण व्यवस्था करनी पड़ी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी। ठीक समय पर थोड़ी चेष्टा करने से ही जो फल सुगमता से प्राप्त हो जाता है उसी के लिए असमय में तीव्र चेष्टा करनी पड़ती है तब उतना फल प्राप्त होता है।

धर्म-भित्ति तथा धर्म-जीवन

प्रभु को जानने की चेष्टा—यह है धर्म-भित्ति या धर्म की नींव। संसार में सभी वस्तुएँ भगवान् ने दी हैं—जैसे पुत्र, कुटुम्बी, स्त्री, माता आदि। इनके प्रति सद्व्यवहार ही भगवान् के प्रति सद्व्यवहार है। कष्ट क्यों होता ? इसका उत्तर यदि मनुष्य खोजे तो उसको शान्ति अवश्य मिलेगी।

मनुष्य दूसरों में केवल दोष देखता है, उनके गुणों को नहीं देखता। और किसी का भी विश्वास करने से पहले, उसके साथ व्यवहार करके जब खूब अच्छी तरह परख लो तब विश्वास करो, नहीं तो ठगे जाओगे।

"धर्म का तत्त्व गुहा में छुपा है"—यह सब देशों के शास्त्रों का सिद्धान्त है। जीवन में घात-प्रतिघात के पश्चात् सत्य की जो रहस्यमय मूर्ति आत्म-प्रकाश करती है वही धर्म-जीवन की वास्तविक नींव है। केवल बाह्य भावों को लक्ष्य करने वाले लघु-चित्त (अल्प-बुद्धि) मानवों के लिए धर्म की उपलब्धि एकदम असम्भव है। उसका कारण है कि हृदय के गम्भीर प्रदेश में अपने इन्द्रियाँ, मन तथा अहंकार आदि वृत्तियों को निमग्न कर पाने तक, अनादि-संचित अनुकूल एवं प्रतिकूल वासनाओं में आकर्षण बना रहता है, जिसके कारण चित्त स्वभाव में स्थित नहीं हो पाता। अपने आप को, ज्ञान के द्वारा, पृथक् करके, साक्षी-रूप में अवस्थित न हो पाने तक तथा ज्ञान और क्रिया दोनों का सामंजस्य सम्पादन कर, अपने को यन्त्र रूप में परिणत न करने तक, धर्म-तत्त्व का स्वरूप कभी भी समझ में नहीं आ सकता।

'महापुरुष' धर्म का तत्त्व उपलब्ध करके, आत्म-जीवन में उसका परिणाम तथा विकास सम्पादन करके, सिद्धि-लाभ कर लेते हैं। इसलिए साधारण लोगों को महापुरुषों के धर्म-मय जीवन को आदर्श मानकर, उसे अपनाकर सूक्ष्म तथा जटिल धर्म-तत्त्व और संक्लान्त समस्या आदि का समाधान करना चाहिए।

नाभि धौति, प्राणायाम तथा कुम्भक

प्राणायाम के द्वारा सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है पर और विशेष कुछ नहीं होता। वास्तव में नाभि धौति न कर पाने तक शरीर पृथ्वी से ऊपर वायु में नहीं उठता। क्रियात धौति भी नाभि-धौति की तरह एक प्रक्रिया है जिससे क्रियात-कुम्भक हो जाता है। उसके न होने तक 'चात्तर' अर्थात् स्थूल देह सहित आकाश गमन नहीं होता। क्रियात-धौति की क्रिया केवल हमारे सम्प्रदाय में ही सिखायी जाती है, और किसी सम्प्रदाय में यह क्रिया देखने में नहीं आती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुम्भक चार प्रकार के होते हैं—

१. नासिका-द्वारा
२. मुख-द्वारा
३. गुह्य-द्वार द्वारा
४. क्रिया-द्वारा (नाभि-द्वार से)

क्रिया-द्वारा कुम्भक नाभि द्वार से होता है। फिर उसी से आगे चलकर सारे रोम छिद्रों द्वारा भी कुम्भक होने लगता है। भेद केवल इतना है कि नासिका, मुख तथा गुह्य द्वार से (अर्थात् पहले तीनों प्रकार से) जो कुम्भक होता है उसमें आत्म-बोध नहीं रहता। किसी प्रकार का भी कुम्भक ठीक-ठीक होने से शरीर पृथ्वी छोड़कर ऊपर उठ जाता है, किन्तु नासिका, मुख तथा गुह्य द्वार वाले कुम्भकों में कुम्भक-कारी यह नहीं जान पाता कि वह उठ रहा है या उठ गया है। वह एक भाव में डूबा रहता है एवं उसमें उसे अपने व्यक्तित्व का बोध नहीं रहता।

क्रिया-द्वारा नाभि द्वार से कुम्भक में योगी सजग रहते हैं और इच्छा होने पर देह को हिला-डुला भी सकते हैं। उनका व्यक्तित्व-बोध जगा रहता है, यहाँ तक कि वे लौकिक व्यवहार भी सम्पन्न कर पाते हैं। क्रिया कुम्भक द्वारा देह की आकर्षण शक्ति भी खूब बढ़ जाती है। जिसकी इच्छा हो उसी का आकर्षण करके, जितने समय तक चाहें, अपने पास रख सकते हैं।

जो योगी नाभि-धौति अर्थात् किरात-धौति करने में अभ्यस्त हैं, धौति करने के समय उनके नाभि कुण्ड में से एक ज्योति-प्रवाह तो धुएँ की तरह गोलाकार ऊपर सहस्रार की ओर जाता है तथा दूसरा प्रवाह देह में प्रवेश करता है जो बाहर से बिजली की सी धनुषाकार ज्योति की तरह दिखता है। मन्त्र-शक्ति के तीव्र प्रभाव के कारण बाह्याकाश में प्रकाशित होने पर आस-पास के दुर्बल-शक्ति वाले दर्शकों के बेहोश तथा पागल होने की सम्भावना हो सकती है।

नाभिकमल का रंग बाल सूर्य की तरह लाली लिये हुए है। हृदय-कमल का वर्ण वैसा नहीं है। प्रत्येक कमल बाहर किया जा सकता है।

ब्रह्मचर्य न होने से चात्तर नहीं होता। 'चात्तर' से पहले कई धौतियों (नाभि, किरातादि) का अभ्यास आवश्यक है। उसके पश्चात् ही 'चात्तर' होता है। चात्तर के समय शवासन में स्थित होना पड़ता है। चात्तर में देह छोड़कर भी जाया जाता है, तथा सदेह भी जाया जा सकता है। देह छोड़कर जाने पर, देह को कोठरी में बन्द करके जाना चाहिए जिससे कि उस देह को कोई छू न ले क्योंकि दूसरे के छू लेने पर, उस देह में फिर से प्रविष्ट नहीं हुआ जाता। देहसहित उड़कर जाने पर आँख बन्द करके उड़ना ही अच्छा है। रोशनी तथा हवा लगने से अनिष्ट होने की सम्भावना है और वैसे भी इन आँखों से पथ दिखाई नहीं पड़ता—उसके लिए दूसरे नेत्र हैं। पथ देखने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई आवश्यकता भी नहीं होती। जहाँ जाना हो वहाँ का संकल्प करके, शवासन में स्थित होते ही, थोड़े ही समय में, उस स्थान पर पहुँचा जाता है। मैं (गुरुदेव विशुद्धानन्द-जी) जालन्धर से बर्दवान बीस मिनट में गया हूँ; उससे कम समय में भी पहुँचा जा सकता है।

ध्यान—ध्यान के समय इष्टदेव के सारे शरीर का ध्यान न करके केवल चरण-कमलों पर ध्यान करना ही अच्छा है, क्योंकि चरणों में बिजली (तेज-शक्ति) अधिक है। चरण-कमलों पर ध्यान करने से तेज का संचार अधिक होता है।

मनुष्य के दाहिने हाथ की तर्जनी उँगली में तेज-शक्ति अधिक मात्रा में एकत्रित रहती है, अतः उस उँगुली से दाँत माँजना, इशारा करना आदि कोई काम, जहाँ तक हो, नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे अपने भीतर अर्जित विद्युत् शक्ति (तेज) का अपव्यय होता है।

निष्काम कर्म तथा पुरुषकार (चेष्टा, पुरुषार्थ)

सारे कर्म ही पुरुषकार नहीं हैं। जैसे कि निष्काम कर्म पुरुष द्वारा होना साध्य नहीं है, क्योंकि निष्काम कर्म तो प्राकृतिक कर्म है, इसलिए उसको पुरुषकार कहना उचित नहीं है। भेद यह है कि जहाँ पुरुषकार के मूल में अभिमान है, वहाँ निष्काम कर्म के मूल में अभिमान तथा अहंकार (कर्त्तापन) का बोध नहीं है। वस्तुतः गुरु-कृपा से सुषुम्ना का मध्य पथ खुल जाने पर, स्वभाव की प्रेरणा से जो कर्म होता है वही निष्काम कर्म है। उससे बन्धन नहीं होता वरन् उलटे बन्धन खुल जाते हैं तथा जगत् का कल्याण होता है।

निष्काम कर्म के बिना चित्त-शुद्धि तथा ज्ञानोदय दोनों ही असम्भव हैं। 'निष्काम कर्म' का ही दूसरा नाम 'योग' है और इसी को कहते हैं 'कर्म-कौशल' अर्थात् 'कर्म की कुशलता'। योगरूप निवृत्त कर्म को छोड़कर शेष सारे ही कर्म कामना-युक्त हैं और बन्धन के हेतु हैं।

नित्य तथा अनित्य कर्म—अनित्य वस्तु को अर्पण करके ही नित्य वस्तु प्राप्त होती है। वास्तव में तो जगत् में अनित्य कुछ भी नहीं है—सभी नित्य है, अतः कर्म करो। कर्म करो!! कर्मभ्यो नमः।

नाभि में मन्त्र की प्रत्यक्षता—नाभि में से प्रणव प्रवृत्ति सब मन्त्रों से उदित होती है—मूलाधार में से भी कह सकते हो। कुण्डलिनी के अल्प मात्रा में भी जाग्रत् होते ही एक नादमयी शक्ति, सुषुम्ना नाड़ी में होकर मूलाधार से ऊपर की ओर उठती है और नाभि आदि चक्रों का भेद करती हुई आज्ञाचक्र की ओर अग्रसर होती है। उसी समय सहस्रार में से एक धारा नीचे की ओर प्रवाहित होती है। आज्ञाचक्र के बिन्दु स्थान में वह दोनों विरुद्ध प्रवाह मिलकर एक सुस्निग्ध, उज्ज्वल और कमनीय ज्योति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के आकार में प्रकाशित होते हैं। पश्चात् वही बहिराकाश में प्रतिफलित होकर नेत्रों के सामने (बाहर) दिखलाई पड़ती है।

निर्भावना—भावनाओं का क्या कोई अन्त है ? योग द्वारा कुछ प्राप्त कर लेने पर फिर यह भावना जागती है कि जो मिला है वह टिक पावेगा कि नहीं ? तथा और मिलेगा कि नहीं ?

पूर्ण निर्भावना की एक (स्थिति है) अवस्था है, पर वह निरर्थक है क्योंकि उसमें आनन्द नहीं है। योगी उसको नहीं चाहता, वह तो चाहता है और भी देखना, और भी जानना। अतः योगी के लिए आगे कर्म करने की आवश्यकता न होने पर भी, और भी अधिक देखने तथा जानने के प्रयोजन से, वह कर्म करता ही रहता है तथा कर्म करते रहने में ही आनन्द का अनुभव करता है।

निर्वाण—योगावस्था ही सबके लिए प्रार्थनीय और काम्य है। निर्वाण किसी के लिए भी याचनीय नहीं है। बोध-अबोध की अतीत अवस्था को वस्तुतः निर्वाण नहीं कहा जा सकता क्योंकि निर्वाण के बाद तो बोध रहता ही नहीं। निर्वाण होता है बलहीन जीव का—जिसको सत्त्व की प्राप्ति न हुई हो। वह ईश्वर की प्रबल शक्ति के प्रभाव से अपना बोध खोकर, सदा के लिए, अनन्त में लीन हो जाता है, पर जो योगी हैं उनका निवारण नहीं होता। महाशक्ति के उपादान से गठित होने के कारण न तो उनका बोध ही खोता है, और न ही उनका नाश होता है।

निर्भरता, वैराग्य तथा शान्ति

क्रिया करो, क्रिया करते जाओ, उसी से प्रभु के ऊपर निर्भरता आएगी, सब समझ पाओगे तथा और विचलित नहीं होओगे। क्रिया करने से ईश्वर-कृपा की उपलब्धि होती है। उनकी कृपा तो प्रतिक्षण ही अनवरत सिर के ऊपर झर रही है किन्तु तुम देख नहीं पाते। जब तुम स्त्री के पीछे, धन के पीछे और स्वादिष्ट भोज्य-पदार्थों के पीछे भागते फिरते हो—तब तो अपने को कर्त्ता मानकर पुरुषार्थ करते हो परन्तु साधन-भजन के समय, वैसा ही पुरुषार्थ न करके, कहते हो बाबा! कृपा करो! बाबा! करुणा करो, क्रिया के लिए विशेष उत्साह दो, उद्योग दो, शक्ति दो। यह सांसारिक भोग-वस्तुएँ तुम्हें जैसे आकर्षित करती हैं, आह्निक उस प्रकार आकर्षित नहीं करता। जिससे कि पूजा भी उसी प्रकार आकर्षित करे, इसीलिए कहता हूँ क्रिया करो! क्रिया करो!! क्रिया करते-करते उसमें रस आने लगेगा। रस पाने पर क्रिया में अनुरक्ति होगी। उस रस में पग जाने पर फिर अन्य कोई वस्तु तुम्हें आकर्षित नहीं कर पाएगी। 'क्रिया के प्रति सावधान रहकर, अन्य किसी वस्तु की चिन्ता न करना'—इसी को कहते हैं—'प्रभु के ऊपर पूर्ण निर्भरता।'

वैराग्य तथा विवेक होने पर ही तृष्णा पीछा छोड़ती है। 'निर्भर' माने एक विशेष प्रकार का 'भर'। निर्भर से पूर्व 'भर' होता है यानी 'किसी और के ऊपर भरोसा।' 'भर' में संसार रहता है अर्थात् संसार के और प्राणियों का—माता-पिता, भाई-बन्धु, इष्ट-मित्र,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुटुम्बियों तथा संगी-साथियों का—आसरा एवं भरोसा। पर निर्भर अवस्था में संसार नहीं रहता। वह वैराग्य तथा विवेक द्वारा छूट जाता है। भर (दूसरे के आसरे पड़े रहने से) द्वारा पकड़ होती है, बन्धन होता है।

दीर्घकाल तक, संयम, श्रद्धा एवं लगन के साथ, कठोर साधना करने पर, कोई-कोई भाग्यवान् व्यक्ति प्रकृतिनिर्भर अवस्था को निश्चय ही प्राप्त कर पाते हैं। किन्तु अल्पायु से ही साधना में प्रवृत्ति न होने से मनुष्य उस अवस्था को प्रायः प्राप्त करने में असमर्थ रहता है।

प्रथम तो कर्म करना ही पड़ेगा। कर्म न करने से निष्कर्म अवस्था के विकास का प्रश्न ही नहीं उठता। सारी गीता में कर्म का ही उपदेश है। केवल अन्त में अठारहवें अध्याय में शरणापन्न होने का वर्णन है।

परमात्मा—प्रत्येक देह में दो प्रकार की आत्मा है। एक है भोक्ता जीवात्मा और दूसरी है भोग-निर्मुक्त, शुद्ध, द्रष्टा तथा साक्षी परमात्मा। परमात्मा सर्वत्र व्यापक भाव में हैं, किन्तु सर्वत्र रहने पर भी उसका प्रकाश तथा अभिव्यक्ति सब में समान रूप से प्रकट नहीं होती। केवल सत्ता होने से ही इष्ट-सिद्धि नहीं होती। सत् भी यदि अव्यक्त हो तो उसके द्वारा तो किसी का कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। ऐसे छिपे, निर्गुण तथा निष्क्रिय सत् को, लौकिक भाषा में असत् भी कह सकते हैं। अतएव सत् को अभिव्यक्त (प्रकाशमान) करना होगा, तभी उसके द्वारा कार्य-साधन हो सकेगा। अग्नि जहाँ न हो ऐसा कोई स्थान नहीं है। 'प्रसुप्त रूप से अग्नि सर्वत्र वर्त्तमान है'—यह बात ध्रुव सत्य है। किन्तु इस प्रसुप्त अग्नि से न तो गर्मी मिलती है, न ही प्रकाश। जो उष्णता तथा प्रकाश चाहें उन्हें तो प्रज्वलित अग्नि चाहिए। जिस किसी कारण से भी, जिस स्थान से भी प्रज्वलित अग्नि मिले, वहीं से ऐसी अग्नि का संग्रह करना पड़ेगा। जलते दीपक के द्वारा अपनी बत्ती जला लेनी पड़ेगी। जो प्रकाश जगत् में छिपा हुआ समभाव से वर्तमान है उससे अन्धकार दूर नहीं होता क्योंकि वह प्रसुप्त है और अन्धकार में वर्तमान है। उसका न प्रकाश से विरोध है, न अन्धकार से। अन्धकार हटाने के लिए तो जलते हुए दीपक की आवश्यकता है, यहाँ प्रसुप्त दीप से काम नहीं चलेगा। इसी प्रकार सर्वव्यापक पर अव्यक्त विशुद्ध चैतन्य से जीव के अज्ञान की निवृत्ति नहीं होती, चाहे वह अन्तरात्मा अथवा परमात्मा के रूप में सभी जीवों में वर्तमान है।

परमानन्द—'परमानन्द का आस्वादन' ही तो मुक्ति है। त्रिताप की जलन से अधिकतर जीव दुःख से दुःखान्तर में ही भ्रमण करता रहता है। कहीं भी शान्ति नहीं पाता। सत्य तो यह है कि उसको शान्ति तथा तृप्ति कहीं भी नहीं मिलती। अमृत-पान न कर लेने तक जीव की तृप्ति नहीं होती। साधना करते-करते जीव जब उस अमृततुल्य परमानन्द को प्राप्त कर लेगा तब ही उसका यह सारा भ्रमण समाप्त होगा। बालक माँ की गोद में चढ़कर जब माँ का दूध पी लेता है तभी तृप्त होता है—यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमानन्दरूपी अमृतपान ही तो जगदम्बा का प्रसाद है। ठाकुर को भोग लगाने के बाद ही तो प्रसाद लिया जाता है। यज्ञ समाप्त होने पर ही तो यज्ञ का अवशेष अमृत तथा हव्य लिया जाता है। उसी प्रकार साधनारूपी यज्ञ का ही तो प्रसाद परमानन्द है—इस अमृत को साधना पूरी करने पर ही प्राप्त करके पान किया जाता है। परमानन्द साधना का प्रसाद या अमृत है।

प्रणव तथा बीज—प्रणव के साथ बीज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के विना दूसरा, अकेले कार्य-सम्पादन में असमर्थ है। बीज का पुट-स्वरूप, बीज-शक्ति है, प्रणव उसका ब्रह्म-रूपी पुल है। बिना छिलके वाला चावल जैसे नहीं उपजता, उसी प्रकार बीज बिना केवल प्रणव से अथवा प्रणव के बिना केवल बीज से जीव सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। दोनों का ही साथ होना आवश्यक है। तथापि, बीज के भीतर उत्पादन शक्ति अधिक परिमाण में है। अतः पृथक् भाव से प्रणव को ग्रहण न करने पर भी, बीज यथासमय अपने आप फूटकर बाहर निकल पड़ेगा (प्रस्फुटित होगा) किन्तु अकेला प्रणव निष्फल है। तथापि पहले से यदि बीज पड़ा हो तो प्रणव उसकी फूटने में सहायता कर देता है। तेज, जल, वायु आदि के प्रचुर मात्रा में रहने पर भी जैसे बीज के विना वृक्ष उत्पन्न नहीं हो सकता, उसकी प्रकार बीज के न होने पर केवल प्रणव द्वारा परमामृत का आस्वादन नहीं हो सकता। प्रणव का कार्य है प्रस्फुटित करना, प्रकाशित करना, सत्ता को अभिव्यक्त करना। किन्तु जिस वस्तु को प्रस्फुटित या प्रकाशित करना है उसका होना तो नितान्त आवश्यक है। यह वस्तु है जीव के अन्दर छिपी परमात्म-सत्ता या शक्ति जो कि बीजमन्त्र का वाक्यार्थ या वाचक अर्थ है और मन्त्र-जप द्वारा विशुद्ध सत्त्व से उत्पादित चैतन्य इष्टदेवता के रूप में प्रकाशित होता है।

प्राक्तन (प्रारब्ध) कर्म—तुम्हारा प्राक्तन कर्म कैसा है यह तो तुम जानते नहीं। इसलिए प्राक्तन कर्म का बहाना लेकर शिथिल होकर बैठे रहना कोई सद्‌बुद्धि का चिह्न नहीं। 'हमारे पुराने कर्म अच्छे नहीं या हमारा भाग्य अच्छा नहीं'—यह सोचकर चेष्टा न करना उचित नहीं। इसी प्रकार पूर्व जन्म के साधुत्व की प्रवलता की कल्पना करके चेष्टा की अनावश्यकता की भावना करना भी ठीक नहीं। पूर्वजन्म अच्छा हो या बुरा, अल्प हो या अधिक, उसकी चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं। वह तुम्हारे ज्ञान से अगोचर है, उसके बारे में वृथा सोचने से क्या लाभ ? तुरन्त वर्तमान मुहूर्त्त में काम में जुट जाना चाहिए। किया हुआ कर्म कभी नष्ट नहीं होता। जो सम्पूर्ण भाव से आलसी है उसे तो अपने द्वारा किये हुए कर्म का भी फल नहीं मिलता। कभी भी सात्त्विक चेष्टा निरर्थक नहीं होती। शुभ कर्म अल्प होने से भी कल्याणकारी होता है।

पाप—पाप चार प्रकार के होते हैं—पाप, महापाप, अति-पाप तथा विषम-पाप। पाप तथा महापाप का प्रायश्चित्त है किन्तु अति-पाप तथा विषम-पाप का ध्वंस योग के बिना नहीं होता।

दूसरे के धन को हड़प करने की इच्छा बड़ी निन्दनीय है। वह ऐसा अतिपाप है जिसका प्रायश्चित्त नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरुषकार (पुरुषार्थ, चेष्टा)—कृपा जैसे ईश्वर का धर्म है, पुरुषकार उसी प्रकार जीव का धर्म है, ईश्वर के बिना जीव की सत्ता काल्पनिक है। इसलिए पुरुषकार एवं कृपा दोनों एक-दूसरे के सहारे काम करते हैं। तीव्र पुरुषकार द्वारा प्राक्तन कर्म का भी खण्डन किया जा सकता है, यहाँ तक कि विधि का विधान अर्थात् भाग्य को भी पलटा जा सकता है। केवल कृपा के द्वारा इष्ट-सिद्धि नहीं होती जब तक कि उसके साथ पुरुषकार का योग न हो। यद्यपि तीव्र पुरुषकार से कृपा अपने आप आ जाती है तथा आश्रय-ग्रहण (शरणागति) भी आप ही हो जाता है। जीव की प्रसुप्त शक्ति को जगाने के लिए 'क्रिया' रूपी पुरुषकार का प्रयोजन है। जड़ के भीतर शक्ति छुपी है पर महाशक्ति की आराधना बिना शक्ति-लाभ नहीं होता। इसलिए महाशक्ति की आराधना करके अपने को शक्तिवान् और तेजोमय बनाओ।

प्रेम—'भक्ति' के बाद की ऊर्ध्व अवस्था है 'प्रेम'। भक्ति की गाढ़ अवस्था को प्रेम कहते हैं। यह परमानन्द-स्वरूप है। बहुत लोग इसी को अद्वैत-सिद्धि भी कहते हैं। यह अवस्था पूर्णत्व का द्वार है; महाशक्ति या असीम-तत्त्व में प्रवेश करने का द्वार है। इसके बाद है अथाह महासागर जिसमें कि वाक्य तथा मन की गति नहीं है। असीम और अनन्त सत्ता तत्त्वातीत होने पर भी तत्त्व-रूप से वर्णित होती है। उस जगह द्वैत अथवा अद्वैत कुछ भी नहीं है। यह एक प्रकार से ईश्वर तत्त्व की अतीत अवस्था है—पूर्णतया महाशक्ति का स्वरूप अर्थात् 'स्वभाव'।

''बिना प्रेम के ना मिले नन्दलाला''—बिना प्रेम के इस पूर्णत्त्व में प्रवेश नहीं होता। पहले गुरु-उपदिष्ट-कर्म का अवलम्बन करना पड़ता है। इसको छोड़कर प्रकृत धर्म-जीवन-प्राप्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है। क्रमशः कर्म से ज्ञान के उदय होने पर पहले कर्म के कर्त्तापन भाव की निवृत्ति होती है। फिर ज्ञान से भक्ति का विकास होता है। तत्पश्चात् यही भक्ति परिपक्व होने पर प्रेम में परिणत हो जाती है। बाल्यावस्था के बाद प्रौढ़ावस्था तथा उसके बाद बुढ़ापा जैसे स्वाभाविक नियम के अनुसार होते जाते हैं, उसी प्रकार कर्म, ज्ञान, भक्ति तथा प्रेम भी एक के बाद एक स्वतः होते जाते हैं। बीज बिना बोये फल-लाभ की आशा, बाँझ स्त्री के पुत्र का मुख देखने की आशा, कर्महीन के ज्ञान-लाभ की आशा तथा ज्ञानहीन के भक्तिलाभ की आशा, ये सब ही दुराशामात्र हैं।

ज्ञानोदय से पहले वाली भक्ति असली भक्ति नहीं है। उसमें स्वार्थानुसन्धान अवश्यम्भावी है क्योंकि वह अहंकारमूलक है। ज्ञानोदय से पहले जड़-सम्बन्ध तथा देहाध्यास वर्तमान रहने के कारण, उस अवस्था की भक्ति एक प्रकार से प्रार्थनामात्र है। यह असम्भव है कि उसमें फल की ओर दृष्टि न हो अर्थात् वह निस्वार्थ नहीं होती।

'ज्ञान बिना भक्ति नहीं'—यह कथन सत्य है—पर कौन सा ज्ञान ? यह शुष्क ज्ञान नहीं—असली अपरोक्ष ज्ञान। इसलिए मुक्ति से पहले पराभक्ति का उदय नहीं हो सकता। जब पाप-पुण्य के भेदभाव का नाश हो जाता है; सुख-दुःख की भावना का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी अन्त हो जाता है; जड़ पदार्थों के अभाव तथा त्रिताप की ज्वाला भी निवृत्त हो जाती है, तब ही किसी भाग्यवान् के हृदय में अहैतुक भक्ति का उदय होता है। इसलिए चाहे ज्ञान कहो या भक्ति कहो, योग-क्रिया के आश्रय बिना कुछ भी ठीक-ठीक भाव से नहीं हो पाएगा।

पूजा—पूजा तो उद्देश्य-साधन का एक उपाय है। उद्देश्य है—'एक अवस्था-विशेष की प्राप्ति।' वह अवस्था प्राप्त होने के बाद फिर और पूजा का प्रयोजन नहीं रहता। वह अवस्था पूजा बिना प्राप्त नहीं होती इसलिए उद्देश्य-प्राप्ति तक पूजा की आवश्यकतां अवश्य रहती है। पूजा के द्वारा ही पूजा के बाद ही ऊर्ध्व अवस्था पर पहुँचा जाता है। पूजा का कोई निर्दिष्ट स्वरूप नहीं है। कोई तो पूर्वजन्म के संस्कारवश बालकपन से ही फूल इत्यादि द्वारा भगवान् की पूजा करने लगते हैं; मन्त्र न जानने पर भी पूजा करते हैं। कोई थोड़ी बड़ी आयु हो जाने पर दीक्षा के बाद या उससे पहले भी पूजा करना आरम्भ करते हैं।

वासना—आकांक्षा मत बढ़ाओ, यही कष्ट तथा दुःख का कारण है। तालाब का आकार जितना बढ़ाओगे, उसको भरने को उतना ही अधिक जल भी लगेगा। अपनी अवस्था से सन्तुष्ट रहो। दूसरों की हिरस करना अच्छा नहीं। और लोग चाहे जो भी करें उन्हें छोड़ो, तुम अपनी अवस्था के अनुसार चलो, इसमें कोई लज्जा या कष्ट की बात नहीं।

अभाव की सृष्टि तो हम अपने आप ही करते हैं। पहले अभाव की सृष्टि करो, फिर उसे दूर करो—इस सब की आवश्यकता ही क्या है ? जब तक वासना रहेगी तब तक उसको पूरा करने के लिए कर्म भी करना पड़ेगा। कर्म से भावना, चिन्ता तथा अशान्ति होगी। वासना का त्याग होने पर ही कर्म-क्षय होता है और शान्ति मिलती है। निष्काम कर्म ही श्रेष्ठ है क्योंकि उससे अशान्ति नहीं होती। स्थूलत्व का नाश हो जाने पर अर्थात् वासनाएँ कट जाने पर कर्म की निवृत्ति अपने आप हो जाती है।

यथाविधि कर्म (क्रिया) करते रहने पर निर्दिष्ट समय पर ज्ञान का उदय होगा। ज्ञान का उदय होते ही कर्म का त्याग अपने आप हो जाता है। धर्महीन व्यक्ति का कर्म से छुटकारा पा लेना एकदम असम्भव है। जिस प्रणाली से कर्म करता है उसी प्रणाली से वासना की भी निवृत्ति हो जाती है। वासना के त्याग की कोई अन्य प्रणाली नहीं है। स्थूल का दाह तथा वासना का क्षय—दोनों अभिन्न हैं। वासनायुक्त मन ही स्थूल है।

ब्रह्मपथ—मध्यपथ ही ब्रह्मपथ है। अन्यपथ, कुपथ तथा विषय-मार्ग हैं। मध्य पथ की शक्ति का स्रोत ऊपर की ओर चलता है। जो सारी शक्ति अभी तक बाहर की ओर निकल जा रही थी वही, चित्त शक्ति के प्रबोधन होने के साथ ही, सब की सब एकत्रित होकर, पथ में होकर चित्त-सागर (सहस्रार) में पहुँचकर उसमें विलीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो जाती हैं। होमाग्नि, जैसे समिधा के पड़ने से प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार देह में शुद्ध चित्त की चिनगारी प्रज्वलित होने पर, इन्द्रियों की विषय-वासनाओं को नष्ट करके, प्रबल आकार धारण करती है, और मध्य पथ से ऊपर की ओर चलकर अनन्त-चित्त-सागर अर्थात् सहस्रार में जाकर विलीन हो जाती है। यही है चिन्मयी-जीव-धारा का—जाग्रत् कुण्डलिनी का—चैतन्य-सागर में विलीन होना। सुषुम्ना में अर्थात् मध्य पथ में ब्रह्मतेज सदा खेल करता है तथा दायें एवं बायें मार्ग में (इड़ा एवं पिंगला में) विषय स्रोत प्रवाहित होते हैं। ब्रह्म-तेज की गति भीतर की ओर अन्तर्मुखी है तथा विषय-स्रोत की गति बहिर्मुखी है। सुषुम्ना का स्रोत जहाँ ऊर्ध्व-आकर्षण करता है वहीं इड़ा तथा पिंगला के स्रोत मध्याकर्षण या अधःकर्षण करते हैं। मध्याकर्षण या अधःकर्षण से आकृष्ट, नीच भाव से आपन्न जीव का, ऊर्ध्व स्रोत से योग करा देना ही गुरु का कार्य है। स्रोत का कार्य तो स्रोत ही करेगा—यह स्वाभाविक है। गुरु केवल जीव का स्रोत के संग योग करा देते हैं।

विवेक—विवेक का अर्थ है वितृष्णा, वैराग्य। इस वैराग्य का तीव्र होना आवश्यक है। वैराग्य द्वारा जैसे मुक्ति होती है उसके विपरीत औरों पर निर्भर रहने पर तथा औरों का आश्रय लेने पर होता है—'बन्धन'।

विवाह संस्कार—संसार में रहने पर विवाह का प्रयोजन है। सकल रिपुओं को, सारे समय नियन्त्रण में रखना बड़ा ही कठिन है, विशेषतः जब साथ में हो माया का प्रलोभन। अवश्य, योगियों की बात पृथक् है। यह होने पर भी योगियों ने भी विवाह किया है। गुरुजनों का आज्ञा-पालन करना सदा ही शिष्य का कर्त्तव्य है, कारण उनको किसी प्रकार का भी कष्ट मिलने पर या उनकी आज्ञा की अवहेलना करने पर शिष्य को बड़ा दुःख भोगना पड़ता है। इसीलिए जब-जब गुरुजनों ने आज्ञा दी है तब-तब ही शिष्यों ने उनकी आज्ञा को मानकर विवाह किया है और संसार में रहते हुए भक्त जनों का उद्धार किया है (जैसा कि श्रीविशुद्धानन्दजी के साथ हुआ)।

योगी की साधना का असली केन्द्र-स्थल यह संसार ही है। जो इस संसार में इतनी सुविधाओं के साथ रहते हुए भी योगाभ्यास न कर पावे, वह वन में जाकर अनेकों कष्ट उठाकर किस प्रकार सफलता पावेगा ? भगवान् का उद्देश्य यदि यही होता कि सब लोग महर्षि वाल्मीकि की तरह जंगल में समाधि लगाकर दीमक की ढेरी होकर बैठ जायँ, तो फिर उनका जगत् में इतनी वस्तुओं की सृष्टि करने का क्या प्रयोजन था ? सब लोग ही समाधि लगाकर मिट्टी का ढेर होकर बैठे रहते। संसार के सारे प्रलोभनों के बीच रहते हुए अपने को उन्नत करना—यही योगियों का उद्देश्य है।

अपनी प्रकृति के वशीभूत होकर, जैसा करोगे वैसा भरोगे। नारी में कोई दोष नहीं है—शक्ति या प्रकृति तो सुधा का आधार है। क्या शराब की बोतल को भी कभी नशा चढ़ता है ? जगत् में अनेक महापुरुष गृहस्थी में रहते हुए भी अनेक बड़े से बड़े काम करते आये हैं, पर हाँ! वे गृहस्थ जीवन में रहे हैं बड़े संयम से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान्—भगवान् स्त्री हैं या पुरुष ? वास्तव में वे न तो स्त्री हैं न पुरुष। भगवान् तो एक ही समय में, अरूप एवं रूपवान् हैं, निराकार एवं साकार हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं। अवश्य यह रूप की बात सुनकर, इन्द्रिय-ग्राह्य भौतिक रूप की बात सोचना ठीक नहीं। साधारणतः योगी तथा भक्तजन भी उनके परम रूप के दर्शनों के सौभाग्य का लाभ प्राप्त नहीं कर पाते। देवर्षि नारद ने श्वेत द्वीप में भगवान् के जो दर्शन किये थे उसको प्रभु का श्रेष्ठतम रूप समझा था। किन्तु भगवान् ने स्वयं उन्हें बताया कि वे भ्रान्ति में हैं। भगवान् जिन तत्त्वों से बने हैं, उनका विज्ञान द्वारा विश्लेषण किया जा सकता है।

भगवान् प्रस्तुत हुए हैं महाशक्ति से। इस महाशक्ति को कोई लक्ष्मी और कोई दुर्गा कहते हैं। उन्हीं का खेल चल रहा है। पुरुष की प्रकृति (शक्ति) की सहायता के बिना, अपनी कोई निजी शक्ति नहीं है। प्रकृति और पुरुष मिलकर ही सृष्टि का सर्जन कर पाते हैं।

भक्ति—'कर्म' (गुरुदत्त-साधन) करते-करते, चित्त का मल कट जाने पर, 'ज्ञान' का उदय होता है। 'ज्ञान' के परिपक्व होने के बाद 'भक्ति' का उदय होता है। भक्ति में प्रारम्भ में उल्लास तथा मादकता होती है। धीरे-धीरे जब वह घट जाती है तब 'भक्ति' 'प्रेम' में परिणत हो जाती है। उन्मादिनी भक्ति से भगवान् की प्राप्ति नहीं होती। 'पर उससे कुछ भी लाभ नहीं होता'—यह कहना भी ठीक नहीं। उसके स्थिर तथा दृढ़ होने पर भगवान् के दर्शन तक हो सकते हैं। भगवान् की आराधना करते समय, कीर्त्तन आदि में, अचेत हो जाने का कुछ विशेष अर्थ नहीं है। बराबर चेतना में रहकर कर्म (क्रिया) करने की चेष्टा करनी चाहिए। परमात्मा की उपलब्धि करने पर परमानन्द पाओगे, जो योग अवस्था है। योग-युक्त होते ही आनन्द ही आनन्द है।

ज्ञान के बाद भक्ति का उदय होता है। ज्ञान-लाभ होते ही एक ओर तो वैराग्य उमड़ता है तथा दूसरी ओर अनुराग का संचार होता है। अनात्मा या जड़ वस्तु के प्रति तो वैराग्य होता है, परमात्मा के प्रति अनुराग होता है जिसे भक्ति कहते हैं।

चिन्मय अवस्था का उन्मेष न होने तक अर्थात् जड़त्व अवस्था का आवरण भंग न होने तक, शुद्ध भक्ति का उदय नहीं होता। ज्ञान-लाभ द्वारा आत्मकाम (आप्तकाम ?) होते ही विशुद्ध भक्ति का आविर्भाव होता है। तब अन्य आकांक्षा तो दूर की बात, मुक्ति तक की इच्छा नहीं रह जाती। पहले तो कर्म-अन्वेषण, फिर ज्ञान-प्राप्ति और तत्पश्चात् भक्ति-आस्वादन—यही क्रम है। अतएव ज्ञान की परिपक्व अवस्था ही 'भक्ति' है।

भालोबाशा (वैषयिक)—तुम लोग सोचते हो कि स्त्री का प्यार ही सबसे ऊँचा और श्रेष्ठ प्यार है। पर यह सच नहीं है क्योंकि इस प्यार में भी स्वार्थ की कामना है। संसार में सबके प्यार में ही कुछ न कुछ स्वार्थ की मात्रा घुसी है। निःस्वार्थ प्यार केवल माँ महाशक्ति को छोड़ और कहीं भी नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाशक्ति—एक महाशक्ति को छोड़ दूसरा और है ही नहीं। महाशक्ति की शक्ति के विषय में जो दिखा सकते हैं वे ही ईश्वर रूप हैं। मनुष्य कभी भी ईश्वर नहीं हो सकता। तुम लोग बालक हो इसीलिए छोटी-छोटी बातों पर मतवाले हो उठते हो। जो 'क्रिया' तुमको दी है उसी की साधना करते-करते ज्ञान का अंकुर निकलेगा और धीरे-धीरे कुछ समय में पूर्ण ज्ञान के अधिकारी हो जाओगे। ज्ञान की सूक्ष्म सीमा पर पहुँचने पर अद्वैतवाद तथा द्वैतवाद दोनों में से एक भी नहीं रहेगा। रह जायगा केवल एक अविनाशी चैतन्य, जो नित्य है। अखण्ड चिन्मय महाशक्ति का ध्यान करने पर द्वैतवाद निरर्थक लगता है। उस समय ज्ञात होता है कि एक महाशक्ति ही जीव-भाव में अपने से अपने में ही विराज रही है। मधु व उनका मिठास जैसे एक-दूसरे से अभिन्न हैं, उसी तरह से 'मैं' और 'तुम' में भी भेद नहीं है। 'क्रिया' करते-करते सब अपने आप समझ में आ जायगा। अशान्ति नहीं रहेगी—रह ही नहीं सकती।

महामाया का ध्यान ही श्रेष्ठ है। ध्यानी-साधक द्वारा ही उसका प्रकाश होता है। माँ के ध्यानरूपी विशुद्ध-योग से ही माँ के प्रत्यक्ष दर्शन का अधिकार जनमता है। अन्तर्दृष्टि साफ तौर से प्रकाश पाती है। इन्द्रियों के सारे दुष्ट बन्धन कट जाते हैं तथा अन्तर में प्रविष्ट सकल वासनाओं की ग्रन्थियाँ भी अपने आप ही खुल जाती हैं। यथाविधि क्रिया न करने से महाशक्ति माँ का तत्त्व ठीक से समझ में नहीं आता। क्रिया-अवस्था, योगी का विशेष परीक्षा-स्थल है। क्रिया ठीक भाव से करने से आपके सामने चाहे कितने ही प्रलोभन आवें, वे विश्वास के प्रचण्ड तेज से निश्चय ही चूर्ण हो जायँगे। जीव के साथ महाशक्ति का खेल बड़ा ही मजेदार और मधुर होता है। "जगत् में चारों ओर केवल महाशक्ति ही कार्य कर रही है परन्तु कुछ विशेष द्रव्यों तथा विशेष जीवों में शक्ति-भाव तथा क्रिया आदि के नियम अलग-अलग हैं"—इस बात का भी खण्डन नहीं किया जा सकता। 'असीम-इच्छा' का नियम कितना सुन्दर है। यह सब जानते हुए भी मनुष्य उसके विषय में आँख बन्द करके, गुरु-आज्ञा का ठीक से पालन नहीं करता और पाशविक वृत्तियों के अधीन होकर कितनी यन्त्रणा भोगा करता है।

सब शक्तियों के मूल में जो शक्ति है वही पहली और आखिरी है; सब पदार्थों और जीवों में उसको छोड़ और कुछ नहीं है। यदि वह महामाया अपनी शक्ति को समेट ले तो चन्द्र, सूर्य, ग्रह उपग्रह एवं विचित्र जगत् तथा देव-देवी जितने भी हैं, सबका अस्तित्व ही मिट जायगा, वे दीखेंगे तक नहीं। एकमात्र वही पूर्ण परमानन्दमयी, ब्रह्ममयी महामाया ही द्वैताद्वैत, नित्य-अनित्य लीला, सुख-दुःख, हाय-हल्ला, पिता-पुत्र, सेव्य-सेवक, पति-पत्नी आदि के रूप धारणकर लीला कर रही है। प्रयोजन-अप्रयोजन वह स्वयं ही जाने, या जो उसके विषय में आलोचना के अधिकारी हो वे जानें। युक्ति तर्क से कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। वास्तविकता में युक्ति तर्क के लिए स्थान ही कहाँ है। महाभाव तत्त्व के सार मर्म को 'क्रिया' द्वारा सर्वदा हृदय में ग्रहण करो। बाह्यभावों के बीच में न फँसकर, सर्वदा ही माँ को स्पर्श करने की क्षमता प्राप्त करो। वह होने से ही सब होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्ययोनि तथा पशुयोनि और बलि—शास्त्र के अनुसार जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् कहीं मनुष्य जन्म पाता है। मनुष्य जन्म ही श्रेष्ठ जन्म है क्योंकि मोक्ष केवल इसी जन्म में, शुभ कर्म करके प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार से मनुष्ययोनि देवयोनि से भी श्रेष्ठ है। मनुष्ययोनि पाने से पहले स्थावर, जंगम, उद्भिज्ज आदि विभिन्न योनियों में जीव के जो जन्म हैं वे कर्म-जन्य नहीं हैं। मनुष्ययोनि के पूर्व की योनियों में कर्म करने का अधिकार ही नहीं होता। इसके पहले की जो चौरासी लाख योनियाँ हैं, स्वभाव के नियमानुसार ही जीव को उनके माध्यम के बीच से जाना पड़ता है। शास्त्रोक्त विधि के अनुसार बलि देने से ही पशु का पशुत्व चिर दिनों के लिए मिटता है। किसी भी जीव को इस जन्म-मरण-रूप आवागमन के चक्र से मुक्त करना, किसी के लिए भी, किसी भी अन्य उपाय से सम्भव नहीं है।

बलि किसी देवता की मूर्त्ति के सामने या पीठ की ओर दी जाती है। जिस मूर्त्ति के सामने बलि दी जावे, शास्त्रोक्त परिक्रिया से, पहले उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी पड़ती है। जीव-मात्र की एक लिंग देह होती है। समस्त वस्तुओं की ही एक लिंग देह अर्थात् सूक्ष्म सत्ता होती है। देवमूर्ति के भीतर जो विराट् सूक्ष्म सत्ता है, वह ही बलिपशु के लिंग-देह को प्रबल आकर्षण द्वारा अपने भीतर आकर्षित कर लेती है। इसका फल होता है पशु के पशुत्व का नाश तथा उसकी जगह देवत्व का लाभ।

वध करते समय पशु को जो थोड़ा कष्ट देना पड़ता है वह शास्त्र के अनुसार पाप अवश्य है, पर बलि द्वारा पशु के पशुत्व-नाश का जो पुण्य है वह उस थोड़े पाप के अनुपात में अनेक गुना अधिक है। यजमान को अधिक पुण्य के साथ-साथ थोड़ा पाप (पशु-वध का) भी भोग करना पड़ता है।

पशु-बलि पिछले तीनों युगों से ही प्रचलित है। यह शास्त्र का ही निर्देश है। शास्त्र कभी भी निन्दनीय कार्य करने का उपदेश नहीं देते। जीवन धारण करने पर स्वेच्छा या अनिच्छा से हिंसा करनी ही पड़ती है—यह अपरिहार्य है। साग, सब्जी खाने में भी तो हिंसा होती ही है।

महापुरुष एवं योगी के बाह्य लक्षण—बाह्य लक्षणों द्वारा भी महापुरुष को पहचाना जा सकता है। जो इन लक्षणों को जानते हैं, वे अवश्य महापुरुषों को पहचान सकते हैं पर अवश्य यह सहज नहीं है। यदि महापुरुष या योगी आत्म-परिचय देने की इच्छा न करें, यदि वे पहचानने में न आना चाहें तो किसके लिए साध्य है कि वह उन्हें लक्षणों द्वारा पहचान सके ? वे अलक्ष्य बनकर अपनी उपाधि यदि छिपा लें, तो उनको कोई भी नहीं पहचान सकता और यदि वे पकड़ाई में आ जाना चाहें तो जिस भाव में आविर्भूत होने से जीव उनको पहचान सके, वे उसी भाव में उसके समक्ष आविर्भूत हो जाते हैं। यहाँ तक कि लक्षण न दीखने पर भी, जीव उनको पहचान लेता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वास्तव में बात तो यह है कि कौशल से या बल-पूर्वक महापुरुष को पहचानने की चेष्टा करना व्यर्थ है। यदि ऐसा होता, तो महापुरुष तथा अवतार देह को सभी समभाव से पहचान पाते। यह मतभेद न दिखाई पड़ता कि कोई तो उनको पहचानकर उनके दर्शन कर पाता है और अन्य लोग नहीं।

महापुरुष-गण बच्चों की तरह जड़वत्, उन्मत्तवत् तथा पिशाचवत् आचरण करते हैं। बाह्य विचित्रता के मध्य जो महापुरुष नित्य सामान्यरूप से सदा प्रकाशमान रहते हैं उनके इन सत्प्रकाश रूप को साधना द्वारा प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता।

जो स्वयं अज्ञानी हैं वे महापुरुषों को कैसे पहचान सकते हैं ? वे तो अपने आप को भी नहीं पहचान सकते। यदि शक्तिशाली सिद्ध पुरुष गुप्त भाव से रहने की इच्छा करे तो कोई भी लक्षण उसके शरीर में प्रकट नहीं होता। ऐसे लोग व्यवहार तथा आचार से बँधे नहीं हैं। उनका कोई निर्दिष्ट आचरण नहीं है। वस्तुतः वे विधि-निषेध के अधीन नहीं हैं। वे स्वेच्छाचारी लीलामय हैं। उनके विचारों एवं स्वरूप को पहचानना सहज नहीं है।

हाँ, जब वे तटस्थ अवस्था में हों अर्थात् किसी के ऊपर विशेष रूप से अनुकूल तथा प्रतिकूल न हों—उस स्थिति में लक्षणों द्वारा उनको पहचाना जा सकता है। यह लक्षण केवल स्थूल देह में ही हों—ऐसा नहीं है। स्थूल देह, लिंग देह तथा कारण देह सभी देहों में होते हैं। तब भी साधारण लोगों के लिए स्थूल के अतीत अतीन्द्रिय अवस्था में कोई भी लक्षण कार्य-साधक (काम का) नहीं होता। अवश्य, साधन द्वारा अपनी सत्ता का विकास होने पर क्रमशः सूक्ष्मतर तथा विशुद्धतर लक्षण दीखने लगते हैं और उसके अनुसार अपना सिद्धान्त स्थापित किया जा सकता है कि ये महापुरुष हैं या नहीं ? जो इच्छामात्र से लिंग शरीर को देखने के अभ्यस्त हैं, वे लिंगदेह के वर्ण (रंग) तथा चाल के ढंग से उक्त लिंगाभिमानी जीव की आध्यात्मिक उन्नति का अनुमान लगा सकते हैं। इस प्रकार जो कुछ वे जानना चाहते हैं, वे जान पाते हैं। किन्तु महापुरुषगण लिंग के भी अतीत होते हैं, क्योंकि वे मुक्त हैं। इसलिए जिनको कारण तथा महाकारण देह तक देखने की क्षमता है वे स्वयं लिंगातीत होकर महापुरुषों के दर्शन करने में समर्थ होते हैं। किन्तु साधारण जीव स्थूल दर्शन के अतिरिक्त, किसी अन्य अवस्था को नहीं देख पाते। इसीलिए उक्त अवस्थागत विशेषताओं से युक्त वस्तु एवं पुरुष का ज्ञान उनके द्वारा सम्भव नहीं। इसलिए महापुरुषों के स्थूल शरीर को स्थूल लक्षणों द्वारा ही पहचानने की चेष्टा की जाती है।

तपस्या करने से देह का समूल (जड़ से पूरा-पूरा) परिवर्त्तन हो जाता है। जिन लोगों की भूत शुद्धि हो चुकी है, उनकी देह स्थूल रूप में होने पर भी और लोगों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की देह की तरह नहीं है। दीर्घकाल तक संग करने पर उनकी देह में अनेक अलौकिक प्रकार के दर्शन होते हैं। जिनकी कुण्डलिनी चैतन्य हो गयी है, जो सिद्ध हो गये हैं अर्थात् जिनको योग-लाभ हो गया है, उनकी दृष्टि में एक विशिष्टता आ जाती है। इसलिए ऐसे सिद्ध व्यक्ति के एक फोटो को देखनेमात्र से भी यह जाना जा सकता है कि उसको योग-सिद्धि हुई है या नहीं ? योगी, भोगी तथा रोगी, आँखों से ही पहचाने जा सकते हैं। योगी के ललाट का भी परिवर्त्तन हो जाता है। इसके अतिरिक्त जिसकी कुण्डलिनी जाग गयी है और सदा सुषुम्ना पथ में रहती है, उसकी देह से सदा पद्मगन्ध निकलती रहती है, उसके श्वास से भी पद्मगन्ध आती है तथा उसकी नाभि के नीचे कोई पात्र रखकर, नाभि पर जल डालने से वह जल नाभि के स्पर्श से कमल की सुगन्धि वाले इत्र की तरह पात्र में इकट्ठा हो जाता है।

योगियों का श्वास नाक में से नहीं चलता—नाभि में से तथा शरीर के रोम-कूपों में से चलता है। केवल इतना ही नहीं—वे साधारण जीवों की तरह वायुमण्डल में से जैसी-तैसी अपवित्र वायु ग्रहण नहीं करते। बाहर की वायु को वे नाभि-पथ से निर्मल करके ही भीतर ग्रहण करते हैं। फिर शोधित वायु को दीर्घकाल में रोककर उसी का सेवन करते हैं। भीतर ही भीतर वह शुद्ध वायु ही घूमती रहती है। इसीलिए योगी लोग बाह्य भावों द्वारा एकदम पहचान में नहीं आते।

चित्त में जो विभिन्न प्रकार की वृत्तियों का उदय होता है, जैसे काम, क्रोधादि का संचार, यह सभी बाहर की वायु के साथ सम्पर्क से होता है। जिन्होंने इस बाहरी सम्पर्क पर नियन्त्रण पा लिया है, उनकी एकाग्रता तथा उनका निर्विकार-भाव किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं होता। बाहर के जगत् से व्यवहार करते समय भी, वे विषयों में लिप्त नहीं होते। बाहर की वायु तथा भावनाएँ उनके भीतर प्रवेश नहीं कर पातीं।

जो योगी हैं उनकी देह सिद्ध-देह है। वे इच्छामात्र से ही अपनी देह को संकुचित कर सकते हैं—यहाँ तक कि परमाणु की तरह छोटी करके अदृश्य हो जाते हैं, तथा बढ़ाकर विराट्-आकार भी धारण कर पाते हैं। इन्हीं सिद्धियों को 'अणिमा' तथा 'महिमा' कहते हैं। केवल देह को ही क्यों, देह के किसी भी अवयव को अथवा किसी बाहर की वस्तु को भी वे इसी प्रकार छोटी-बड़ी कर सकते हैं। देह को इच्छानुसार भारी या हल्का करना भी उनके आत्माधीन है। वे देह को कीचड़ अथवा गीली मिट्टी के ढेले की तरह मुलायम कर सकते हैं तथा सब जोड़ों को अलग-अलगकर अंग के प्रत्येक अंश को अलग-अलग कर सकते हैं। नाभि-रन्ध्र या रोम-कूप द्वारा बाहर की किसी भी वस्तु को दबाकर या धकेलकर वे उसे शरीर के भीतर प्रवेश करा सकते हैं, चाहे वह वस्तु कितनी भी बड़ी अथवा भारी क्यों न हो।

वे एक देह को अनेक प्रकार से या एक ही प्रकार की बहुत सी देहें धारण करके, एक ही मुहूर्त्त में अनेक स्थानों पर प्रकट हो सकते हैं। दीवार या और किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठोस रुकावट के पार जाने की इच्छा होते ही योगी की देह उससे रुकती नहीं—उसी के बीच से बिना रोक-टोक के पार चली जाती है। उसकी देह में इतनी तड़ित् शक्ति विद्यमान रहती है कि हिंसा का भाव लेकर यदि कोई भी जीव—मच्छर, ततैया, साँप इत्यादि उनके शरीर को स्पर्श करेगा तो उसी समय भस्म हो जायगा। यह योगी के इच्छा करने पर होता है—ऐसा नहीं है—यह तो स्वतः ही हो जाता है। विषधर सर्प का उग्र विष भी योगी की देह में नहीं फैल पाता। देह के तेज से वह विष भस्म हो जाता है और काटने वाले सर्प की मृत्यु हो जाती है। किसी अति उच्च स्थान से गिरने पर भी योगी की देह भूमि का स्पर्श नहीं करती, क्योंकि उसकी देह में ऊर्ध्व-गति-शील निर्मल वायु जमा रहती है और गिरने के समय वह बिखरकर या फैलकर देह को फिर से ऊपर उठा लेती है।

योगी के नेत्रों में इतना तेज संचित होता है कि वे तीव्र-भाव से यदि किसी वस्तु या प्राणी की ओर देख भर लें तो वह वस्तु तुरन्त भस्म हो जाती है, यहाँ तक कि पत्थर और लोहा तक भी चूर्ण-विचूर्ण हो जाते हैं। छोटी आयु के शुद्ध बालक-बालिका एक अखण्ड ब्रह्मचारी योगी के नेत्रों में ताकने से अनेक देवी-देवताओं के दर्शन पाते हैं। गम्भीर भाव में डूबकर ध्यान में प्रविष्ट होने पर, योगी की देह से ज्योति की छटाएँ चारों ओर फैलने लगती हैं—अँधेरे में उजाला हो जाता है। इस प्रकार के अनेक बाहरी लक्षण योगियों के हैं। उन सब का वर्णन करना सम्भव नहीं।

योगी निर्भीक, जितेन्द्रिय, सत्यपरायण तथा मधुर-प्रकृति-सम्पन्न होते हैं। जो भी हो, इन लक्षणों द्वारा, साधारण मनुष्यों को महापुरुषों के पहचानने में सहायता मिलती है। वस्तुतः अपने हृदय की व्याकुलता ही महापुरुष को पहचानने का मुख्य उपाय है।

मन—मन का अथ है शुद्ध सत्त्व। भगवती के दर्शन मनुष्य-मन को एकाग्र करके ध्यान करने पर ही पाता है। पंचभूतों से मनुष्य की स्थूल देह के ऊपर है सूक्ष्म देह और उससे ऊपर है कारण देह। स्थूल में सदा ही कोई न कोई वृत्ति रहती है। इसीलिए मन स्थूल में सदा ऐसे फँसा रहता है जैसे पिंजड़े में पक्षी। इस पिंजड़े के बन्धन से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय है क्रिया-योग। स्थूल से मन पहले सूक्ष्म में जाता है और वहाँ से फिर जाता है कारण शरीर में।

देह, मन और आत्मा—इन तीनों से ही मनुष्य बना है। जब वह देह-भूमि में होता है तब मनुष्य मानव-पशु स्तर में है। जब वह मन-भूमि में होता है तब मननशील-मानव के स्तर में है और जब वह आत्म-भूमि के स्तर में निवास करता है, उस समय वह देवता-स्तर में होता है।

मन्द-कार्य—सब दुःख-सुख अपने ही कर्मों के फल हैं, इसलिए अपने कर्म मत बढ़ाओ। तुम केवल दुःख को ही देखते हो, किन्तु यह नहीं सोचते कि अपने किये हुए बुरे का कुफल, धीरे-धीरे, इन कष्टों और दुःखों को भोगने से ही कट रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुष्कर्म छोड़ दो तो नये भोग्य-कर्मों की सृष्टि नहीं होगी। हाँ! मन के धर्म से, समय-समय पर दुष्प्रवृत्ति का उद्रेक अवश्य होगा। किन्तु मनोबल द्वारा उस उद्रेक को उसी समय दमन करना उचित है। उसको बढ़ने देने से आगे वही विपत्ति का कारण बनेगा।

जिस कार्य को सबके सामने करने में लज्जा का बोध हो वही कर्म बुरा है। हम क्या जानते नहीं कि कौन कर्म बुरा तथा नीच है ? किन्तु जानते हुए भी प्रायः नीच कर्म ही कर बैठते हैं और अपने बुरे कर्म के समर्थन में, मनुष्य अपनी बुद्धि से—औरों को उसके उचित होने का प्रमाण देने के लिए तथा अपने मन में भी उसके औचित्य को बैठाने के लिए—कितने प्रकार की असत् युक्तियों का आश्रय लेता है।

युक्तावस्था—सुषुम्ना नाड़ी का पथ खुल जाने पर अर्थात् कुण्डलिनी जाग जाने पर, योगी सर्वदा युक्त अवस्था में ही रहते हैं। मैं जब तुम लोगों के साथ बातचीत करता हूँ या बाह्य विषयों के बारे में विचार करता हूँ, उस समय भी मेरा सुषुम्ना का पथ खुला रहता है—योग-युक्त अवस्था रहती है, उसमें कोई परिवर्तवन नहीं होता। यह सब तो बाह्य आवरण की बात होती है। क्रिया में बैठने पर सब आवरण हटा देता हूँ। उस अवस्था में और लोगों को योगी को देखने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए क्योंकि योगी उस समय समस्त अंगों को अलग-अलग कर देता है और छिपकर देखने वाले का अति अनिष्ट हो सकता है। उस समय योगी की देह का भी कुछ परिवर्तन होता है। जैसे शरीर का रंग कुछ और गोरा हो जाता है तथा इसी प्रकार और भी कुछ-कुछ होता है।

प्रकृत (असली) योगी सदा ही जाग्रत् तथा प्रकाशमान होते हैं। उनका स्थूल शरीर, लिंग शरीर तथा कारण शरीर चिन्मय सिद्ध स्वरूप में परिणत हो जाता है। वे सर्वव्यापी परमात्मा के साथ हर समय युक्त रहते हैं, इसलिए इच्छामात्र से क्षण भर में, परमात्मा की ही तरह, जहाँ चाहें वहाँ प्रकट हो सकते हैं।

मुक्ति—'आवरण-निवृत्ति' ही 'मुक्ति' का दूसरा नाम है। आवरण से ढके रहने के कारण मनुष्य स्थूल भाव में पड़ा रहता है। उसके हटते ही वह सूक्ष्म तत्त्व में प्रविष्ट होता है अर्थात् सूक्ष्म भाव को उपलब्ध करता है एवं सब पदार्थों और जीवों की सूक्ष्म अवस्था को देख पाता है। स्थूल भाव के कट जाने को ही 'मुक्ति' समझो। स्थूल का संग होने से ही प्रिय तथा अप्रिय का बोध होता है एवं सुख-दुःख-रूपी द्वन्द्व की उत्पत्ति होती है। स्थूल से सम्बन्ध छूटने पर, सूक्ष्म अवस्था में, सुख-दुःख बोध या जिसको प्रचलित भाषा में 'भोग' कहते हैं वह भोग नहीं रहता। किन्तु वस्तुतः सूक्ष्म-अवस्था में भी आत्म-भाव का स्फुरण नहीं होता। उस अवस्था में भी एक प्रकार का अभाव रहता है किन्तु वह अभाव पृथ्वी तल के अभावों की तरह का नहीं होता।

क्षुधा, तृषा ही एकमात्र अभाव हों ऐसा नहीं है। क्षुधा, तृषा विशेष भाव से न रहने पर भी, अन्य प्रकार के अभाव रहते हैं। इस सूक्ष्म-अवस्था को भेदकर पार जाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर परमानन्द का स्वाद मिलता है। इस आत्म-भाव में स्थित होने पर, एक निबिड़ तथा गम्भीर आनन्द को छोड़ वहाँ और कुछ अनुभव नहीं होता। सकल जीव विकार-ग्रस्त होकर ही आर्त्तनाद करते हैं। विकार दूर करके जब जीव स्वास्थ्य-लाभ कर लेता है तब किसी प्रकार की अशान्ति नहीं रह जाती—यह सब चाहते हैं।

कोई छोटी अवस्था में ही वैराग्यवान् हो जाता है तथा कोई बूढ़ा हो जाने पर भी विषय-तृष्णा नहीं छोड़ पाता। वैराग्यवान् ही आयु के अनुसार बालक होने पर भी, वस्तुतः वृद्ध है, क्योंकि वह प्रवृत्ति के चक्र को छोड़कर निवृत्ति में आ गया है। इसके विपरीत, विषय-लोलुप वृद्ध अभी भी बालक ही है क्योंकि अभी तक भी उसकी विषय-तृष्णा नहीं मिटी तथा निवृत्ति पथ में आने की उसे उपयुक्त क्लान्ति नहीं आयी। ऐसा वृद्ध अभी दीर्घकाल तक संसार में भ्रमण करेगा। अभी भी वह अनेक अतृप्त वासनाओं का शिकार है जिनका उसे तर्पण करना होगा क्योंकि अतृप्ति तथा ऋण लेकर कोई भी मुक्त नहीं हो सकता। ऋण अनेकों हैं—मातृ-ऋण, गुरु-ऋण, देव-ऋण, पितृ-ऋण, अर्थ-ऋण आदि।

मोक्ष—मोक्ष का अर्थ है माया के आवरण का हटना। मोक्ष न होने तक 'स्वभाव' से साक्षात् परिचय नहीं होता। पर यह मोक्ष भी परम पुरुषार्थ नहीं है केवल उसका द्वार-मात्र है। 'मोक्ष' का अर्थ बहुत लोग 'निर्वाण' समझते हैं। इनके मत से, जीव ब्रह्म-सत्ता में विलीन हो जाता है; जिस प्रकार घड़ा फूटने पर घटाकाश महाकाश में मिल जाता है उसी प्रकार जीव का अपना व्यक्तित्व और नहीं रहता। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। घड़ा फूटने पर भी घड़े का व्यक्तित्व विलीन नहीं होता, वह अभ्यन्तरस्थ आकाश में अव्यक्त (छिपे) भाव से रहता है। जैसे प्रबल शक्ति के आगे दुर्बल शक्ति स्वभावतः अपने अस्तित्व को खो देती है, उसी प्रकार ब्रह्म-सत्ता या ईश्वर-सत्ता के सामने आने पर जीव-सत्ता आत्म-बोध खोकर उसमें लीन हो जाती है, यह स्वाभाविक है। किन्तु व्यक्ति-बोध खोने पर भी जीव का जीवत्व लुप्त नहीं होता। महासुख की अवस्था होने पर भी योगी ऐसे शुष्क निर्वाण की कामना नहीं करता। निस्सन्देह, उसको ब्रह्म-सत्ता या ईश्वर-सत्ता के बीच से होकर ही जाना पड़ता है किन्तु पीछे उसकी दशा ऐसी हो जाती है जैसे अभिमन्यु की चक्रव्यूह में। प्रवेश करके वह बाहर नहीं निकल पाता। इसी भय से वह पहले बाहर निकलने की शक्ति को प्राप्त करके उसके उपरान्त ही प्रवेश करता है। क्रिया-कर्म द्वारा इस सामर्थ्य या शक्ति का बल प्राप्त करके ही वह ब्रह्मत्व या ईश्वरत्व का भेद करके नित्यधाम में, आदि-जननी महामाया की गोद में बैठकर, ब्रह्ममयी की लीला का आनन्द लेता है। यही योगी की गति है, उसका परम पुरुषार्थ है। इस असली मोक्ष के लिए क्रिया-रूपी कर्म आवश्यक तथा अनिवार्य है।

मन्त्र क्या है तथा उसकी आवश्यकता

जिस कौशल द्वारा गुरु शिष्य को रजोगुण तथा तमोगुण के आधिपत्य से मुक्त करते हैं उस कौशल को ही 'मन्त्र' कहते हैं। मन की जड़ता का नाश करके, चैतन्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पादन करना ही मन्त्र का काम है। चाहे किसी उपाय से भी मन को चैतन्य करने की चेष्टा करो, मन्त्र की सहायता लेनी ही पड़ेगी, क्योंकि ब्रह्मपद एवं सुषुम्ना का मार्ग न खुलने तक कोई भी उपाय सफल नहीं होता।

मन्त्र तथा इष्ट-देवता में कोई भेद नहीं है। देवता के स्वाभाविक नाम को ही अर्थात् जिस नाम से पुकारने पर देवता का आविर्भाव हो या अन्य प्रकार की क्रिया हो, उसी को 'मन्त्र' कहते हैं। नाम न जानने से, अनन्त सत्ता के गर्भ से, अपनी इष्ट मूर्त्ति को, आकर्षण करके बाहर निकालने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। नाम के साथ रूप का नित्य सम्बन्ध है। नाम का आश्रय लेने से रूप का प्रकाश स्वतः ही हो जाता है। देवता वाच्य एवं मन्त्र उसका वाचक है, दोनों के बीच वाच्य-वाचक सम्बन्ध है।

गुरु जो मन्त्र देते हैं वह अक्षरों का जोड़-मात्र नहीं है। यदि वही होता तो उससे विवेकशील, विचारवान् जीव के लिए तनिक से उपकार की भी आशा नहीं थी। वस्तुतः मन्त्र चैतन्य का स्वरूप है—चित्-शक्ति का विशिष्ट प्रकाश है। वह शब्द के द्वारा प्रकट होने पर भी, स्वरूपतः जड़ पदार्थ नहीं है। मन्त्र की शक्ति कितनी प्रबल है यह तो यथाविधि मन्त्र का किंचित् अनुशीलन करने पर ही जाना जा सकता है। गुरु जब शिष्य के कान में बोलकर मन्त्र-दान करते हैं, तब वास्तविक पक्ष में शब्द के द्वारा ज्ञान तथा चैतन्य शक्ति का ही संचार करते हैं—यही देवता का स्वरूप है। सद्गुरु का दिया मन्त्र शब्दमात्र नहीं है। वह तो चैतन्य की घनीभूत मूर्त्ति तथा देवता का आत्मप्रकाश है। गुरु मन्त्र को सिद्ध (प्रत्यक्ष) करके प्रत्यक्ष अनुभूति के समय, शिष्य के हृदय के भीतर प्रवेश कर जाते हैं। इसीलिए इस चेतन, सिद्ध मन्त्र की वारम्बार आवृत्ति करते-करते शिष्य के अन्तःकरण में दिव्य चैतन्य इष्टमूर्त्ति का आविर्भाव होता है। स्वाभाविक पथ पर अग्रसर होने से कल्पना की सहायता नहीं लेनी पड़ती। इष्ट का ध्यान श्लोकों को कण्ठस्थ करके, उसके अनुसार मानसिक मूर्त्ति गठन करना केवल कल्पना का खेल है। यह असल उपासना का अंग नहीं है। मन्त्र तथा देवता जब अभिन्न हैं, केवल प्रकाशकाल में, तारतम्य के कारण, भिन्न प्रतीत होते हैं, तब मन्त्र के साथ साधक के मन का संघर्ष होने पर, देवता की मूर्त्ति अपने आप प्रकट होती है, उसके लिए भावना का आश्रय नहीं लेना पड़ता।

मन्त्र चैतन्य न हो जाने तक, केवल शब्दमात्र से इस प्रकार के ज्ञान का विकास सम्भव नहीं है। नवीन साधक के लिए मन्त्र को चैतन्य करके उसकी आराधना बड़ी कठिन है। इसलिए गुरु ही विचारपूर्वक ठीक मन्त्र का निर्वाचनकर, उसको प्रत्यक्ष अर्थात् सिद्ध करके, चैतन्य-सम्पादनपूर्वक, शिष्य को प्रदान करते हैं।

मन्त्र तथा बीज—बीज अक्षर-समष्टि-मात्र नहीं है; बीज ही मूल मन्त्र है। शाखा, पल्लव, पुष्प, फल सभी सुन्दर हैं किन्तु बीज न होने से वृक्ष उत्पन्न नहीं होता और फ़ल, पुष्पादि ये सुन्दर वस्तुएँ भी नहीं मिलतीं। देव-तत्त्व के विचार से भी बीज का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थान सर्वश्रेष्ठ है—बीज के महत्त्व तथा शक्ति को अचिन्त्य एवं अनन्त कहने में भी अत्युक्ति नहीं। बीज-मन्त्र के प्रभाव से, देव-देवी से लेकर यावतीय जगत् के पदार्थों तक सभी की उत्पत्ति होती है। यह मैं एक-एक करके दिखा सकता हूँ। बीज सर्वशक्ति-सम्पन्न है। इसके साथ और किसी वस्तु की तुलना नहीं हो सकती। किसने कहा कि बीज का अर्थ नहीं होता ? ब्रह्मादि देवगण जिसका अर्थ निरूपण करने में असमर्थ हैं, क्षुद्र मनुष्य उसके सम्बन्ध में आलोचना करने जाय—इससे बढ़कर दुस्साहस और क्या होगा ? बीज में यदि शक्ति हो तो खेत में पड़ने पर उसमें से यथाकाल अंकुर निकलकर वृक्ष में परिणत अवश्य होगा। वृक्ष की चिन्ता न करने पर भी, बीज के मिट्टी में पड़नेमात्र से ही, यदि कोई प्रबन्धक न हो तो वृक्ष उत्पन्न होगा ही होगा। इसी प्रकार चैतन्य अर्थात् शक्ति-संयुक्त बीज-मन्त्र की साधना (उसका जप) करने से इष्ट-देवता का आविर्भाव होगा ही होगा। देवता के अवयवों तथा मूर्त्ति के वर्ण (रंग) आदि का ध्यान करके, उसको प्रत्यक्ष करने की आवश्यकता नहीं होती। अभ्यास करने पर इस कथन की सत्यता अपने आप अनुभव में आती है। केवल मूर्त्ति का ध्यान करने से रूप की सत्य वस्तु का ध्यान आसानी से नहीं होता। जिस दृष्टि से तुम, मैं और जगत्, सत्य पदार्थ को समझते हैं उसी दृष्टि से देवता भी सत्य हैं।

मन्त्र-शक्ति—मन्त्र का कार्य होता है, शक्ति-धारण के लिए आधार प्रस्तुत करना। मन्त्र सहित की हुई क्रिया और जप का यही लक्ष्य होता है। गुरुदत्त मन्त्र—अर्थ-युक्त अथवा अर्थ-हीन शब्द समष्टि रूप से प्रदत्त होने पर—एक शक्तिमय वस्तु एवं स्वभावतः शक्ति है। शब्द तो उस शक्ति का आवरणमात्र है। शब्दांश के प्रति लक्ष्य करके ही 'मन्त्र' को 'देवता की देह' कहा गया है। शब्द का अभ्यन्तरस्थ वस्तु देवता ही है। इस प्रकार से मन्त्र और देवता दोनों एक हैं।

गुरुदत्त मन्त्र के ठीक-ठीक भाव से जप करनेमात्र से ही संशय, अविश्वास तथा भय नहीं रह जाते; साहस आता है तथा देवता के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। मन में सन्देह, सन्ताप तथा दुष्ट भाव आने पर, दुगने उद्यम से जप करना चाहिए।

एक लाख जप पूरा होने पर मन्त्र चैतन्य होता है। मन्त्र चैतन्य होने पर, उसके सूचना-स्वरूप, ज्योति दिखाई पड़ती है। सद्गुरुप्रदत्त मन्त्र एकदम चैतन्य वस्तु है।

मन्त्र और देवता का विचार—सारे मनुष्य समान अधिकार-सम्पन्न नहीं होते। इसीलिए दीक्षा के समय उचित देवता के विचार की व्यवस्था है। यदि सभी का अधिकार एक प्रकार का ही होता, तो अवश्य विचार की आवश्यकता न होती। विचारशील आचार्य मनुष्य के अधिकार एवं योग्यता का विचार करके तथा परीक्षा के उपरान्त ही तदनुसार मन्त्र तथा साधना-पथ प्रदर्शन करते हैं। यह अधिकार-विचार ठीक प्रकार से न होने के कारण ही अनेक स्थलों में साधना का प्रत्यक्ष फल उचित मात्रा में अनुभव नहीं होता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपादानगत सादृश्य विचार करने पर ही—जैसे विवाह से पहले पति-पत्नी के ग्रहों तथा परस्पर सम्बन्ध आदि का विचार किया जाता है—उस उपादान सादृश्य के अनुरूप मन्त्र तथा देवता का विचार प्रतिष्ठित होता है। मनुष्य के स्वभाव के अनुरूप ही उसके उपास्य का भी स्वभाव होना चाहिए। हाँ! व्यक्ति के स्वभाव का परिचय एकमात्र योग-दृष्टि से पाया जाता है। अतएव दीक्षा-दान से पहले योगदृष्टि द्वारा शिष्य की प्रकृति एवं संस्कार का विचार नितान्त आवश्यक है।

मन की शुष्कता—भगवती महामाया की लीला का दर्शन एकाग्र तथा प्रेमयुक्त मन से ही हो पाता है—शुष्क मन से नहीं। 'क्रिया' को प्रेम सहित, ठीक प्रकार, आदेशानुसार करने से ही फल मिलता है तथा सारी अशान्ति मिटकर शान्ति प्राप्त होती है। क्रिया न करने पर फल की आशा व्यर्थ है। चन्दन की लकड़ी को कन्धे पर लेकर घूमने से तो सुगन्ध नहीं मिलती—उसको जलाना पड़ता है। तिल देखनेमात्र से तेल नहीं निकलता, उसको पेरने पर ही तेल बाहर निकालता है। इसलिए 'क्रिया' करो; वृथा समय नष्ट मत करो। प्रेम-सहित, श्रद्धापूर्वक साधना में लग जाओ।

मृत्यु क्या है ?—देह छूटना, लिंग तथा स्थूल का अलग होना यही मृत्यु है। ज्ञानी की जब मृत्यु होती है उस समय वह उसे देख सकता है। अज्ञानी की मृत्यु एक प्रकार की बेहोशी की अवस्था है। जो ज्ञानी तथा योगी है वह अपने इच्छा-पूर्वक देह का त्याग करता है। देह-त्याग के समय उसको ज्ञान रहता है तथा उसकी मृत्यु इच्छामूलक होती है।

जुगनू की ज्योति जैसे क्रम से जलती-बुझती रहती है उसी प्रकार हम लोगों का देहाश्रित आत्मबोध भी कभी जागता है कभी छिपा रहता है, सर्वदा प्रकाशमान नहीं रहता है। असल में एक रस ठहर भी नहीं सकता। स्थूल वायु का श्वास-प्रश्वास की क्रिया के कारण उदय-अस्त होता रहता है।

मृत्युकाल में साधारण जीवनमात्र का आत्मबोध निवृत्त हो जाता है। उस समय जागरण समाप्त होकर महानिद्रा का सूत्रपात होता है। यह परवर्त्ती अवस्था है—स्वप्नवत्, मूर्च्छितवत्, मूढ़वत्। साधारण मनुष्य, मृत्यु के समय अज्ञान से आच्छादित हो जाता है। ज्ञान का उदय न होने तक मनुष्य अज्ञान में रहता है। तब भी जितने दिन वह विक्षिप्त भाव में रहता है उतने दिन तक श्वास-प्रश्वास रहता है, बाह्य वस्तुओं की क्रिया भी रहती है, खण्डित देह—अविच्छिन्न ज्ञान भी रहता है, यह अज्ञानमूलक विक्षेप है। पर मृत्युकाल आने पर उसका बाहर की वायु के साथ सम्बन्ध टूट जाता है, प्राण-अपान की क्रिया निवृत्त हो जाती है, अज्ञानमूलक लय (बेहोशी) आकर देह को अभिभूत कर लेता है—यह आवरण ही मृत्यु है। तब जीवात्मा अन्धकार से घिर जाती है।

पर जो ज्ञानी हैं उनकी ऐसी मृत्यु नहीं होती। आत्म-विषयक अविच्छिन्न ज्ञान-लाभ करने के कारण उनको मृत्यु का दुःख तथा यन्त्रणा नहीं होती और उनका बोध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी नहीं खोता। न कोई मरता है, न कोई जीता है; मरना-जीना तो स्थूल देह का खेल है—इसी से कहते हैं—"जगत् मिथ्या, ब्रह्म सत्यम्"।

योग, योगी तथा युक्तावस्था—लोग कहते हैं कि कलियुग में योग नहीं है। क्यों नहीं है ? वरन् अधिक है। गृहस्थों के कुलगुरु उनको योग-कर्म नहीं बताते, इसीलिए लोग योग-पथ को ठीक प्रकार से समझ नहीं पाते।

योग से चित्त निर्मल होता है। मन के ऊपर जो बहुत मैल जमा है, उसी के कारण तो कुछ हो नहीं पाता। योग उस मैल को दूर कर देता है। योग-कर्म में लगने की पहले तो प्रवृत्ति नहीं होती पर उसका अभ्यास करते-करते प्रवृत्ति अपने आप हो जाती है। योग—साधन के बल से, योग के प्रभाव से सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय तक की क्षमता प्राप्त की जा सकती है। योग—संघर्ष अर्थात् मन के साथ मन्त्र का संघर्ष यही योग कर्म है। स्वभाव में लौट आने का उपाय योग—कर्म अर्थात् क्रिया—योग है; गुरु—द्वारा प्रदर्शित प्रक्रिया और उनके दिये हुए मन्त्र का जप।

योगी जिस समय योग-युक्त अवस्था में होते हैं उस समय उनकी देह में कुछ परिवर्तन दीखता है। उस समय उनकी देह में कुछ अनिष्ट हो जाने पर भी, योगी को उसका बोध नहीं होता, जैसे जलता हुआ अंगारा जंघा पर रखने से उनकी जंघा तो जलेगी पर योगी को उसका भान नहीं होगा। क्रिया-अवस्था में देह जल जाने के पश्चात् योगी जब सामान्य अवस्था में उतरता है तब वह जला हुआ भाग स्वतः स्वस्थ हो जाता है। सुषुम्ना नाड़ी का पथ खुल जाने पर योगी सब समय युक्त अवस्था में ही रहते हैं। यहाँ तक कि बाह्य विषयों की चिन्ता करने के समय भी उनका सुषुम्ना पथ खुला ही रहता है और वे युक्त अवस्था में ही रहते हैं।

योगी जब क्रिया में बैठते हैं उस समय वे सब बाह्य आवरण छोड़ देते हैं। उस समय किसी और का उनको देखना निषिद्ध है क्योंकि उससे देखने वाले का अनिष्ट हो सकता है। उस समय योगी की देह का वर्ण भी बदल जाता है—कुछ गोरा हो जाता है एवं और भी कुछ होता है। प्रकृत योगी ही ईश्वर है तथा ईश्वर ही योगी। ऐश्वर्य, सर्वज्ञता तथा सर्व-व्यापकता—जो भगवान् के गुण हैं वही प्रकृत योगी में भी आ जाते हैं। यही असल योगी का यथार्थ परिचय है। प्रकृत योगी सर्वव्यापक परमात्मा के साथ योग-युक्त रहते हैं, इसलिए परमात्मा की तरह ही सर्वत्र तथा सर्वदा किसी भी स्थान पर मुहूर्त्त भर में आविर्भूत हो सकते हैं।

योग न होने तक ठीक उपादान गठित नहीं होता और ठीक उपादान गठित न होने तक ईश्वरी (प्रबल) शक्ति के सामने जीव को हार माननी पड़ती है।

ईश्वर के उपादान के साथ योगी के उपादान की समता हो जाने पर जो दर्शन होता है वही वास्तविक ईश्वर-दर्शन है। तब ईश्वर की लीला का भी ठीक दर्शन होता है—मोह-ग्रस्त की भाँति निरर्थक खड़े नहीं रहना पड़ता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्त की सब प्रकार की चंचलता तथा दुर्बलता को दूर करके, मन का स्थिर तथा सबल होना ही योग का लक्षण है। योगी योग द्वारा अपनी शक्ति-वृद्धि की चेष्टा करता है। जो जितनी शक्ति-वृद्धि कर लेता है वह उसी मात्रा में कम अभिभूत (विचलित) होता है एवं माँ महाशक्ति की गोद में बैठकर महामाया की लीला को उतना ही अधिक देख पाता है। एक प्रबल शक्ति के आगे दुर्बल शक्ति ठहर नहीं पाती। टक्कर लेने के लिए या प्रबल की भाँति ही ऐश्वर्यवान् होने के लिए दुर्बल को अपनी शक्ति बढ़ानी पड़ेगी और योगी योग द्वारा वही करते हैं।

जीव में लिंग के साथ शुद्धात्मा तथा सूक्ष्म तत्त्व में संघर्ष को ही योग कहते हैं। विषय बड़ा जटिल है। वास्तव में सूक्ष्म के साथ लिंग का संघर्ष सदा ही हो रहा है परन्तु यह योग नहीं है; हाँ, कौशल होने से यह भी योग बन जाता है। स्थूल तथा सूक्ष्म की आलोचना की यहाँ आवश्यकता नहीं। आपाततः जान रखो—स्थूल-जड़, सूक्ष्म-चेतन तथा लिंग ही व्यापक भाव से है प्रदीप्त मन। इस सूक्ष्म तत्त्व को आत्मा या परमात्मा कह सकते हो तथा ईश्वर भी कह सकते हो।

करोड़ों आदमियों के बीच एक असली योगी पाना कठिन है। जो साक्षात् महाशक्ति के साथ युक्त होकर, सर्वशक्ति-सम्पन्न हो गये हैं, एवं उसी महाशक्ति के आदेश से जगत् के उद्धार कार्य में व्रती हुए हैं (लगे हैं) वे ही असल योगी हैं, अन्य सब तो नाम-मात्र के योगी हैं। प्रकृत योगी सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् होते हैं। जो ईश्वर की तरह असम्भव को भी सम्भव कर सकते हैं, वे ही योगी हैं। ईश्वरत्व अर्थात् ऐश्वर्य का विकास न होने तक, मनुष्य कभी भी योगी कहलाने योग्य नहीं होता। ईश्वर ही योगी तथा योगी ही ईश्वर है।

योगी को छोड़ कोई और गुरु कहलाने योग्य नहीं है। शिष्य के ऐहिक तथा पारलौकिक, सकल प्रकार के कल्याण का भार गुरु अपने ऊपर ले लेते हैं। योगी-गुरु अपनी व्यापक सत्ता के प्रभाव से एक साथ सर्वदा जाग्रत् भाव से विद्यमान रहते हैं। भक्त की आर्त्त ध्वनि ही उनको आविर्भूत कर देती है।

योग-विभूति—जिसको लोग सामान्यतः योग-विभूति कहते हैं वह योग में प्रतिष्ठित न होने तक प्रकाशित नहीं होती। लोहा जब गर्म होकर जलाने का सामर्थ्य-लाभ कर ले तब ही उस जलाने की शक्ति को लोहे की विभूति कहा जा सकता है। विभूति परमेश्वर की स्वाभाविक शक्ति का स्वरूप है। आवरण कटने के साथ-साथ ही जीव को निज का कुछ-कुछ परिचय प्राप्त होता है। वह परमात्मा के साथ योग-युक्त होता है तथा तब से ही उसकी शक्ति का विकास प्रारम्भ होता है।

विभूति वैसे ही नहीं आ जाती, उसके लिए प्रयास करना पड़ता है। अवश्य, उसकी आकांक्षा नहीं करनी पड़ती—चित्त-शुद्धि तथा ज्ञान-उन्मेष के साथ वह अपने आप प्रकट होने लगती है। रोग कट जाने पर जैसे देह में बल का संचार स्वतः होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है एवं वह बल जैसे स्वास्थ्य का लक्षण है, उसी प्रकार अविद्या के कट जाने पर आत्मशक्ति का स्वयमेव स्फुरण होता है और यही अविद्या-निवृत्ति का लक्षण है।

पंतजलि एवं तदनुयायी योगियों के सम्प्रदाय के मत से सारी विभूतियाँ निर्मल आत्म-ज्ञान होने के पूर्व उदित होती हैं, पर वे ज्ञान तथा कैवल्य प्राप्ति में प्रतिबन्धक होती हैं। आत्मा यदि स्वभावतः सर्व-शक्ति-सम्पन्न नहीं होती तो विभूतियों से शक्ति के विकास में विघ्न पैदा होता है। अग्नि के साथ जलाने की शक्ति का जो सम्बन्ध है, दीपक के साथ रोशनी का जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध आत्मा का आत्मशक्ति के साथ है।

योगाभ्यास—अनेक लोगों का विश्वास है कि योग बड़ा ही कठिन है। वर्त्तमान समय में योग में प्रवृत्त होने पर कोई-कोई तो पागल तक हो गये हैं तथा किन्हीं की अन्य इन्द्रियाँ गड़बड़ हो गयी हैं। योग अति कठिन है इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु दुरूह होने पर भी, सिद्ध योगी द्वारा बतायी प्रणाली से वह अति सरल हो जाता है तथा उसे किसी प्रकार की हानि की सम्भावना भी नहीं रहती। ग्रन्थों में पढ़कर या अज्ञानियों के उपदेश से प्राणायाम आदि योग की वायु क्रियाओं में प्रवृत्त होने पर शारीरिक हानि अवश्यम्भावी है। जो लोग योग के रहस्य तथा मानव के देह की उपादान शक्ति का ठीक अनुमान नहीं लगा सकते उनको योग-क्रिया सिखाने का अधिकार ही नहीं है। योग्य शिक्षक द्वारा सिखाये जाने पर योग अति सरल है तथा उससे किसी प्रकार के भय या हानि की सम्भावना नहीं। सिद्ध योगियों की न्यूनता के कारण आप कह सकते हैं कि योग बड़ा कठिन है और उससे हानि होने की सम्भावना है।

परन्तु योग के बिना वास्तविक आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं—यह अच्छी प्रकार से समझ लेना आवश्यक है। अन्य किसी प्रकार के कर्म द्वारा योगलभ्य फल प्राप्त नहीं किया जा सकता। योग का विशिष्ट स्थान और किसी प्रकार का कर्म नहीं ले सकता। योग को छोड़ और किसी उपाय से चित्त तथा देह की स्थायी विशुद्धि सम्पन्न नहीं होती।

योगाभ्यास न करने से विषय-चिन्तन तथा उससे उठने वाले उद्वेग मरने तक भी मनुष्य को नहीं छोड़ते। योग करने पर, मृत्युकाल में मन भगवान् में लगा रहने के कारण अन्य चिन्ताएँ नहीं आ पातीं। मछली पकड़ने के लिए चारा फेंकने पर छोटी-छोटी बहुत सी मछलियाँ आती हैं किन्तु जैसे ही एक बड़ी रोहित या कातला मछली आती है वैसे ही सब मछलियाँ भाग जाती हैं। भगवान् का ध्यान, रोहित या कातला की तरह है तथा विषयों की चिन्ता छोटी-छोटी मछलियों की तरह। भगवान् का ध्यान करते ही विषय-चिन्तन छूटने लगता है।

लिंग शरीर—आत्मबोध से पूर्व आवरण कटने का क्रम इस प्रकार है—पहले तो पूर्वजन्म की स्मृति जागती है तथा सब कर्म-संस्कार एक-एक करके प्रत्यक्ष दीखते हैं। जीव कब कहाँ था ? कौन कर्म कब कहाँ था ? किस कर्म के फल से कहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्म ग्रहण किया था ? किस कर्म से कब सुख-दुःख भोग किया था ?—यह सब स्मरण में आता है। देखो! ज्ञान, कर्म, अनुभूति, सुख-दुःख भोग—जो कुछ भी हम भोगते हैं, कुछ भी नष्ट नहीं होता। लिंग-देह में सभी कुछ संस्कार रूप से वर्तमान रहते हैं। प्रत्येक जन्म में स्थूल देह तो अवश्य बदल जाती है किन्तु लिंग देह एक ही चलता रहता है—वह नहीं बदलता।

सृष्टि के आदि से ही लिंग देह का विकास हुआ है। जन्म-जन्मान्तर से यह एक ही लिंग देह कर्मानुरूप पृथक्-पृथक् स्थूल योनियों में परिवेष्ठित होकर प्रकाशित होता रहता है। वासना तथा संस्कार इस लिंग का आश्रय करके जमा होते चले जाते हैं अर्थात् लिंग शरीर के साथ जुड़ते चले जाते हैं। जब लिंग में ज्ञान का आभास होता है, तब उस ज्ञान के प्रकाश में लिंगस्थ संस्कार सिनेमा की रील की तरह सजीव होकर प्रत्यक्ष दीखते हैं। अवश्य, पहले तो बोध, स्मृति के रूप में जागता है, तदुपरान्त वह प्रत्यभिज्ञा का आकार धारण करता है। जैसे माला के तागे में हजारों मनिकाएँ बँधी रहती हैं उसी प्रकार एक ही लिंगात्मा अपने हजारों-हजारों जन्मों के संस्कार लिये रहता है।

लिंग यद्यपि स्थूल से बिल्कुल अलग है तथापि वह स्थूल के साथ इतना ओत-प्रोत भाव से मिला रहता है कि स्थूल शरीर का ही एक अंश-सा लगता है। स्थूल शरीर के बिना लिंग शरीर किसी भी प्रकार का साधन करने में असमर्थ है, यहाँ तक कि मृत्यु के पश्चात् भी उसमें स्थूलाभास लगा ही रहता है। इसी को 'कर्माशय' कहते हैं। चित्त का शोधन न होने तक लिंग, स्थूल से अलग नहीं होता। मन, बुद्धि, अहंकार सब लिंग की वृत्ति के ही अनुयायी हैं।

विशुद्ध लिंग देह की प्रतिष्ठा के बाद प्रत्यक्ष दीख पड़ता है कि लिंग देह का स्थूल देह ग्रहण करना ही 'जन्म' है। लिंग के स्थूल देह ग्रहण करने के बाद उस देह के त्याग तक ही उस योनि में जीव की आयु होती है। लिंग का किसी जीव योनि का देह-ग्रहण करना ही जन्म तथा लिंग का उस देह का त्याग ही उस योनि की मृत्यु है। वैसे प्रति जीव का लिंग एक बार जन्मता है और वही फिर अनेकों योनियों में भिन्न-भिन्न स्थूल शरीर धारणकर उनके संस्कार लेता हुआ अन्त में जीव के मुक्त होने पर एक ही बार उसकी मृत्यु होती है। जीव का, लिंग का फिर और जन्म नहीं होता।

हम साधारणतः जिसको जन्म कहते हैं वह है प्रत्येक योनि में लिंग के साथ स्थूल का सम्बन्ध। लिंग के स्थूल से अन्तिम मनुष्य योनि में मुक्त होने के पश्चात् लिंग का जीव योनि में फिर और जन्म नहीं होता।

लिंग प्रत्यक्ष होने पर अहं का अभिमान लिंग में बना रहता है, इसलिए लिंग ही उस समय आत्मारूप में मालूम पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जीवनकाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में जीव को स्थूल देह प्रायः आत्मरूप में दीखती है। परन्तु इसीलिए, "लिंग का स्थूल से हजारों बार सम्बन्ध होने पर भी हजारों बार लिंग का भी जन्म हुआ"—यह कहना ठीक न होगा। जैसे शरीर पर कपड़ा पहिनने से शरीर का जन्म नहीं होता तथा कपड़ा उतार देने पर शरीर की मृत्यु नहीं होती, उसी तरह लिंग का स्थूल शरीर का ग्रहण तथा स्थूल का त्याग, लिंग का जन्म तथा मरण नहीं कहा जा सकता। सब जीवों के लिंग का एक ही बार जन्म होता है तथा एक ही बार मृत्यु होती है। अर्थात् एक बार जन्म लेकर लिंग शरीर अनेक योनियों में होता हुआ अन्त में फिर स्वभाव में (परमात्मा में) लीन हो जाता है जो बस लिंग की मृत्यु है।

स्थूल, लिंग, सूक्ष्म तथा चैतन्य

संघर्ष को ही योग कहते हैं। स्थूल के साथ लिंग के संघर्ष को ही योग समझना चाहिये। विषय बड़ा जटिल है। वैसे तो स्थूल के साथ लिंग का संघर्ष सब समय ही होता रहता है, किन्तु वह 'योग' नहीं है। कौशलपूर्वक 'संघर्ष' ही 'योग' कहलाता है। स्थूल तथा सूक्ष्म के रहस्य की आलोचना करने का यहाँ प्रयोजन नहीं, किन्तु जान रखो कि स्थूल जड़ है तथा सूक्ष्म-चैतन्य।

'लिंग' को ही व्यापकभाव से 'मन' कह देते हैं। इसी सूक्ष्म तत्त्व को आत्मा अथवा परमात्मा किंवा ईश्वर भी कह सकते हो। लिंग ही जीव भाव का बाहरी चिह्न है। हमारा जीव ही स्थूल पद व्यपदेश्य है तथा बाह्य स्थूल पदार्थ ही 'विषय' है। मन एवं इन्द्रियों के साथ विषयों का जो निरन्तर संग होता रहता है यही स्थूल के साथ लिंग का संघर्ष है। तब भी ध्यान रहे कि लिंग तटस्थ है अर्थात् स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों के बीच उनसे सटा है। जन्म से मृत्यु तक स्थूल से विशेष संग होने के कारण लिंग स्थूल के समान ही बर्तता है तथा मृत्यु हो जाने पर मुक्तावस्था में स्थूल से सम्बन्ध टूट जाने के कारण 'सूक्ष्म' की तरह बर्तता है। अतएव स्थूल के साथ लिंग का संघर्ष एक प्रकार से स्थूल के साथ स्थूल का ही संघर्ष है। वासना-युक्त मन, चैतन्य न होने के कारण, स्थूल ही तो हुआ और क्या ? यह लिंग का स्थूल के साथ संघर्ष 'योग' नहीं।

लिंग के साथ शुद्ध-आत्मा या सूक्ष्म तत्त्व का संघर्ष ही योग है। पूर्वोक्त प्रणाली से, बद्ध जीव का लिंग अवश्य ही स्थूल भावापन्न हुआ। परमात्मा, मन्त्रादि के रूप में, भूत-कंचुक वेष्ठित होने से, स्थूल पद-वाच्य है।

जीवात्मा रूपी लिंग तथा परमात्मा रूपी सूक्ष्म-तत्त्व का संयोग किंवा मन और आत्मा का संयोग भी ऐसा ही संघर्ष है। अवश्य इस संघर्ष के स्तर हैं। लिंग तथा सूक्ष्म का परस्पर घर्षण होने से चैतन्य के प्रकट होने के साथ ही लिंगावरण वासना, तथा सूक्ष्मावरण भूत-कंचुक नष्ट हो जाते हैं—बाह्य आवरण नष्ट हो जाता है। इसके फल-स्वरूप, शुद्ध हुआ लिंग तथा शुद्ध हुआ परमात्मा तत्त्व जाग्रत् हो उठता है। यहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक हिसाब से प्राकृतिक-शुद्धि है। इस प्रकार से लिंग एक प्रकार का शुद्ध तत्त्व हुआ जिसमें मल का किंचित् लेशमात्र है, और परमात्मा अपर देवता के रूप में अभिव्यक्त है।

वासना का त्याग—विकृत जीव को प्रकृतिस्थ कैसे किया जाय अर्थात् बेहोश जीव को होश में कैसे लाया जाय ? इसके लिए निर्माण-गत परिवर्तन आवश्यक है। केवल क्रियागत या नैमित्तिक परिवर्तन से काम नहीं होगा। निर्माण में ही जो वस्तु न हो उसका 'क्रिया' द्वारा विकास कहाँ से होगा ? काम के उपकरण उपस्थिति होने पर हमारी काम वृत्ति जाग उठती है; क्रोध की निमित्त वस्तु होने से क्रोध जाग उठता है। इसका कारण क्या है ? इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारे निर्माण या उपादान में काम तथा क्रोध का बीज निहित है और उपयुक्त अवसर पाते ही उसका स्फुरण हो जाता है। कामादिक निमित्त न होने से यदि हममें कामादि वृत्ति न जागे तो यह निष्काम प्रवृत्ति का निदर्शन कदापि नहीं है। जव प्रबल उत्तेजना का कारण उपस्थित होने पर भी काम-क्रोधादि का आविर्भाव न हो तब समझो कि हमारी काम-क्रोधादि-वृत्तियाँ निष्क्रिय हुईं।

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।"

यह कथन ध्रुव सत्य है कि 'वासना के त्याग के बिना कर्म-संन्यास कभी नहीं हो सकता'।

विश्वास—किसी का विश्वास करने से पूर्व, उसको भली प्रकार परख लेना नितान्त आवश्यक है। तुम विश्वास किसको कहते हो ? अन्ध-विश्वास तो विश्वास नहीं और न ही अन्ध-विश्वास से कुछ बनता ही है। अग्नि को चाहे 'साला' बोलो या 'बाबा' बोलो, वह तो जलाएगी अवश्य। विशिष्ट ज्ञान होने पर जो विश्वास जन्मता है, प्रतीति होती है, वह ही वास्तव में विश्वास है। ऐसे विश्वास पर काम करने से उसका सुफल अवश्यम्भावी है। महान् मूर्ख लोग ही बिना परखे हुए, हठात् किसी का भी विश्वास कर लेते हैं, किन्तु जो अज्ञानी हैं वे ऐसा नहीं करते। अपने ज्ञान तथा बुद्धि द्वारा पहले परखो, तदुपरान्त ही पूरा उतरने पर किसी का विश्वास करो। ऐसा विश्वास ही ठीक है। वह ही स्थायी होगा एवं तदनुसार कार्य करने से सफलता मिलेगी।

शक्ति—'शक्ति' की आराधना बिना शक्ति का लाभ नहीं होता। 'शक्ति' की कृपा बिना अपना आत्मबोध स्थिर नहीं रहता। तुम लोग जब जरा से तेज से ही चकित हो जाते हो तब शक्ति के प्रबल तेज के ताप को कैसे सहन कर सकोगे ? प्रथम तो उसी महाशक्ति के बल का अर्जन करके उससे बलवान् बनो, तब उस महाशक्ति की गोद में चढ़ जाने पर भी चकित तथा अचम्भित नहीं होओगे। लोहे का टुकड़ा जैसे अग्नि के ताप से अग्निमय हो जाता है, उसी प्रकार महाशक्ति की आराधना करके अपने को शक्तिमय तथा तेजोमय बनाओ। तत्पश्चात् महाशक्ति के सन्मुख होने पर भी जागृत रहोगे, अनन्त में निमग्न होने पर अपनी चेतना (होश-हवास) नहीं खो बैठोगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्र अलग-अलग कैसे ?—शास्त्र में जो वर्णन है वह पूर्ण सत्य का ज्ञापन नहीं है। जिन्होंने जितनी उपलब्ध कर ली है उन्होंने उतने को ही भाषा-रूप में प्रकाशित किया है। जिन्होंने युक्तावस्था में पूर्ण-सत्य का स्वरूप उपलब्ध किया भी है, उन्होंने भी उपदेश-दान तथा ग्रन्थ-निर्माण के समय अपने-अपने चित्तगत संस्कार तथा बुद्धि-शक्ति और ग्राह्यता के अनुसार ही उसकी व्याख्या तथा रचना की है। इसीलिए उपलब्धि में भेद न रहने पर भी वर्णना-प्रसंग में भेद आ गया है। इन्द्रियों के अतीत तत्त्व को इन्द्रियगोचर करके प्रकट करने पर कुछ न कुछ मिथ्या का आश्रय-ग्रहण अनिवार्य है; असीम वस्तु को सीमाबद्ध करने के प्रयत्न में यह अवश्यम्भावी है क्योंकि जो सीमाबद्ध हो सके वह असीम नहीं। अपरोक्ष तत्त्व को भाषा में ठीक-ठीक वैसा ही प्रकाशित नहीं किया जा सकता। इसीलिए अलग-अलग शास्त्रों में ग्रन्थकर्ताओं की अपनी उपलब्धियों के स्तर की भिन्नता के कारण, तथा ग्राह्यता की भिन्नता के कारण तथा प्रस्तुतीकरण में भाषा-भेद के कारण तथा विभिन्न कालों में प्रकाशित होने के कारण कुछ-कुछ भेद दिखलाई देता है और यह अनिवार्य भी है।

शान्ति—"सब कुछ ही आनन्दमयी की इच्छा है"—ऐसा समझकर उसके ऊपर पूर्णतया निर्भर करने पर समस्त स्थितियों में ही शान्ति का अनुभव होगा। 'क्रिया'—पूजा ठीक प्रकार से करने पर सब विषयों में आनन्द पाओगे! पाओगे!! सारी विपत्ति सम्पत्ति में बदल जायगी, सारे अशुभ दूर होंगे। यदि चरित्रवान् रहोगे, धर्म-पथ पर चलोगे तथा गुरु के आदेशानुसार 'क्रिया' करोगे तो जीवन में सुख पाओगे ही पाओगे।

शिष्य के साथ गुरु का सम्बन्ध—शिष्य-गुरु सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसा सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध केवल देहावस्था में ही रहे, ऐसा नहीं है। यह जन्म-जन्मान्तर तक रहेगा—यह शेष (खत्म) होने वाला नहीं है। शिष्य पर बार-बार कृपा नहीं करनी पड़ती। चन्द्र तथा सूर्य को क्या रोज-रोज चलाना पड़ता है ? एक बार ही उनको चला दिया गया है, उसी से वे चिरकाल से चल रहे हैं। इसी तरह गुरु-कृपा भी रुई की आग की तरह है—बुझने वाली नहीं है।

गुरु के रक्त की प्रति बूँद ही शिष्य के कल्याण के लिए है। गुरु का मुख्य कार्य है पतित के जीवन को ऊपर उठाना—घर के बालक को घर लौटा लाना—स्वभाव से च्युत हुए जीव को फिर से स्वभाव में स्थित कराना। ज्ञान-दान करना ही गुरु का कार्य है। उसी से गुरु की सार्थकता है।

श्वास क्रिया—पहले लिखे शीर्षक—"नाभि, धौती, प्राणायाम तथा कुम्भक"—के अन्तर्गत देखिए।

संन्यास तथा त्याग—संन्यास किसको कहते हैं ? सम्यक् त्याग का नाम है संन्यास। क्या त्याग करोगे ? क्यों त्याग करोगे ? उसका कुछ फलाफल है क्या ? यह सब विचारणीय प्रश्न हैं। देखो, जो वस्तु तुम्हारी अपनी है ही नहीं, उसके तो त्याग का प्रश्न ही नहीं उठता। अब सोचकर देखो कि तुम्हारी अपनी वस्तु है कौन ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो तुम्हारी अपनी हो उसी पर तो तुम्हारा स्वामित्व एवं अधिकार है। देखोगे कि इस जगत् की किसी वस्तु पर भी तुम्हारा इस प्रकार का अधिकार नहीं, यहाँ तक कि तुम्हारी अपनी देह भी जिसके साथ तुम जुड़े हुए हो, जिसको तुम अपनी मानते हो, जिसको तुम भ्रान्तिवश अपना स्वरूप कहते हो—वह भी तुम्हारी अपनी नहीं। तुम्हारी स्वाधीन इच्छा के अनुसार वह नहीं चलती, वह तो प्रकृति के नियमों के अनुसार चलती है। तुम्हारी इच्छा अभी इतनी विशुद्ध तथा शक्ति-सम्पन्न नहीं हुई कि तुम्हारी देह प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करके तुम्हारी इच्छा के अनुसार चले। इस प्रकार तुम्हारी देह भी असल में तुम्हारी नहीं है—इच्छामात्र से तुम अपनी देह का ग्रहण या त्याग नहीं कर सकते। इच्छा करने पर भी तुम अपनी देह को छोटा, बड़ा, हल्का या अदृश्य नहीं कर सकते। तुम मृत्यु को जय नहीं कर सकते, देह को अधीन नहीं कर सकते, इसलिए देह पर स्वामित्त्व का दावा करना तुमको नहीं सजता।

मन के सम्बन्ध में भी यही बात है। जगत् की अन्यान्य सकल वस्तुओं से भी तुम्हारा सम्बन्ध इन्हीं देह, मन, इन्द्रियों द्वारा ही तो है। यदि तुम अपनी देह, मन, इन्द्रियों के भी स्वामी नहीं हो तो जगत् की किस वस्तु को तुम अपनी कह सकते हो ? वस्तुतः तुम्हारा अपना तो कुछ है ही नहीं। तो फिर तुम त्याग क्या करोगे ?

''संन्यास या त्याग बिना मुक्ति नहीं होती''—यह भी ठीक है। ज्ञान बिना भी मुक्ति नहीं होती। ब्रह्मचर्य अवस्था से ही जिसने संन्यास लिया हो वही असली संन्यासी है। ''संन्यास बिना ज्ञान नहीं होता''—यह केवल विविदिषा-संन्यास को ध्यान में रखकर कहा है जो असल संन्यास नहीं है। विविदिषा-संन्यास में कर्म रहता है। उस कर्म से ज्ञान को जगाकर विद्वत संन्यास—सीधे ब्रह्मचर्य से संन्यास—का उत्पादन होता है।

साधना का मूल—जीव में जब तक गुरुशक्ति पतित नहीं होती, तब तक वह किसी प्रकार के भी आध्यात्मिक कर्म का अधिकारी नहीं होता, और मुक्ति पथ की ओर अग्रसर नहीं हो पाता। गुरुदत्त शक्ति ही साधना का मूलधन है। विशुद्ध आधार में, प्रकाशमान चित्शक्ति की सहकारिता न पाने तक जगत् के आवरण से आच्छन्न जीव किस प्रकार से आवरण काटकर, अपने चैतन्य स्वरूप की उपलब्धि करेगा ? सामीप्य, सायुज्य तथा सारूप्य इनके बीच किसी भी एक भाव में सदा सब समय के लिए रहना चाहिए। इस प्रकार की भाव साधना साधक के लिए विशेष अनुकूल बैठती है। महापुरुष का आश्रय ही साधना का मूल है। महापुरुष एवं योगी में इसी बाह्य लक्षण को देखना चाहिए कि वह एक भाव में सदा स्थित है कि नहीं।

साधना में विघ्न—क्रिया करते-करते (मन्त्र जपते-जपते) जो संघर्ष उपस्थित होता है उसके द्वारा साधना के सारे विघ्न दूर हो जाते हैं। क्रिया जितनी अधिक करोगे उतना ही अधिक फल पाओगे। सब समय ही स्मरण करो। नाना कार्यों में चित्त लिप्त रहता है इसीलिए विक्षिप्तता आती है। मन को ठीक भाव से केन्द्रित करने का नाम ही 'एकाग्रता' है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रेतपात, वृथा चिन्ता, वृथा वाक्य, वृथा कर्म, चित्त-विक्षेप—ये सब साधन पथ में विशेष विघ्न हैं। अति निद्रा, अति भोजन तथा आलस्य भी परित्याज्य हैं।

सिद्धि—ज्ञानलाभ तथा शक्ति-प्रकाश की तीन अवस्थाएँ हैं। मैं, समझने की सुविधा के लिए, उनको सिद्धि, महा-सिद्धि तथा अति-सिद्धि—इन तीन नामों से सम्बोधित करूँगा।

सिद्धि अवस्था में शक्ति द्वैत भावों में उपलब्ध होती है। यह ज्ञेय, भोज्य तथा दृश्य रूप से आत्मा में प्रकाशित होती है।

''आत्मा के साथ शक्ति की अभिन्नता है''—इस भाव के परिपक्व होने पर द्वितीय अवस्था अर्थात् महासिद्धि की अवस्था आती है। उस समय अनन्त शक्ति के भीतर किसी भी शक्ति की वाह्य स्फूर्ति नहीं रहती; शक्ति-पुंज तब आत्मा में अन्तर्लीन भाव से विद्यमान रहता है। आत्मा से प्रथम दृश्य रूप में उसकी सत्ता नहीं रहती। तब एकमात्र आत्मा अपने से अपने में ही, पूर्ण भाव से विराज करती है—इस स्थिति को ही हम 'महासिद्धि' कहेंगे। तुम लोग इसको कैवल्य या अद्वैत स्थिति या और भी कोई नाम दे सकते हो।

किन्तु इसके बाद की भी इससे भी ऊर्ध्व अवस्था है। उस अद्वैत अवस्था में इच्छानुसार शक्ति का बहिरुन्मेष अथवा द्वैत का उदय हो जाता है। वे इस 'अति-सिद्धि' अवस्था के लक्षण हैं। व्युत्थान और निरोध को समान करके, दोनों को समरूप से आयत्त करने पर, 'अति-सिद्धि' अवस्था का उदय होता है।

योगी इन तीनों अवस्थाओं में से किसी अवस्था के भी दास नहीं हैं। द्वैत अथवा अद्वैत किसी अवस्था से भी वे नहीं बँधते वरन् वे सब अवस्थाओं के ही द्रष्टा तथा उपलब्धिकर्ता हैं।

सिद्धि, महा-सिद्धि एवं अति-सिद्धि के उपरोक्त लक्षणों से समझ में आ जायगा कि एक अवस्था से क्रमशः परिपक्व होते-होते चरम अवस्था तक पहुँचा जा सकता है। जैसे कि जिन्होंने 'सिद्धि-अवस्था' लाभ कर ली है किन्तु 'महासिद्धि-अवस्था' लाभ नहीं की है, वे द्वैत अवस्था में वर्तमान हैं। इस अवस्था में उपास्य तथा उपासक में भेद रहता है। पर यह अवस्था भी असिद्ध साधक की अवस्था नहीं है, क्योंकि जो असिद्ध हैं उनमें तो साध्य अर्थात् उपास्य वस्तु का विकास तक नहीं होता। मैं जिस सिद्ध अवस्था के विषय में कह रहा हूँ उसमें उपास्य अथवा ध्येय वस्तु सिद्ध-साधक के सम्मुख उद्भासित होती है—साधक की दृष्टि पर उस समय कोई आवरण नहीं रहता। किन्तु उपास्य वस्तु के प्रकाश होने पर भी उपासक के साथ उसका अभेद प्राप्त नहीं होता—उस समय तक उपासक तथा उपास्य का भेद बना रहता है। साधारणतः इसी अवस्था का ''इष्ट देवता का साक्षात्कार'' कहकर, शास्त्रों में वर्णन है।

इसके बाद की अवस्था—महासिद्धि की अवस्था में भेद नहीं रहता। उसमें उपास्य तथा उपासक परस्पर मिलकर एक अभिन्न सत्ता में जुड़ जाते हैं। तब जो इस स्वयं-प्रकाश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्ता में विराजमान होते हैं उन्हें उपास्य या उपासक कुछ भी नहीं कह सकते—वे इन दोनों में से किसी श्रेणी में भी नहीं आते। यह है महासिद्धि की अवस्था। कोई-कोई ऐसा सोचेंगे कि यह महासिद्धि की अद्वैत अवस्था ही सबसे श्रेष्ठ अवस्था है एवं इसके ऊपर और कोई अवस्था नहीं है। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है।

इच्छा स्फुरण-मात्र से इस अवस्था से यदि पूर्ववत् भेदावस्था जगाई जाय तथा इच्छामात्र से ही उसको भी निरुद्ध करके अद्वैत अवस्था का प्रादुर्भाव किया जा सके तो उस अवस्था को योगी की अतिसिद्धि अवस्था समझना होगा। जो व्युत्थान और निरोध दोनों से अतीत हैं, जो द्वैत तथा अद्वैत दोनों के अतीत हैं एवं जो सक्रिय तथा निष्क्रिय दोनों अवस्थाओं के भी अतीत हैं, वे सब अवस्थाओं में सर्वभाव से असंग स्वरूप में विद्यमान रहते हैं। अपने में इस अवस्था की उपलब्धि करना ही अतिसिद्धि का लक्षण है।

अतिसिद्ध योगी क्रियाशील होने पर भी वास्तव में निष्क्रिय है तथा नित्य निष्क्रिय रहने पर भी सर्वदा कर्तव्यपरायण है। किसी से भी उसका बन्धन नहीं है। इसलिए उसको मुक्त कहना भाषा का अप्रयोग है। ईश्वर के संकल्प से जब सृष्टि का उदय होता है तब क्या तुम सोचते हो कि ईश्वर बन्धन में पड़ गये ? तुम क्या सोचते हो कि ईश्वर की सत्ता में से जो प्रवाह क्रम से निकलता रहता है उसके द्वारा ईश्वर सीमाबद्ध होते हैं ? ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं। जब वे किसी भी शक्ति का स्फुरण करते हैं, तब वे उसी से जाने कितने पृथक् भावों में प्रकाशमान होते हैं; किन्तु वास्तविक पार्थक्य कभी भी नहीं होता। तद्रूप उन भावों का प्रत्याकर्षण करके उन रूपों को आत्मस्वरूप में विलीन करके तब भी वह उसके साथ मिले हुए रहते हैं। भेद के समय भेद भी जैसे मिथ्या है, अभेद अवस्था में अभेद भी वैसे ही मिथ्या है, अन्यथा दोनों ही सत्य हैं।

विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ—सिद्धि वास्तव में एक अखण्ड है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु विभक्तवत् होकर वह लोगों में विभिन्न नामों से परिचित होती है। जो कि सिद्धि, महासिद्धि तथा अतिसिद्धि करके ऊपर वर्णित हुई है उनको प्रकारान्तर से क्रिया-सिद्धि, ज्ञान-सिद्धि तथा इच्छा-सिद्धि भी कह सकते हैं। पातंजल दर्शन के विभूतिपाद में जो खण्ड-सिद्धि का उल्लेख है वह अधिकतर क्रिया-सिद्धि के भीतर है। कुछ को वैज्ञानिक सिद्धि भी कहा जा सकता है। अपने उपादान को शुद्ध करके, सिद्धि को आयत्त करने पर, उससे नाना प्रकार के कार्य कराये जा सकते हैं। पातंजल दर्शन में जितनी सिद्धियों का उल्लेख है उनकी अपेक्षा हजारों गुनी अधिक सिद्धियाँ इच्छामात्र से प्रकाश की जा सकती हैं। जिसका उपादान विशुद्ध हो गया है, उसके लिए यह मामूली बात है।

जिसने अच्छी प्रकार वर्ण-परिचय की शिक्षा पा ली है, जो भिन्न-भिन्न वर्णों के परस्पर संयोग तथा वियोग की क्रिया को जानता है, उसको जैसे शब्दों का विन्यास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा विश्लेषण करने में विभ्रान्ति नहीं होती, ठीक उसी प्रकार उनके लिए जिनको शुद्ध सत्व-स्वरूप शक्ति-तत्त्व मालूम है, कोई कार्य असम्भव नहीं। भूत-जय, इन्द्रिय-जय, एवं विविध संयमों से जो सब सिद्धियाँ आविर्भूत होती हैं वे सब शुद्ध सत्त्व में अधिष्ठित योगी के लिए बहुत आसान हैं।

अणिमा, महिमा, लघिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राप्ति, प्राकाम्य तथा कामावसायिता— इन आठ सिद्धियों को छोड़कर आकाश-गमन, परकाया-प्रवेश, पर-चित्त-ज्ञान, दूर-श्रुति तथा और भी अनेक सिद्धियाँ जो शास्त्रों में वर्णित हैं वे सब पृथक्-पृथक् उपायों से आयत्त की जा सकती हैं, किन्तु सत्त्व-सिद्धि होने पर पृथक् भाव से किसी भी सिद्धि के लिए चेष्टा नहीं करनी पड़ती। योगी के योगमार्ग में अग्रसर होने पर, अवसर विशेष में, उसमें वे सिद्धियाँ अपने आप ही उदित होती हैं पर जो लुब्ध चित्त से सिद्धि की प्रार्थना करता है वह भी योग-समृद्धि का लाभ नहीं कर पाता।

स्थूल नाश—पूर्वलिखित शीर्षक—'कृपा' के अन्तर्गत देखिये।

समाधि—जड़-समाधि नहीं वरन् चैतन्य-समाधि असली योग का द्वार-मात्र है। वस्तु के अवलम्बन से जो समाधि होती है, वह जड़-समाधि होती है—वह असल समाधि नहीं है। चैतन्य-समाधि पाने के लिए किसी चैतन्यमय वस्तु का आधार लेना पड़ता है। सद्गुरु-प्रदत्त मन्त्र उस प्रकार की चैतन्यमय वस्तु है। उसके साधने से चैतन्य-समाधि जो प्रकृत (असली) समाधि है उसका लाभ होता है। वह अपूर्व अनुभूति है—उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मन द्वारा भी उसकी सम्यक् धारणा नहीं की जा सकती। व्युत्थान के समय भान होता है कि मैं एक रहस्यमय अवस्था में पहुँच गया हूँ।

भगवान् की आराधना करते समय संज्ञाहीन (बेहोश) हो जाना कुछ विशेष अर्थ नहीं रखता। उससे यह न समझ बैठो कि वास्तव में कुछ विशेष लाभ हुआ। बराबर चैतन्य रहकर ही 'क्रिया' करने की चेष्टा करनी चाहिये। 'भगवान् की उपलब्धि करके परमानन्द में निमग्न रहना'—यह है प्रकृत योग की अवस्था। भाव-समाधि का विशेष मूल्य नहीं। भाव-प्रबलता किसी-किसी को स्वाभाविक होती है और कोई-कोई चेष्टा करके भी उसको ले आते हैं—अनुशीलन (अभ्यास) से वह प्रबल हो जाती है। धीरे मन में ऐसी दुर्बलता आ जाती है कि भाव के आनेमात्र से ही इस प्रकार के मनुष्य संज्ञाहीन (बेहोश) हो जाते हैं। यह आध्यात्मिक उन्नति का कोई लक्षण नहीं है। चित्त की सब प्रकार की चंचलता तथा दुर्बलता दूर करके, मन को स्थिर तथा सबल करना ही योग का लक्ष्य है।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विविध-प्रसंग

१. गुरुदेव का नाम ही एकमात्र आश्रय है। गुरुदेव पर पूर्ण निर्भर करो—यही कर्म है। हृदय की व्याकुलता ही साधना है। गुरुदेव का आकर्षण ही स्वाभाविक योग है, जिसका अमृत-तुल्य स्वाद केवल अनासक्त-गृही तथा संन्यास-भावापन्न परमहंस ही अनुभव करते हैं।

जो भीषण कोलाहलपूर्ण संसार के मध्य भी गम्भीर भाव से चित्त के अकम्पित लक्ष्य को भ्रष्ट नहीं होने देते एवं निर्भीक अन्तःकरण से स्वाभाविक सरल पथ के अन्वेषण में निमग्न होकर ध्यान करते हैं, वे ही संसार में अनासक्त परमहंस हैं।

जो कमल के छिद्र-भेदी सूत्र की तरह अनन्त योगपथ में प्रवेश करते हैं, गगनचित्रित नक्षत्र मण्डल तथा सकल जगत् में गूढ़ भाव से प्रविष्ट होकर अस्पृश्य गुरुशक्ति के योग से, प्राणी के प्राणाधार को छेदकर, आत्मयोग से, सब जगत् को सुधामय देखते तथा समझते हैं, वे ही इस संसार में 'योगी' हैं।

'श्री भृगुराम परमहंस'

२. जगत्-प्रसविनी प्रत्यक्ष माँ, योग एवं ब्रह्म से भी अतीत माँ, महाभाव तत्त्व की सारमर्मा माँ को 'क्रिया' द्वारा अपने हृदय में सर्वदा ग्रहण करो। बाहरी भावों से अन्तर में प्रभावित न होकर, सर्वदा माँ को स्पर्श करने के योग्य बनो। वह होने से ही सब होगा।

३. देह रहने पर कर्म करना ही पड़ेगा। इसलिए ऐसा कर्म करना उचित है जिससे चिरकाल के लिए कर्म-बन्धन छूट जाय। दोनों सन्ध्या समय, यथासमय (ठीक सन्धि के समय) आह्निक (जप) करते जाओ। चित्त विक्षिप्त हो तो होने दो, उसके लिए विशेष चिन्ता मत करो—उस पर विशेष ध्यान ही मत दो। गुरु के ऊपर निर्भर करना सीखो, तब देव तथा मानुष कोई भी तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर पावेगा—यह निश्चय जानो।

४. दीन-दुःखियों को साध्यमत थोड़ा-बहुत दान अवश्य देना चाहिए। बिना कुछ भी दिये लौटा देने पर भिखारी आपका पुण्य लेकर चला जाता है।

५. तुम जैसे स्त्री-पुत्र को अच्छा मानते हो—उसी प्रकार गुरु से भी प्रेम करो। मैं (गुरुदेव) तुम लोगों से कुछ भी नहीं चाहता जब कि तुम्हारे स्त्री-पुत्र तो तुमसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धनादि चाहते हैं। क्या कोई बता सकता है कि मैंने किसी से भी कभी कुछ माँगा है ?

६. किसी बात की चिन्ता मत करना—मैं तो हूँ। तुममें से अनेकों की इच्छा है कि उनके पास धन प्रचुर हो। मन में समझ लो कि तुम्हारे कल्याण के लिए जहाँ व जितना देना और करना आवश्यक है उतना मैं देता हूँ और करता हूँ।

७. असत्-संग (कुसंग) मत करना। मन को स्थिर तथा शान्त रखने की चेष्टा सदा करना एवं मिताहारी होना।

८. तुम जो कुछ भी करते हो वह सब मैं जान जाता हूँ। मुझे धोखा देने का प्रयत्न कभी मत करो।

९. दूसरे के पैसे तथा वस्तुओं का लोभ मत करना। ऋण मत करना, ऋण यदि हो जावे तो उसे तुरन्त लौटाने का प्रयत्न करो, उसे रहने मत दो। ऐसा करने से कभी भी कष्ट नहीं होगा।

१०. सर्वदा परोपकार करना। बिना त्याग किये दूसरे का उपकार नहीं होता। परोपकार करने से इस लोक में तथा परलोक में बड़ा यश होता है। परोपकार से जैसा लाभ होता है, पर-स्त्री-कातरता अर्थात् दूसरे की स्त्री के प्रति प्यार भाव से उतना ही अनिष्ट होता है—यह बहुत बड़ा पाप है।

११. संसर्ग में एक के मन के साथ दूसरे के मन का संघर्ष होता है। अच्छे के संग से उपकार होता है, बुरे के संग से हानि।

१२. पर-चर्चा, पर-दोष—अनुसन्धान (दूसरे के दोष देखना) महापाप है। दूसरे द्वारा कही हुई अर्थात् जो निज की देखी न हो, उसका सुनना भी पाप है। ऐसी स्थिति में, पहले यत्नपूर्वक सत्य का निर्णय करो तब कार्य करो।

१३. साधन-भजन में लगन चाहिए। लगन बिना कुछ नहीं बनता। केवल मुँह से कहने से या साधन-भजन के विषय में केवल चर्चा से कुछ नहीं होगा। कर्म (क्रिया) करने की आवश्यकता है।

१४. कर्म करने की अनवरत आवश्यकता है, सभी को कर्म (क्रिया) करना ही पड़ेगा—चाहे वह मनुष्य हो या देवता। 'कर्म' बिना किसी की भी उन्नति नहीं होती।

१५. 'कर्म' करना ही होगा। कर्म के नाम पर तुम जितना कुछ भी, ठीक या गलत, कम या ज्यादा, करते हो उससे कुछ न कुछ लाभ तो होगा ही। बालक, माँ! माँ!! न कहकर यदि 'उमाँ, उमाँ' करके रोता है तो क्या माँ उसके पास नहीं आती ?

१६. मन की स्वाभाविक गति प्रवृत्ति की ओर है। उसकी निवृत्ति-मुखी करना बड़ा ही कष्टकर है। किन्तु चेष्टा करो, चेष्टा करने पर असाध्य कुछ भी नहीं है। चेष्टा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने से देवत्व, इन्द्रत्व जो भी चाहोगे वही पाओगे। केवल अपनी चेष्टा-मात्र से नहीं होता—गुरुकृपा भी चाहिए। अपना कर्म तथा गुरुकृपा—बस, बेड़ा पार है।

१७. उपकार पाने पर प्रत्युपकार अवश्य करना चाहिए। ऐसा न करने से उपकारी का ऋणी होकर रहना पड़ता है—उससे छुटकारा नहीं।

१८. किसी की ओर बहुत देर तक टकटकी बाँधकर मत देखो। इससे अनेक समय अनिष्ट हो जाता है। दोनों में से जिसकी आँख में भी तेज अधिक होगा वह दूसरे के गुणों का आकर्षण कर लेगा।

१९. किसी की बात पर सहसा विश्वास मत करो, इससे अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है।

२०. शठ के साथ शठता करने पर दोष नहीं है, तब भी यह ध्यानपूर्वक देखना होगा कि कहीं भले जीव के प्रति शठता न हो जाय।

२१. किसी को ठगो मत। किसी को नीची नजर से मत देखो। भलों के साथ बुरा व्यवहार मत करो। कुमार्ग पर मत चलो। तभी सुख से रहोगे। इससे विपरीत करने पर चाहे काशी में मरो, चाहे ठीक भगवान् के चरणों पर ही मरो, कोई भी रक्षा नहीं कर पायेगा। मेरी तो बात ही छोड़ो, मेरा बाबा भी नहीं बचा पायेगा।

२२. अहंकार बड़ी बुरी चीज है। अहंकार मनुष्य को नष्ट कर देता है। भगवान् किसी का भी अहंकार सहन नहीं करते।

२३. अकृतज्ञता के समान दूसरा पाप नहीं है। यदि एक दिन के भी लिए कोई उपकार करे, तो उसको ध्यान में रखकर यथासम्भव उसका प्रत्युपकार करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। वह न करने से बड़ा पाप लगता है यहाँ तक कि कभी-कभी वह ध्वंस का भी कारण बन जाता है।

२४. गुरु का आर्थिक ऋण रखना या गुरु के धन को लेकर भाग जाना महापाप है। उससे ध्वंस होना अनिवार्य है।

२५. शास्त्रों में विशेष अध्ययन से कोई विशेष लाभ नहीं होता। उससे तो 'क्रिया' करना कहीं अच्छा है।

२६. प्राक्तन कर्म (प्रारब्ध) के फलस्वरूप धन आता है। तुम्हारे प्रारब्ध के अनुसार जितना धन आना है वह तो अवश्य आवेगा, तब भी एकदम निश्चेष्ट होकर बैठ जाना ठीक नहीं है; कुछ पुरुषकार करते रहना चाहिए। पाठा (बकरे) की बलि देते समय खड्ग हाथ में होते हुए भी वह अपने आप उठकर तो बकरे की गर्दन पर वार नहीं करेगा, उसको तो उठाकर बकरे की गर्दन पर वार करना होगा, अतः पुरुषकार अनिवार्य है।

२७. जिसके पाप का फल है उसे ही वह भोगना पड़ता है, बाप भी माँ के पाप का फल क्यों भोगेगा? बच्चों के पूर्वजन्म का पाप भी बच्चे ही भोगते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२८. तुम लोगों का अब और जन्म नहीं होगा। हमारे शिष्यों को (माँ की कोख से) और जन्म नहीं लेना होगा। शिष्यों के लिए जेठा गुरुदेव श्री भृगुरामजी परमहंस-देव ने एक धाम बनाया है—सब शिष्य मरने के बाद उसी धाम में रहेंगे।

२९. आह्निक का समय होते ही जब और सब कामों को छोड़कर आह्निक करने की व्यग्रता आने लगे तब समझ लो कि सिद्धि अवश्यम्भावी है।

३०. कर्म (क्रिया) न करने से फल नहीं होता। कर्म को जितनी दृढ़ता तथा तत्परता से करोगे उतना ही शीघ्र फल पाओगे। सबसे प्रथम चाहिये चरित्र। चरित्र शुद्ध रखना अत्यंन्त आवश्यक है। उसके बाद अल्पाहार तथा अल्प-निद्रा। क्रिया करते-करते यह दोनों अपने आप हो जाते हैं। धर्म का आश्रय लेकर रहने से शान्ति मिलती है।

३१. सत्प्रसंग लेकर रहने से लोगों की सद्वृत्ति बढ़ती है। जहाँ सत्प्रसंग होता है वहाँ देवताओं का आगमन होता है।

३२. मनुष्य के दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली में तड़ित् शक्ति विशेष रूप से जमा रहती है। इसलिए उस अँगुली से कोई काम जैसे दाँत माँजना, इशारा करना आदि नहीं करना चाहिए नहीं तो तड़ित् शक्ति का अपव्यय होता है।

३३. 'गुरुवाक्य पर विश्वास करके, 'क्रिया' आदि करके ब्रह्म के अणु में रहना'—यही परम पद है।

३४. विशुद्धानन्द! तुमने तो गुरुदेव के इच्छानुसार ही कार्य किये हैं और कर रहे हो, यह सब मुझे ज्ञात है, तब फिर तुम्हारे शिष्य ज्ञान के अधिकारी क्यों नहीं होंगे ? वे फिर क्यों जन्म लेंगे (श्री विशुद्धानन्द को—श्री भृगुराम परमहंसदेव से)।

३५. सब ही क्रिया करके अमरत्व को प्राप्त होंगे। न कोई मरता है, न कोई बचता है—मारना और बचना तो स्थूल देह का खेल है। उसी से तो कहते हैं— 'जगत् मिथ्या, ब्रह्मसत्यं।'

३६. जो क्रिया तुम करते हो उसके विषय में किसी से भी कुछ मत कहो क्योंकि उस गुह्य विषय को व्यक्त करने से क्रिया नष्ट होती है।

३७. ठीक-ठीक भाव से क्रिया करने पर मृत्युंजय हो जाओगे। दुःख से अमिश्रित सुख की इस जगत् में आशा नहीं है क्योंकि सुख-दुःख दोनों एक-दूसरे में बहुत ही घुले-मिले हैं।

३८. मन सब तरफ जाये तो जाने दो, परन्तु क्रिया के समय केवल क्षणमात्र के लिए भी मन के ठीक रहने से योग का उपदेश (मन्त्र) हमारे लिए सहज-साध्य है और उसी से इष्ट प्रत्यक्ष होगा ही होगा। केवल आसन पर ठीक भाव से बैठकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रिया करना ही कर्त्तव्य है। उपयुक्त गुरु के बिना, योगप्राप्ति किसी युग में एवं किसी काल में भी नहीं होगी।

३६. जो अपने असली स्वरूप को पहचान जाते हैं वे ही शोक से परित्राण पाते हैं।

४०. ज्ञान का मौलिक तत्त्व है—'चैतन्य शक्ति।' योगी लोग इसी की 'स्वरूप' कहकर व्याख्या करते हैं। स्मृति, बुद्धि, वाक्य, मन, दर्शन, श्रवन—ये सब इसी शक्ति के विकास हैं।

४१. जो लोग विश्वास तथा भक्ति से शून्य हैं, शास्त्र के वाक्य की अवहेलना करते हैं, जिन्हें गुरु-वाक्य में विश्वास नहीं है, वे निश्चय ही 'मूल-धन' से वंचित रहेंगे एवं चिरकाल दुःख भोग करेंगे—इसमें सन्देह नहीं है।

४२. लालसा का त्याग न होने तक विशुद्ध आनन्द की आशा कहाँ है ?

४३. भजन में, भ्रमण में, शयन में, स्वप्न में अविनाशी नित्य पुरुषोत्तम का ध्यान तथा उसी की चिन्ता करो। यावत् ज्ञानमय, आत्मस्वरूप श्रीकृष्ण में मनोलय न हो, तावत् काल-साधक श्रीकृष्ण मन्त्र का जप तथा होम आदि के द्वारा योगाभ्यास करते रहो। कर्मफल है कि नहीं ?— इस प्रकार की सन्दिग्ध मति वाले मनुष्य का चित्त विक्षिप्त रहता है, उसका ज्ञान नहीं होता। उसको 'अनधिकारी' कहना पड़ेगा। मन के स्थिर न होने तक आत्म-ज्ञान नहीं होता। इसीलिए वेदादि सकल शास्त्रों ने कर्म-अनुष्ठान के अनुशासन का विधान किया है।

(श्री श्री भृगुराम परमहंस, ज्ञानगंज)

४४. कर्म करने से किसी को मना मत करो। जैसे कि तेल के बिना दीपक में प्रकाश नहीं होता, उसी प्रकार बिना कर्म किए शरीर में शरीरत्व तथा शक्ति नहीं आती। अतएव, जब तक कर्म में अविश्रान्त लगे नहीं रहोगे, अर्थात् कर्म परित्याग करके रहोगे, तब तक ब्रह्म-उपासना कैसे सम्भव होगी ? इसीलिए गुरुदेव प्रथम शम, दम आदि गुणों द्वारा शिष्य को प्रबोधित करके उसके पश्चात् ही शुद्ध, निर्मल-आकाशवत्, सर्वव्यापी ब्रह्म का बोध कराते हैं।

४५. कर्म न करने से कुछ नहीं होगा। कुछ नहीं होगा, बाबा! कर्म करना चाहिए। केवल बातों से कुछ नहीं बनेगा। कर्म अर्थात् गुरु-उपदिष्ट योगाभ्यास करो। कर्मभ्योनमः।

४६. बापू! दृढ़ता सहित प्रतिदिन नियमानुसार यथासमय क्रिया करते जाओ। सबं कार्य करते समय प्रभु का स्मरण रखो। वृथा कामों व वृथा बातचीत में समय नष्ट मत करो। देखोगे किसी प्रकार का भी अभाव नहीं रहेगा। वे प्रभु कोई अभाव न रहने देंगे। यदि धन चाहिए तो उसका भी अभाव न रहेगा—यहाँ तक कि न चाहने पर भी पाओगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४७. तुम्हारे भीतर ही सब है, केवल संस्कारों के आवरण ने ढँक लिया है—गन्दगी व मैले से ढँक गया है। उस आवरण के हट जाने पर तुम फिर अपने आपको, अपने असली स्वरूप को पहचान पाओगे। दर्पण पर धूल जम जाने से जैसे उसमें मुख दिखाई नहीं पड़ता—मैला हटाने पर, घिस-माँजकर फिर साफ होने पर, मुख फिर से दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार क्रिया करने पर फिर से अपने स्वरूप को पहचान सकोगे।

४८. उपर्युक्त घिसने-माँजने का अर्थ है क्रिया या योगाभ्यास। क्रमागत घर्षण करना होगा अर्थात् जप की संख्या क्रमशः बढ़ाते रहना होगा। भोर रात्रि में साढ़े तीन या चार बजे प्रातः क्रिया में बैठकर दो-तीन घण्टे क्रिया करने का प्रयत्न करो एवं ठीक दोनों सन्ध्याओं में बैठकर डेढ़-दो घण्टे क्रिया करो। प्रातः भोर रात्रि साढ़े तीन-चार बजे से प्रारम्भ करके प्रातः सन्ध्या के समय के बाद तक बराबर दो-तीन घण्टे बिना उठे क्रिया करो तथा सायं सन्ध्या सूर्यास्त से आधे घण्टे पहले से शुरू करके सूर्यास्त से एक-डेढ़ घण्टे बाद तक क्रिया में बैठना चाहिए। इसके अतिरिक्त सर्वदा ही मन-मन में जप करना चाहिए। वृथा समय नष्ट न करो। हाथ-पैर आदि से बाहर के काम अवश्य करते रहो, पर मन-मन में जप चलता रहे। श्वास-प्रश्वास के साथ जप चलता रहे—इसी को 'अजपा-जप' कहते हैं।

४९. बापू! कर्म के बिना कुछ नहीं होगा। अविश्रान्त कर्म करते जाओ, फल निश्चित ही पाओगे। कोई भी रोक नहीं सकता। केवल शास्त्र पढ़ने से कुछ नहीं बनेगा। रसगुल्ला! रसगुल्ला! कहने से रसगुल्ले का स्वाद नहीं मिलेगा—उसे खाना पड़ेगा तब यह पता लगेगा कि रसगुल्ले का स्वाद कैसा होता है। उपलब्धि होगी तभी जानोगे कि इष्ट का स्वरूप क्या है, तुम्हारा अपना स्वरूप क्या है—खाली सुनने से कुछ नहीं होगा।

५०. योगाभ्यास बिना प्रत्यक्ष नहीं होगा—यही हमारी धारणा है। 'क्रिया' अर्थात् उपयुक्त आसन में बैठकर गुरुदत्त प्रणाली से मन्त्र जप करना—यही कर्म है। यह छोड़कर और जो कुछ भी करोगे उसको अपकर्म ही जानो। 'क्रिया' ही एकमात्र कर्म है उसी से सब कुछ होगा। कर्म से ही ज्ञान आएगा, ज्ञान से भक्ति एवं भक्ति से प्रेम। कर्म करो! कर्म करो; कर्म ही प्रधान है। इसलिए 'कर्मभ्यो नमः'।

५१. रेतपात जितना कम हो उतना अच्छा। इसके विषय में विशेष सतर्कता रखनी चाहिए। कपट का त्याग करना चाहिए।

५२. सर्वदा सकल विषयों में सरल सत्य का अवलम्बन करना चाहिए। आहार के विषय में पवित्रता की रक्षा करनी चाहिए तथा रात्रि को अल्प आहार करना चाहिए। पर-चर्चा का एकदम त्याग उचित है तथा प्रभु का सर्वदा स्मरण करना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५३. यथासाध्य कुछ न कुछ दान करो। न देने से पाओगे भी नहीं। जैसा दोगे वैसा ही पाओगे। दान एक सद्‌वृत्ति है; सद्‌वृत्ति का अनुसरण करना होता है। इस विषय में अधिक सोच-विचार नहीं करना चाहिए। प्रार्थी (भिखारी) यदि शठ हो, झूठ बोले तो वह पाप उसका है—उसके लिए तुम्हारा कोई उत्तरदायित्व नहीं है। यदि तुमसे दान लेकर कोई मद्यपान आदि पापाचार भी करे तो तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा, क्योंकि तुमसे तो उसने शराब पीने के लिए पैसे नहीं माँगे। तुम सरल भाव से यथासाध्य दो। जो पाप कर्म करेगा वही उसका फल भोगेगा, तुम उसके पाप-पुण्य के उत्तरदायी नहीं।

५४. आकांक्षा मत बढ़ाओ, यही कष्ट तथा दुःख का कारण है। तालाब का आकार जितना ही बढ़ाओगे उतना ही अधिक जल भी लगेगा। दूसरा चाहे कुछ भी करे, तुम उसकी हिरस मत करो। अपनी अवस्था देखकर चलो, उसमें कोई लज्जा नहीं है। अभाव की सृष्टि तो हम स्वतः करते हैं। पहले अभाव बढ़ाकर पीछे उसी अभाव को मिटाने के लिए सर्वदा व्यस्त रहकर नाना दुःख भोगने की क्या आवश्यकता ?

दूसरे की पीठ पीछे उसकी चुगली करना बहुत बुरा है।

५५. ऋण अति बुरी वस्तु है; ऋण महापाप है। ऋण मत करो; ऋण मत रखो। दिन भर में एक बार भोजन करना अच्छा, एक दिन छोड़कर, तीसरे-तीसरे दिन भी खाना अच्छा किन्तु ऋण रखकर या ऋण करके खाना उचित नहीं! ऋण से सब नष्ट हो जाता है धन, मान, मर्यादा तथा स्वास्थ्य।

५६. द्वार की चौखट पर कभी मत बैठो—दरवाजे के सामने चौखट पर बैठने से ऋण होता है। भूमि पर या और किसी स्थान पर भी किसी वस्तु से (नाखून, अँगुली, कलम, लकड़ी आदि से) निशान-रेखा आदि मत खींचो तथा बिना कारण किसी प्रकार का शब्द भी मत करो। ये सब बातें बहुत खराब हैं—इनसे बड़ा अनिष्ट होता है।

५७. किसी के शरीर से शरीर मिलाकर (सटकर) मत बैठो, विशेषकर भिन्न श्रेणी तथा भिन्न व्यवसाय के लोगों के साथ। उससे, दोनों के परमाणुओं के संसर्ग से दोनों का ही अनिष्ट होता है। निज की स्वतन्त्र शुद्धता बचाये रखने की बड़ी आवश्यकता है। यह न करने से साधन-सम्बन्धित उन्नति में विघ्न पड़ता है।

५८. क्रिया के सम्बन्ध में या किसी देव-देवी के सम्बन्ध में, कोई अच्छा स्वप्न देखने पर, इसका किसी को भी बताना ठीक नहीं। उसके बारे में किसी से भी आलोचना करना ठीक नहीं क्योंकि उससे अनिष्ट हो सकता है और जो उत्तम वस्तु या भाव तुममें आ रहा है उसमें बाधा पड़ सकती है। एक सद्‌भाव आकर तुम्हारे भीतर दृढ़ होने से पहले उसका पूर्वाभास इस प्रकार मिलता है। उस समय इसको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

विशेष रूप से गोपन रखकर, अपने अन्तर में ही सँजोकर, साधना में और भी अधिक यत्नवान् हो जाना चाहिए। उसके बारे में आलोचना करने पर, उसे बाहर प्रकाश करने पर वह और दिखाई नहीं पड़ेंगे। फिर उस वस्तु या भाव के आने में अत्यधिक समय लग सकता है—इस जीवन में फिर नहीं भी आ सकते।

५९. संसार में जिनको हम परम आत्मीय समझते हैं एवं अज्ञान या मोहवश जिनके लिए हम सर्वदा ही व्यस्त तथा चिन्तित रहते हैं, असल में वे हमारे आत्मीय नहीं हैं। वे तो हमसे केवल परस्पर स्वार्थ से जुड़े हुए हैं। उस स्वार्थ में जरा सी कमी आने पर ही देखोगे कि उनका क्या हाल होता है। देखो न, विषय के लिए, स्वार्थ के लिए, यहाँ तक कि एक कठोर बात के लिए पिता-पुत्र में, माता-पुत्र में, भाई-भाई में, पति-पत्नी में कितना विवाद, मामला-मुकदमा होता है। जब तक उनका स्वार्थ-साधन करते रहोगे, वे जो चाहें वही उन्हें दे आओगे तब तक ही वे तुम्हारे मित्र हैं, जरा कमी होते ही बस गोलमाल शुरू।

किन्तु एक आत्मीय हैं, जिनको स्मरण करने से, जिनके साथ अच्छा करने से देखो वे तुम्हारा कितना भला करते हैं। उनकी कृपा का, दया का, दान का अन्त नहीं है। यदि प्रेम का व्यवहार करना है तो उनके साथ करो। उस प्रेम में, भले व्यवहार में विच्छेद नहीं है, परिताप नहीं है—केवल सुख है, केवल शान्ति है, केवल आनन्द है।

६०. प्रयोजन पड़ने पर सत्य ही बोलना चाहिए। उससे कोई असन्तुष्ट हो तो हो; प्रीति छूटे तो छूटने दो, सत्य बात बोलने से मत डरो। सत्य करो, साफ कहो। अवश्य बिना प्रयोजन के, बात सत्य होने पर भी बिना पूछे उसे कहकर, किसी को कष्ट में डालने की आवश्यकता बिल्कुल नहीं है। प्रयोजन बिना अप्रिय सत्य भी मत बोलो किन्तु आवश्यकता या प्रयोजन होने पर सत्य ही बोलना चाहिए।

६१. किसी विषय में हठात् उत्तेजित नहीं होना चाहिए। जरा सा कुछ देखकर या सुनकर एकदम मतवाले हो जाना बिल्कुल ठीक नहीं। पहले पूरी बात को अच्छी प्रकार से समझने का प्रयत्न करना, विशेष भाव से उसकी खोज-बीन करना, बुद्धि द्वारा विचार करना, उसके तत्व को खोज निकालने की चेष्टा करना—आवश्यक है। नहीं तो पीछे पछताना पड़ता है और नीचा देखना पड़ता है।

६२. अज्ञान से जो पाप किया जाता है वह ज्ञान-लाभ से खण्डित हो जाता है। ज्ञान का पाप तीर्थ में खण्डन हो जाता है, किन्तु तीर्थ में किए गए पाप का खण्डन होना अति कठिन है। वह कठोर तपस्या द्वारा ही खण्डित हो सकता है जो इस कलिकाल में अति दुस्साध्य है।

६३. भगवान् की सृष्टि में सभी वस्तुओं का प्रयोजन है, कोई भी वस्तु निरर्थक नहीं है। व्यवहार के अनुसार ही वह सुफल या कुफल प्रदान करती है। उपयुक्त प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से व्यवहार करने से सब वस्तुओं के लाभ तथा उनकी उपयोगिता है। साँप का विष भी बड़े काम आता है।

६४. तुम्हारे मन में भगवत्शक्ति के विषय में विश्वास उत्पन्न करने तथा उस शक्ति के ऊपर निर्भरशीलता की शिक्षा देने के लिए मुझे बीच-बीच में यौगिक-शक्ति के खेल दिखाने पड़ते हैं एवं उसके लिए मुझे दण्ड भी ग्रहण करना पड़ता है।

६५. सब कार्यों के लिए समय निकलता है किन्तु क्रिया के लिए नहीं—तो बताओ आध्यात्मिक उन्नति किस प्रकार हो ? एक रुपये-मात्र की मजदूरी के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है, एक पाठ याद करने के लिए कितना सिर खपाना पड़ता है और जगत् में इस सबसे बड़े काम—'क्रिया' के लिए समय तथा पुरुषार्थ की व्यवस्था नहीं—कैसी विडम्बना है। बिना प्रयास के लाभ संचित करने की इच्छा के कारण बीच-बीच में मन का विचलित तथा उद्विग्न हो जाना स्वाभाविक ही है। बड़े प्रयत्न से मन को मनाकर वश में करना चाहिए। प्रतिदिन यदि किसी को अपने घर से लौटा दो तो क्या वह फिर भी तुम्हारे पास आएगा ? चिन्ताओं तथा दुष्प्रवृत्तियों, इन्द्रियों के विषयों तथा उच्चाटन को भी इसी प्रकार भगाना होगा तब 'क्रिया' में मन लगेगा और आनन्द आयेगा।

६६. सद्गुरु आदि की प्रदत्त शक्ति तुम्हारी मनःस्थिति को कुछ काल के लिए अवश्य स्थिर (ठीक) रख सकती है इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु उससे तुम्हारा स्थायी उपकार नहीं। मन की स्थायी स्वस्थता के लिए 'क्रिया' की यथोचित साधना ही उसका एकमात्र उपाय है।

६७. मैं (गुरुदेव) केवल देखना चाहता हूँ कि तुम्हारे मन की दौड़ कहाँ तक है ? इसीलिए मैंने छोड़ रखा है। जब वह बहुत इधर-उधर भागने लगेगा तो तीव्र आघात द्वारा चैतन्य का संचार कर दूँगा। पीछे किसी समय यह बात तुम्हारी समझ में आयेगी।

६८. वृथा चिन्ता मत करना—मैं जो तुम्हारी सहायता के लिए हर समय मौजूद हूँ। यदि किसी गुह्य प्रश्न की मीमांसा का प्रयोजन हो तो 'क्रिया' समाप्त करते ही उस प्रश्न को मेरे निकट निवेदन करना। मुख से कुछ बोलने की आवश्यकता नहीं है। उत्तर मिलेगा—समाधान होगा।

६९. 'भगवान् किस मात्रा में किस उपादान में प्रस्तुत हैं'—यह विज्ञान द्वारा देखा जा सकता है। भगवान् प्रस्तुत हुए हैं उस महाशक्ति में से। इसी महाशक्ति को कोई लक्ष्मी, कोई दुर्गा तथा कोई नारायणी आदि नामों से पुकारते हैं। उन्हीं का खेल चल रहा है। प्रकृति की सहायता बिना पुरुष की अपनी निजी कोई शक्ति नहीं है।

७०. सांसारिक उन्नति तथा क्रिया दोनों एक साथ चल सकते हैं। एक ओर अच्छा होने से सब ओर अच्छा हो जाता है। धर्म को ठीक भाव से गठन करने पर अन्यान्य पार्थिव वस्तुएँ भी अपने आप ही प्राप्त हो जाती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७१. यदि तुम योग-क्रिया सीखो तो तुम्हें धन के लिए भागना नहीं पड़ेगा। धन तुम्हारे पास अपने आप ही आयेगा। चेष्टा करो। और इतनी चीजें जैसे पायी हैं, वैसे ही इसमें भी चेष्टा करने पर सफल क्यों नहीं होगे?

७२. बापू! सब कुछ अपने कर्म का ही फल है। वह कर्म और मत बढ़ाओ। तुम केवल दुःख ही दुःख देखते हो किन्तु कितना अधिक से अधिक तुम्हारे दुष्कृत्यों (पापों) का भोग इन दुःखों के सहन करने पर कटता जा रहा है, यह बात तुम नहीं देखते। आगे दुष्कर्म करना छोड़ दो तो नये भोग्य कर्मों की सृष्टि तो न हो।

७३. जीव का सारा नीच भाव केवल मध्याकर्षण के कारण है। स्थूल वायुमण्डल पर्यन्त, जहाँ तक मध्याकर्षण की क्रिया विद्यमान है, वहीं तक पार्थिव वासनाओं तथा कामनाओं की छाया घिरी हुई है। मृत्यु के बाद भी जीव इन सकल वासनाओं से लिपटा रहता है तथा मध्याकर्षण से नीचे की ओर खींचकर, वासनायुक्त योनियों में जन्म ग्रहण करने के लिए बाध्य होता है। स्थूल वायु की सीमा को लंघन करके निर्मल नभोराज्य (आकाश या शून्य राज्य) में विचरण की सामर्थ्य अर्जन न कर पाने तक, मृत्यु को जय करके, जन्म के अतीत, शुद्ध दशा प्राप्त होने की आशा नहीं।

७४. विशुद्धानन्द! संसार में सभी कुछ अचम्भा है। लगता है जैसे शान्ति कोई नहीं चाहता। मेरा तो उद्देश्य है कि सारे महापातकियों तक का उद्धार करूँ। इसीलिए पापियों को भी स्वर्ग-सुख देने के लिए तुमको शिष्य बनाने का आदेश दिया है। मैं कुछ करना चाहता हूँ पर वे लोग कुछ और ही करना चाहते हैं।

'भृगुराम परमहंसदेव'

७५. 'शक्ति' की आराधना बिना शक्ति-लाभ नहीं होता। उसी महाशक्ति की आराधना करो। निज को शक्तिमय करो, तेजोमय करो। शक्ति न रहने से कोई काम नहीं हो सकता।

७६. समस्त अशक्ति के मूल में एक अभाव है—इसमें कोई सन्देह नहीं। दिलों में ऐश्वर्य (धन) की लालसा, बद्धजीवों में मुक्ति की कामना, रूप-अनुरागियों में रूप की तृष्णा, कामुकों में काम-पिपासा, जिज्ञासुओं में ज्ञान-लिप्सा, जिस किसी की जो भी आकांक्षा हो वे सब आकांक्षा ही तो हैं, केवल नाम का भेद है।

७७. तुम अपना अभाव क्या अपने आप ही कभी मिटा पाओगे ? तुम अपने को अनजानी विपत्ति से बचा सकते हो क्या ? अपने सुख और आनन्द का विधान क्या तुम अपने आप कर सकते हो ? नहीं।

प्रभु या महाशक्ति के ऊपर निर्भर न होने तक तुम जीवन में एक पग भी नहीं चल सकते। इसलिए सब समय ही प्रभु को मनन द्वारा स्पर्श करो तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके शरणागत हो रहो। उसके ऊपर सब छोड़ दो, केवल कर्म (क्रिया) करते जाओ। इधर-उधर मत देखो, देखोगे सब ठीक हो रहा है। बालक जैसे भविष्य की चिन्ता छोड़, केवल माता-पिता के ऊपर निर्भर होकर आप निश्चिन्त रहते हैं—उसी प्रकार तुम भी शरणागति के भाव को मन में प्रबल करके कार्य करते चलो, परम शान्ति पाओगे।

तुमको प्रभु सदा ठीक पथ पर ही चलाते हैं। उनके चलाए मार्ग पर चलने से भी यदि तुम दुःख पाओ या तुम्हारा अर्थ-नाश हो तब भी धारणा करो कि उन्होंने ठीक ही किया है—इसी में तुम्हारा मंगल होगा। वे तुमको सब संकटों से बचाकर ठीक मार्ग पर ही ले जायँगे। डरो मत। निर्भर करने पर ही आओगे। किसी विषय से भी वृथा चिन्ता मत करो। 'क्रिया' करते-करते, निर्भरशीलता का भाव अपने आप जागेगा।

७८. कोई काम आरम्भ करने पर, दृढ़ता सहित साधना करो। कोई भी कर्म क्यों न करो, उसमें यदि सिद्धि-लाभ करना चाहो तो उसका उपयुक्त उपाय विशेष दृढ़ता सहित अवलम्बन करते जाओ—उस समय इधर-उधर मत देखो, उसकी अवहेलना मत करो, एकाग्र होकर उस कार्य को करो—देखोगे, सफलता अवश्य मिलेगी। ऐसे दृढ़ निश्चय वाले पुरुष की गति को कोई रोक नहीं पायेगा—ब्रह्मा, विष्णु तक नहीं।

७९. मनुष्य के लिए क्या असाध्य है ? तुम्हारे भीतर कितनी शक्ति भरी है इसका तुम्हें पता ही नहीं। दृढ़ता चाहिए, एकनिष्ठ होना चाहिए, उपयुक्त उपाय का अवलम्बन करना चाहिए। सत्कर्म में बाधा-विघ्न तो आते ही हैं। उनसे घबराना नहीं चाहिए।

८०. श्रीभगवान् की कृपा न होने से क्या साधना में सिद्धिलाभ किया जा सकता है ? अरे वत्स! कृपा तो है ही। उनकी कृपा का क्या अभाव है ? कृपा सर्वदा ही पूर्ण मात्रा में बरस रही है। सूर्य से किरणें निकल रही हैं किन्तु तुम यदि घर में दरवाजे बन्द करके बैठे रहो, तो तुम सूर्य-किरणों का भोग नहीं कर पाओगे। इसी प्रकार कृपा की उपलब्धि करने के लिए कर्म करना पड़ेगा। आधार प्रस्तुत करना पड़ेगा।

कृपा के लिए याचना नहीं करनी पड़ती। 'क्रिया' न करने से, योग-साधना न करने तक—"उनकी (प्रभु की महाशक्ति की) कृपा तुम्हारे ऊपर हर समय बरस रही है"—यह बात तुम नहीं समझ पाओगे।

८१. किसी बात से भी आश्चर्य में न पड़ो। आश्चर्य-चकित होने से ही मुश्किल है। संसारी लोगों को सभी कुछ करना पड़ता है, न करने से उसके आत्मीय (कुटुम्बी) क्यों छोड़ने लगे। बेटे-बेटी, परिवार, रिश्तेदार—सभी तो हैं। कर्त्तव्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के जाल में जिसके साथ जो सम्बन्ध है, उसके साथ उसी के अनुरूप व्यवहार करना होगा। धन की आवश्यकता तो सर्वदा है ही। मसाला तो चाहिए, उसके बिना तो चलेगा नहीं। इस धन को कमाने के लिए रोजगार तो करना ही होगा, तथापि उस रोजगार के लिए नीच वृत्ति का अवलम्बन मत करना, मर्यादा नष्ट मत करना, असत्-पथ में मत जाना, सत्पथ में सब काम करना। काम तो करना ही पड़ेगा, पर उसमें बेहोश मत हो जाओ। बर्तन में पारे की तरह या कमल-पत्ते पर जल की तरह रहकर सब काम करते जाओ—अलिप्त रहकर। पर ध्यान सदा भगवान् और उनके नाम पर रखो। मन्त्र का अजपा-जप सदा चलता रहे—हाथ-पैर रहें काम पर।

८२. क्रिया की साधना ठीक-ठीक हो रही है कि नहीं—यह किस प्रकार समझ पाओगे? समझ लो कि तुम कलकत्ता से काशी आ रहे हो। कलकत्ता से जितना ही दूर होते जाओगे, काशी के उतना ही पास आते जाओगे।

इसी तरह संसार में विषयों के प्रति जितनी-जितनी आसक्ति कम होती दीखे, समझ लो कि उसी परिमाण (मात्रा) में तुम अपनी साधना में अग्रसर हो रहे हो। यदि धीरे-धीरे विरक्ति आने लगे, विषयों के प्रति अनुराग कम होने लगे, "क्योंकि करना ही है इसलिए करता हूँ वैसे इन सब विषयों से छुटकारा होने पर ही बचाव है"—जब इस प्रकार का भाव मन में आने लगे, तब समझो कि साधना ठीक-ठीक हो रही है।

८३. उपयुक्त समय पर ही हर काम ठीक से होता है। समय बीत जाने पर, असमय में कार्य करने पर, उस कार्य का सम्यक् फल नहीं होता। 'क्रिया' ठीक समय पर करने से उसका जितना फल होता है, असमय में करने से उतना नहीं होता। विशेष असुविधा न होने पर क्रिया ठीक समय पर ही करनी चाहिए। रात्रि को चार बजे उठकर क्रिया पर बैठो और सूर्योदय तक करो, एवं सन्ध्या को ठीक सूर्यास्त के समय क्रिया पर बैठो। समय पर क्रिया करने से ही पूरा फल पाओगे अन्यथा पूरा फल नहीं मिलेगा। किन्तु! यह सोचकर कि समय बीत गया अब क्रिया करके क्या लाभ—क्रिया को छोड़ना ठीक नहीं। एकदम न करने से तो असमय में करना ही ठीक है। कुछ फल तो होवेगा ही, पर ठीक समय पर करने की विशेष चेष्टा करना। बापू! ध्यान रखो कि भूख के समय सूखी रोटी भी अमृत का स्वाद देती है पर पीछे मिलने पर अमृत में भी वह स्वाद नहीं।

८४. कर्म (क्रिया) करने से ही कर्म की प्रवृत्ति आती है। सत्कर्म को बराबर करते-करते ऐसा अभ्यास हो जायगा कि फिर वह छोड़ने पर भी न छूटेगा। पहले-पहले तो अपने आप जबरदस्ती चेष्टा करके 'क्रिया' करने बैठना पड़ेगा पर पीछे ऐसा हो जायगा कि क्रिया पर न बैठ पाने पर प्राण छटपटाने लगेंगे। गुरु उपदेश देंगे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बता देंगे, दिखना देंगे—पर कर्म (काम) तो तुम्हें ही करना होगा। जो कर्म करेगा वही फल पाएगा। दृढ़ता सहित, अपने मंगल के लिए कर्म करना होगा, खटना होगा। खाली गाल बजाने से कुछ नहीं होगा। एक बार 'क्रिया' का दृढ़ अभ्यास हो जाने पर फिर उसे छोड़ नही पाओगे।

यह देखो न बापू! मैं आज दो-तीन वर्षों से, नाना कारणों से, नाना प्रकार से, घूमता रहता हूँ परन्तु क्या कभी भी तुमने यह देखा है कि क्रिया न की हो? यह सब शिष्यगण तो पास में ही सोये रहते हैं—ऐसा कभी हुआ है कि एक दिन भी क्रिया न की हो इसलिए कि शरीर अस्वस्थ है ? रात्रि के ठीक बारह बजे ही उठ जाता था—आसन पर क्रिया के लिए बैठ जाता था एवं फिर और नहीं सोता था। अपने आपको ही सब करना होगा—आलस्य का त्याग करना होगा।

८५. संसार बाहर नहीं, मन में है। इस संसार का सारा सुख-दुःख मन का ही खेल है। मन के निरासक्त एवं निर्विषय होने पर संसार में सुख-दुःख का भोग नहीं करना पड़ता। चित्त ही संसार है। अतएव सर्व प्रकार, यत्न सहित, चित्त शुद्धि करनी होगी। जैसा उसका मन वैसा ही मनुष्य बन जाता है।

८६. चित्त तथा मन के नाश (निग्रह) का एक सरल तथा प्रधान उपाय यह है कि भूत की (जो बीत चुका है उसकी) या जो सुदूर भविष्य में होने वाला है उसकी चिन्ता न करे। धन, सम्पदा आदि चाहे कोई भी वस्तु क्यों न हो—वह जिस समय पाई जाती है केवल उसी समय आनन्ददायक होती है। उसके पहले या पीछे तुष्टिजनक नहीं होती। अतएव विषयों का सुख अल्प-क्षण स्थायी रहता है।

८७. इष्ट-देवता के जो परमाणु हैं वैसे ही परमाणुओं की सृष्टि, साधक में, क्रिया द्वारा मन्त्र-जप के प्रभाव से होती है। देवता के ही परमाणु वहाँ से आकृष्ट होकर साधक के शरीर में, साधन द्वारा, आकर इकट्ठे होते हैं। इष्ट और साधक के परमाणु एक न हो जाने तक इष्ट के दर्शन नहीं होते।

८८. जप तो जप की तरह होना चाहिए। तब ही न उसका पूरा फल प्राप्त होगा। गुरुदत्त विधि से, यथावत् भाव से, साध्यमत मन को लगाने से ही तो सिद्धि मिलेगी।

८९. मुक्ति का वास्तविक अर्थ है मायातीत-अवस्था। उस काल में योगी, आदि शक्ति के सम्पर्क तथा स्पर्श से आदि शक्ति की भाँति ही सकल शक्ति-सम्पन्न तथा विभूति-सम्पन्न हो जाता है।

९०. ग्रन्थों से वास्तविक ज्ञान नहीं मिलता। चित्त में उपयुक्त संस्कार न होने तक ज्ञान के उदय की कोई सम्भावना नहीं। सद्गुरु द्वारा निर्दिष्ट क्रम तथा प्रणाली के अनुसार कर्म-अनुष्ठान (क्रिया) न करने से चित्त का संस्कार नहीं हो पाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असंस्कृत चित्त में क्या ज्ञान का विकास हो सकता है ? गुरु-ज्ञान अमूल्य है। कर्म (क्रिया) न करने से कोई भी रहस्य उद्घाटित नहीं होता।

९१. कली में जैसे फूल है, वैसे ही फूल में भी कली है। बीज में जैसे वृक्ष है वैसे ही वृक्ष में बीज है। प्रकाश काल या अभिव्यक्ति का कारण प्रस्तुत होते ही कली पुष्प के रूप में तथा बीज वृक्ष के रूप में विकसित होते हैं।

९२. मनुष्य कितना महत्त्वपूर्ण एवं कितना महान् है। वह आत्म-विस्मृत हो गया है किन्तु कुछ दिन सत्पथ पर चलने से फिर सब कुछ समझ सकेगा—इसीलिए मैं कुछ-कुछ अलौकिक बातें समय-समय पर दिखाता हूँ। यह सब देखकर जब मनुष्य समझ पाएगा कि उसके अन्दर सर्व-शक्ति निहित है, केवल घर्षण के अभाव से उसका विकास नहीं हो पा रहा है, तब वह बहिर्मुखता तथा विषय-लिप्सा का त्याग करके यथार्थ वैराग्य एवं विवेक-सहित अनासक्त कर्म करके, परमानन्दमयी महाशक्ति की ओर अग्रसर हो पाएगा।

९३. प्रथम, 'मैं तुम्हारा हूँ'; तत्पश्चात् 'तुम मेरे हो'; एवं उसके बाद 'जो तुम हो वही मैं हूँ'—हो जाता है। किन्तु बापू! यह भाव स्थिर रख पाना दुष्कर है। अहंकार ही सब नाश कर देता है। शास्त्र को मानकर, गुरुवाक्य पर विश्वास करके, कितने आदमी चलते हैं ? यही हो जाय तो जीव की इतनी दुर्गति हो ही क्यों ? काल का ही महत्त्व है—क्योंकि कलियुग में अधिकांश बोलने वाले ही हैं, कर्म करने वाले नहीं।

९४. देखो हिंसा, द्वेष, पर-स्त्री कातरता तथा दूसरे के ऐश्वर्य को देखकर जलना—ये सब बातें बहुत खराब हैं। सत्पथ में जाने की जो चेष्टा करता है, उसको इन बातों से बहुत सतर्क रहना चाहिए, तभी वह सत्पथ पर अग्रसर हो सकेगा। देखो! मन में कितने प्रकार के भाव उठते हैं। जन्म-जन्मान्तर के ढेर के ढेर संस्कार एकत्रित हैं, उन्हीं को लेकर मन सर्वदा खेलना चाहता है। ईश्वर की दिशा में जाने के लिए इन प्रबल शत्रुओं को अपने वश में करना होगा, नहीं तो ये तुमको उल्टी दिशा में ही घसीट ले जायँगे और तुमको पटक देंगे। अनियन्त्रित मन ही सारे अनिष्टों की जड़ है।

९५. भले विषयों में आसक्ति उत्पन्न करने के लिए उन विषयों की तीव्र भाव से आलोचना तथा चिन्ता करना नितान्त आवश्यक है। बुरे परमाणु इस समय तुम्हारे भीतर भरे पड़े हैं, जिसके कारण अच्छे परमाणु भीतर प्रविष्ट नहीं हो पा रहे हैं। तीव्र संघर्ष द्वारा बुरे परमाणुओं को भगाना पड़ेगा। पूर्व जन्मों के संस्कार अभी भी प्रचुर मात्रा में तुम्हारे अन्दर भरे पड़े हैं। मन को इनके द्वारा कभी भी विचलित मत होने दो तथा मन्त्र और मन के संघर्ष द्वारा अच्छे परमाणुओं का इष्ट से आकर्षण करने में लग जाओ—प्रत्येक दिन क्रिया द्वारा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९६. सद्गुरु का आश्रय ग्रहण करके, उनके निर्दिष्ट पथ के अनुसार, कर्म करना होगा—उससे यथासमय ज्ञान, भक्ति तथा प्रेम स्वतः क्रम से उदित होंगे। केवल भावुक होने से अथवा शुष्क ग्रन्थ अध्ययन-मूलक तर्क-वितर्क द्वारा असली लाभ की आशा नहीं। कर्म (क्रिया) ही एकमात्र अवलम्बन है। कर्मभ्यो नमः।

९७. आलस्य त्याग करके, गुरु के बताये हुए साधन क्रम का अभ्यास करो। अभ्यास का महत्त्व अनन्त है। तपस्या के फलस्वरूप सिद्धि-लाभ अवश्यम्भावी है।

९८. कभी अपने मुख से अपनी प्रशंसा मत करो, तथा दूसरे की निन्दा भी मत करो। दूसरे के कार्य की अच्छी-बुरी आलोचना अच्छी नहीं है। कौन, कब, किस उद्देश्य से किस काम में प्रवृत्त हुआ, उसका विचार करने का अधिकार उसको छोड़ अन्य किसी को नहीं है।

साधु-सन्तों की निन्दा एवं उनके कर्मों की समालोचना एकदम निषिद्ध है। तुम तो सफल भाव से अपने दोषों को खोजकर उनके सुधार की चेष्टा करो। कपट का आश्रय कभी भी ग्रहण मत करना। सब दोषों की क्षमा है, किन्तु अहंकार एवं कपट की क्षमा नहीं है।

९९. सब प्रकार की उन्नति चरित्र की उच्चता पर निर्भर करती है। किसी के मन को चोट मत पहुँचाओ। इन्द्रियों को जीत, काया, मनसा, वाचा से सत्य का पालन करो। गुरु में अचल श्रद्धा रखना तथा धैर्य, क्षमा एवं करुणा वृत्ति का अनुशीलन करना। चित्त को सदा ही अनासक्त तथा प्रशान्त रखने की चेष्टा करना। इन सब सद्गुणों का विकास असली आध्यात्मिक उन्नति के लिए नितान्त आवश्यक है।

१००. "मैं तो हूँ ही—सदा जाग्रत् भाव से तुम्हारे एकदम पास हूँ।" ठीक प्रकार से कर्म करने पर तुम इस कथन की सत्यता अनुभव कर पाओगे। वत्स! चिन्ता क्यों करते हो ?

१०१. "मैं! मैं," क्या ? "मैं और तुम दोनों"—क्या ? वरन् "सारा जगत् ही मैं हूँ"—यह सब मैं नहीं जानता। तब भी जो मैं लिखूँगा तथा बोलूँगा—वह सोलहों आने ठीक होगा। दिन-रात, रोशनी-अँधेरा, देव-द्विज न भी रह सकते हैं, सृष्टि का लय हो सकता है, देवों का कार्य ध्वंस हो सकता है, पर मैं जो बोलूँगा वह एकदम ठीक वैसा ही होकर रहेगा, वही सत्य होगा।"

(श्री श्री भृगुरामजी परमहंस द्वारा ज्ञानगंज से बाबा को लिखित पत्र का अंश)

१०२. एक छोड़कर, जगत् में दूसरी वस्तु है क्या, भाई ? यदि है भी, तो हुआ करे।, उसी से तो कहते हैं "जगत् मिथ्या।" सत्य-सत्य प्रकृति का खेल है या नहीं। इस खेल को जो खिलाते हैं—वे भी नहीं जानते—जो जानते हैं वही जानें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्योतिर्मय की ज्योति—जो ज्योति को देखने की इच्छा करे या उसको देखे— यह कहा नहीं जा सकता। ज्ञान में भक्ति के आने पर जो भाव होता है वही ठीक है।

सब ही 'क्रिया' करने पर अमरत्व को प्राप्त होंगे। कोई मरता नहीं, कोई बचता नहीं; मरना-बचना तो स्थूल का खेल है। उसी से कहते हैं "ब्रह्म सत्यं, जगत् मिथ्या।' अब एक ब्रह्म ही सोचने का विषय है और कुछ नहीं। "तुम, मैं तथा जगत्," तब तुम और मैं कौन ? भाई।

'श्री श्री भृगुराम परमहंसदेव'

१०३. शुभवृत्ति-प्रदर्शित पथ पर चलने से काम, क्रोध आदि दुर्जय रिपु भी निर्बल हो जाते हैं। योगी सकाम-जनित-तृप्ति का एकदम परित्याग कर देते हैं तथा निष्काम योगशक्ति के आकर्षण को, अनासक्त-वैराग्य साधन की सहायता से, समझने में समर्थ होते हैं। जब तक साधकत्व शक्ति न जन्मे, तब तक हरि-चिन्ता तथा ध्यान का गूढ़ तत्त्व समझ में नहीं आता। जहाँ एकदम घोर अन्धकार को छोड़ और कुछ दिखाई नहीं पड़ता, उसके बीच भी विपद्-संकुल अनित्य की विचित्र लालसा से, पृथ्वी की घटनाएँ, अपने आप, बिना रोक के, पागलों की चेष्टाओं की तरह, बिना प्रयोजन तथा कारण के, होती-सी दिखाई देती हैं। इस बात को समझने के लिए योग का विशेष प्रयोजन है।

श्री श्री भृगुरामजी परमहंसदेव (१८३५)

१०४. मंगलमयी के राज्य में जीव, केवल काम-क्रोधादि अवस्थाओं के अधीन होकर, पाप-पुण्यादिक विविध आचरण करता है। देह आत्मा से भिन्न है; आत्मा तो कुछ भी भोग नहीं करता;—यदि करता है तो पाप-पुण्य का भागी कौन ?

दादा गुरुदेव (श्री श्री भृगुरामजी परमहंसदेव) ने एक दिन हम सब योगियों को योगमार्ग में तुम्हारी असीम प्रगति दिखलाई। अब भी तुम उग्र तपस्या कर रहे हो यह भी दिखाया। घूमकर देखो तो कुछ भी नहीं, अचानक ही सब लुप्त हो गया। शरीर में काँटे से उठ गये। पुनः देखा तो जगत् नहीं है एवं मैं भी नहीं हूँ। यह क्या खेल है भाई! दादा गुरुदेव से पूछा कि क्या जीव का अतीत व्यतिक्रम हो गया है जो अनेक म्लेच्छ, हिन्दू, मुसलमान शिष्य किये हैं ? बहुत देखा, बहुत कुछ किया पर तुम्हारी जैसी योग-शिक्षा परमाराध्य भृगुराम स्वामी ने हमको नहीं दी। मेरी इच्छा है कि तुम्हारे पास कुछ दिन रहकर 'चात्तर' एवं 'यागकल्प-योग' सीखूँ। तुम्हारा क्या मत है ?

तुमको इसी चतुर्थ मठ में नौ-सौ ब्रह्मचारियों की परीक्षा लेनी होगी। तुमको सभी प्रणाम कहते हैं। लगता है कि तुम्हें शीघ्र ही ज्ञानगंज (पंजाब) आने की आज्ञा दी जायगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(श्री ज्ञानानन्द परमहंस द्वारा श्री विशुद्धानन्द स्वामी को लिखे पत्र का अंश। ज्ञानगंज (पंजाब)-१८३४ बंगला)

१०५. विशुद्धानन्द! तुमने जो वर्त्तमान समय में शिष्य किए हैं, उन सब का निरीक्षण मैं प्रतिदिन ही करता हूँ; सम्यक् दृष्टि से हर एक के घर जाता हूँ। मैं सबको देखता हूँ, तुम्हें इन लोगों को देखने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे शिष्यों का जैसा काम देखता हूँ, उसमें अच्छे तथा बुरे दोनों ही तरह के हैं। जिन शिष्यों ने एक बार किसी और (कुलगुरु आदि) से दीक्षा लेकर पुनराय तुमसे दीक्षा ली है, देखना कि वे लोग तुम्हारे चरण न छूवें—ऐसा करने से उनकी सारी क्रिया नष्ट हो जायगी। उनको जब पद-स्पर्श का अधिकार मिल जायगा तब ही स्पर्श कर पाएँगे, इसलिए दो-तीन वर्षों तक वे तुम्हारे चरण स्पर्श न करें।

छह सौ सत्तानबे शिष्यों में से चार-सौ-बत्तीस कर्मी हैं। उनको चार ही वर्षों में सब कुछ प्रत्यक्ष होगा और सिद्धि-लाभ होगा। सृष्टि लय हो सकती है पर मैंने जो ऊपर कहा है वह झूठा नहीं होगा। चन्द्र-सूर्य के रहते वे और जन्म ग्रहण नहीं करेंगे। यदि करें तो समझो कि मैं भी जन्म लूँगा, ब्रह्मा को भी जन्म लेना होगा एवं और देवता भी जन्म लेंगे। वे शिष्य जन्म नहीं लेंगे—नहीं लेंगे।

गुह्य विषय व्यक्त करने से क्रिया नष्ट होती है। शिव-चतुर्दशी को आश्रम में मेरे दो-एक खेल देख पाओगे। आश्रम में आकर तुम्हारे सब शिष्य परस्पर एक दूसरे के पास योनि मुद्रा करके बैठने पर वे सब ही वे खेल साक्षात् देख पायेंगे।

क्रम से देखोगे कि केवल सुख अर्थात् दुःख से अमिश्रित सुख की आशा इस जगत् में कम है। ठीक-ठीक प्रकार क्रिया करने से अवश्य मृत्युंजय हुआ जा सकता है। तुम्हारे अनेक शिष्य, अनेक समय, तुम्हारे प्रति सन्दिग्ध रहते हैं। वे यह नहीं जानते कि गुरु के प्रति तथा तुम्हारी दया के प्रति अविश्वास करके, कल्पित-अनुष्ठान द्वारा, बद्ध रहकर, पथ-भ्रष्ट-पथिक की भाँति, क्लेश को छोड़ उनके हाथ और कुछ नहीं लगेगा। तुम्हारी दी हुई क्रिया न करके उसकी जगह कल्पित अनुष्ठान करके, उनकी अभीष्ट लाभ की इच्छा ऐसी है जैसी बाँझ स्त्री की पुत्र के प्रसव की इच्छा—अर्थात् असम्भव है।

हम लोगों की अनुमति बिना अब तुम अपने शिष्यों का या और किसी का भी भविष्य योग-क्रिया तथा योग-ज्योतिष द्वारा मत देखना। जिस मुहूर्त्त में देखने की इच्छा करोगे उसी क्षण मैं तुम्हारी इतने दिनों की क्रिया के फल को ध्वंस कर दूँगा। मैं कहता हूँ, ध्यान रहे और कोई कह नहीं रहा है। मैं कौन और कैसा हूँ—यह तुम अच्छी तरह जानते हो।

(श्री भृगुराम परमहंस—१८३१ बंगला)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०६. महादुःख तथा महाभय—दोनों बन्धु हैं। जिस महाशक्ति ने जगत् को प्रसव किया है और जिसने भगवान् को भी प्रसव किया है उस महाशक्ति के तत्त्व के अनुसन्धान में जो सदा रत हैं एवं जिन्होंने मेढ्रे (गर्दन के पिछले भाग) में चार दल, कण्ठ में सोलह दल, आँख में दो दल, माथे में सहस्र-दल प्रत्यक्ष किये हैं वे ही योग-विज्ञान में परम योगी हैं।

गुरुदेव को यदि आन्तरिक मन तथा प्राण निवेदित करे तो शिष्य निश्चय ही स्वर्गीय पवित्रता का अधिकारी होगा एवं गुरु-कृपा से ही, चेष्टा न करने पर भी, उसकी उन्नति होगी, परिणाम, पूज्यपाद स्वयं गुरुदेव ही जानते हैं—वे देखते हैं।

जो शिष्य विश्वास तथा भक्ति से शून्य हैं, जिनको गुरु-वाक्य में विश्वास नहीं, जो शास्त्रवाक्य की अवहेलना करते हैं, वे निश्चय ही मूलधन से वंचित होंगे, चिरकाल तक दुःख भोग करेंगे—इसमें सन्देह नहीं।

लालसा का त्याग न होने तक विशुद्ध आनन्द कहाँ ? सुख की इस जगत् में आशा कम है।

(उमानन्द परमहंस द्वारा विशुद्धानन्द स्वामी को लिखे पत्र का अंश। ज्ञानगंज-पंजाब)

१०७. जो क्रिया दी गयी है उसको आदेशानुसार ठीक-ठीक करने से किसी विषय की भी चिन्ता का कारण नहीं रहेगा। वृथा बुरे काम तथा व्यर्थ चिन्ता में समय नष्ट करना ठीक नहीं। जगत् में धर्म ही प्रधान वस्तु है। धर्मरूप कल्पतरु का आश्रय ग्रहण करने पर जीव को किसी द्रव्य का भी अभाव नहीं रहता,—सर्वदा वह परमानन्द में रहेगा।

१०८. प्रत्येक जीव महाशक्ति की कृपा से आकर्षित होकर विशुद्ध तत्त्व वस्तु का अधिकारी होकर परमानन्द भोग करता है। 'उस महाशक्ति के चरणों में किस प्रकार से पहुँचा जाय'—इसकी चेष्टा न करके जो अन्य उपायों का अवलम्बन करते हैं—पथभ्रष्ट पथिक की भाँति उनको कष्ट ही कष्ट उठाना पड़ता है।

१०९. लक्ष्य सदा भगवान्-प्राप्ति के प्रति रखने से, दुस्तर संसार-रूपी मरुभूमि को पार करने में कोई भी कष्ट नहीं उठाना पड़ना और न ही कोई चिन्ता रहती है। जैसे दुर्बल वस्तु के सबल होने में बहुत समय नहीं लगता उसी प्रकार सबल वस्तु के क्षीण होने में भी बहुत समय नहीं लगता।

११०. जीव भ्रान्ति के आवरण में प्रच्छन्न रहने के कारण महाशक्ति के तत्त्व में प्रवेश नहीं कर पाता। वास्तव में अज्ञान ही इसका मूल कारण है। माँ का नाम ही एकमात्र आश्रय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१११. प्रलोभनपूर्ण जगत् में सभी आश्चर्यमय है। देखो न, आजकल इस संसार में असली सत्य की उपेक्षा करके, असत्य का कितना आदर हो रहा है।

११२. चिन्ता क्या ? मैं तुम्हारे पास सर्वदा जाता हूँ और देखता हूँ।

११३. जिसका मन 'दिशा-सूचक चुम्बक सुई' की तरह अविचलित भाव से त्रितापहारिणी के ध्यान में नियत तथा निमग्न रहता हो; शम, दम, तितिक्षा आदि द्वारा जिसने नाना चिन्ताओं तथा यातनाओं से छुटकारा पा लिया हो; एवं जगत्-जननी के दर्शनों की आकांक्षा से, अविच्छिन्न ध्यान तनिक भी टूटने पर जिसका मन व्याकुल हो जाता हो—उसी की अवस्था उत्तम है।

जो बाह्य जगत् के मोह-प्रेम से आसक्त नहीं होता हो तथा ऐश्वर्य की न्यूनता एवं अस्वस्थता से जो विचलित न होता हो, उसकी निश्चय ही सब जगह जीत होती है।

वासना की आसक्ति से जब तक मुक्त न हो जाओगे तब तक मर्म-घातिनी वासनाओं के अव्यर्थ आकर्षण से अविश्रान्त घूमते ही रहोगे। केवल इष्ट-चिन्तन करने से ही ऐसी भावनाओं से पिण्ड छूटेगा।

११४. महामाया का ध्यान करना ही श्रेष्ठ है। उनकी चिन्ता ही उचित है। ध्यान करने पर ही साधक उनका प्रकाश पाता है। ध्यान-रूप विशुद्ध योग द्वारा ही माँ के प्रत्यक्ष दर्शन का अधिकार मिलता है, अन्तर्दृष्टि स्पष्ट होती है, इन्द्रियों के सारे दुष्ट-बन्धन क्षीण होते हैं एवं मर्म-प्रविष्ट वासनाओं की ग्रन्थियों के समूह खुलते हैं, क्योंकि तब ही चित्त की वृत्तियाँ जो तीव्र भाव से बहिर्मुखी हैं, धीरे-धीरे अन्तर्मुखी होकर विलीन हो जाती हैं।

११५. ऊर्ध्व वृत्ति-द्वारा-प्रेरित पवित्र पथ पर चलने से नीच वृत्तियों की सारी शक्ति दुर्बल हो जाती है।

११६. एक महाशक्ति को छोड़कर दूसरा कुछ नहीं है। महाशक्ति के प्रभाव तथा अस्तित्व को जो समझा तथा दिखा सकते हैं वे ही सद्गुरु हैं।

११७. जीव कभी भी भगवान् नहीं हो सकता। एक अविनाशी चैतन्य ही नित्य है। अखण्ड चिन्मय महाशक्ति के विषय में चिन्ता करने से वास्तविक द्वैतवाद के सम्बन्ध में शंका हो जाती है। कोरे ज्ञान की तीक्ष्ण चिन्ता से महाशक्ति के अस्तित्व की रक्षा कठिन है। उसके ऊपर यदि मनुष्य अपने को भगवान् कहकर द्वैत-अद्वैत भाव को समझावे तो लोगों की समझ में क्या खाक आवेगा।

जो ज्ञान निरीश्वरवाद (ईश्वर नहीं हैं) को उपस्थित करता है, उसी ज्ञान के भीतर ही तो अनावृत तत्त्व-ज्ञान है, उसी से तो, ''महाशक्ति है''—इस भाव का समर्थन होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुष्क ज्ञान—"शु = उत्तम + क = नीच" दोनों अर्थात् 'उत्तम + नीच' के मिलने पर कुछ भी नहीं बचता। इससे समझ लो कि वही ज्ञान तत्त्व-ज्ञान है जिसको पा लेने के बाद कुछ नहीं बचता। वास्तविक ज्ञान होने पर महाशक्ति पुनः जीवभाव में, अपने से अपने में विराज करती है।

११८. गुरुदेव शिष्य से—मधु तथा मिठास जैसे एक-दूसरे से जुड़े हैं, उसी तरह तुम और मैं जुड़े हैं—तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं है। क्रिया करने से सब कुछ समझ में आ जायगा। अशान्ति नहीं रहेगी, रह ही नहीं सकती।

११९. मानव-हृदय में यदि सरसों भर भी पवित्रता रहे तो अखण्ड महामाया का विशुद्ध भाव से ध्यान करने से जो ज्ञान आता है उसके उज्ज्वल तेज से सकल प्रकार के पाप-ताप, माया-यन्त्रणा, आसक्ति का मैल आदि सब कुछ भस्म हो जाता है। तब हृदय में महाशक्ति तथा जगत्-शक्ति का ज्ञानामृत प्रकाश होकर जीव, कलुषित संतप्त चित्त रूपी महा-आवरण से परित्राण पाता ही है।

१२०. अनन्त महाशक्ति के महाविज्ञान के प्रकाश में प्राण का क्या होता है ?—वह जिसका हुआ है वही जाने। भाषा नहीं, भाषा होने से लिखता। यह अच्छी तरह विदित है कि योग-विज्ञान के बिना इस विषय में कुछ भी नहीं जाना जाता।

१२१. जगदम्बा का प्रकाश जीवात्मा के रूप में सब में है। जीवात्मा का प्रकाश क्या मन नहीं है ? सूर्य की किरण, किरण की गर्मी—यह जैसे जड़ पदार्थों को स्पर्श करके गर्म कर देती है वैसे ही मन भी जगदम्बा के प्रकाश से प्रभावित हो जाता है। चित् तथा जड़ दोनों के बीच सन्धि-स्थान में स्थित होने के कारण मन कभी तो मानवीय-भाव में तथा कभी देव-भाव में आता रहता है।

१२२. जैसे घट के टूटने पर घटाकाश का अखण्ड-व्यापी-आकाश से समभाव हो जाता है वैसे ही माया का घड़ा टूटने पर अपने को तथा अनन्त-व्यापी महाशक्ति को समभाव में देखने लगोगे।

१२३. जब एक महाशक्ति ही सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार और सकल प्रकार के रूपों में नित्य प्रदर्शित है तब विकार और निर्विकार भी महाशक्ति के ही रूप हैं, उससे स्वतन्त्र नहीं। सुख-दुःख, हाय-हल्ला चाहे जो कुछ जहाँ कभी भी हो—समझ लो कि वह महाशक्ति ही उत्तम तथा अधम, दोनों तत्त्वों का स्वाद ले रही है। मन, बुद्धि, अहंकार आदि का नेता कौन ? वही महाशक्ति॥

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट
नवमुण्डी सिद्धासन

जैसे पहले उल्लेख किया जा चुका है, जब ज्ञानगंज से काशी में विज्ञान-शिक्षा केन्द्र स्थापित करने की अनुमति नहीं मिली तो पूज्य गुरुदेव श्री श्री विशुद्धानन्दजी परमहंसदेव ने अपने शिष्यों तथा भक्तों एवं लोक के कल्याणार्थ संवत् १९९१ फाल्गुन शुक्ल तदनुसार १४ फरवरी सन् १८३५ ई० को, अपनी चालीस वर्ष की कठिन तपस्या के फल को अर्पित करके, "श्री श्री नवमुण्डी सिद्धासन" की स्थापना की। पृथ्वीतल से प्रायः दो फुट ऊँचे धरातल पर एक बारह फुट लम्बा तथा उतना ही चौड़ा जालीदार घेरा जिसके मध्य में चार फुट वर्ग में बालू भरी वेदी-सी है जिसके उत्तर-पूर्व के कोने पर माँ का घट स्थापित है। जालीदार मन्दिर से मिला पश्चिम में एक कमरा पक्की ईंटों का प्रायः चौबीस फुट लम्बा और बारह फुट चौड़ा तथा चौदह-पन्द्रह फुट ऊँचा है जिसमें विशिष्ट साधक बैठकर जप कर सकते हैं। इस कमरे के नीचे इसी नाप की प्रायः दस फुट गहरी एक गुहा है जिसमें जाने के लिए पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं। यहाँ ज्ञानगंज से भैरवी, ब्रह्मचारी साधक तथा सिद्ध परमहंसयोगी समय-समय पर आकर पूजा करते हैं— यह स्थान केवल उन्हीं के लिए आरक्षित है। ऊपर के कमरे से लगा स्नानघर तथा फ्लश शौचालय भी है जिसमें पानी के नल की व्यवस्था है।

कहा जाता है और पुराने शिष्यों ने प्रत्यक्ष देखा है कि स्थापना के समय जहाँ अब ४'× ४' की बालू की वेदी है उस जगह एक बेल का पेड़ था। परन्तु इस आसन के तेज को सहन न कर पाने के कारण वह वहीं कुछ समय में भस्म होकर गिर पड़ा। भिन्न-भिन्न शिष्यों के भिन्न-भिन्न अनुभव हैं। कोई-कोई शिष्य तो आसन पर बैठते ही भूत, प्रेत, शेर, व्याघ्रआघात, डरावनी आकृतियाँ तथा डरावने शब्द और शोर आदि से डरकर भाग खड़े हुए हैं तथा कुछ को धक्का देकर भगा दिया गया। शुद्ध परमाणु, अच्छे संस्कार तथा गुरु की विशेष कृपा बिना इस आसन पर बैठकर क्रिया करना सम्भव नहीं। जो साधक ऊपर वेदी पर किसी कारणवश न बैठ पावे या बैठने से डरता हो उसके लिए पास ही दो खुले बरामदों में बैठकर क्रिया करने की सुविधा है। यह सिद्धासन आश्रम के दक्षिण ओर स्थित है और प्रायः अस्सी साठ फुट लम्बे और तीस फुट चौड़े घेरे में है जिसके चारों ओर आठ फुट ऊँची दीवार है और लोहे का एक प्रवेश द्वार है जो प्रातः भोग के बाद साढ़े-दस बजे से सायं साढ़े-तीन बजे तक बन्द रहता है तथा रात्रि की आरती के पश्चात् आठ बजे से प्रातः पाँच बजे तक बन्द रहता है। इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसन के विषय में बाबा का कथन है—"इस आसन पर शुद्ध भाव से बैठकर जप करने से सफलता अवश्यम्भावी है। अनाचार से कुफल अवश्य होगा। इस स्थान पर बलि, होम तथा पूजा की भी व्यवस्था है।"

आश्रमों की स्थापना

पंचमुण्डी आसन तो अनेक स्थानों पर हैं किन्तु नवमुण्डी आसन संसार भर में केवल दो ही स्थानों पर हैं—एक तो ज्ञानगंज (तिब्बत) में तथा दूसरा विशुद्धानन्द कानन आश्रम, सी० २१/२ मलदहिया, वाराणसी में। काशी आश्रम में यह आसन स्थापित करने की अनुमति ज्ञानगंज से पाने में बाबा को बीस वर्ष चेष्टा करनी पड़ी थी। काशी में तड़ित् शक्ति (electrical magnetism) अत्यधिक है।

बाबा अपने जन्म स्थान बण्डूल ग्राम, जिला—बर्दवान (पश्चिम बंगाल) में भी एक नवमुण्डी आसन की स्थापना करना चाहते थे किन्तु न तो ज्ञानगंज से इसकी अनुमति मिली और साथ ही नौ मुण्डों का भी जुगाड़ नहीं हो पाया, केवल आठ ही मिल पाए।

नवमुण्डी नाम से इस बात का संकेत मिलता है कि नौ मुण्डों के ऊपर, तान्त्रिक-योग-क्रिया द्वारा, नवमुण्डी आसन की स्थापना की गई है और स्वयं बाबा ने भी इस बात का समर्थन किया है। इन नौ मुण्डों के नाम हैं—

१. मानुष, २. वन-मानुष, ३. हस्ति, ४. सिंह, ५. व्याघ्र, ६. शृगाल ७. सजारु (साही, Porcupine), ८. बिडाल, और ९. सर्प। इस आसन का आध्यात्मिक पक्ष अति गम्भीर है। पंचमुण्डी अवस्था प्राप्त होने पर जीव की स्थिति, शिवजी की शवावस्था की भाँति, निष्क्रिय, निश्चेष्ट तथा अहंकाररहित होकर महाशक्ति के ऊपर पूर्णतः निर्भर तथा समर्पित हो जाती है। नवमुण्डी-अवस्था उससे भी चार स्तर और उच्च है। आप स्वयं ही अनुमान लगा लें कि यह सर्वोच्च अवस्था कितनी श्रेष्ठ होगी।

नवमुण्डी आसन की शक्तिपीठ पर महाकाली की पूजा का विधान है। परन्तु वेदी पर बैठकर शक्ति-मन्त्र, शिव-मन्त्र तथा विष्णु-मन्त्र की भी साधना करने पर द्रुत-गति से सिद्धि-फल मिलता है।

नवमुण्डी आसन पर जप करने की अनुमति केवल योगिराज श्री विशुद्धानन्दजी परमहंस के शिष्यों को ही है। परन्तु मानसिक (मानत की हुई) पूजा-बलि-सहित या बलि-रहित, शिष्यों के अतिरिक्त जन-साधारण को भी है।

नवमुण्डी आसन पर कुशा तथा ऊन का आसन निषिद्ध है केवल शुद्ध रेशम का आसन निर्धारित है। इस आसन पर तड़ित्-प्रभाव अत्यधिक है अतः अधिक समय तक बैठकर जप करने से अस्वस्थता तथा अनिष्ट की भी सम्भावना है। बाबा ने बताया था कि वहाँ केवल दस बार गायत्री तथा निम्नतर निर्दिष्ट संख्या में ही इष्ट-मन्त्र का जप कुछ मिनटों तक ही यथाशक्ति के अनुसार करने पर ही यथेष्ट फल मिल जाता है। रमेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दादा, खगेन्द्र दादा तथा और अनेक शिष्यों ने वहाँ विभीषिका का अनेक प्रकार से अनुभव किया। किसी ने धूप-धाप का चारों ओर घोर कोलाहल सुना, किसी को अत्यन्त विकराल आकृतियों ने डराया तथा किन्हीं को तो धक्के देकर भगा दिया गया।

नवमुण्डी आसन की प्राची के भीतर छड़ी, छाता, जूता, बटुआ, चमड़े आदि की अपवित्र कोई भी वस्तु ले जाने का निषेध है तथा उस प्रांगण में किसी प्रकार की भी बातचीत करना वर्जित है। इस आज्ञा के उल्लंघन से कइयों का अनिष्ट होते भी सुना है।

नवमुण्डी आसन में बकरे की बलि की अनुमति है। ज्ञानगंज में योगाश्रम के भीतर बलि वर्जित है अतः नवमुण्डी आसन वहाँ आश्रम के बाहर स्थापित है। १८ आश्विन बंगला संवत् १३४२ अष्टमी के दिन तदनुसार अक्टूबर सन् १९३५ ई० में श्री बाबा की उपस्थिति में, काशी में नवमुण्डी पर पहली बार बकरे की बलि दी गई थी। उसके बाद भी अनेकों बार यहाँ बलि दी जाती रही है।

बलि का मांस 'महाप्रसाद' माना जाता है। महाप्रसाद के प्रति श्री बाबा की महान् श्रद्धा थी। एक बार एकादशी के दिन बलि हुई। एकादशी होने के कारण कुंज घोष दादा ने बलि का मांस ग्रहण नहीं किया। इसके लिए श्री बाबा ने उनको महाप्रसाद ग्रहण न करने के लिए बहुत तिरस्कृत किया था।

गुरु-मन्दिर

विशुद्धानन्द कानन आश्रम की स्थापना से पूर्व श्री बाबा एक बार अपने एक प्रिय शिष्य के यहाँ धनबाद में ठहरे हुए थे। योगेश दादा, जगत दादा, सुरेन्द्र चक्रवर्त्ती दादा आदि कई और शिष्य भी साथ में ठहरे थे।

सुना जाता है कि उस समय ज्ञानगंज से आदेश के तदनुरूप बाबा से भावस्थ अवस्था में शिष्यों ने सुना—"काशी में स्वामी भास्करानन्द के आश्रम में जैसे उनकी मर्मर-मूर्ति स्थापित है, वैसी ही तुम्हारी भी मर्मर-मूर्ति यदि काशी में एक बगान-वाटिका के मध्य स्थापित हो जाय तो उसके दर्शन से तुम्हारे शिष्यों को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति की सम्भावना हो जायगी।

अतः सन् १९३२ ई० में, स्वयं श्री बाबा की देख-रेख में उनके शिष्यों द्वारा कुमारटेली के प्रसिद्ध शिल्पी श्री योगेश्वर पाल से गढ़वायी, पद्मासन मुद्रा में संगमर्मर की बाबा की मूर्ति, काशी विशुद्धानन्द कानन आश्रम में, प्रवेश द्वार के पास ही गुरु-मन्दिर में स्थापित की गई, २८ आश्विन बंगला संवत् १९३९ को। इस मन्दिर में भी बाबा की मूर्ति के प्रातः-स्नान तथा प्रातः, सायं दोनों समय पूजा, आरती तथा भोग की व्यवस्था है।

■

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री विशुद्धानन्दाय नवरत्नमाला

प्रखर सुगन्ध उद्भूत करते हुए नीलकमल मालिका तुल्य श्री विग्रह को धारण करने वाले, काश समूह के तुल्य धवल एवं विशाल दाढ़ी धारण करने वाले, शरद ऋतु के चन्द्रमा की मुग्ध-मधुर चन्द्रिका के समान स्निग्ध नेत्रों से करुणा वृष्टि करने वाले श्री गुरु श्री विशुद्धानन्दजी का अनुध्यान करें ॥ १ ॥

एक भ्रूभंग-मात्र से अतिपाप समूह को ध्वंस करने वाले तेज पुंज से आलोकित, महासिद्धि को उपेक्षाभाव से देखते हुए भी शिष्य-जन को क्षणमात्र में ही करुणा द्रवित होकर सिद्धियों का स्वामी बनाने वाले परम सिद्ध गुरु विशुद्धानन्द आपका कल्याण करें ॥ २ ॥

कस्तूरी एवं कर्पूर के सुगन्धित द्रव से अलंकृत तथा स्फटिक मणियों से युक्त होते हुए भी, असंग होने के कारण, शून्य विचित्र विग्रह धारण करने वाले, माता की गोद में निरन्तर अमृत से भी प्रशस्त दुग्ध का पान करने वाले, श्री श्री माता के प्रवृद्ध शिशु, गुरु विशुद्धानन्द आपकी रक्षा करें ॥ ३ ॥

अनेक असाधारण महायोगियों के द्वारा भी असाध्य षट्चक्र-क्रम-भेदन एवं किरात-कुम्भक-क्रियाओं को, आयत्त करने के सरल मार्ग का प्रदर्शनकर, शिष्यों को प्रदान करने वाले, करुणा-सागर गुरु विशुद्धानन्द रात-दिन आपकी रक्षा करें ॥ ४ ॥

परमात्मा के निर्मल अंश को कोई कर्म-मार्ग से, कोई ज्ञान-मार्ग से और कोई भक्ति-मार्ग से, परस्पर भिन्न रूप में प्राप्त करते हैं। परन्तु जिनके भक्त, कर्म, ज्ञान और भक्ति के समुच्चय-मार्ग से, पूर्ण शिवतत्त्व को प्राप्त करते हैं, वे गुरु विशुद्धानन्द मुझ पर अपना अनुग्रह करें ॥ ५ ॥

जिन्होंने जगन्माता की गोद में अविरल निवास प्राप्त कर लिया है तथा अनायास ही लीला के सम्पूर्ण रहस्य को प्राप्त कर लिया है तथा भक्तों पर अनुग्रह की कामना से उसे विस्तारित किया है, इन शिवरूप, योगिराज गुरु विशुद्धानन्द की जय हो ॥ ६ ॥

दया के सारभूत, जिनके दर्शनों से उत्कण्ठित चित्त सहसा समुद्र के समान अपार शान्ति प्राप्त करता है, जिनके चरण-युगल का आश्रय अखिल वैभव प्रदान करने वाला है, उन गुरु विशुद्धानन्द की, मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ७ ॥

मेरा दुर्ललित मन, चिरकाल से, ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा भी अग्राह्य, जगज्जननी के अमृतोपम दुग्ध का पान करने का इच्छुक है। भक्तजन के लिए कल्प-वृक्ष तुल्य, गुरुवर विशुद्धानन्दजी अपने कृपा-कटाक्ष से, मेरे इस अभीष्ट को पूर्ण करें ॥ ८ ॥

पंचभूतों पर विजय प्राप्त करने वाले, काल-जयी, निर्मल योग को सिद्ध किए हुए, विभूतियों के आगार करुणा-सागर, सर्वज्ञ, गुरुवर योगिराज श्री विशुद्धानन्द की जय हो ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत के महान योगी — विश्वनाथ मुखर्जी

चौदह भाग, 7 जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित चौदह भागों (7 जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : 1-2 : तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : 3-4 : योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्र नाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : 5-6 : स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : 7-8 : किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : 9-10 : भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : 11-12 : बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

भाग : 13-14 : श्री मधुसूदन सरस्वती, आचार्य रामानुज, आचार्य रामानन्द, अद्वैत आचार्य, चैतन्यदास बाबाजी, भक्त दादू, गुरुनानक देव, सिद्ध जयकृष्ण दास, शैवाचार्य अप्पर, साधक कमलाकान्त, राजा रामकृष्ण, यामुनाचार्य, आचार्य मध्व, स्वामी अभेदानन्द, भैरवी योगेश्वरी, सिद्धा परमेश्वरी बाई।

भारत की महान साधिकाएँ — विश्वनाथ मुखर्जी

पुरुष साधकों के साथ-साथ साधना के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान कम नहीं है। प्रस्तुत संग्रह की सभी साधिकाएँ अपने-आप में अद्भुत हैं। चाहे वह श्री माँ शारदामणि, गौरी माँ, दुर्गा माँ, गोपाल की माँ हों या श्री माँ आनन्दमयी, श्री सिद्धिमाता, शोभा माँ। प्रत्येक की साधना अलग-अलग ढंग की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वामी विशुद्धानन्दजी पर अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

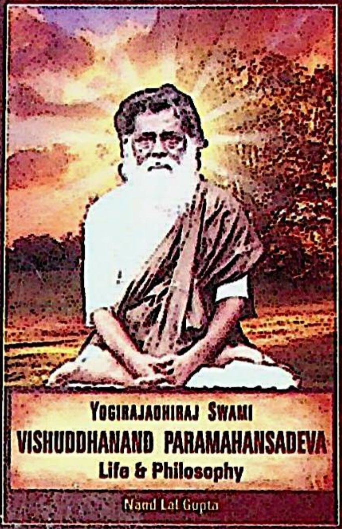

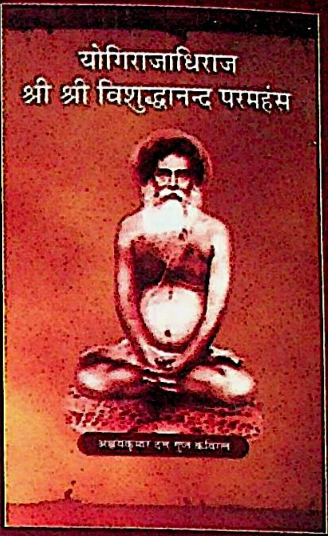

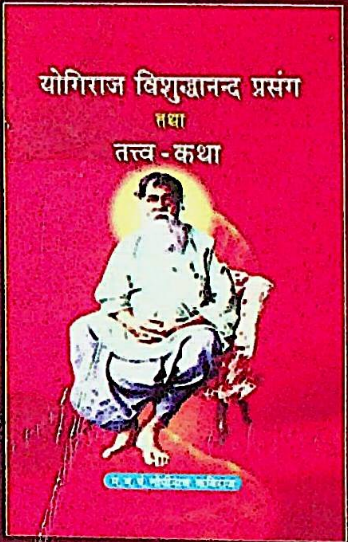

₹ 200.00
ISBN:978-93-5146-110-4
9 789351 461104
www.vvpbooks.com

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पो०बॉ० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
e-mail : sales@vvpbooks.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi